जनता पार्टी का उद्भव एवं पराभव
(RISE AND FALL OF THE JANATA-PARTY)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत्

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

एच० एम० जैन

भूतपूर्व अध्यक्ष
राजनीति शास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधकर्त्ता

अरुण कुमार गुप्ता

एम०ए० (राजनीति शास्त्र)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

राजनीति शास्त्र विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९९५

समर्पित्

पूज्य पिता श्री राम नारायण गुप्ता

एवं

पूजनीय माता श्रीमती रामप्यारी देवी

के चरण कमलों में

डा० एच०एम० जैन

एम० ए०, डी० फिल्०

भूतपूर्व- विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री अरुण कुमार गुप्ता ने डी० फिल्० उपाधि हेतु मेरे निर्देशन मे शीर्षक "जनता पार्टी का उद्भव एव पराभव (RISE AND FALL OF THE JANATA PARTY)" पर अपना शोध प्रबन्ध पूर्ण कर लिया है। इन्होने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की डी० फिल० उपाधि अधिनियम के अनुसार सारी औपचारिकताएँ पूर्ण कर ली है। मेरी अनुशसा है कि यह शोध प्रबन्ध परीक्षणार्थ प्रेषित किया जाए।

दिनाक 20 Dec 1995

H M Jain

(डा० एच० एम० जैन)

प्राक्कथन

ससदीय लोकतन्त्र मे राजनीतिक दलो की महत्वपूर्ण एव दायित्वपूर्ण भूमिका होती है । इसमे सत्ता पक्ष के साथ-साथ विपक्ष का भी दायित्व गम्भीर और गुरूतर होता है । भारत मे स्वतत्रयो परान्त 'एक दल प्रभावी बहुदलोय व्यवस्था' रही है तथा सन् 1976 तक केन्द्र मे काग्रेस का एकाधिकार था । छठी लोकसभा चुनाव (1977) मे विपक्ष के सयुक्त एव एकीकृत प्रयास से जनता पार्टी केन्द्र मे सत्तारूढ हुई, जिसका अल्प काल (28 महीने) मे पतन भी हो गया । अत जनतापार्टी का अध्ययन एक सीमा तक पार्टी की विपक्षी एव सत्ता पक्षीय दोनो भूमिका का गहन अध्ययन है । जनता पार्टी की इसी विलक्षण भूमिका ने मुझे 'इसके उद्भव एव पराभव' के अध्ययन हेतु प्रेरित किया ।

जनता पार्टी का उद्भव एव पराभव मात्र एक राजनीतिक दल की उत्थान एव पतन की गाथा न होकर तत्कालीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की यथार्थ व्याख्या है । इसमे जहॉ एक ओर प्रजातान्त्रिक मूल्यो एव सस्थाओ की ध्वस की पीडा है, वही दूसरी ओर राजनीतिक नेताओ द्वारा अपने व्यक्तिगत स्वार्थो एव महत्वाकाक्षाओ के लिये इन्ही मूल्यो एव सस्थाओ को पुन शोषित करने की राजनीतिक विद्रूपता भी है । जनता पार्टी का अल्पकालिक इतिहास (1977-79) विश्वासघात राजनीतिक मूल्यो की पतन, पदलोलुपता और व्यक्तिमूलक राजनीति का जीवन्त दस्तावेज है, जो वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था मे सर्वत्र दृष्टिगोचर है । पुन जनता पार्टी का यह अध्ययन जहॉ एक ओर भारतीय राजनीति के उन सकारात्मक आयामो का उद्घाटन है, जिसके फलस्वरूप 'दो दलीय व्यवस्था' के विकास के लिये प्रयास किये गये, वही दूसरी ओर उन नकारात्मक आयामो का विश्लेषण भी है, जिनके कारण भारत मे स्वस्थ दलीय व्यवस्था का विकास नही हो सका ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय अनेक अन्य कारणो से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इसे भारतीय राजनीति के इतिहास का 'सक्राति काल' कहना अनुपयुक्त न होगा क्योंकि इसके बिना अतीत एव भविष्य की राजनीतिक प्रक्रियाओ की व्याख्या सुचारू रूप से नही की जा सकती । जनता पार्टी के उद्भव से भारत मे 'दो दलीय व्यवस्था' की आशाये जगी थी, जो शीघ्र ही धूल-धूसरित हो गयी । लेकिन जनता पार्टी का महत्व इसलिये है कि इस काल की 'दो दलीय ध्रुवीकरण' की प्रक्रिया के माध्यम से अतीत की 'एक दलीय काग्रेस-प्रभुत्व व्यवस्था' भविष्य मे 'बहुदलीय ध्रुवीकरण' की ओर अग्रसर हुई । जनता पार्टी ने जिस प्रक्रिया के माध्यम से काग्रेस के प्रभुत्व को तोडा, भविष्य मे वे राजनीतिक प्रक्रियाये भारतीय राजनीति की वास्तविकताये बन गयी और 1989 मे पुन विपक्षी एकीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप केन्द्र मे गर काग्रेसी सरकार बनी । यह सत्य है कि यह प्रयोग भी असफल रहा परन्तु जनता पार्टी ने राजनीतिक एव सामाजिक परिवर्तन की जिस प्रक्रिया का आह्वान किया, वह निर्बाध रूप से जारी है और यदि भारत मे कभी भी (भविष्य मे) दो दलीय व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ तो इसमे जनता पार्टी के योगदान को नकारा नही जा सकता ।

अनेक राजनीतिक पडितो ने अपनी पुस्तको[1] एव लेखो मे जनता पार्टी के विभिन्न आयामो की चर्चा की है । जिसमे श्री अरुण शौरी, श्री जनार्दन ठाकुर, श्री कुलदीप नैयर, श्री अरुण गाधी, सुश्री उमा वसुदेव, श्री डी० आर० मेनकेकर एव कमलामेनकेकर एव श्री दीनानाथ मिश्र आदि विद्वानो ने पत्रकारिता के दृष्टिकोण से जनता पार्टी के विभिन्न आयामो की चर्चा की है । अनेक राजनीतिज्ञो ने भी जनता पार्टी के विषय मे पुस्तके लिखी, इनमे श्री मधुलिमिए, आचार्य जे० बी० कृपलानी, श्री जय प्रकाश नारायण, श्री एल० के० अडवानी एव श्री ब्रह्मदत्त का नाम उल्लेखनीय है, इन सभी राजनेताओ की विवेचना मे राजनीतिक पूर्वाग्रहो की स्पष्ट झलक है । श्री जे० ए० नैयक, सुश्री कविता नारवेन, श्री एस० के० घोष, श्री सी० पी० भाम्भरी और श्री हॉर्स्ट हार्टमैन ने जनता पार्टी के उद्‌भव और पराभव का विवरण तो किया है, परन्तु इसके विभिन्न आयामो की सम्यक विवेचना नही की । अत जनता पार्टी के विषय मे ऐसी कृति का नितान्त अभाव रहा है जिसमे सम्पूर्ण जनता प्रक्रिया (Janata Phenomenon) के विभिन्न आयामो का सम्यक एव बौद्धिक विश्लेपण प्रस्तुत किया गया हो ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इस अभाव की पूर्ति का एक निष्पक्ष प्रयास है । मैने जनता पार्टी के उद्‌भव को भारत की सामाजिक एव राजनीतिक पृष्ठभूमि से उकेरकर उसके पराभव के लिये उत्तरदायी विभिन्न कारको एव समीकरणो की यथोचित विवेचना की है । एक निष्पक्ष शोधकर्ता की दृष्टि से जब मैने उन सभी पत्रो का अध्ययन किया जिनका अदान-प्रदान प्रधानमत्री श्री मोरार जी देसाई और राष्ट्रपति श्री नीलम सजीवा रेड्डी के बीच हुआ था तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जनता पार्टी के पराभव के एक अभिकारक, श्री सजीवा रेड्डी भी थे । इसलिये मैने दोनो सवैधानिक सकटो (जो श्री मोरार जी देसाई और श्री चरणसिह के प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र के बाद उत्पन्न हुये थे) मे राष्ट्रपति के निर्णय की वैधानिकता एव औचित्यता को परखने का प्रयास किया है । यह आयाम अभी तक कमोवेश उपेक्षित था । अत प्रस्तुत शोध प्रबन्ध जनता पार्टी के उद्‌भव एव पराभव जैसे महत्वपूर्ण विषय के अध्ययन का वस्तुनिष्ठ, समेकित एव मौलिक प्रयास है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध एक 'राजनीतिक दल के व्यवहार' का गहन अध्ययन है । इस विषय मे विद्वानो के दो दृष्टिकोण है– **रावर्ट मिशेल, एम० डुवर्जर और इल्डर्सवेल्ड** आदि विद्वानो का मानना है कि 'दल के आन्तरिक क्रियाकलाप' दल-व्यवहार के अध्ययन के लिये व्यापक अर्तदृष्टि प्रदान करते है जबकि **दूसरे अन्य विद्वानो** का विचार है कि दलीय गत्यात्मकता (उदय, विलय, विभाजन एव विघटन आदि) को समझने के लिये दल के आन्तरिक क्रिया कलापो को सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के बाह्य तत्वो से जोड़कर देखना चाहिये । मेरी मान्यता है कि 'दल व्यवहार' के अध्ययन के लिये दोनो ही दृष्टिकोण एकागी है । किसी भी दल के व्यावहारिक एव यथार्थवादी अध्ययन के लिये दोनो दृष्टिकोण मे समन्वय स्थापित करना पडेगा । जनता पार्टी के उद्‌भव एव पराभव का अध्ययन इसी समन्वित उपागम से किया गया है । इसके साथ-साथ जनता पार्टी के नेताओ के पार्टी एव सरकार सम्बन्धी निर्णयो का विश्लेषण उनकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि के आधार पर किया गया है, इसी कारण यह सम्पूर्ण अध्ययन वैज्ञानिक एव व्यवहारवादी उपागम के निकट आ गया है ।

इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिये उपयोगी सामग्री एव जानकारी प्राप्त करने मे मैने अनेक व्यक्तियो

---

1 इन सभी पुस्तको के शीर्षको एव प्रकाशनो का उल्लेख इसी शोध प्रबन्ध के सन्दर्भ सूची मे किया गया है ।

एव सस्थाओ का सहयोग प्राप्त किया । सर्वप्रथम राजनीति शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद मे उपलब्ध पुस्तको एव विशेषकर विभिन्न समाचार पत्रो से एकत्रित राजनीतिक दलो से सम्बन्धित फाइलो का गहन अध्ययन किया । इसके आलावा केन्द्रीय पुस्तकालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद, राजकीय पब्लिक लाइब्रेरी इलाहाबाद, केन्द्रीय राज्य पुस्तकालय इलाहाबाद, (उ० प्र०), पुस्तकालय गाधी विचार भवन इलाहाबाद, गोविन्द बल्लभ पन्त सामाजिक विज्ञान सस्थान इलाहाबाद, केन्द्रीय पुस्तकालय बी० एच० यू० वाराणसी, पुस्तकालय लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सप्रू हाउस पुस्तकालय दिल्ली एव सामाजिक विज्ञान प्रलेख केन्द्र दिल्ली से उपयोगी शोध सामग्री एकत्र की ।

मैने जनता पार्टी कार्यालय दिल्ली के सौजन्य से प्रकाशित विभिन्न पुस्तको, लघु पुस्तिकाओ एव प्रलेखो का उपयोग अपने शोध प्रबध मे किया है । वैसे मेरे शोध प्रबध सबधी सामग्री का प्रमुख स्रोत विभिन्न दैनिक समाचार पत्र, पत्रिकाये, किसिग्ग कॉन्टेम्प्रोरी आर्किव्ज, एसियन रेकार्डर, ससदीय अधिनियम, विभिन्न राजनीतिक दलो के दलीय प्रलेख तथा जनता पार्टी से सम्बधित पुस्तके एव महत्वपूर्ण लेख है । मैने भूतपूर्व सासद एव जनता पार्टी के तत्कालीन महासचिव श्री सुरेन्द्र मोहन से जनता पार्टी के विभिन्न आयामो की विशद चर्चा की इनका यह साक्षात्कार मेरे शोध के लिये काफी उपयोगी सिद्ध हुआ ।

इस शोध प्रबध को पूर्ण करने मे जिन व्यक्तियो का सहयोग रहा उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन को अपना परम कर्तव्य समझता हूँ । प्रस्तुत शोध प्रबध मैने अपने गुरू प्रो० हरिमोहन जैन (भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, राजनीति शास्त्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद) के सक्रिय निर्देशन मे पूर्ण किया । अत किसी प्रकार की औपचारिकता मे न पडकर मै श्रद्धापूर्वक उन्हे नमन करता हूँ ।

इस शोध प्रबन्ध के विषय मे डा० उमाकान्त तिवारी (विभागाध्यक्ष, राजनीति शास्त्र, इलाहाबाद विश्वविद्याय, इलाहाबाद) का सत्परामर्श एव सहयोग मुझे सतत मिलता रहा, इनके प्रति मै ह्रदय से आभार व्यक्त करता हूँ । मै अपने विश्वविद्यालय के सम्पूर्ण राजनीति शास्त्र विभाग एव विशेषकर डा० एच० एन० मिश्रा, डा० के० के० मिश्रा, डा० आलोक पत, डा० डी० डी० कौशिक, डा० वी० के० राय एव डा० अनुराधा अग्रवाल का ऋणी हूँ, जिन्होने समय-समय पर मेरा उचित मार्ग दर्शन किया एव महत्वपूर्ण शोध सामग्री उपलब्ध करायी ।

मै श्री एम० एल० वर्मा (प्राचार्य, महामति प्राणनाथ महाविद्यालय, मऊ बॉदा) का ह्रदय से आभारी हूँ, जिन्हाने शोध प्रबध पूर्ण करने मे हमेशा मेरा मनोबल बढाया तथा महाविद्यालय से यथासम्भव अवकाश प्रदान किया, जिसके बिना यह शोध कार्य सम्भव न हो पाता । मै अपने महाविद्यालय के सभी सहयोगी बधुओ - सर्वश्री गागेय मुखर्जी, डा० आर० के० दीक्षित, डा० एम० एम० द्विवेदी, डा० आर० के० शर्मा एव डा० एस० के० मेहरोत्रा का कृतज्ञ हूँ, जिन्होने शोध कार्य पूर्ण करने मे मुझे महत्वपूर्ण सहयोग दिया ।

मै अपने महाविद्यालय के प्रबन्ध समिति के भूतपूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय प्रो० माताबदल जायसवाल के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ । वे स्वय उच्च कोटि के शोधाकर्ता थे एव उनके प्रोत्साहन से मुझे शोध प्रबध पूर्ण करने की प्रेरणा मिली । उसके आलावा समाजवादी आन्दोलन से जुडे श्री कृष्ण दत्त द्विवेदी 'पालीवाल' (प्रबन्धक, प्रबन्ध समिति, महामति प्राणनाथ महाविद्यालय, मऊ बॉदा) श्री सुन्दर लाल 'सुमन' तथा मऊ क्षेत्र के सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता श्री गिरजाशकर त्रिपाठी का उनके सक्रिय सहयोग एव प्रोत्साहन के लिये ह्रदय से आभार व्यक्त करता हूँ ।

मे, प्रसिद्ध राजनीतिक टीकाकार, समाजवादी चितक एव जनता पार्टी की सम्पूर्ण प्रक्रिया के सक्रिय भागीदार श्री सुरेन्द्र मोहन का अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होने अनेको बार मुझे वार्तालाप एव साक्षात्कार का अवसर प्रदान करके, जनता पार्टी के उद्भव एव पराभव की वास्तविकताओ का ज्ञान कराया और मेरी राजनीतिक विश्लेषण की क्षमता को सराह कर मुझे प्रोत्साहित किया ।

मै प० गगानाथ झा छात्रावास, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ । मै लगभग एक दशक इस छात्रावास का अन्ते वासी रहा हूँ और इसके बौद्धिक एव गरिमापूर्ण वातावरण मे रहकर मैने अपना शोध प्रबध पूर्ण किया । मै अपने अनेक छात्रावासी बधुओ – सर्वश्री अरुण शर्मा, श्री अरबिद पाण्डेय, श्री अखिलेश कुमार राय एव श्री राजेन्द्र सिह यादव का आभारी हूँ, जिन्होने मुझे मूल्यवान सुझाव एव अन्य प्रकार के सहयोग प्रदान किये ।

मै श्री अनुपम दयाल (सेल्स प्रोमोशन आफीसर, लॉ पब्लिशर्स इलाहाबाद), श्री शेखर श्रीवास्तव (डिप्टी मनैजर, लॉ पब्लिशर्स, इलाहाबाद), ने मेरे लिये जनता पार्टी से सम्बन्धित अनेक अनुलब्ध पुस्तको की व्यवस्था की । श्री उमाशकर वर्मा, श्री मनु मिश्रा एव श्री चरण सिह का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होने शोध प्रबध के कम्प्यूटरीकरण एव डिजाइनिग मे सहयोग प्रदान किया ।

अत मे मै अपने पूज्यनीय माता पिता, भाईयो, बहनो एव सहधर्मिणी सगीता का विशेष रूप से ऋणी हूँ, जिनका स्नेह सहयोग, एव सात्विक रोष मेरी प्रेरणा का मुख्य अभिकारक था ।

इसके बावजूद इस शोध प्रबध की त्रुटियो का एक मात्र उत्तरदायी स्वय मै हूँ ।

दिनाक 20 Dec. 1995

(अरुण कुमार गुप्ता)

अनुक्रमणिका

सारणी तालिका

प्रथम - अध्याय

भारत में राजनीतिक दलों का विकास

(I) प्रस्तावना

(II) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस : सत्तापक्षीय भूमिका (1976 तक)

(III) गैर कांग्रेसी दल : प्रतिपक्षीय भूमिका (1976 तक)

भारत में राजनीतिक दलों का विका।ः

प्रस्तावना

राजनीतिक दल प्रतिनिधिक जनतन्त्र का अटूट अग होते है । 'बिना राजनीतिक दलो के न तो सिद्धान्तो की सगठित अभिव्यक्ति हो सकती है और न नीतियो का व्यवस्थित विकास, न ससदीय निर्वाचन के सवैधानिक साधन का अथवा अन्य किसी मान्यता प्राप्त ऐसी सस्था का नियमित प्रयोग जिसके द्वारा दल सत्ता प्राप्त करते है और उसे बनाये रखते है ।'[1] विभिन्न जनतन्त्रीय देशो मे दल प्रणाली का स्वरूप सम्बन्धित देशो के राजनीतिक इतिहास और सामाजिक एव राजनीतिक परिस्थितियो की देन होता है । यही कारण है कि ससार की विभिन्न शासन व्यवस्थाओं मे दल प्रणाली का स्वरूप और उसका कार्य-कलाप भिन्न-भिन्न दिखाई देता है । नार्मन डी० पामर का कहना है कि जपान-फिलीपाइन और इजराइल को छोडकर एशिया के किसी भी देश मे पश्चिमी ढग की सुसगठित तथा प्रभावशाली जनतन्त्रीय दल प्रणाली का विकासनही हुआ ।[2]

भारत मे दलीय प्रणाली का उद्‌भव भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना से माना जा सकता है । आरम्भ मे काग्रेस एक राजनीतिक दल न था । दिसम्बर 1885 मे इसका निर्माण एक दबाव समूह के रूप मे किया गया, बाद मे काग्रेस ने एक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया और इसी के नेतृत्व मे भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई । स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान काग्रेस एक राजनीतिक दल मे परिवर्तित हो गया । आरम्भ मे काग्रेस का उद्देश्य ब्रिटिश सरकार से भारतवासियो के लिये अधिक से अधिक सुविधाएँ प्राप्त करना था । 1920 मे गाधी के नेतृत्व मे राष्ट्रीय आन्दोलन ने एक जन आन्दोलन का रूप धारण किया और विभिन्न धर्म जाति और आदर्शो को मानने वाले लोग एक सामान्य उद्देश्य अर्थात् स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये काग्रेस मे सम्मिलित हुए ।

सन् 1947 तक यह सघर्ष एक विदेशी राजनीतिक सत्ता और भारतवासियो के बीच रहा इसलिए भारतीय समाज के विभिन्न वर्गो ने इस आन्दोलन मे सगठित होकर भाग लिया और सैद्धान्तिक मतभेद राष्ट्रीय भावना को न कुचल सके । इस प्रकार जो सगठन विकसित हुआ उसमे विभिन्न वर्गो, हितो और सिद्धान्तो का समिश्रण था । "इसका परिणाम यह हुआ कि काग्रेस सगठन मे प्रधान या सत्ताधारी गुट के आलावा विरोधी गुट भी रहते थे । जब इसने शासक दल का रूप ग्रहण किया तब भी इसमे विरोधी गुट बने रहे ।"[3]

---

1. आर० एम० मैकाइवर "दि माडर्न स्टेट," आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1926 पृ० 316 ।
2. नार्मन डी० पामर "दि इडियन पोलिटिकल सिस्टम," जार्ज एलेन ऐड अनविन, लन्दन, 1963, पृ० 182 ।
3. रजनी कोठारी 'भारत मे राजनीति' (अनु० अशोक श्री) ओरियन्ट लॉग्मैन लिमिटेड, प्रथम प्रकाशन, 1972 नई दिल्ली, पृ० 110, देखे, वही 'काग्रेस एक और अर्थ मे विरोध का प्रतिनिधित्व करती थी । इसके अन्दर अनेक विचारो के छोटे दल एव समूह थे । हिन्दू महासभा, कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट सभी दलो के कुछ सदस्य एक समय काग्रेस के अग थे । काग्रेस के सत्ताधारी दल से

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद गॉधी जी ने सुझाव दिया कि काग्रेस के राजनीतिक रूप को समाप्त कर दिया जाए और इसके स्थान पर जनता मे रचनात्मक कार्य करने के लिये 'लोक सेवक सघ' की स्थापना की जाए तथा ससदीय क्षेत्र नवीन एव स्पष्ट रूप से राजनीतिक- उन्मुख सगठनो के लिये छोड़ देना चाहिए ।[1] लेकिन उनकी इस बात को स्वय उनके अनुयायियो ने नही माना और देश की शासन सत्ता काग्रेस के हाथो मे पहुच गयी । इस प्रकार 1947 के बाद काग्रेस के वास्तविक अर्थो मे एक राजनीतिक दल का रूप धारण किया । बाद मे धीरे-धीरे अन्य राजनीतिक दलो का जन्म हुआ ।

काग्रेस निर्माण के कुछ वर्षो पश्चात् 1906 मे एक साम्प्रदायिक सस्था (दल) 'मुस्लिम लीग' के नाम से स्थापित हुई । आरम्भ मे इसका उद्देश्य मुसलमानो मे ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठा विकसित करना और उनके अधिकारो की रक्षा करना था । बाद मे मुस्लिम लीग ने एक ओर देश की स्वतन्त्रता और दूसरी ओर द्विराष्ट्र सिद्धान्त के आधार पर पाकिस्तान की मॉग की । मुस्लिम लीग की प्रतिक्रिया के रूप मे एक अन्य साम्प्रदायिक सस्था 'हिन्दू महासभा' सगठित की गयी । इसका उद्देश्य हिन्दू सस्कृति तथा हिन्दू राष्ट्र के गौरव की रक्षा एव विकास तथा पूर्ण स्वराज प्राप्त करना था । हिन्दू महासभा के गठन की तिथि विवादास्पद है, वैसे इसका गठन 1907 मे पजाब मे एक सास्कृतिक सस्था के रूप मे हुआ (पूना महासभा के कार्यालय के अनुसार यह अक्टूबर 1909 है) । सन् 1915 मे श्री मदन मोहन मालवीय एव लाला लाजपत राय के सक्रिय योगदान से हिन्दू महासभा ने अखिल भारतीय स्वरूप ग्रहण किया ।[2] जबकि श्री सुमित सरकार के अनुसार हिन्दू महासभा का गठन श्री मदन मोहन मालवीय और पजाब के कुछ नेताओ द्वारा हरिद्वार कुम्भ मेले मे 1915 मे किया गया ।[3] वास्तव मे हिन्दू महासभा का जन्म काग्रेस से स्वतन्त्र रूप मे हुआ था परन्तु काग्रेस के महत्वपूर्ण नेताओ का सरक्षण इसे प्राप्त था श्री मदन मोहन मालवीय एव लाला लाजपत राय इसके सक्रिय सदस्य थे जबकि ये दोनो महानुभाव काग्रेस के अध्यक्ष भी रह चुके थे । इस समय काग्रेस मे अनेक विचारधाराओ के लोगो का स्थान सुरक्षित था । 1930 के दशक मे हिन्दू सभा के सदस्यो को काग्रेस से निकाल दिया गया ।[4]

स्वतन्त्रता के पूर्व ही कुछ वामपथी दलो का भी जन्म हुआ, इसमे कुछ आज भी जीवित है । 1924 मे साम्यवादी दल की स्थापना हुई । वर्तमान मे इसकी अनेक शाखाये हो गयी है । 1934 मे काग्रेस मे एक नये राजनीतिक गुट का उदय हुआ, जिसे काग्रेस समाजवादी दल कहा गया । सन् 1948 मे इसने काग्रेस से अलग होकर 'समाजवादी दल' नामक नवीन राजनीतिक दल का निर्माण किया । जनता पार्टी (1977) तक अपनी यात्रा के दौरान यह दल अनेको बार विभाजित एव पुनर्गठित होता रहा और उसके कुछ घटक पुन काग्रेस मे चले गये जबकि कुछ जनता पार्टी मे शामिल हुए ।

स्वतन्त्रता के पश्चात राष्ट्रीय स्तर पर बनने वाले दल मे पहला नाम भारतीय जनसघ का है जिसकी स्थापना 1951 मे की गयी । यह दल काग्रेस एव समाजवादी दलो के सिद्धान्तो से भिन्न सिद्धान्तो पर बनाया गया । 1959 मे

---

1 देखे-एम० वी० रमन्ना राव 'डेवलपमेट ऑफ काग्रेस कॉन्स्टायूशन' काग्रेस पब्लिकेशन, पृ० 70 ।

2. एस० एन० सदाशिवन "पार्टी ऐण्ड डेमोक्रेसी इन इण्डिया" टाटा मैग्राहिल पब्लिशिग कम्पनी, लिमिटेड, नई दिल्ली, 1977 पृ० 125-126, देखे हॉर्स्ट हाटमैन "पोलिटिकल पार्टीज इन इण्डिया", मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1982, पृ० 111-112 ।

3 सुमित सरकार "माडर्न इण्डिया (1885-1947)", मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1984, पृ० 235-236 ।

4. रजनी कोठारी 'भारत मे राजनीति', पूर्वोक्ति, पृ० 111 ।

पूँजीवादी व्यवस्था का समर्थन करने वाले एक दल का निर्माण 'स्वतन्त्र पार्टी' के नाम से किया गया । इन दलो के अतिरिक्त विभिन्न राज्यो मे पृथक राजनीतिक दलो की स्थापना की गयी, जो प्रादेशिक और क्षेत्रीय राजनीतिक तक ही सीमित है और उन्होने राष्ट्रीय राजनीति मे कोई विशेष भाग नही लिया, लेकिन स्वतत्रता सग्राम का नेतृत्व करने वाला दल देश की राजनीतिक व्यवस्था मे छाया रहा ।

भारतीय दलीय व्यवस्था के प्रारम्भ मे अधिकतर राजनीतिक दल एक वृहद राजनीतिक आन्दोलन – भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की शाखाये और उप शाखाये है । काग्रेस भारत की सबसे पुरानी राजनीतिक सस्था (दल) है, इस प्रकार काग्रेस दल को यहाँ अन्य राजनीतिक दलो का 'आदि वश-स्थल' कहा जा सकता है । इसमे से कुछ दलो का गठन काग्रेस से वैचारिक भिन्नता के कारण हुआ, जैसे सोशलिस्ट पार्टी । कुछ एक दल काग्रेस की व्यापकता एव प्रभाव की प्रतिक्रिया स्वरूप विशिष्ट सामुदायिक हितो के सरक्षण हेतु अस्तित्व मे आये, जैसे मुस्लिम लीग । जबकि कुछ दल काग्रेस के आन्तरिक विभाजन के फलस्वरूप बने जैसे सगठन काग्रेस । इसके आलावा कुछ दल काग्रेस को चुनौती देने एव उनका राष्ट्रीय विकल्प प्रस्तुत करने हेतु अस्तित्व मे आये जैसे 'जनता पार्टी' ।

इस परम्परा से थोडा हटकर भारतीय साम्यवादी दल का गठन अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन की एक कडी के रूप मे हुआ । इसके बावजूद 1936-39 के बीच काग्रेस एव विशेषकर काग्रेस समाजवादी दल तथा साम्यवादी दल के बीच व्यापक सहयोग रहा । इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के बाद गठित हुए लगभग सभी प्रमुख दलो के कुछ महत्वपूर्ण नेतागण कभी न कभी काग्रेसी रहे थे । इसी कारण सभी राजनीतिक दलो मे काग्रेस सस्कृति का प्रभाव था । अत न केवल विपक्षी दलो के विकास एव स्वरूप के निर्धारण मे बल्कि सम्पूर्ण दलीय व्यवस्था के विकास मे काग्रेस की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । सन् 1977 मे जनता पार्टी का उद्भव काग्रेस के 'राष्ट्रीय विकल्प' के रूप मे हुआ, इसलिए 1976 तक काग्रेस एव प्रमुख विपक्षी दलो के स्वरूप एव विकास पर विहगम दृष्टि डालना श्रेयस्कर होगा, क्योकि इससे भारतीय दलीय व्यवस्था की तारतम्यता एव विभिन्न दलो के अतर्सम्बधो का भी उद्घाटन होगा । इस अध्याय मे राजनीतिक दलो के विकास की गाथा इसी विशेष सन्दर्भ मे वर्णित है ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस : सत्ता पक्षीय भूमिका (1976 तक)

1947 से लेकर 1976 तक भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का विकास एव प्रभाव एक समान नही रहा । 1967 तक काग्रेस का केन्द्र एव राज्यो मे एक छत्र शासन था । 1967 के चतुर्थ आम चुनावो मे केन्द्र मे काग्रेस सत्तारूढ़ अवश्य हुई, परन्तु भारतीय सघ के लगभग आधे राज्यो की विधान सभाओ मे काग्रेस स्पष्ट बहुमत नही प्राप्त कर सकी और इन राज्यो मे विरोधी दलो की मिली-जुली सरकारो, (सविद सरकारो) की स्थापना हुई और ऐसा प्रतीत हुआ कि भारत की दलीय व्यवस्था नवीन रूप ग्रहण करने जा रही है । इस स्थिति के सन्दर्भ मे भारतीय राजनीति के अनेक समीक्षको द्वारा यह विचार व्यक्त किया गया कि अब भारतीय राजनीति मे एक दल की प्रधानता का युग समाप्त हो गया है और भारत मे केन्द्र एव राज्य स्तर पर मिली-जुली सरकारो की स्थापना होगी । **रजनी कोठारी** के शब्दो मे "भारतीय राजनीति ने एक दल की प्रधान वाली स्थिति से निकलकर उस स्थिति मे प्रवेश किया है, जिसमे विभिन्न दलो मे प्रधानता प्राप्त करने के लिये प्रतियोगिता प्रारम्भ हो गयी है ।"[1]

सन् 1969 के भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के विभाजन ने उपरोक्त मत की पुष्टि की लेकिन 1971 के लोक सभा चुनावो और 1972 के विधान सभा चुनावो मे दलीय स्थिति इस रूप मे सामने नही आयी और दलीय व्यवस्था ने पुन अपने पुराने स्वरूप, 'एक दल की प्रधानता वाली बहु दलीय व्यवस्था' को प्राप्त कर लिया । अत 1976 तक काग्रेस का विकास निम्न महत्वपूर्ण चरणो से होकर गुजरा जैसे – काग्रेस प्रभुत्व व्यवस्था (1947-67), भारत मे सविद राजनीति (1967-69), काग्रेस का विभाजन (1969-70), काग्रेस आधिपत्य का पुर्नजन्म (1971 के लोकसभा चुनाव),

एक दलीय प्रभुत्व व्यवस्था (1947-67)

आजादी के पश्चात् भारत मे आधुनिकीकरण, लोकतन्त्रीकरण, स्थायित्व एव राष्ट्रीय एकीकरण आदि राजनीतिक विकास के प्रमुख स्तम्भ, बहुत हद तक काग्रेस की आरम्भिक सामर्थ्य के कारण सम्भव हो सके । सन् 1947 से 1964 तक श्री जवाहर लाल नेहरू के हाथो मे देश के ऊपर काग्रेस का एक छत्र शासन रहा । अत राजनीतिक शास्त्रियो ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को 'एक दलीय प्रभुत्व व्यवस्था'[2] तथा 'काग्रेस व्यवस्था'[3] के नाम से सम्बोधित करना प्रारम्भ कर दिया । पहले तीन आम चुनावो (1950, 1957, 1962) मे काग्रेस को लगभग 74% स्थान मिले और प्रमुख विरोधी दलो की स्थिति बहुत खराब रही । इन तीनो निर्वाचनो मे विरोधी दलो की स्थिति एक सी रही और उनका यथोचित विकास न हो सका । केन्द्र के साथ-साथ लगभग सभी राज्यो मे भी काग्रेस को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ और कुछ राज्यो मे केवल कुछ दिनो के लिये गैर-काग्रेसी सरकार बनने के आलावा लगभग सभी राज्यो मे काग्रेस दल सत्ता मे रहा ।

---

1 रजनी कोठारी 'भारत मे राजनीति', पूर्वोक्त, पृ० 205 ।

2. डब्लयू एच० मोरिस जोन्स भारतीय शासन और राजनीति (हिन्दी रूपान्तर, अनु० हरिन्दर के० छावडा) सुरजीत पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ० 180 ।

3. रजनी कोठारी "दि काग्रेस सिस्टम इन इण्डिया", एसियन सर्वे वायलुम VI न० 12 (1964) पृ० 1161-1173 ।

सारिणी संख्या - 1

प्रथम, द्वितीय और तृतीय आम चुनावो मे राजनीतिक दलो का निष्पादन

(लोक सभा)

राजनीतिक दल	प्रथम चुनाव 1952 कुल स्थान 489			द्वितीय चुनाव 1957 कुल स्थान 494			तृतीय चुनाव 1962 कुल स्थान 494		
	प्राप्त स्थान	प्राप्त स्थानो का %	प्राप्त मतो का %	प्राप्त स्थान	प्राप्त स्थानो का %	प्राप्त मतो का %	प्राप्त स्थान	प्राप्त स्थानो का %	प्राप्त मतो का %
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
काग्रेस	364	74 4	45 0	371	75 1	47 78	361	72 9	44 73
कम्युनिस्ट पार्टी	16	3 3	3 3	27	5 4	8 92	29	5 9	9 94
सोशलिस्ट पार्टी	12	2 5	10 6	-	-	-	6	1 2	2 83
कि० म० प्र० पार्टी	9	1 8	5 8	-	-	-	-	-	-
प्रसोपा	-	-	-	19	3 8	10 41	12	2 4	6 81
जनसघ	3	0 6	3 1	4	0 8	5 92	14	2 8	6 43
हिदू महासभा	4	0 8	0 95	1	0 2	0 80	1	0 2	0 65
स्वतत्र पार्टी	-	-	-	-	-	-	18	3 7	7 89
रिपब्लिकन पार्टी	2	0 4	2 36	4	0 8	1 5	3	0 6	2 83
रामराज्य परिषद	3	0 6	2 03	-	-	0 38	2	0 4	0 60
अन्य दल	35	7 2	11 1	29	5 9	4 81	28	5 7	6 35
निर्दलीय	41	8 4	15 8	39	7 9	19 39	20	4 1	11 08

1952 से 1962 तक देश मे हुये तीन आम चुनाव मे विभिन्न राजनीतिक दलो का तुलनात्मक निष्पादन सारणी (सख्या - 1) मे देखा जा सकता है । यद्यपि तृतीय आम चुनाव मे विरोधी दलो की स्थिति मे मामूली सा सुधार हुआ लेकिन काग्रेस को विशेष हानि नही उठानी पडी और उसका प्रभुत्व बना रखा । इन तीनो आम चुनावो की सामान्य विशेषता एक दल का एकाधिकार रहा । काग्रेस का यह अधिपत्य विश्वसनीय सत्ता पर आधारित था न कि असैनिक या सैनिक शक्ति पर ।[1] इन 15 वर्षो मे विरोधी दलो को विकसित होने का मौका नही मिला और इन तीनो चुनावो मे भरसक प्रयत्नो के बाद भी विरोधी दल काग्रेस के मुकाबले अपनी स्थिति को न सुधार सके । इसके बाद भी विरोधी दल राष्ट्रीय स्तर पर किसी समझौते को राजी न हुए । यदि विरोधी दल मिलकर काग्रेस का मुकाबला करते तो काग्रेस

1. रजनी कोठारी "दि काग्रेस सिस्टम इन इण्डिया", पूर्वोक्त, पृ० 1170 ।

को पराजित कर देना कठिन न था क्योकि सभी चुनाव मे विरोधी दलो को देश मे पडे हुए कुल मतो के 50 प्रतिशत से अधिक प्राप्त हुए । लेकिन निर्वाचन मे अनेक छोटे राजनीतिक दलो के भाग लेने के कारण विरोधी दलो को मिलने वाले मत विभाजित हो गये और इसके फलस्वरूप काग्रेस विजयी होती रही ।

इस काल मे काग्रेस की सफलता का मुख्य कारण इसकी ऐतिहासिक विश्वसनीयता, कुशल नेतृत्व, सशक्त सगठन के अलावा मध्यमार्गी वैचारिकता एव व्यापक समर्थन का ढॉचा था । इस सफलता मे नेहरू जी के व्यक्तित्व का चमत्कार भी था उन्हे विरोधी गुटो मे समन्वय कर्ता कहा जाता था । नेहरू का योगदान किसी क्राति का सूत्रपात करने मे नही अपितु एक विश्वसनीय धरातल के विकास करने मे है । उन्होंने समानता, स्वतन्त्रता एव आधिकार जैसे जटिल मूल्यो को अपने देशवासियों के गले के नीचे उतारा ।[1] इस काल मे काग्रेस ने भारतीय भूमि मे लोकतन्त्र का बीज बोया और अपने राजनीतिक उत्तरदायित्व को समझा । इस काल मे अनेक राजनीतिक सस्थाओ का विकास हुआ और विपक्षी दलो के शक्तिहीन होने पर भी उनके महत्व को स्वीकार किया गया ।

भारत में संविद राजनीति (1967-69)

फरवरी 1967 मे होने वाला चौथा आम चुनाव भारतीय राजनीति मे एक सीमा चिन्ह की हैसियत रखता है । इस चुनाव के पश्चात भारतीय राजनीति एव दलीय प्रणाली मे कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए । इस आम चुनाव मे काग्रेस दल के राजनीतिक एकाधिकार का अन्त हुआ और विरोधी दलो की स्थिति मे आश्चर्यजनक सुधार हुआ । यद्यपि केन्द्र मे राजनीतिक सत्ता काग्रेस के हाथो मे रही लेकिन लोक सभा मे काग्रेस की सदस्य सख्या बहुत कम हो गई । राज्य विधानमण्डलो के चुनाव मे काग्रेस को भारी नुकसान उठाना पडा । यही नही सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन भारतीय सघ के 17 प्रान्तो मे से 9 प्रान्तो मे गैर-काग्रेसी 'मिली जुली सरकार' की स्थापना थी ।[2] इस प्रकार काग्रेस जिसने भारतीय राजनीति मच पर वर्षो तक एक छत्र शासन किया था, बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गयी । किन्तु एक दलीय आधिपत्य का स्थान द्विदलीय या त्रिदलीय व्यवस्था ने ग्रहण नही किया ।[3] इतना बडा परिवर्तन कैसे हुआ ?

मई 1964 मे पडित नेहरू की मृत्यु हो गयी । और काग्रेस दल के चमत्कारी नेतृत्व का अन्त हो गया । **हार्टमैन** के शब्दो मे काग्रेस 'नेहरू वोटस' से वचित हो गयी । 1962 से 1967 के बीच देश को गम्भीर राजनीतिक एव आर्थिक सकट का सामना करना पडा । 1962 के भारत-चीन एव 1965 के भारत-पाक युद्ध का प्रभाव देश की आर्थिक स्थिति पर भी पडा । इसी काल मे एक ओर देश मे व्यापक श्रमिक हड़ताले हुई तो दूसरी ओर जनसघ एव हिन्दू महासभा ने भी गोहत्या जैसे विषयो को लेकर व्यापक स्तर पर 'सरकार- विरोधी' प्रदर्शन किये । इन विभिन्न साधनो से विरोधी दलो ने जन साधारण को सरकार के विरुद्ध उकसाया और उनमें काग्रेस विरोधी भावनाओ को खूब विकसित किया । इसके आलावा चतुर्थ आम चुनाव मे विपक्ष की आशिक सफलता का मुख्य कारण चुनाव सध्या पर डा० राम मनोहर लोहिया द्वारा प्रस्तावित काग्रेस विरोधी 'सयुक्त चुनाव मोर्चे' के रूप मे चुनाव लडने का देश व्यापी आन्दोलन ।

---

1 रजनी कोठारी "दि मीनिग्ज ऑफ जवाहर लाल नेहरु", दि इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, विशेषाक, जुलाई 1964 ।

2. प्रारम्भ मे मात राज्यो मे (बिहार, मद्रास, केरल, उडीसा, पजाब, पश्चिमी बगाल, उत्तर प्रदेश) गैर-काग्रेसी 'मिश्रित सरकारे' बनी । बाद मे दल-बदल के कारण हरियाणा एव मध्य प्रदेश मे काग्रेस मन्त्रिमण्डल के पतन के बाद गैर-काग्रेसी 'सविद मन्त्रिमण्डल' का गठन हुआ । 1967 से ही औपचारिक अर्थो मे सविद राजनीति का युग प्रारम्भ हुआ ।

3. एन० डी० पामर "इण्डियाज फोर्थ जनरल इलेक्शन", एशियन सर्वे मई, 1967, पृ० 275 ।

सारणी संख्या - 2

1967 के लोकसभा चुनाव में राजनीतिक दलो का निष्पादन

राजनीतिक दल	प्राप्त स्थान	प्राप्त मतो का प्रतिशत
काग्रेस	283	40 82
स्वतत्र पार्टी	42	8 54
कम्युनिस्ट पार्टी	23	4 90
कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी)	19	4 46
प्रजा सोशलिस्ट पार्टी	13	3 08
सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी	23	4 89
भारतीय जनसघ	35	9 29
रिपब्लिकन पार्टी	1	2 53
अन्य दल	39	10 40
निर्दलीय	42	11 09
योग	520	100 00

1967 के चुनाव मे राष्ट्रीय स्तर पर केवल एक समझौता जनसघ और स्वतन्त्र पार्टी के बीच हुआ । तमिलनाडु मे स्वतन्त्र पार्टी ने **डी० एम० के०** के साथ चुनाव समझौता किया । बाकी किसी भी राजनीतिक दल ने कोई गठबन्धन नही किया । इस निर्वाचन मे 520 स्थानो मे काग्रेस को 283 स्थान और विरोधी दलो को 236 स्थान प्राप्त हुये । जैसा कि सारणी सख्या-दो से स्पष्ट है कि यदि विरोधी दल कुछ और सगठित प्रयास करते तो केन्द्र से काग्रेस सरकार का अन्त हो सकता था क्योकि कुछ निर्वाचन क्षेत्रो मे काग्रेसी उम्मीदवार बहुत ही कम वोटो से विजयी हुए । यद्यपि लोक सभा मे विरोधी दलो की सख्या मे वृद्धि हुई लेकिन कोई एक राजनीतिक दल इस बार भी इतनी सख्या मे न आ सका कि उसे 'सरकारी विरोधी दल' के रूप मे मान्यता दी जा सके । इस बार दक्षिण पथी दलो के सदस्यो की सख्या काफी बढी ।

इस चुनाव के बाद भारतीय राजनीति मे एक नया मोड राजनीति दल बदल के कारण आया । विभिन्न राज्यों मे बडी सख्या मे दल-बदल की घटनाये हुई और फलस्वरूप इतनी शीघ्रता से मन्त्रिमण्डलो का विघटन हुआ कि स्थायी सरकार की स्थापना एक समस्या बनकर रह गयी । इस चुनाव के बाद इस बात की सम्भावना पैदा हो गयी थी कि भविष्य मे विरोधी राजनीतिक दलो की शक्ति बढेगी और भारत में सगठित विरोधी दल का विकास हो सकेगा । लेकिन 1971 के मध्यावधि चुनाव के बाद यह सारी आशाये समाप्त सी हो गयी ।

कांग्रेस का विभाजन (1969-70)

यद्यपि 1967 मे केन्द्र मे काग्रेस एक दलीय सरकार बनाने मे सफल हुई, लेकिन दल के आन्तरिक विरोध और गुटबन्दी के कारण काग्रेस दल मे धीरे-धीरे दरार पडने लगी । काग्रेस के कुछ वरिष्ठ नेताओ ने सुसगठित होकर इदिरा गाधी का विरोध करना आरम्भ कर दिया । यह विरोध जुलाई 1969 मे 'बगलौर काग्रेस अधिवेशन' मे बिलकुल स्पष्ट हो गया, जब इदिरा गाधी द्वारा प्रस्तुत की गई आर्थिक नीतियो का काग्रेस अध्यक्ष श्री निजिलिगप्पा तथा अन्य सिण्डीकेट नेताओ द्वारा खुला विरोध किया गया ।[1] बगलौर अधिवेशन ने काग्रेस के विभाजन की नीव रखी और 1969 मे होने वाले राष्ट्रपति चुनाव ने काग्रेस को दो टुकडो मे बॉट दिया । सिण्डीकेट गुट ने इदिरा गाधी की इच्छा के विरुद्ध श्री सजीवा रेड्डी को राष्ट्रपति पद के लिये काग्रेस का अधिकृत उम्मीदवार मनोनीत किया । इदिरा गाधी ने निर्दलीय उम्मीदवार श्री वी० वी० गिरि को अपने समर्थन से खड़ा किया और नारा दिया कि इस चुनाव मे काग्रेस मतदाता अपने अन्त करण के अनुसार वोट देने को स्वतन्त्र है । श्री वी० वी० गिरि विजयी हुए । इस निर्वाचन के बाद काग्रेस के दोनो गुट खुल्लम खुल्ला एक दूसरे के सामने आ गये । इस प्रकार 1967 के आम चुनावो ने जहॉ भारतीय राजनीतिक दलो के विकास के एक ऐतिहासिक चरण की समाप्ति की घोषणा की, वहॉ 1969-70 का काग्रेस का विभाजन एक दलीय आधिपत्य के विखण्डन की प्रक्रिया को इसके तार्किक अन्त तक ले जाने मे सहायक हुआ, और नवम्बर 1969 मे औपचारिक रूप से काग्रेस दो भागो मे बट गयी । इसमे एक की नेता इदिरा गॉधी थी जिसे सत्ता काग्रेस या नई काग्रेस कहा गया और दूसरी के नेता मोरार जी देसाई थे जिसे पुरानी काग्रेस या सगठन काग्रेस कहा गया । 1971 के लोक सभा चुनाव मे सगठन काग्रेस ने विपक्षी मोर्चे (महागठबधन) के घटक के रूप चुनाव लडा, जिसमे उसे करारी पराजय मिली और लोकसभा मे उसे मात्र 16 स्थान प्राप्त हुए । मई 1977 मे सगठन काग्रेस का विलय जनता पार्टी मे हो गया ।

काग्रेस के विभाजन के फलस्वरूप लोकसभा मे श्रीमती इदिरा गॉधी की सत्ता काग्रेस अल्पमत मे रह गयी । लेकिन श्रीमती गॉधी द्वारा भारतीय साम्यवादी दल, डी० एम० के०, मुस्लिम लीग और निर्दलीय सदस्यो की सहायता से अपनी सरकार का सचालन किया जाता रहा, लेकिन इसमे श्रीमती इदिरा गाधी को असुविधा महसूस हो रही थी । अत उन्होने जनता से स्पष्ट निर्णय प्राप्त करने के लिये दिसम्बर 1970 मे लोक सभा का विघटन करा दिया और इस पृष्ठभूमि ने 1971 लोकसभा के मध्यावधि चुनाव सम्पन्न हुये ।

---

1 प्रमुख सिण्डीकेट नेता श्री निजिलिगप्पा, श्री मोरार जी देसाई, एस० के० पाटिल, आतुल्य घोष जेस लोग इदिरा गाधी की समाजवादी आर्थिक नीतियो के विरुद्ध थे । इन नेताओं ने बैको के राष्ट्रीयकरण एव राजाओ के प्रिवीपर्सेज का समाप्ति का विरोध किया । इस विरोध की मुख्य समस्या यह थी कि काग्रेस की वास्तविक नेतृत्व शक्ति किसके हाथ में हो - ससदीय गुट के हाथ मे जिसका नेता प्रधानमत्री होता है अथवा म उन गुट के हाथ मे जिसका मुखिया काग्रेस अध्यक्ष होता है ।

सारिणी संख्या - 3

1971 के लोकसभा चुनाव मे राजनीतिक दलो की स्थिति

राजनीतिक दल	कुल प्राप्त स्थान	प्राप्त स्थानो का प्रतिशत	प्राप्त किए मतो का प्रतिशत
इडियन नेशनल काग्रेस	352	67 95	43 68
इडियन नेशनल काग्रेस (सगठन)	16	3 08	10 42
स्वतत्र पार्टी	8	1 54	3 06
भारतीय जनसघ	22	4 24	7 35
सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी	3	0 57	2 42
प्रजा सोशलिस्ट पार्टी	2	0 38	1 04
कम्युनिस्ट पार्टी आफ इडिया	23	4 44	4 73
सी० पी० आई० (एम०)	25	4 82	5 12
रजिस्टर्ड राजनीतिक दल	13	2 50	3 61
निर्दलीय	14	2 70	8 36

स्रोत– रिपोर्ट ऑफ 'दि फिफ्थ जनरल इलेक्शन टु दि हाउस आफ दि पिपुल इन इण्डिया,' 1971, खण्ड 2, एलेक्शन कमीशन आफ इडिया, 1973 ।

1971 का मध्यावधि चुनाव दल प्रणाली के विकास की दृष्टि से अत्यधिक महत्व रखता है । भारतीय इतिहास मे पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर विरोधी विचारधारा वाले दल एक मच पर एकत्रित हुये और सगठन काग्रेस, स्वतन्त्र पार्टी, जनसघ तथा सयुक्त समाजवादी दल ने मिलकर एक समझौता किया जिन्हे 'महामैत्री' (Grand Allaince) का नाम दिया गया । भारतीय क्राति दल एव प्रजा समाज वादी पार्टी ने स्वय को इस 'महा गठबन्धन' से बाहर रखा, परन्तु राज्य स्तर पर महागठबन्धन के कुछ दलो से चुनावी समझौते किये । 'सयुक्त मोर्चे' के नेता सत्ता-काग्रेस की पराजय एव अपनी जीत के प्रति काफी आशान्वित थे । काग्रेस ने सामान्यता सी० पी० आई० एवं तमिलनाडु मे डी० एम० के० के सहयोग से चुनाव लडे । चुनावो मे काग्रेस का अपूर्व सफलता प्राप्त हुई ।

1971 के लोकसभा चुनाव परिणामो ने पूरे देश को आश्चर्य चकित कर दिया । इसमे श्रीमती इदिरा गॉधी के नेतृत्व वाली काग्रेस को 352 स्थान एव लोक सभा मे 2/3 बहुमत प्राप्त हुआ और 1967 मे विरोधी दलो बढ़ी सख्या एक बार पुन अपनी पिछले स्थिति मे पहुच गयी, (देखे सारणी स० 3) । सबसे ज्यादा आश्चर्य की बात यह थी कि सगठन काग्रेस को मात्र 16 स्थान मिले । पिछले आम चुनाव की तरह इस बार भी लोकसभा मे कोई भी राजनीतिक दल इतनी सख्या मे न आ सका कि 'नियमित विरोधी दल' का दर्जा प्राप्त कर सके । पिछले कई चुनावो की तरह इस बार भी साम्यवादी दल लोकसभा मे सबसे बडे राजनीतिक दल के रूप मे वापस हुआ, अन्य सभी विरोधी दलो को भारी क्षति उठानी पडी । सक्षेप मे 1971 के मध्यावधि चुनाव मे भारत मे 'एक दलीय आधिपत्य' की पुन स्थापना हो

गयी और सगठित विरोधी दलो के विकास की आशाये क्षीण हो गयी ।

इस निर्वाचन मे काग्रेस की सफलता का मुख्य कारण, श्रीमती इदिरा गाधी का व्यक्तित्व, उनकी समाजवादी नीतिया एव उनके स्थायित्व का नारा था । इसी कारण समाज के सभी वर्गो ने उन्हे समर्थन दिया ।[1] इस चुनाव मे दक्षिण पथी दलो की घोर असफलता मिली । अत रूडोल्फ का यह विचार काफी हद तक ठीक है कि 'इस निर्वाचन के सामूहिक परिणाम वामपक्ष की ओर झुकाव को इगित करते है ।'[2]

सारणी संख्या- 4

1972 के राज्य विधानसभाओं के चुनावो मे राजनीतिक दलो की स्थिति

राज्य	विधानसभा की कुल सदस्य सख्या	काग्रेस को प्राप्त स्थान	अन्य दलो को प्राप्त स्थान
1	2	3	4
1 आन्ध्र प्रदेश	287	219 (76 31 प्र०)	68
2 असम	114	95 (83 33 प्र०)	19
3 बिहार	318	167 (52 51 प्र०)	151
4 गुजरात	168	140 (83 33 प्र०)	28
5 हरियाणा	81	52 (64 20 प्र०)	29
6 हिमाचल प्रदेश	68	53 (77 49 प्र०)	15
7 जम्मू और कश्मीर	75	58(77 33 प्र०)	17
8 मध्य प्रदेश	296	220 (74 32 प्र०)	76
9 महाराष्ट्र	270	222 (82 22 प्र०)	48
10 मणिपुर	60	17 (28 33 प्र०)	43
11 मेघालय	60	9 (15 00 प्र०)	51
12 मैसूर	216	165 (76 39 प्र०)	51
13 पजाब	104	66 (63 46 प्र०)	38
14 राजस्थान	184	145 (78 80 प्र०)	39
15 त्रिपुरा	60	41 (68 33 प्र०)	19
16 पश्चिमी बगाल	280	216 (77.14 प्र०)	64
17 देहली	56	44 (78 58 प्र०)	12
18 गोआ, दमन दियू	30	1 (3 33 प्र०)	29
19 मिजोरम	30	6 (20 00 प्र०)	24

---

1. मायरन वीनर 'दि 1971 एलेक्शस ऐण्ड इण्डियन पार्टी सिस्टम,' एशियन सर्वे (बर्कले) दिसम्बर 1971, पृ० 1954 ।
2. लायड आई० रूडोल्फ 'कांटिन्यूटीज ऐड चेज इन एलेक्टोरल विहेवियर, दि 1971 पार्लियामेटरी एलेक्शस इन इण्डिया,' एशियन सर्वे, दिसम्बर 1971, खण्ड 11, न० 12, पृ० 1137 ।

स्रोत– रिपोर्ट आफ दि जनरल इलेक्शस टू दि लेजिस्लेटिव एसेम्बलीज, 1972 एलेक्शस कमीशन आफ इडिया, 1974 ।

वस्तुत 1971 के चुनाव परिणामो से सविद और अस्थिर फिसलन की ओर उन्मुख राजनीति का भयावह रूप दृढता से रूक गया । इसके बाद जिन राज्यो मे आम चुनाव हुए उसमे इदिरा काग्रेस को भारी बहुमत मिला । मार्च 1972 मे 19 राज्यो एव केन्द्र प्रशासित क्षेत्रो मे चुनाव हुये ।[1] जिसमे केवल मणिपुर, मेघालय, मिजोरम और गोवा दमन दियू के अतिरिक्त अन्य सभी राज्यो मे काग्रेस को निरपेक्ष बहुमत मिला । इस बार काग्रेस ने कई ऐसे क्षेत्रो मे अपने प्रभाव को जमाने मे सफलता प्राप्त की, जो कि कुछ वर्षो पूर्व स्वतन्त्र पार्टी, जनसघ एव साम्यवादी दलो (मार्क्सवादी) के गढ समझे जाने लगे थे ।[2]

सक्षेप मे 1971 से 1974 तक होने वाले चुनाव मे कुछ छोटे-छोटे राज्यो के अतिरिक्त लगभग सभी राज्यो मे काग्रेस को पूर्ण बहुमत मिला और इस प्रकार भारत मे एक दलीय आधिपत्य की पुर्नस्थापना हुई । इन परिस्थितियो मे सामान्य रूप से निष्कर्ष निकाला गया कि निकट भविष्य मे काग्रेस को सत्ता से हटाने की क्षमता विरोधी दलो मे न रहेगी, लेकिन 1974-75 मे बिहार एव गुजरात मे जन आन्दोलनो एव जून 1975 मे हुये गुजरात विधान सभा के निर्वाचन मे नक्शा ही बदल गया । इस चुनाव के परिणाम स्वरूप गुजरात मे काग्रेस सरकार का अन्त और विरोधी दलो की सरकार (जनता मोर्चे की) की स्थापना हुई । विरोधी दलो का ऐसा ही प्रयास 19 महीने के आन्तरिक आपात स्थिति की ऊर्जा मे परिपक्व होकर "जनता पार्टी" के रूप मे उभरा ।

---

1. इनमें 17 राज्य – आध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, मेघालय, मैसूर, पजाब, राजस्थान, त्रिपुरा, प० बगाल और मिजोरम तथा 2 केन्द्र शासित प्रदेश – देहली और गोवा दमन दीयू थे ।
2. राम जोशी और के० डी० देसाई 'डोमिनेस विद ए डिफरेंस', दि इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, वार्षिकाक, फरवरी, 1973" ।

गैर-कांग्रे॰ दल : प्रतिपक्षीय ९ ।मिका (1976 तक)

भारत मे प्रतिपक्षीय दलो का इतिहास अत्यन्त निराशाजनक रहा है । प्रारम्भिक पॉच आम चुनावो मे (1967 को छोडकर) काग्रेस को केन्द्र मे 2/3 बहुमत प्राप्त हुआ और कोई भी राजनीतिक दल इतनी सख्या मे न आ सका कि 'नियमित विरोधी दल' का दर्जा प्राप्त कर सके । इन चुनावा मे राजनीतिक जनमत कोई 15 राष्ट्रीय व क्षेत्रीय राजनीतिक दलो के इर्द-गिर्द घूमता रहा, जो राष्ट्रीय, समाजवादी, उदारवादी, साम्प्रदायिक एव क्षेत्रीय व स्थानीय तत्वो का प्रतिनिधित्व करते थे । इसमे काग्रेस एक मात्र सत्ता पक्षीय दल था एव प्रमुख राष्ट्रीय प्रतिपक्षीय थे – भारतीय साम्यवादी दल, सयुक्त समाजवादी दल, प्रजा समाजवादी दल, स्वतन्त्र पार्टी, अखिल भारतीय जनसघ, सगठन काग्रेस, और बाद मे उपर्युक्त मे से कुछ और अन्य क्षेत्रीय दलो के सामूहिक विलय से बना भारतीय लोक दल ।

इसके आलावा कुछ क्षेत्रीय दल भी थे जो एक से अधिक राज्यो मे फैले हुये थे – मद्रास मे डी० एम० के०, पजाब मे शिरोमणि अकाली दल, महाराष्ट्र का किसान मजदूर दल, प० बगाल का फारवर्ड ब्लाक, उ० प्र० एव राजस्थान का भारतीय क्रान्ति दल । इसमे से कतिपय राजनीतिक दल विलय एव विभाजन की प्रकिया के बाद जनता पार्टी मे सम्मिलित हुये, जिसका विस्तृत वर्णन अगले अध्यायो मे किया गया है । प्रस्तुत अध्याय मे केवल प्रमुख राष्ट्रीय स्तर के विपक्षी दलो की विकास यात्रा का वर्णन करते हुये जनता पार्टी से उनके अर्तसम्बन्धो को दर्शाया गया है ।

विभिन्न समाजवादी दल

भारत मे अनेक समाजवादी दल हुये है । सर्वप्रथम काग्रेस दल के अन्दर ही आचार्य नरेन्द्र देव, श्री जयप्रकाश नारायण, श्री युसुफ मेहर अली, श्री मीनू मसानी, श्री अशोक मेहता एव श्री अच्युत पटवर्धन के प्रयत्नो से 'काग्रेस समाजवादी पार्टी' की स्थापना हुई । उसका उद्देश्य काग्रेस को अधिक समाजवादी एव क्रातिकारी नीतियो को अपनाने के लिये प्रेरित करना था । समाजवादियो मे वामपथ को प्रोत्साहन देते हुये काग्रेस का नियन्त्रण अपने हाथ मे लेने की कोशिश की जिसमे वे असफल रहे ।[1] यह पार्टी 1948 तक चलती रही, लेकिन काग्रेस के शीर्षस्थ नेताओ (विशेषकर सरदार पटेल गुट) का समर्थन न मिलने के कारण इस गुट को काग्रेस से अलग होना पडा ।[2] इस प्रकार 1948 मे समाजवादी पार्टी का जन्म हुआ ।

1952 के प्रथम आम चुनाव मे सोशलिस्ट पार्टी को सफलता को नही मिली, लोक सभा की 489 सीटो मे उसे

---

1 थामस ए० रश डायनामिक्स आफ सोशलिस्ट लीडरशिप इन इण्डिया, रिचर्ड एल० पार्क और इरने टिकर (सम्पा०) 'लीडरशिप ऐण्ड पोलिटिकल इन्स्टीटयुशन इन इण्डिया,' प्रिन्सटॉन एन० जे० प्रिन्सटॉन यूनीवर्सिटी प्रेस, 1959, पृ० 191 ।

2. पडित नेहरू और गाधी जी समाजवादियो के बहुत विरुद्ध नही थे लेकिन सरदार बल्लभ भाई पटेल काग्रेस को अनुशासन बद्ध दल बनाना चाहते थे । उन्होंने ही सन् 1948 मे काग्रेस के सविधान मे सशोधन कराया, जिससे सगठन के अन्दर ऐसे दलो के रहने में रोक लगा दी जिनकी अलग मदस्यता, विधान और कार्यक्रम हो । इस सशोधन के कारण काग्रेम सोशलिस्ट पार्टी को काग्रेस छोडना पडा ।

केवल 12 स्थान प्राप्त हुये । अत इस दल के नेताओ ने इस बात पर जोर दिया कि अपना राजनीतिक अस्तित्व बनाये रखने के लिये उन दलो का मेल किया जाय जिनसे हमारी विचारधारा मिलती हो । समाजवादियो ने किसान मजदूर प्रजा पार्टी के साथ, जो जे० बी० कृपलानी के नेतृत्व मे काग्रेसी असन्तुष्टो का एक समूह था, विलय वार्ता की । यह दल चुनाव की सध्या पर काग्रेस से अलग हो गया था, और दृष्टिकोण मे गाधीवादी था । दोनो ने मिलकर सितम्बर 1952 मे प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का स्थापना की । शीघ्र ही इसमे फारवर्ड ब्लाक का एक धडा भी शामिल हो गया, जो कि प० बगाल मे सुभाष चन्द्र बोस राजनीतिक स्मृति मे सलग्न था ।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी (प्रसोपा) इस दल के निर्माण के बाद समाजवादियो की स्थिति मे कोई सुधार नही हुआ । आचार्य नरेन्द देव की मृत्यु और श्री जय प्रकाश नारायण के भूदान आन्दोलन मे चले जाने के कारण स्थिति और खराब हो गयी । प्रजा सोशलिस्ट पार्टी मे फूट के लक्षण दिखाई देने लगे, इसका मुख्य कारण समाजवादियो का 'सत्ताधारी काग्रेस के प्रति रुख' रहा है । श्री अशोक मेहता का विचार था कि प्रसोपा को सत्ताधारी काग्रेस के साथ जहॉ तक सम्भव हो सहयोग करना चाहिये । उनका तर्क था कि भारत जैसा सीमित ससाधनो वाला देश 'विरोध की सहूलियते' (लक्जरी आफ अपोजीशन) बर्दास्त नही कर सकता । अत 'देश की पिछडी हुई आर्थिक दशा की तकाजा' है कि काग्रेस का सहयोग किया जाय ।[1] डा० राम मनोहर लोहिया इस विचार के विरोधी थे। प्रसोपा का अधिक क्रातिकारी दल बनाना चाहते थे । अत प्रसोपा के दोनो गुटो मे तनाव बढा, जब काग्रेस ने जनवरी 1955 मे अवाडी मे समाजवादी ढॉचे पर आधारित समाज की घोषणा की श्री अशोक मेहता गुट ने इसका स्वागत किया, जबकि डा० लोहिया गुट ने विरोध किया । जुलाई 1955 मे लोहिया को उनके समर्थको सहित प्रसोपा से निष्कासित कर दिया गया । दिसम्बर 1955 मे लोहिया गुट ने सच्चे समाजवाद की स्थापना के लिये 'लोहिया समर्थक समाजवादी पार्टी' का गठन किया ।

1957 एव 1962 के चुनाव मे समाजवादियो को आशानुरूप सफलता नही मिली अत समाजवादी पुन सहयोग की बात सोचने लगे । इधर श्री अशोक मेहता काग्रेस के साथ घनिष्ट सम्बन्धों की पैरवी लगातार करते रहे तथा 1963 मे उन्होंने योजना आयोग का उपसभापतित्व स्वीकार किया । अत श्री मेहता को दल से निष्कासित कर दिया गया । अप्रैल 1964 मे अपने अनुयायियो सहित श्री मेहता काग्रेस मे सम्मिलित हो गये ।[2]

संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी (ससोपा) : प्रसोपा एव लोहिया समर्थक समाजवादी पार्टी के विलय मे सबसे बडी बाधा डा० लोहिया का यह विचार था कि प्रसोपा को समाजवादी पार्टी की नीतियो को बिना किसी आरक्षण के स्वीकार करना पडेगा ।[3] श्री अशोक मेहता के काग्रेस मे चले जाने से प्रसोपा ने समाजवादी पार्टी की शर्त मान ली ।

---

1 श्री अशोका मेहता ने इस विचार का प्रतिवादन 1953 मे पार्टी की एक रिपोर्ट मे किया । उद्धृत, माइरन वीनर "पार्टी पोलिटिकल इन इण्डिया", क्रिसटॉन, एन0 जे0 प्रिसटॉन यूनीवर्सिटी प्रेस, 1957, पृ0 31

2 अशोक मेहता द्वारा दिये गये स्पष्टीकरण के लिये देखे, प्रसोपा का सातवॉं राष्ट्रीय सम्मेलन की रिपोर्ट रामगढ, प्रसोपा प्रकाशन, 17-20 मई 1964, पृ0 25 ।

3 सोशलिस्ट यूनिटी – एनॉदर अटेम्प्ट फेलस्, पी० एम० पी०, जून 1963, नई दिल्ली ।

इस प्रकार जून 1964 मे दोनो दलो के विलय से 'सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी' (ससोपा) का गठन हुआ ।[1] श्री एस० एम० जोशी इसके अध्यक्ष एव श्री राजनारायण इसके महासचिव बने । इसके पहले कि 'ससोपा' एक सगठित दल बने, यह पुन गुटबदी एव विभाजन का शिकार हो गया ।[2]

पुन विभाजन नव गठित ससोपा मे डा० लोहिया के व्यक्तित्व एव विचार हावी रहे । डा० लोहिया का विचार था कि काग्रेस को पराजित करने के लिये सभी गैर-काग्रेसी वामपथी एव दक्षिण पथी दलो का सहयोग लिया जाना चाहिये, जबकि उनके अन्य सहयोगियो ने इसका विरोध किया । अत ससोपा मे दो विचारधाराये हो गयी ।[3] अन्तत्वोगत्या जनवरी 1965 मे पार्टी के बनारस सम्मेलन म ससोपा का विभाजन हो गया । श्री एच० वी० कामथ, श्री प्रेम भसीन, एव एन० जी० गोरे के नेतृत्व मे प्रसोपा का पुनर्गठन किया ।[4] जबकि भूतपूर्व प्रसोपा नेता श्री एस० एम० जोशी ससोपा मे रहे । इसके बाद विभिन्न राज्यो मे ससोपा एव प्रसोपा गुटो मे विभाजन एव एकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी और उनके अनेक असन्तुष्ट गुट सत्ता काग्रेस मे शामिल हो गये ।[5]

1967 मे डा० लोहिया की मृत्यु के बाद तथा 1971 के मध्यावधि चुनाव मे समाजवादी दलो की असफलता ने पुन एकीकरण का मार्ग प्रशस्त किया । 1971 के लोकसभा चुनाव मे ससोपा ने गैर काग्रेसी महागठबधन के तहत चुनाव लडा परन्तु उसे लोकसभा मे मात्र 3 स्थान प्राप्त हुये । अगस्त 1971 मे प्रसोपा, ससोपा एव विभिन्न राज्यो के कुछ असन्तुष्ट समाजवादी गुटो ने मिलकर पुन 'सोशलिस्ट पार्टी' का गठन किया । इस सोशलिस्ट पार्टी मे देश की सभी प्रमुख समाजवादी नेता श्री एस० एम० जोशी, श्री जार्ज फर्नाडीज, श्री एन० जी० गोरे और श्री मधुलिमिए शामिल थे । श्री राजनरायण गुट ने इसका विरोध किया । अप्रेल 1972 मे राजनरायण ने सोशलिस्ट पार्टी से अलग होकर 'सोशलिस्ट पार्टी (लोहियावादी)' का गठन किया जबकि सोशलिस्ट पार्टी के एक अन्य असन्तुष्ट गुट ने मई 1972 मे श्री कर्पूरी ठाकुर के नेतृत्व मे 'सोशलिस्ट पार्टी (समाजवादी-एकतावादी)' की स्थापना की । श्री राजनरायण एव श्री कर्पूरी ठाकुर ने अपनी पार्टी को लोहिया के समाजवाद का वास्तविक उत्तराधिकारी घोपित किया, इस प्रकार दोनो के एकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुयी । दिसम्बर 1972 मे इन दोनो गुटो (राजनारायण एव कर्पूरी ठाकुर गुट) ने मिलकर पुन एक नये दल 'सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी' का गठन किया ।[6]

1973-75 मे जय प्रकाश आन्दोलन के दौरान व्यापक विपक्षी एकता का आह्वान किया गया । चौधरी चरण सिह के नेतृत्व मे प्रारम्भ विपक्षी एकता के प्रयासो के फलस्वरूप अगस्त 1974 मे (अन्य छ. दलो के सहित) सयुक्त 'सोशलिस्ट पार्टी' का विलय भारतीय लोक दल मे हो गया, जिसका पुन. मई 1977 मे विलय जनता पार्टी मे हुआ ।

---

1 बेनामिन एम० शॉन्फेल्ड "दि बर्थ ऑफ इण्डियाज सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी", पेसिफिक अफेयर, फाल एण्ड विन्टर, 1965-66, पृ० 246-47, लेखक का मानना है कि दिसम्बर 1962 मे उ० प्र० मे दोनों दल के 'विधायक दलों के सम्मिलन' ने राष्ट्रीय स्तर पर दलीय एकीकरण को प्रोत्साहित किया ।

2 दि स्टेटसमैन, दिल्ली, मार्च 25, 1965 ।

3. देखे, पी० एस० पी० सर्कुलर, फरवरी 7, 1965 ।

4. देखे, पी० एस० पी० सर्कुलर, फरवरी 7, 1965 ।

5 विस्तृत अध्ययन के लिए देखे, एस० एन० सदाशिवन "पार्टी ऐण्ड डेमोक्रेसी इन इण्डिया", टाटा मैग्राहिल पब्लिशिग कम्पनी लिमिटेड नई दिल्ली, पृ० 153-170 ।

6 वही ।

दूसरी ओर जार्ज फर्नाडीज के नेतृत्व वाली सोशलिस्ट पार्टी का विलय भी मई 1977 मे जनता पार्टी मे हो गया । इस प्रकार 1977 मे राष्ट्रीय स्तर के लगभग सभी समाजवादी दलो का विलय जनता पार्टी मे होगया । इसे विडम्बना ही कहा जायेगा कि 1948 मे स्वतन्त्र रूप से अस्तित्व मे आयी सोशलिस्ट पार्टी आज तक अपने सुदृढ राष्ट्रीय सगठन का निर्माण न कर सकी और विघटन, विभाजन और विलय ही इसकी नियति रही है ।

साम्यवादी दल

जनता पार्टी के उद्भव मे साम्यवादी दलो का कोई भी समर्थन या सहयोग नही था, क्योकि जनता पार्टी मूलत गैर-साम्यवादी विपक्षी दलो के एकता प्रयासो का परिणाम थी । स्वतन्त्रता के बाद 'विपक्षी-राजनीति' के सन्दर्भ मे साम्यवादी दलो का अध्ययन, इसलिए महत्वपूर्ण है कि यद्यपि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था मे 'विपक्षी-राजनीति' की स्थिति अत्यन्त दयनीय रही थी, फिर भी लोकसभा के प्रथम तीनो आम चुनावो में भारतीय साम्यवादी दल लोकसभा मे एक मात्र सबसे बडा दल था । (देखे सारणी सख्या 1) 1964 मे इस दल के विभाजन से दो दल अस्तित्व मे आये । प्रथम भारतीय साम्यवादी दल (सी० पी० आई०) एव भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) [(सी० पी० आई० (एम०)] इस विभाजन से 1967 के आम चुनाव मे दक्षिण पथी दलो को लाभ हुआ । सी० पी० आई० मे सत्ता काग्रेस के साथ सहयोग की राजनीति अपना ली । इसके बावजूद 1971 के मध्यावधि चुनाव मे सी० पी० आई० (एम०) लोकसभा मे सबसे बडे विपक्षी दल के रूप मे उभरा (देखे सारणी सख्या 3) । सक्षेप मे इसका विकास निम्न है ।

1917 मे रूस मे साम्यवादी क्राति की सफलता के बाद भारत मे साम्यवादी चेतना का प्रार्दुभाव हुआ और इसके फलस्वरूप सर्वप्रथम सितम्बर 1924 मे 'इण्डियन कम्युनिस्ट पार्टी' का जन्म हुआ । बाद में मास्को के दिशा निर्देश पर भारत के विभिन्न वामपथी इकाइयो को मिलाकर दिसम्बर 1928 मे 'कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया' (सी० पी० आई०) की स्थापना हुई ।[1] अपने प्रारम्भिक वर्षो मे सी० पी० आई०, ग्रेट ब्रिटेन के साम्यवादी दल के साथ सम्बन्धित होते हुये भी मास्को के दिशा निर्देशो का अनुसरण करती रही । 1930 के दशक मे ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियो से बचने के लिये, दल ने राष्ट्रीय आन्दोलन के सहयोग करने मे ऊपर से 'सयुक्त मोर्चे' की नीति अपनायी । काग्रेस समाजवादी दल मे प्रवेश करते हुये कम्युनिस्टो ने शीघ्र समाजवादी सगठन मे नेतृत्व प्राप्त कर लिया,[2] विशेष तौर से दक्षिण मे, जहाँ उन्हे प्रभावशाली नियन्त्रण प्राप्त हुआ । समाजवादी सगठन के नियन्त्रण के प्रश्न से काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी एव कम्युनिस्टो मे मतभेद प्रारम्भ हुये और 1940 मे कम्युनिस्टो को 'सयुक्त मोर्चे' से निकाल दिया गया ।[3] कांग्रेस से इनके सम्बन्ध अन्तिम रूप से तब टूटे जब इन्होने गाँधी जी के 'भारत छोडो' आन्दोलन का विरोध करते हुये ब्रिटिश सरकार का सहयोग किया ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्रारम्भ से ही साम्यवादी दल मे आन्तरिक विरोध थे, इसी कारण किसी निश्चित नीति का अनुसरण नही कर सका । साम्यवादी दल का एक छोटा वर्ग, जिसका नेतृत्व श्री रणदिवे कर रहे थे अधिक

---

1 श्री एस० एन० सदाशिवन पूर्वोक्त, पृ० 171 ।

2. श्री सज्जाद जहीर, श्री सोली बाटलीवाला, श्री दिनकर मेहता एव श्री इ० एम० एस० नम्बूदरीपाद आदि सी० पी० आई० नेता काग्रेस समाजवादी दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी मे शामिल हुये ।

3 श्री एस० एन० सदाशिवन, पूर्वोक्त, पृ० 172-173

कठोर नीतिया अपनाने के पक्ष मे था । अत 1948 मे श्री रणदिवे के महासचिव बनने से साम्यवादी दल के इतिहास मे 'अधिकतम युद्ध प्रिय युग आरम्भ' हुआ । 1950 के दशक के प्रारम्भिक वर्षो मे सोवियत सघ का सरकारी दृष्टिकोण श्री जवाहर लाल नेहरु के प्रति बदलने लगा, इसका श्री राजेश्वर राव, श्री एस० ए० डॉगे, श्री पी० सी० जोशी एव श्री अजय घोष ने स्वागत किया और कहा कि साम्यवादी दल 'संवैधानिक साम्यवाद' का स्वागत करेगा ।[1] प्रथम लोक सभा के आम चुनाव मे काग्रेस के बाद इसी दल को सर्वाधिक स्थान प्राप्त हुये और इसे अखिल भारतीय दल घोषित किया गया ।

1957 के दूसरे आम चुनाव मे साम्यवादी दल की शक्ति मे वृद्धि हुई । आध्र प्रदेश एव पश्चिम बगाल मे यह मुख्य विरोधी दल के रूप मे उदित हुआ । केरल मे तो साम्यवादी दल सत्ता रूढ़ भी हुआ और ई० एम० एस० नम्बूद्रीपाद के नेतृत्व मे लोकतान्त्रिक रूप से चुनी हुई सरकार सत्ता रूढ़ हुयी । विश्व के इतिहास मे पहली बार चुनाव के माध्यम से साम्यवादियो को सत्ता मे आने का पहला मौका था । भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने अप्रैल 1958 के अमृतसर के विशेष अधिवेशन मे अपनी नीतियो और कार्यक्रमो मे सम्मानजनक परिवर्तन किया और यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि 'कम्युनिस्ट पार्टी शान्तिपूर्ण साधनो द्वारा पूर्ण प्रजातन्त्र एव समाजवाद लाने के लिये प्रतिबद्ध है । इसके लिये शक्तिशाली जन आन्दोलन का विकास किया जायेगा । यह कार्य ससद मे बहुमत प्राप्त करके तथा जनता की स्वीकृति से किया जायेगा ।'[२]

साम्यवादी दल की बदलती हुयी नीतियो के कारण दल मे आन्तरिक मतभेद बढ रहा था, और उसका दक्षिण पक्ष की ओर यह झुकाव दल के कट्टर वामपथियो को असहनीय हो रहा था । परन्तु 1962 मे हुये चुनाव के कारण मतभेदो को दबा दिया गया । 1962 के आम चुनाव मे एक बार पुन साम्यवादी दल काग्रेस के बाद सबसे बडे दल के रूप मे उभरा । इसमे आन्तरिक झगड़ा कम नही हुआ और 1962 मे 'सन्तुलन वादी', अजय घोष की मृत्यु हो गयी । इसी बीच सोवियत सघ तथा चीन के बीच फूट और 1962 मे भारत-चीन सीमा विवाद आदि मतभेदो को बढावा दिया ।[3] भारत-चीन सीमा युद्ध के प्रति साम्यवादी दल का दृष्टिकोण मिश्रित था । दल के कुछ नेता जैसे – एस० ए० डॉगे, एस० एन० गोविन्द, नैय्यर, जेड० ए० अहमद आदि ने नेहरू सरकार के दृष्टिकोण का पूर्ण समर्थन किया और सभी वर्गो के लोगो का आह्वान किया कि वे चीन के आक्रमण के विरुद्ध एक होकर मातृभूमि की रक्षा करे ।[4] श्री ज्योति बसु, पी० सुन्दरैया, श्री हरकिशन सिह सुरजीत और श्री भूपेश गुप्त जैसे वामपन्थियो ने यह मानने से इन्कार कर दिया कि चीन ने आक्रमण किया ह । इन लोगो ने दलीय सचिवालय से त्याग पत्र भी दे दिया ।

अप्रैल 1964 दल की राष्ट्रीय परिषद की बैठक मे श्री एस० ए० डॉगे का पत्र-प्रकरण[5] उठाया गया और

---

1. जेन डी० ओवरस्ट्रीट एण्ड मार्शल विडमिलर– 'कम्युनिस्ट इन इण्डिया' बर्कले 1956, पृ० 309 ।
2. कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया का सविधान (अप्रैल 1958 की अमृतसर 'पार्टी काग्रेस' के बाद), नई दिल्ली, कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया, 1958, पृ० 4 ।
3. हैरी जेलमैन "दि कम्युनिस्ट पार्टी बिटु इन मास्को ऐण्ड पेकिग, प्राब्लम ऑफ कम्युनिज्म", वाशिगटन, नवम्बर-दिसम्बर 1962, पृ० 18 ।
4. सी० पी० आई० की राष्ट्रीय परिषद का प्रस्ताव, 31 अक्टूबर एव नवम्बर 1962 ।
5. बैठक मे दल के वामपथी गुटो ने चेयर मैन श्री डॉगे के उस तथाकथित पत्र का प्रकरण उठाया, जो डागे ने 1924 मे तत्कालीन गवर्नर

वामपथी गुट ने श्री डागे से त्यागपत्र की माग की डॉगे द्वारा त्यागपत्र देने से इकार करने पर दल के कतिपय प्रमुख सदस्य जैसे सुन्दरैया, श्री ज्योतिबसु, श्री ए० के० गोपालन, श्री नम्बूद्रीपाद, श्री भूपेश गुप्ता एव श्री प्रमोद दास गुप्ता इत्यादि दल से अलग हो गये। इस गुट ने श्री गोपालन के नेतृत्व मे नये दल-कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (मार्क्सवादी) [सी० पी० आई० (एम०)] का गठन किया। इस विभाजन से भारतीय साम्यवादी आन्दोलन के गहरी ठेस लगी।

1967 के चतुर्थ आम चुनाव दोनो साम्यजवादी दलो ने लड़े। केरल और पश्चिम बगाल में इन्होंने अन्य गैर काग्रेसी दलो के साथ मिलकर 'सविद सरकारे' बनायी। पुन सी० पी० आई० (एम०) मे इस कारण फूट पड गयी क्योकि सी० पी० आई० (एम०) के अनेक लोग इस प्रकार की 'मिली जुली सरकारो' मे सम्मिलित होने के पक्ष मे नही थे। इन लोगो ने मई 1969 मे श्री मजूमदार और श्री कानू सन्याल के नेतृत्व मे नई पार्टी बनायी जिसे कम्युनिस्ट पार्टी आफ इण्डिया (मार्क्सिस्ट-लेनिनलिस्ट),(सी० पी० आई० (एम० एल०) कहा गया। सी० पी० आई० (एम० एल०) माओ के दर्शन एव पद्धति से प्रभावित थी। इन्हे सामान्यत नक्सलवादी कहा जाता हे। आध्र प्रदेश के नक्सलवादी गुट ने श्री चारू मजूमदार पर 'माओ-दर्शन' को विकृत करने का आरोप लगाया और श्री नागी रेड्डी एव श्री असित सेन (बगाल का एक गुट) के नेतृत्व में चौथी साम्यवादी पार्टी – सी०पी०आई० (एम० एल०) बनायी, जिसका उद्देश्य सशस्त्र काति के माध्यम से सत्ता की प्राप्ति थी।[1] चुनाव एव ससदीय सरकार मे सी० पी० आई० (एम० एल०) की आस्था नही है।

सी० पी० आई० (एम०) का झुकाव सोवियत सघ की अपेक्षा चीन की ओर अधिक था और यह भारतीय साम्यवादी दल की अपेक्षा अधिक क्रातिकारी प्रवृत्तियो पर विश्वास करती है, लेकिन इसका चुनाव एव ससदीय सरकार मे विश्वास है। 1967 मे लोकसभा मे इस दल को 19 स्थान मिले जबकि 1971 के लोक सभायी चुनाव मे इस दल की स्थिति मे सुधार हुआ और इसे 25 स्थान प्राप्त यह काग्रेस के बाद लोक सभा मे सब से बड़ा दल था। इस दल का प्रभाव केरल एव पश्चिमी बगाल मे अधिक रहा।

1964 मे विभाजन के बाद सी० पी० आई० को 1967 के चतुर्थ आम चुनाव मे पहले की आपेक्षा 6 स्थान कम प्राप्त हुये। 1971 के चुनाव मे 1962 के बराबर अर्थात् 23 स्थान प्राप्त हुय (देखे सारणी सख्या 1, 2, एवं 3) 1972 और 1974 के विधान सभायी चुनावो मे इसकी स्थिति सन्तोष जनक रही। विभाजन के बाद इसका वैचारिक दृष्टिकोण अधिकाधिक सोवियत सघ के निकट रहा और उसी के प्रभाव के कारण इसने सत्ता-काग्रेस के साथ न केवल सहयोग की नीति अपनायी बल्कि चुनाव गठबन्धन भी किया। इसकी चरम परिणति इस बात मे हुई कि उसने 1975 मे श्रीमती इदिरा गाधी द्वारा आरोपित आपात स्थिति का समर्थन किया।

सन् 1976 तक दोनो प्रमुख साम्यवादी दल – सी० पी० आई० एव सी० पी० आई (एम०) विभिन्न राजनीति मुद्दो पर विभाजित रहे। सी० पी० आई० (एम०) तुलनात्मक दृष्टि से क्रातिकारी परम्पराओ पर अपनी आस्था व्यक्त

जनरल को ब्रिटिश शासक के साथ सहयोग के आश्वासन के बदले मे अपने रिहाई के लिये जेल से लिखे थे। श्री डॉगे ने इसे नेतृत्व को बदनाम करने के लिय जान बूझकर की गयी, जालसाजी कहा।

1 एम० एन० सदाशिवन "पार्टी एण्ड डेमोक्रेसी इन इण्डिया," पूर्वोक्त, पृ० 179-180।

करती है और सी० पी० आई० पर 'नितान्त सशोधन वादी' होने का आरोप लगाती है । 1971 तक के प्रथम पाचो आम चुनावो मे साम्यवादी दल एव दलो ने अकेले या सामूहिक रूप से (1967 को छोड़कर) लोकसभा में सर्वाधिक स्थान प्राप्त किये । लेकिन, इन्होने कभी भी अन्य वामपथी एव समाजवादी दलो एव गुटो को एक मच मे लाकर काग्रेस का 'राष्ट्रीय वामपथी विकल्प' तैयार करने का व्यापक प्रयास नही किया ।

दक्षिण पन्थी दल

जनता पार्टी के गठन मे दक्षिणपथी एव मध्यमार्गी दलो ने प्रमुख भूमिका निभायी । इसमे प्रमुख दक्षिण पथी दल, जनसघ, स्वतन्त्र पार्टी एव सगठन काग्रेस थे । जबकि मध्यमार्गी दलो मे भारतीय क्रांति दल एव भारतीय लोकदल उल्लेखनीय है । अपने विकास के विभिन्न चरणो मे इन सभी दलो का विलय जनता पार्टी मे हुआ । सगठन काग्रेस के गठन, विकास और जनता पार्टी मे विलय का वर्णन किया जा चुका है । प्रासागिकता के आधार पर भारतीय क्राति दल और भारतीय लोक दल के उद्‌भव, विकास एव जनता पार्टी मे विलय का इतिहास अगले अध्याय (अध्याय 2 के उपभाग 4) मे वर्णित है । यहॉ केवल स्वतन्त्र पार्टी एव भारतीय जन सघ की जनता पार्टी तक विकास यात्रा का विवरण दिया गया है ।

स्वतन्त्र पार्टी

स्वतन्त्र पार्टी की स्थापना जून 1959 मे 'भारत को वामपथ की ओर ले जाने से बचाने तथा राज्यवाद की विचारधारा के विरूद्ध खेत और परिवार की रक्षा' के लिये की गयी थी । इसके सस्थापको चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, (जो कि दल के दिशा निर्देशक थे), और श्री वी० पी० मेनन (जो राज्य की एकीकरण प्रक्रिया मे सरदार पटेल के सहायक रहे थे) जैसे अनुदारवादी, और श्री एन० जी० रगा जैसे उदारवादी (जो 1930 के दशक मे काग्रेस कृषक आन्दोलन के नेता थे) तथा श्री एम० आर० मसानी (जिन्होने अपने प्रारम्भिक समाजवादी झुकाव से हटकर स्वतन्त्र उद्यमो के पक्ष मे अपना मत व्यक्त किया था) आदि व्यक्ति थे । दल का घोषित मिशन देश मे 'धर्म की पुर्नस्थापना' भी था ।[1]

इस दल के निर्माण मे धनी जमीदारो के सगठन 'अखिल भारतीय कृषक सघ' और बडे उद्यमियो के सघ 'फोरम ऑफ फ्री इन्टर प्राइसेज' की सक्रिय भूमिका थी । इसलिये स्वतन्त्र पार्टी को इन सगठनो की राजनीतिक शाखा के रूप मे देखा गया ।[2] चूँकि इस दल को व्यापारिक समुदाय और ग्रामीण क्षेत्रो के परम्परागत गढ़ो से समर्थन प्राप्त होता रहा, अत यह प्रतिक्रियावादी दल के रूप मे आरोपित रहा ।[3] यह दल काग्रेस की अधिक वामपथी होती जा रही नीतियो का कटु आलोचक था । घरेलू मामलो मे स्वतन्त्र पार्टी राष्ट्रीयकरण के सिद्धान्तो की विरोधी थी तथा प्रतिबन्ध से मुक्त व्यवसाय एव सार्वजनिक क्षेत्र के निषेध की योजना पर विश्वास करती थी । यद्यपि स्वतन्त्र पार्टी पूर्ण 'अहस्तक्षेप की नीति' की समर्थक नही थी, फिर व्यक्ति को सभी क्षेत्रों मे अधिकाधिक स्वतन्त्रता देना चाहती थी ।[4] विदेश नीति

---

1 पी० डी० नन्दन ऐण्ड एम० एम० थामस (सम्पादित) "प्राब्लम ऑफ इडियन डेमोक्रेसी," बगलोर, क्रिश्चियन इन्स्टीटयूड फॉर दि स्टडी ऑफ रीलिज़न एण्ड सोसायटी, 1962, पृ० 133 ।

2. माइरन वीनर 'पोलिटिक्स ऑफ स्कैरसिटी' बाम्बे, 1963, पृ० 106 ।

3. हावर्ड एल० इर्डमैन 'दि स्वतन्त्र पार्टी एण्ड इण्डियन कॉन्जरवेटिज्म', कैम्बिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967, पृ० 257 ।

4. मीनू मसानी 'ह्वाई स्वतन्त्र', बाम्बे, 1967, पृ० 33 ।

जनसघ की निर्माण पूर्णत परम्परावादी हिन्दू राष्ट्र के स्थान पर आधुनिक लोकतान्त्रिक व्यवस्था मे हिन्दू सस्कृति के आधार पर राजनीतिक दल कें आवश्यकता पर आधारित था। 'उस सन्दर्भ मे जनसघ हिन्दू महासभा और प्रकार के इस अन्य हिन्दू साम्प्रदायिक दलो से इस रुप मे भिन्न था कि इसमे मुसलमानो, ईसाइयो और अन्य सप्रदायो की सदस्यता पर रोक नही थी।'[1] दल की विचारधारा के अनुसार हिन्दूपन कोई निश्चित धर्म नही अपितु राष्ट्र की व्याख्या है। 'हिन्दू सस्कृति ही भारतीय सस्कृति है।' हिन्दू सस्कृति को मानने वाला और भारत के क्षेत्र मे रहने वाला हर व्यक्ति, जाति, भाषा, वर्ग आदि भिन्नताओ से प्रभावित हुए बिना, इस हिन्दू राष्ट्र का सदस्य है।[2] इस प्रकार जनसघ ने स्वय को धर्म निरपेक्षता का समर्थक प्रस्तुत किया (अन्य दलो का धर्म निरपेक्षता के प्रति दूसरा दृष्टिकोण है) जन सघ का हिन्दू राष्ट्रवाद मूल रुप से 'वैदिक हिन्दू सस्कृति' पर आधारित था।

जनसघ ने सभी आम चुनावो मे सक्रिय रुप से भाग लिया। 1952 के प्रथम आम चुनाव मे जनसघ ने 3 प्रतिशत से कुछ अधिक मत प्राप्त हुए और लोक सभा की तीन सीटे जीती तथा एक राष्ट्रीय दल के रुप मे, चुनावी उद्देश्यो के लिये मान्यता प्राप्त की, जो 1976 तक बनी रही। 1957 के लोकसभा चुनाव मे इसे मात्र 4 स्थान मिले। परन्तु 1962 के आम चुनाव मे इसकी स्थिति मे कुछ सुधार हुआ इसे लोकसभा मे 14 स्थान प्राप्त हुए। 1967 के आम चुनाव मे इसे पर्याप्त सफलता मिली इसने लोक सभा मे 35 स्थान प्राप्त किये, इस प्रकार स्वतन्त्र पार्टी के बाद लोकसभा मे सबसे बडी पार्टी के रुप मे उभर कर आयी। राज्य विधान सभाओ के चुनाव मे भी इसके स्थिति मे सुधार हुआ तथा उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार एव राजस्थान मे तो इसे आशातीत सफलता मिली। 1967 के बाद बनी अनेक राज्यो मे गैर-काग्रेमी सविद सरकारो मे जनसघ की प्रभावी भूमिका रही, (देखे; सारणी सख्या 1 एव 2)।

1968 मे जनसघ के सर्वे सर्वा श्री दीन दयाल उपाध्यक्ष की मृत्यु के बाद दल का नेतृत्व श्री अटल बिहारी बाजपेई एव श्री लालकृष्ण अडवाणी के कुशल हाथो में आया। दल के प्रति इन नेताओ का दृष्टिकोण आपेक्षाकृत व्यावहारिक था जिससे आधुनिक दृष्टिकोण के अनेक नवयुवक जनसघ की ओर आकृष्ट हुये।[3] 1971 के मध्यावधि आम चुनाव मे जनसघ ने उदारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुये सत्ता का काग्रेस के विरुद्ध संगठन काग्रेस, स्वतन्त्र पार्टी एव ससोपा के साथ चुनावी गठबधन (सयुक्त मोर्चे बनाया) किया। इस चुनाव मे सम्पूर्ण विपक्ष को करारी हार का सामना करना पड़ा, परन्तु 'सयुक्त मोर्चे' मे सबसे अधिक स्थान (22 सीटे) जनसघ को प्राप्त हुए, (देखे सारणी सख्या 3)। फिर भी इसकी शक्ति मे काफी ह्रास हुआ। मार्च 1972 के विधान सभा चुनावा मे भी जनसंघ की स्थिति नाजुक ही रही।

भारतीय जनसघ की एक अनुशासनबद्ध दल के रुप मे छवि रही है, लेकिन यह पार्टी भी आन्तरिक मतभेद एव फूट से नही बच पायी, परन्तु जनसघ से अलग हुये गुट इतने शक्ति हीन और अप्रभावी थे, कि वे दल के केन्द्रीय स्वरुप एव नेतृत्व को चुनौती नही दे सके। सर्वप्रथम नवम्बर 1954 मे जनसघ की संस्थापक सदस्य एवं भूतपूर्व अध्यक्ष

---

1. देखे नारमन डी0 पामर "दि इण्डियन पोलिटिकल सिस्टम", लन्दन, 1961, पृ0 210
2. बाल राज मधोक 'ह्वाट भारतीय जनसघ स्टैड फॉर', अहमदाबाद, 1966, पृ0 7
3. प्रो0 सुब्रहमणयम् स्वामी को दल के आधुनिक दृष्टिकोण का प्रवक्ता कहा जा सकता था। प्रो0 स्वामी वर्तमान समय मे जनता पार्टी के अध्यक्ष है।

श्री मौली चन्द्र शर्मा ने जनसघ की नीतियो पर आर० एस० एस० के अनुचित हस्तक्षेप के विरोध मे अपने समर्थको सहित जनसघ से त्यागपत्र दे दिया और बाद मे वे काग्रेस मे शामिल हो गये ।[1] इसके बाद पजाब और उत्तर प्रदेश जनसघ की राज्य इकाईयो मे कुछ मतभेद उभरे, परन्तु इसकी व्यापक अभिव्यक्ति बिहार मे हुई, जहॉ मई 1972 मे श्री कालिका नन्दन के नेतृत्व मे एक बड़े गुट ने जनसघ से अलग होकर नया दल 'राष्ट्रीय जनसघ' बनाया ।[2]

सन् 1971 मे जनसघ के प्रमुख नेता श्री बालराज मधोक की केन्द्रीय नेतृत्व से मतभेदो की शुरुआत हुयी । श्री मधोक ने जनसघ के 'सयुक्त मोर्चे' मे शामिल होने की नीति की आलोचना की । उनका विचार था कि 'सयुक्त मोर्चे' की राजनीति से पार्टी को लाभ नही पहुचा है, इसके स्थान पर जनसघ को सगठन काग्रेस एव स्वतन्त्र पार्टी के साथ विलय करके एक 'एकीकृत राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक दल' बनाना चाहिये । मार्च 1973 मे केन्द्रीय नेतृत्व ने उन्हे दल विरोधी गतिविधियो के लिये पार्टी से निष्कासित कर दिया । अप्रैल 1973 मे श्री मधोक ने 'राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक सघ', नामक नये दल का गठन किया । बाद मे बिहार के 'राष्ट्रीय जनसघ' का इसमे विलय हो गया । विपक्षी एकता के राष्ट्रव्यापी अभियान के दौरान अगस्त 1974 मे 'राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक सघ' का विलय भारतीय लोकदल मे हो गया । कालान्तर मे भारतीय लोकदल एव भारतीय जनसघ ने स्वय को जनता पार्टी मे विलीन कर लिया ।

1976 तक विरोधी राजनीतिः- आलोचनात्मक विश्लेषण

भारतीय राजनीति की एक प्रमुख विशेषता रही एक सगठित विरोधी दल का अभाव । स्वतन्त्रता प्राप्ति मे योगदान के आधार पर काग्रेस भारतीय राजनीतिक मे छायी रही, अत काग्रेस रुपी 'वट-वृक्ष' के नीचे कोई दूसरा दल नही पनप सका । किसी भी प्रजातन्त्र की सफलता के लिये एक सगठित विरोधी दल आवश्यक है । सत्तारुढ़ दल को सही मार्ग मे रखने का यह एक मात्र साधन होता है । भारत मे विभिन्न हितो और सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करने वाले छोटे-छोटे दल का जनता पर नगण्य प्रभाव रहा । अत कोई विरोधी दल या सभी विरोधी दल मिलकर सामूहिक रूप से काग्रेस की शक्ति एव सगठन को चुनौती नही दे पाये, यद्यपि 1967 के चौथे आम चुनावो ने राज्यो मे 'सविद मन्त्रिमण्डल' की राजनीति को जन्म दिया ।

गैर-कांग्रेसी दल के नेता 'सविद सरकार' को अपनी सफलता की कुजी मान कर 1967 के चुनावी नतीजों की गलत व्याख्या के शिकार हुए । सविद सरकारे काग्रेस के विकल्प के रुप मे कोई 'जनतावादी' मध्यपथी विकल्प प्रस्तुत करने की जगह जोड़-तोड़ की राजनीति मे लिप्त रही । दक्षिण पथ और वामपथ के छोटे-बड़े दलो की सरकारो ने जो अस्थिरता राज्यों को दी, वह जनता के मन में, 'कांग्रेस-विरोध' से सफल बने दलों के प्रति विरक्ति पैदा करता गयी । लेकिन इससे बेखबर 'काग्रेस हटाओं' वाले विरोधी दल 'इंदिरा हटाओं' के दौर मे पहुच गये और अपनी सफलता के विषय मे आश्वस्त रहे कि इस नारे के आधार पर उन्होने 1971 के लोकसभायी चुनाव के लिये गठबन्धन कर डाला । इस चुनाव मे श्रीमती इदिरा गाधी काग्रेस की 'प्रगतिशील' छवि प्रस्तुत करने मे सफल हुई । परिणामत इदिरा काग्रेस ने अपनी शक्ति 1971 के लोकसभा और 1972 के विधान सभा चुनावो मे बढ़ाकर विरोधी दलो को सन्देहस्पद स्थिति मे लाकर खडा कर दिया ।

---

1. एस० एन० सदाशिवन, पूर्वोक्त पृ० 183 स्वतन्त्र पार्टी बनने के बाद श्री मौली चन्द्र शर्मा स्वतन्त्र पार्टी में शामिल हो गये ।
2. एस०एन० सदाशिवन पृ० पूर्वोक्त, पृ० 184 ।

सन् 1973-74 का समय देश और विशेषकर कांग्रेस के लिये कठिनाई का रहा । कांग्रेस के चरित्र और व्यक्तित्व का पतन होने लगा । इस पर आर्थिक सुधार की दिशा मे कोई ठोस कदम नहीं उठाने, भ्रष्टाचार को पनपाने तथा गरीबी की खाई बढ़ाने के आरोप लगाये जाने लगे । विरोधी दलो ने इस स्थिति का लाभ उठाने को प्रयास किया । इसी समय बिहार एवं गुजरात की सरकारों के विरुद्ध जन आन्दोलनों ने विपक्ष एकता को एक दिशा दी । जिसके फलस्वरुप जून 1975 मे गुजरात मे विपक्षी 'जनता मोर्चे' की सरकार बनी । सयोग से 12 जून 1975 को इलाहाबाद हाई कोर्ट ने श्रीमती इदिरा गांधी के विरुद्ध फैसला दिया, इससे सम्पूर्ण विपक्ष ने सामूहिक रुप से श्रीमती इदिरा गॉधी से त्यागपत्र की मॉग की । 25 जून 1975 को श्रीमती इदिरा गॉधी ने आन्तरिक आपात काल की घोषणा करके सम्पूर्ण विपक्ष को जेल मे डाल दिया, आपात काल की भयानक रात मे लोग विपक्ष को भूल सा गये, परन्तु विपक्षी एकता की कहानी चलती रही, जिसका सुखान्त था- जनता पार्टी का उद्भव ।

द्वितीय - अध्याय

जनता पार्टी का उद्भव : कारण और प्रक्रिया

(I) बिहार आन्दोलन से आपातस्थिति की घोषणा तक

(II) आपातस्थिति में राजनीतिक संस्थायें

(III) आपातकाल में भूमिगत आन्दोलन की भूमिका

(IV) विपक्षी दलों द्वारा कांग्रेस के राष्ट्रीय विकल्प की तलाश

बि ार आन्दोलन से आपात ्थति की घोषणा तक

भारत के राजनीतिक क्षितिज मे जनता पार्टी का उदय एक महत्वपूर्ण घटना थी, जिसने स्वाधीनता के बाद लगभग 30 वर्षो से शासन कर रहे काग्रेस दल को चुनौती दी और 1977 के लोकसभा चुनाव मे विजय प्राप्त कर के केन्द्र मे जनता पार्टी की सरकार कायम की । जनता पार्टी का उदय कोई आकस्मिक घटना नही थी, इसकी भूमिका वर्षो से सरकार के विरुद्व प्रदर्शनो जन-आन्दोलनो एव सार्वजनिक विरोधो के रुप मे तैयार हो रही थी । इन आन्दोलनो मे गुजरात एव बिहार के जन-आन्दोलन प्रमुख थे ।

हॉस्ट हार्ट मैन ने अपनी पुस्तक 'पोलिटिकल पार्टीज इन इण्डिया' यह मत व्यक्त किया है कि 'उद्देश्य के आधार पर आन्दोलन दो प्रकार के होते है- (1) ऐसा आन्दोलन जो सरकार से इस्तीफा मॉग कर एव विधायिका भग करने की माग लेकर सत्ता परिवर्तन की मॉग करता है (2) दूसरे अन्य आन्दोलन जिसमे अपनी मॉगो के लिये सरकार पर दबाव डाला जाता है । दूसरे प्रकार के आन्दोलन को उसकी मॉगो की विवेचना के बाद उचित या अनुचित कहा जा सकता है । परन्तु प्रथम प्रकार के आन्दोलन को उस समय तक पूर्णतया उचित नही कहा जा सकता जब तक सरकार बदलने के अन्य विकल्प मौजूद हो ।[1]

इस सन्दर्भ मे 1942 के 'भारत छोडो आन्दोलन' तथा बिहार एव गुजरात के 'समग्रकान्त्रि' से सम्बन्धित आन्दोलनो का उल्लेख किया जा सकता है । सन् 1942 मे भारतीय जनता के समक्ष विदेशी शासन के खत्म करने के लिये उग्र आन्दोलन के आलावा कोई अन्य विकल्प नही था जबकि सन् 1950 के बाद सरकार बदलने के लिये नियतकालिक चुनाव की व्यवस्था की गयी है ।[2] अत बिहार जन-आन्दोलन (1974) को वैधानिक रुप से उतना उचित नही ठहराया जा सकता जितना की भारत छोडो आन्दोलन को । मई 1974 मे स्वय जय प्रकाश नारायण ने स्वीकार किया कि 'बिहार जन आन्दोलन असवैधानिक है परन्तु अप्रजातान्त्रिक नही ।'[3]

राजनीतिक दलो एव जन-आन्दोलनो मे गहरा सम्बन्ध है । कभी-कभी विपक्षी दल अपनी मॉगो को लेकर आन्दोलन शुरु करते है और यह आन्दोलन व्यापक सहयोग एव जन-समर्थन के कारण वृहद रुप धारण कर लेता है । इस प्रकार के आन्दोलन मे प्रारम्भ से ही राजनीतिक दलो की सक्रिय भूमिका होती है । दूसरे प्रकार के आन्दोलन प्रजातान्त्रिक व्यवस्था मे सत्तारुढ एव विपक्षी दलो की उदासीनता, निष्क्रियता, तथा जनता एव शासन के बीच मध्यस्थी भूमिका के ह्रास के कारण जन समुदाय मे फैले आक्रोश एव निराशा से जन्म लेते है । ये आन्दोलन प्रारम्भ मे राजनीतिक दलो के प्रभाव से परे होते है । यहॉ राजनीतिक दल तो आन्दोलन मे भाग लेने वालो की मागो को सगठित एव शुरु

---

1. हॉस्ट हार्ट मैन "पोलिटिकल पार्टीज इन इण्डिया", पूर्वोक्त, पृ0 218
2. वही पृ0 219
3. मैरी सी0 केरास 'ए पोलिटिकल बायोग्राफी इन्दिरा गॉधी इन दि क्रुसिबल ऑफ लीडरशिप,' जेको प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, बाम्बे, 1979, पृ0 178

करने के बजाए इन आन्दोलनो मे तब भाग लेना शुरु करते है जब ये प्रारम्भ हो चुके होते है । इनमे राजनीतिक दलो की सक्रिय भूमिका बाद मे शुरु होती है सन् 1974 के बिहार का लोकप्रिय जन आदोलन एवं गुजरात आन्दोलन इस प्रकार के आन्दोलनो के उदाहरण है । बिहार तथा गुजरात के आन्दोलनो ने विपक्षो एकता को गति प्रदान की और उन्हे ऐसे मच मे लाकर खडा किया जहाँ से नये राजनीतिक दल के निर्माण की प्रक्रिया शुरु हो सके। अत इन आन्दोलनो को 'जनता पार्टी' के निर्माण प्रक्रिया की प्रथम सोपान कहा जा सकता है ।

जय प्रकाश नारायण का जन-आन्दोलन

कारण सन् 1971 के लोक सभा चुनाव मे काग्रेस की व्यापक सफलता ने पार्टी के आन्तरिक विरोधो की प्रक्रिया को लगभग समाप्त कर दिया था । इसके द्वारा काग्रेस व्यवस्था मे शक्ति के अत्याधिक 'केन्द्रीकरण और प्रभुत्व' की प्रक्रिया का आरम्भ हुआ ।। नि सन्देह इसकी कुछ प्रवृतियो का आर्थिक क्षेत्र की घटनाओ से निकट का सम्बन्ध था । 1970 के दशक के शुरु के वर्षो मे यह स्पष्ट होने लगा था कि अर्थ व्यवस्था इतनी अच्छी नही थी कि वह भारत-पाक युद्ध (1971), लगातार सूखा और सबसे अधिक पेट्रोल की कीमत मे वृद्धि [1] के दबाव को सहन कर सकती । इन्ही तत्वो के कारण समाज मे व्यापक असन्तोष एव निराशा उत्पन्न् हो रही थी, विशेष रुप से उन वर्गो मे जो बढती हुयी बेरोजगारी, मूल्य वृद्धि और अनाज तथा अन्य आवश्यक वस्तुओ की कमी से प्रभावित थे । ग्रामीण क्षेत्रो मे असमानताये दूर करने की विफलता के कारण कृषि के विकास मे और भी कमी होती जा रही थी और कृषि उत्पादन मे यह गिरावट औधोगिक विकास मे भी धीमापन ला रही थी ।[2] इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था गम्भीर सकट की स्थिति मे थी । इस कारण समाज मे असन्तोष फैल रहा था जो सरकार के विरुद्ध अनेक प्रकार के आन्दोलनो के रुप मे प्रकट हो रहा था । 1970 के दशक मे इन आन्दोलनो मे प्रमुख 1974 की रेलवे हड़ताल एव श्री जय प्रकाश नारायण का आन्दोलन था ।

काग्रेस मे केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति ने उसके अन्दर के विभिन्न वैचारिक गुटो एव उससे सम्बन्धित दबाव समूहो की आकाक्षाओ को भी कुचल दिया । इससे आन्तरिक सघर्ष की पृष्ठभूमि भी तैयार हो रही थी । इसके अलावा विभिन्न दबाव समूहो एव सगठनो की मागो के प्रति भी काग्रेस नेतृत्व अत्यन्त निरकुश हो गया था । विभिन्न वर्गो की समस्याये विभिन्न स्तरो पर सत्ता के केन्द्रीकरण से और भी अधिक प्रबल हो रही थी । शक्ति का केन्द्रीकरण काग्रेस व्यवस्था की स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की उस आरम्भिक राजनीति से प्रस्थान की ओर एक बडा कदम था, जिसमे असहमति तथा विभिन्न वर्गो मे मतभेद की काफी गुजाइश थी । इस राजनीतिक केन्द्रीकरण ने समाज के महत्वपूर्ण सगठनो की शक्ति और सत्ता स सहयोग प्राप्ति के रास्ते पर रुकावट लगा दी थी । इन विभिन्न सगठनो ने अब अपनी राजनीतिक विरक्ति को विपक्षी दलो (जनसघ, समाजवादी पार्टी, तथा सगठन काग्रेस) के माध्यम से गुजरात और बिहार आन्दोलनो द्वारा प्रकट करना आरम्भ किया ।[3]

---

1. 1971 के अरब इजराइल युद्ध मे अरब देशो ने पश्चिमी देशो के प्रति अपनी तेल नीति परिवर्तित करके, खनिज तेल के दाम अत्यधिक बढा दिया । इसका असर भारत तथाथा अन्य तृतीय विश्व के देशो की अर्थव्यवस्था पर पडा ।
2. कृषि विकास के सन्दर्भ मे भूमि सुधारों की समस्या और सरकार की तकनीकी नीति इत्यादि के उपयोगी विश्लेषण के लिये देखे, फ्रान्सिन फान्केल "इण्डिया पोलिटिकल इकॉनोमी, 1947-77" (आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1978) अध्याय 4
3. जान वुड "एकस्ट्रा पार्लियामेटरी अपोजिशन इन इण्डिया एन एनैलेसिस ऑफ पापुलिस्ट ऐजीटेशन इन गुजरात एण्ड बिहार",

सन् 1974 के गुजरात और 1974-75 मे बिहार आन्दोलनो ने काग्रेस के नैतिक और राजनीतिक भ्रष्टाचार की ओर ध्यान दिलाया। बिहार राज्य की चिर कालीन निर्धनता तथा पिछड़ेपन के अतिरिक्त अत्याधिक मूल्य-वृद्धि ओर आवश्यक वस्तुओ की कमी के लिये काग्रेस शासन को जिम्मेदार ठहराया गया। जबकि लोगो को सामाजिक न्याय और जीवन स्तर की सुधारने की आशाये बॅधाई जा रही थी। वास्तव मे विभिन्न ग्रामीण वर्गो मे धन प्राप्त करने, सरकारी पदो मे उपलब्ध विशेषाधिकार प्राप्त करने तथा मित्रों सम्बन्धियो एव पिछलग्गुओ मे नौकरियॉ और आय सुविधायें बॉटने के लक्ष्यो को लेकर सार्वजनिक पदो को प्राप्त करने की होड़ लगी हुयी थी।[1] धीरे- धीरे सरकार की क्षमता और राजनीतिक दलो पर से लोगो का विश्वास उठ रहा था। बिहार आन्दोलन मे जनता एव जनता के नेताओ ने आह्वान किया कि यह गम्भीर स्थिति केवल काग्रेस सरकार को समाप्त करके ही सुधारी जा सकती है इस लिये आन्दोलन की पहली और प्रमुख मॉग काग्रेस सरकार[2] का त्याग पत्र थी जिसे भ्रष्ट दलीय राजनीति का रूप माना जा रहा था।

बिहार एक कृषि प्रधान प्रदेश है, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से आज तक बिहार अर्द्ध-सामान्तवादी राज्य है। यहॉ सरकार वोट की राजनीति के कारण अपने सामान्तवादी गढ़ को नही तोड़ना चाहती थी अत. बिहार की सरकार भ्रष्टता का प्रतीक बन गयी थी। 'यहॉ गरीबो की दासता तुल्य स्थिति, लाखो लोगो की निर्धनता, शिक्षितो एवं अशिक्षितो की बेरोजगारी, धनियो द्वारा गरीबो के शोषण, भ्रष्टाचार, जातिवाद, भाई भतीजावाद आदि ऐसे कारक थे जिन्होने यूरोप मे फ्रासीसी क्रान्ति की भॉति आन्दोलन की भूमिका तैयार की थी।[3] इस निराशा पूर्ण स्थिति मे विपक्षी दल भी असहाय हो गये थे। अत 16 मार्च 1974 को बिहार के छात्रों मे विद्रोह उठ खड़ा हुआ। छात्रो ने 'बिहार छात्र सघर्ष समिति' का गठन किया और 'मूल्यवृद्धि बेराजगारी एव भ्रष्टाचार' के विरुद्ध आन्दोलन शुरु किया। उन्होंने जिलाधीशो के कार्यालयो को घेर लिया, जिससे प्रशासनिक कार्यकलाप ठप हो गया। सरकार ने आन्दोलन को कुचलना चाहा और कई स्थानो पर लाठी चार्ज हुआ और पुलिस द्वारा गोलिया चलायी गई।

जय प्रकाश नारायण का आन्दोलन मे भाग लेना 19 मार्च को श्री जय प्रकाश नारायण ने इस शर्त पर आन्दोलन का नेतृत्व स्वीकार किया कि आन्दोलनकारी हिसात्मक कार्यवाही नही करेगे। श्री जय प्रकाश नारायण, श्रीमती इदिरा गॉधी सरकार की अप्रजातान्त्रिक नीतियो से काफी असन्तुष्ट थे, अत जब छात्रो ने उनसे आन्दोलन के नेतृत्व की माग की तो वह तैयार हो गये। उन्होने स्वय कहा था, "मै पटना, दिल्ली या अन्य जगहो के कुशासन एव भ्रष्टाचार का मूक दृष्टा नही रह सकता। मैने भ्रष्टचार, कुशासन, कालाबजारी, मुनाफाखोरी, जमाखोरी, के विरुद्ध लडने का निश्चय किया है तथा शिक्षा तन्त्र मे पूर्ण सुधार एवं जनवादी-प्रजातन्त्र (People's Democracy) के लिये सघर्ष

पेसिफिक अफेयरस, फाल, 1975 डेनियल ग्रेवस "पोलिटिकल मोबिलाइजेशन इन इण्डिया दि फर्स्ट पार्टी सिस्टम" एसियन सर्वे, सितम्बर 1976, रजनी कोठरी, "दि काग्रेस सिस्टम ऑन ट्रायल" एसियन सर्वे, फरवरी 1967

1 अजीत भट्टाचार्या, "डिस्पेयर एण्ड होप इन बिहार," टाइम्स ऑफ इण्डिया, सितम्बर 17, 1973

2. 1973 में बिहार सरकार की भ्रष्ट राजनीतिक छवि को सुधारने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार ने कामेसी मुख्य मत्री श्री केदार पाण्डे से इस्तीफा लेकर श्री अब्दुल गफ्फार को मुख्य मत्री बनाया। श्री गफ्फार ने अपनी छवि सुधारने के लिये अपने मन्त्रिमण्डल से बहुत से भ्रष्ट मन्त्रियो को हटाकर इनकी सख्या 45 से 13 कर दी। इस परिवर्तन के बाद कुछ असन्तुष्ट विधायक भी बिहार सरकार से इस्तीफे की माग करने लगे थे।.

3 कविता नारवेन "दि ग्रेट बिट्रेयल 1966-1977," पापुलर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, बाम्बे, 1980, पृ0 86

करुगा।"[1] सर्वप्रथम जय प्रकाश नारायण ने छात्रो को सौम्य तरीके से सघर्ष का कार्यक्रम दिया परन्तु जब उन्होने देखा कि सरकार उनकी माँगो को ठुकरा रही है तो उन्होने अहिसात्मक परन्तु बाध्यकारी साधनो का सहारा लिया। ८ मार्च 1974 को उन्होने पटना सरकार के विरोध मे एक विशाल जुलूस का आयोजन किया। 10 मार्च को जन-सघ, विपक्षी काग्रेस, सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, एव सोशलिस्ट पार्टी ने आन्दोलन मे सहयोग देने की घोषणा की।[2]

विपक्षी दलों एव अन्य वर्गो द्वारा सहयोग की घोषणा बिहार आन्दोलन के दौरान यह पहला मौका था जब गैर साम्यवादी विपक्षी राजनीतिक दलो ने सरकार का सामूहिक रुप से विरोध करने का फैसला किया था श्री जय प्रकाश नारायण की अध्यक्षता मे 13-14 अप्रैल 1974 को एक गैर दलीय सगठन 'नागरिको के लिये प्रजातत्र' (Citizens For Democracy) का गठन किया गया। इस सगठन का कार्य भ्रष्टाचार, जातिवाद एव साम्प्रदायिकतावाद के खिलाफ सघर्ष करना और नागरिक स्वतन्त्रता एव न्याय पालिका, प्रेस ओर समाचार पत्रो की स्वतन्त्रता की रक्षा करना था। 24 अप्रैल को 'छात्र सघर्ष-समिति' ने श्री जय प्रकाश के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया कि अब वह असेम्बली को भग कराने एव गफ्फूर मन्त्रिमण्डल से इस्तीफा लेने के लिये सघर्ष करेगी।

'यह सामाजिक उथल पुथल केवल छात्र समुदाय तक समिति नही थी। बड़े शहरो मे सगठित मजूदरो ने मूल्य वृद्धि के खिलाफ सडको पर प्रदर्शन किये। देश मे ट्रेड यूनियन आन्दोलन विशेषकर 60 के दशक के बाद राजनीतिक नियन्त्रण से स्वतन्त्र हो गया था। अब मजदूर वर्ग-विपक्षी दलो के पीछे सहयोग केलिये नही दौडते थे। बल्कि विपक्षी दल स्वय ट्रेड यूनियन के पीछे दौडते थे। देश मे समाजवाद या साम्यवाद नही वरन् अर्थवाद (Economism) (मजदूर वर्ग के आन्दोलन) का निर्धारक बन गया था। सामाजिक ऊथल-पुथल एव राजनीतिक गतिहीनता की स्थिति मे ऐसा अर्थवाद जरुरी था।'[3] यहाँ भी इन्ही आर्थिक एव राजनीतिक कारको के कारण 'छात्र आन्दोलन शीघ्र सभी वर्गो मे फैल गया। अमीर, मध्यमवर्ग एव निर्धन वर्ग तथा लगभग सभी गैर साम्यवादी राजनीतिक दल इसमे शामिल हो गये। यहाँ तक कि काग्रेस समर्थक समाचार पत्रो ने स्वीकार किया कि यह छात्र आन्दोलन अब जन-आन्दोलन मे बदल गया है।[4]

बिहार विधान सभा भग कराने की माँग के समर्थन मे 7 मई को 12 जनसघ ओर 6 सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के विधायको ने अपनी सीटो से इस्तीफा दे दिया। इस प्रक्रिया मे विभिन्न दलो के कुछ विधायको ने इस्तीफा देने से इन्कार भी कर दिया था। यद्यपि ८ जून 1975 तक विभिन्न विपक्षी दलो के 42 विधायको ने जय प्रकाश आन्दोलन के समर्थन मे इस्तीफा दे दिया।[5] साम्यवादी दलो ने श्री जय प्रकाश नारायण की विधान सभा भग कराने की माँग को अनुचित ठहराया और उसके खिलाफ पटना मे प्रदर्शन किया।

समानान्तर प्रशासन की घोषणा 16 अक्टूबर 1974 को श्री जय प्रकाश नारायण ने घोषणा की कि यदि

---

1. देखे कविता नारवेन पूर्वोक्त, पृ ८7-८८
2. कीसिग्ग कॉन्टेम्पोरेरी आर्किव्स, फरवरी 17-23, 1975, पृ0 26977
3. जे0 ए0 नैयक "दि ग्रेट जनता रिवोल्यूशन", एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली- 1977 पृ0 1
4. कविता नारवेन पूर्वोक्त पृ0 ८9
5. इन विधायको मे 14 जनसघ, 11 सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, ८ सोशलिस्ट पार्टी, 6 विपक्षी काग्रेस, 1 काग्रेस, 1 भारतीय लोक दल और 1 निर्दलीय विधायक था।

सरकार आन्दोलनकारियो की मॉगो पर सहानुभूतिपूर्वक विचार नही करती और गफ्फूर मन्त्रिमण्डल से इस्तीफा मॉगकर 3 दिसम्बर तक विधान सभा भग नही करती तो वह जनता की 'समानान्तर सरकार' का गठन करेगे ।[1] नवम्बर 1974 मे श्रीमती इदिरा गॉधी और श्री जय प्रकाश नारायण की वार्ता विफल रही । 4 नवम्बर को श्री जय प्रकाश नारायण ने पटना मे एक विशाल प्रदर्शन कराया जिसमे हिसा भडक उठी और पुलिस ने लाठी चार्ज किया जिसमे श्री जय प्रकाश नारायण को भी चोट आयी ।

छात्र सघर्ष समिति ने अपना अगला कार्यक्रम प्रशासन को पगु बनाने के लिये शुरु किया । ब्लाक स्तर पर उन्होने खण्ड विकास अधिकारी के कार्यलय से शुरु करके जिलास्तर पर कोर्ट कचहरी एव अन्य कार्यालयो मे अधिकारियो एव क्लर्को से आफिस मे न जाने का अनुरोध किया । लोगो को बताया गया कि 'वह अपने झगडो को कोर्ट और थाने मे ले जाने के बजाय स्वय आपस मे समिति बनाकर सुलझा ले । इस तरह एक "समानान्तर प्रशासन" का विकास होगा ।'[2] जय प्रकाश नारायण ने स्वय एक साक्षात्कार मे कहा था, 'यह सच्चे अर्थो मे 'स्वायत्त शासन' एव 'स्वायत्त प्रबन्ध' कौशल होगा, और एक उदासीन प्रशासन, जो लोगो के लिये अनावश्यक एव असगत है, के बदले मे होगा' ।[3]

विपक्षी एकता की शुरुआत 25 नवम्बर 1974 को दिल्ली मे गैर साम्यवादी विपक्षी दलो का एक सम्मेलन हुआ । इस सम्मेलन की सबसे महत्वपूर्ण बात 'राष्ट्रीय समन्यव समिति' की स्थापना थी । उस समिति मे जनसघ, सगठन काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, भारतीय लोक दल (बी0 एल0 डी0), अकाली दल एव द्रविण मुनेत्र कड़गम के प्रतिनिधि शामिल थे । 'कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया' (मार्क्सवादी) ने सम्मेलन मे भाग नही लिया और 'राष्ट्रीय समन्वय समिति' को 'प्रतिक्रियावादी दलो का समूह' कहा परन्तु उसने स्पष्ट किया कि वह जय प्रकाश नारायण एव वामपथी ताकतो से अपना सम्पर्क बनाये रखेगी ।[4]

यह सम्मेलन 'विपक्षी एकता' के सन्दर्भ मे एक सकारात्मक कदम था, लेकिन विपक्षी दलो की एकता की उस समय पुष्टि हुई जब "आन्दोलन ने 21 जनवरी 1975 को अपनी प्रथम चुनावी विजय हासिल की । काग्रेस का गढ़ मानी जाने वाली जबलपुर (म0प्र0) की लोक सभा सीट से काग्रेस के खिलाफ विपक्ष समर्थित एक निर्दलीय उम्मीदवार की 87,000 मतो से विजय हुई । इस निर्दलीय उम्मीदवार को जनसघ, सोशलिस्ट पार्टी, बी0 एल0 डी0, काग्रेस (स) और सी0 पी0 आई (एम0) आदि विपक्षी राजनीतिक दलो का समर्थन प्राप्त था ।[5] इस चुनाव ने भविष्य मे होने द्वि पक्षीय मुकाबले मे विपक्ष की जीत का सकेत दे दिया था तथा चुनावी समझौते मे वामपथी एव दक्षिणपथी ताकते एक-दूसरे को काग्रेस के खिलाफ सहयोग करने को तैयार थी ।

जनवरी से अप्रैल 1975 तक श्री जय प्रकाश नारायण ने बिहार आन्दोलन का प्रसार अन्य प्रदेशो मे करने के

---

1. जय प्रकाश नारायण ने यह बात एन0 एस0 जगन्नाथन(हिन्दुस्तान टाइम्स के उप सम्पादक) से साक्षात्कार के दौरान कही 'ए रिवोल्यूशन इन मे किग ?, दि हिन्दुस्तान टाइम्स अगस्त 26, 1974
2. वही
3. वही इसके अलावा देखे, उमाशकर फडनीस "दि गॉधीयन मेनीफेस्टो," दि हिन्दुस्तान टाइम्स, अगस्त 24, 1974
4 कीसिग्ग कॉन्टेम्पोरेरी आर्किव्स, फरवरी 17-23, 1975, पृ0 26977
5 वही पृ0 26978

लिये उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, केरल, कर्नाटक एव तमिलनाडु का दौरा किया । इन प्रदेशो मे इससे विपक्षी एकता को बल तो मिला परन्तु किसी अन्य प्रदेश मे वृहद स्तर पर आन्दोलन नही फैल सका । इसी समय श्री जय प्रकाश नारायण ने सी0 पी0 आई0 [1] को छोड़कर सभी विपक्ष दलो को काग्रेस के विरुद्ध 'एक जुट' होने का आह्वान किया । [2]

श्री जय प्रकाश नारायण का मॉग पत्र इसी भूमिका मे श्री जय प्रकाश नारायण एव गैर साम्यवादी विपक्षी दलोके नेताओ ने 6 मार्च 1975 को एक 'मॉग पत्र' [3] लेकर दिल्ली प्रस्थान किया और उसे ससद मे प्रस्तुत किया उनकी मॉगे निम्नलिखित थी ।

1 बिहार और गुजरात की विधान सभाओ मे चुनाव कराना ।

2 गरीबी का उन्मूलन ।

3 चुनाव सुधार एव मतदाताओ को यह अधिकार दिया कि जाय कि वे अपने प्रतिनिधि को वापस बुलाले ।

4 राजनीतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण ।

5 1971 से लागू बाहय आपातस्थिति को वापस लेना एव आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम 1971 (मीसा) एव भारतीय सुरक्षा अधिनियम (डी0आई0 आर0) को रद्द करना ।

6 शिक्षा व्यवस्था मे सुधार ।

7 जनता के सामाजिक एव आर्थिक अधिकारो की रक्षा, मूल्यो का स्थिरीकरण, कृषि उत्पादो एव औद्योगिक उत्पादो के मूल्यो मे न्यायसगत सन्तुलन, पूर्ण रोजगार ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास, तथा विलासप्रिय वस्तुओ के उत्पादन एव आयात पर रोक लगाना ।

जय प्रकाश नारायण ने कई बार स्पष्ट किया था कि 'वह मात्र किसी मन्त्रि मण्डल मे बदलाव या विधान सभा के भग कराने मे इच्छुक नही है, उनके आन्दोलन एव "समग्रकान्त्रि" का वास्तविक उद्देश्य तो सम्पूर्ण सामाजिक एव आर्थिक व्यवस्था मे सुधार करना एव जनवादी प्रजातन्त्र (People's Democrecy) स्थापना के लिये सघर्ष करना है ।' [4]

आन्दोलन का व्यापक प्रसार. दिल्ली, कलकत्ता एव दूसरे अन्य स्थानो मे प्रदर्शन होने के बावजूद यहाँ आन्दोलन व्यापक रुप धारण न कर सका । परन्तु इस आन्दोलन मे केन्द्रीय सरकार को चुनौती देकर इसे राष्ट्रीय रुप

---

1. सी0पी0आई0 काग्रेस को प्रगतिशील दल मानत हुये उसकी नीतियो का समर्थन कर रही थी । इसने काग्रेस की नीतियों एव 1975 की आपात स्थिति का समर्थन किया जबकि सी0 पी0 आई0 (एम0) ने इसका विरोध किया ।
2. कीसिग्ग कान्टेम्पोरेरी आर्किव्स, अक्टूबर, 6-12, 1975, पृ0, 27365,
3. वही देखे, दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, मार्च 7, 1975
4. अजीत भट्टाचार्या, "जय प्रकाश नारायण- ए पोलिटिकल बायोग्राफी," विकास पब्लिसिग्ग हाउस, प्राइवेट लिमिटेड, 1975, पृष्ठ 143-44

देने का प्रयत्न किया गया । इससे देशवासियों को भ्रष्ट, सरकार का विरोध करने की चेतना मिली । इस चेतना ने केवल विपक्षी दलो एव जन साधारण की ही प्रभावित नही किया बल्कि सत्तारुढ दल के कुछ नेताओ को भी झकझोर दिया । काग्रेस पार्टी के एक तत्कालीन राज्यमत्री श्री मोहन धारिया एव दो अन्य ससद सदस्य श्री चन्द्रशेखर एव श्री कृष्णकान्त ने खुले रुप से 'जय प्रकाश आन्दोलन' के प्रति सहानुभूति व्यक्त की और श्रीमती इदिरा गॉधी को सलाह दी कि वह श्री जय प्रकाश से वार्ता की पहल करें ।[1] श्रीमती इदिरा गॉधी ने श्री मोहन धारिया की सलाह को ठुकरा दिया और । मार्च 1975 को पत्र द्वारा श्री मोहन धारिया को सूचित किया कि उनकी श्री जय प्रकाश नारायण के आन्दोलन सम्बधी विचारधारा से काग्रेस पार्टी एव सरकार की प्रतिष्ठा को धक्का लगा है अत उन्हे इस्तीफा दे देना चाहिये । दूसरे दिन श्री मोहन धारिया ने इस्तीफा दे दिया ।

उपसहार यह तथ्य इस बात का सकेत देते है कि 'जय प्रकाश-आन्दोलन' को लेकर सत्तारुढ़ काग्रेस पार्टी मे दरारे पडने लगी थी । इस आन्दोलन ने लोगो को दो भागो मे विभाजित कर दिया था । एक गुट सत्तारुढ दल के साथ था और दूसरा गुट वह जो सत्तारुढ दल का विरोध कर रहा था श्री जय प्रकाश नारायण ने आन्दोलन का आधार व्यापक बनाने के लिये जनसघ, समाजवादी पार्टी, भारतीय लोक दल, काग्रेस (स) तथा विभिन्न गॉधीवादी, सगठनों से सहयोग देने का आह्वान किया । श्री जय प्रकाश नारायण ने व्यक्तिगत, जातीय, साम्प्रदायिक गुटो के स्थान पर राजनीतिक एकता एव सामूहिक कार्यवाही पर जोर दिया । विभिन्न दलो एव सगठनो की सहमति के आधार पर वह एक सामाजिक आर्थिक कार्यक्रम निर्धारित करने मे सफल हुये । इस कार्यक्रम के आधार पर विभिन्न वर्गों मे सहयोग कायम रखा जा सकता था ।

इस बात मे कोई सन्देह नही है कि श्री जय प्रकाश नारायण को अधिक सफलता उनके व्यक्तित्व एव सार्वजनिक जीवन मे उनकी ईमानदारी के आधार पर प्राप्त हुई । वस्तुत वे विपक्षी दलो के सक्रिय नेतृत्व का दायित्व नही उठना चाहते थे परन्तु वे ही समस्त आन्दोलन का केन्द्र, विभिन्न विचार धाराओ, परस्पर विरोधी दलो तथा सगठनो मे एकता के प्रतीक थे । अत विपक्षी एकता का श्रेय, श्री जय प्रकाश नारायण एव उनके 'समग्र क्रान्ति' के आन्दोलन को है, जिसने गैर साम्यवादी विपक्षी दलो को एक साथ आने का मच प्रदान किया ।'[2] 'जय प्रकाश आन्दोलन' ने बिखरे हुये विरोधी दलो को नैतिक बल प्रदान किया और दलो को एकता के लिये आवश्यक आधार प्रदान किया ।

गुजरात मोर्चा का गठन एवं प्रभाव

बिहार आन्दोलन ने तो राजनीतिक दलो को राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय किया, उन्हे एक सगठित आन्दोलन की शुरुआत करने का अवसर दिया परन्तु गुजरात आन्दोलन एव गुजरात मार्चे का निर्माण वास्तव मे जनता पार्टी के उदय का पूर्वाभिनय था । काग्रेस सरकार के विरुद्ध असन्तोष की स्थिति का फायदा उठाते हुये विरोधी दलों ने कन्धे से कधा मिलाकर गुजरात मे 1975 के विधान सभा चुनाव मे विजय हासिल की अत "जय प्रकाश आन्दोलन की तरह गुजरात मे 'जनता मार्चे' का निर्माण 'जनता पार्टी के उदय' के लिये सहायक हुआ । यदि गुजरात सरकार अपने इस

---

1. श्री मोहन धारिया, श्री चन्द्रशेखर, श्री रामधन, श्री कृष्णकान्त एव सुश्री लक्ष्मीकातम्मा काग्रेस के अन्दर 'यग तुर्क' के नाम से जाने जाते थे । वे उग्र आर्थिक नीतियो के समर्थक थे ।
2. जे0 ए0 नैयक "पूर्वोक्त, पृ0 6

परिक्षण मे असफल हो जाती तो 'जनता पार्टी की निर्माण की प्रक्रिया को बहुत बडा धक्का लगता ।"[1]

कारण बिहार आन्दोलन के पहले ही गुजरात मे मूल्य वृद्धि, भ्रष्टाचार एव खाद्य पदार्थो की कमी के विरोध मे एक आन्दोलन शुरु हो गया था । गुजरात मे खाद्यान्न बाहरी प्रदेश से मगाना पड़ना था तथा 1973 मे केन्द्र सरकार ने इसकी आपूर्ति मे कटौती कर दी इसी समय बाजार मे तेल, सब्जी, घी, केरोसीन एव अन्य आवश्यक उपयोग की वस्तुओं की अत्यन्त कमी हो गयी जिससे मध्यम वर्गीय, निम्न मध्यवर्गीय, ग्रामीण एव शहरी सभी लोग अत्यन्त प्रभावित हुये । आश्चर्य की बात यह थी कि बडे और धनी किसान भी इसमे सक्रिय रुप से भाग ले रहे थे । उन्होंने इस आन्दोलन का उपयोग भूमि का अधिकतम सीमा एव धान की उगाही समाप्त करने के लिये किया ।[2] गुजरात 'खेदुत समाज' जो इस आन्दोलन का अगुआ था,ने प्रमुख रुप से आर्थिक मॉगो को पेश करने के लिये सत्याग्रह एव प्रदर्शन आयोजित किये ।

विभिन्न वर्गो की आन्दोलन मे भागीदारी इस आन्दोलन ने अन्य वर्गो को भी प्रभावित किया जिसमे विद्यार्थी तेल के व्यापारी एव दूकानदार शामिल थे । विद्यार्थी समुदाय मे निराशा फैली हुयी थी क्योकि मूल्य वृद्धि, राजनीतिक भ्रष्टाचार एव शिक्षा सस्थाओ को दोषपूर्ण प्रक्रिया से उनका भविष्य खतरे म पड़ गया । राज्य सरकार ने दिसम्बर 1973 मे अहमदाबाद इजीनियरिग कालेज छात्रावास के मेस का बिल 85 रु० प्रतिमाह से बढ़ाकर 120 रु० कर दिया । 'छात्र एव उनके अभिभावक पहले से ही राज्य मे मूल्य वृद्धि के कारण आर्थिक तगी म थे, इस घटनाक्रम ने अग्नि मे घी का कार्य किया ।'[3] बाद मे सर्वोदयी नेता श्री जय प्रकाश नारायण ने बिहार आन्दोलन का सक्रिय नेतृत्व किया एव गुजरात आन्दोलन का समर्थन किया । उन्होने सभी विपक्षी दलो से आग्रह किया कि पूर्ण सामाजिक एव आर्थिक परिवर्तन के लिए आपस मे मिलकर काग्रेस का 'सशक्त राष्ट्रीय विकल्प ' तैयार करे । विभिन्न राजनीतिक दलो के सहयोग के कारण बिहार एव गुजरात आन्दोलन सफल रहे । सीमित अर्थो मे विपक्षी एकता परिणति गुजरात मे जनता मोर्चे की सरकार का गठन था । अत जनता पार्टी के गठन मे गुजरात जनता मोर्चे के निर्माण मे महत्वपूर्ण योगदान दियाा ।

इस पृष्ठभूमि मे सघर्ष को सुचारु रुप से चलाने के लिये 'नव निर्माण युवक समिति' एव 'छात्र समिति' का गठन किया गया, एव 10 जनवरी को 'अहमदाबाद बन्द' का आह्वान किया । अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, सगठन काग्रेस जनसघ एव कई गैर राजनीतिक सस्थाओ के समर्थन के कारण आन्दोलन ने व्यापक रुप धारण किया । आन्दोलनकारियो ने सर्वोदयी नेता श्री जय प्रकाश नारायण से आन्दोलन के नेतृत्व की माग की । श्री जय प्रकाश नारायण ने कुछ कारणो से नेतृत्व का भार उठाने मे असमर्थता दिखाई, परन्तु पूर्ण समर्थन एव दिशा निर्देश देने का आश्वासन दिया ।

आन्दोलनकारियो ने आन्दोलन को पूरे राज्य मे फैला दिया, श्री जय प्रकाश जी के समर्थन के कारण आन्दोलन

---

1. जे० ए० नैयक पूर्वोक्त पृ० 38
2. घनश्याम शाह "दि1976 गुजरात असेम्बली इलेक्शन इन इण्डिया" एसियन सर्वे, मार्च 1976, डान जोन्स ऐण्ड रेडनी जोम्स, "अरबन अपहिवल इन इण्डिया दि 1974 नव निर्माण रॉइट इन गुजरात" एसियन सर्वे, नवम्बर 1971
3. कविता नारवेन पूर्वोक्त पृ० 81

मे एक नयी चेतना आ गई । उन्होने पूरे राज्य मे प्रदर्शन किये, जलूस निकाले तथा श्रीमती इदिरा गॉधी एव अन्य काग्रेसी नेताओं के पुतले जलाये । छात्रो ने मन्त्रियो को खून की बोतले भेट की जो इस बात का प्रतीक थी कि वे अपना सघर्ष खून कर आखिरी बूँद तक जारी रखेगे । 'यह आन्दोलन उस समय ज्यादा तेज हो गया जब पुलिस ने छात्राओ को पीटा । इसके विरोध मे प्रोफेसरो ने अपने इस्तीफे दे दिये, वकीलो ने कोर्ट का बहिष्कार किया और बैक, जीवन बीमा निगम एव अन्य राजकीय कर्मचारियो ने एक दिन का आकस्मिक अवकाश ले लिया ।'[1] आन्दोलनकारियो ने राज्य की बिगडती हुई राजनीतिक, आर्थिक एव सामाजिक व्यवस्था के लिये काग्रेस नेतृत्व को दोषी ठहराया । उन्होंने मुख्यमन्त्री चिमनभाई पटेल[2] से इस्तीफे की माग की तथा काग्रेस हाई कमान पर दबाव डाला कि वह गुजरात विधान सभाको भग करके नये चुनाव कराये ।

मुख्यमन्त्री द्वारा त्यागपत्र इस आन्दोलन के कारण सत्तारुढ पार्टी के अन्दर भी दरारे पडने लगी । गुजरात राज्य सरकार के 4 मन्त्रियो[3] ने मुख्यमन्त्री को एक ज्ञापन दिया जिसमे कहा गया था, कि 'गुजरात की जनता को यह विश्वास हो गया है कि राज्य सरकार मे कई भ्रष्ट मन्त्री है और आप (मुख्यमन्त्री) उन्हे सरक्षण दे रहे है एव उनका नेतृत्व कर रहे है ।'[4] मुख्य मन्त्री ने इन चारो मन्त्रियो को बरखास्त कर दिया । इन मन्त्रियो की बरखास्तगी ने काग्रेसी पार्टी के आन्तरिक गुट बन्दी को काफी बढा दिया । इन पदच्युत मन्त्रियो ने मुख्यमन्त्री पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाते हुये उनसे इस्तीफे की माग की जबकि मुख्य मन्त्री चिमनभाई पटेल ने कहा इन्ही मन्त्रियो के कारण गुजरात की स्थिति बिगडी है एव यहॉ के लोगो की आकाक्षाओं को धक्का लगा है । इन्होंने काग्रेस पार्टी एव गुजरात सरकार की प्रतिष्ठा को भी हानि पहुँचाई है । परन्तु पार्टी के अन्दर एव अन्य बाहरी दबाव के कारण मुख्यमन्त्री श्री चिमन भाई पटेल ने 9 फरवरी 1974 को स्वय इस्तीफा दे दिया । राज्यपाल ने मुख्यमन्त्री का इस्तीफा तुरन्त स्वीकार कर लिया एव राष्ट्रपति को एक रिपोर्ट भेजकर राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिपारिश की । केन्द्र सरकार 'गुजरात राज्य की स्थिति पर नजर रखे हुये थी' तथा राज्य मन्त्रिमण्डल के सभी घटना क्रम केन्द्र के इशारे पर हो रहे थे । अत स्थिति की समीक्षा करने के लिये 'केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल' की एक आपात-कालीन बैठक हुई जिमे राष्ट्रपति को गुजरात मे 'राष्ट्रपति शासन' लागू करने की सलाह दी गयी ।[5] अत उसी दिन, 9 फरवरी 1974, से राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू हो गया । विधान सभा को भग नही किया गया, परन्तु निलम्बित कर दिया गया । इससे आन्दोलन-कारियो एव अन्य राजनीतिक वृत्तो मे खुशी की लहर दौड गयी ।

---

1 वही पृ0 83

2 1972 मे गुजरात विधान सभा के चुनाव सम्पन्न हुये । विजयी काग्रेस पार्टी मे तीन नेता-श्री कान्तिलाल धिया, श्री चिमन भाई पटेल एव श्री रातुभाई अदनी मुख्य मन्त्री पद के दावेदार थे । परन्तु पार्टी के आन्तरिक असन्तोष और गुट बन्दी को कम करने के लिये श्रीमती इन्दिरा गॉधी ने श्री घनश्याम ओजा को गुजरात का मुख्य मत्री बनाया । राज्य के कई काग्रेसी नेताओ को हाईकमान का यह निर्णय पसन्द नही आया ओर पार्टी के अन्दर शक्ति-सघर्ष शुरु हो गया । इसी सघर्ष एव गुटबन्दी के कारण 1973 मे घनश्याम ओजा ने इस्तीफा दे दिया और चिमनभाई पटेल गुजरात के मुख्यमन्त्री बने ।

3. इन चार मन्त्रियों में तीन मन्त्री डा0 अमूल देसाई, श्री दिव्यकान्त नानावती एव श्री अमर सिह चौधरी कबिनेट स्तर के थे एव श्री नवीन चन्द्र रवानी उपमत्री थे ।

4. देखें, कविता नारवेन पूर्वोक्त, पृ0 83

5. होंस्ट हार्टमैन पूर्वोक्त पृ0 219

विधान सभा भग करने की घोषणा कांग्रेसी एव विपक्षी नेताओ ने मुख्यमन्त्री श्री चिमनभाई पटेल के इस्तीफे का स्वागत किया । गुजरात प्रदेश काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष, श्री जिनाभाई दार्जी ने कहा 'अतगतोत्वा उन्हे (मुख्यमन्त्री) जनता की इच्छाओ के सामने झुकना पडा ।' काग्रेस के असन्तुष्ट नेता डा० अमूल देसाई ने 'नव निर्माण युवक समिति' एव शिक्षको को उनकी सफलता के लिये बधाई दी । छात्रो ने नये उत्साह के साथ विधान सभा भग कराने के लिये अपना सघर्ष जारी रखा । उन्होने बहुत से विधायको को इस्तीफे के लिये राजी कर लिया तथा ९५ विधायको ने अपने इस्तीफे दे दिये । इस घटनाक्रम के बाद केन्द्र सरकार पर पार्टी के अन्दर से भी दबाव पडने लगा यहॉ तक की श्री चिमन भाई पटेल ने भी विधान सभा भग, करने की माग की समर्थन किया 'जब श्रीमती इदिरा गॉधी ने यह महसूस किया कि जनमत का विरोध करना लाभदायक नही है, तो 16 मार्च 1974 को विधान सभा भग करने की घोषणा कर दी गयी ।'[1]

गुजरात के विधान सभा चुनाव मार्च 1974 मे विधान सभा भग होने के बाद आन्दोलन मे थोडी शिथिलता आ गयी, परन्तु आन्दोलन वापस नही लिया गया । सन् 1975 के शुरु के महीनो मे आन्दोलन ने एक बार फिर जोर पकड़ाऔर छात्रो एव विपक्षी नेताओ ने राष्ट्रपति शासन को खत्म करके, राज्य मे नये चुनाव कराने की मॉग को दोहराया जिससे राज्य मे सवैधानिक सरकार कायम हो सके । सगठन काग्रेस के नेता श्री मोरार जी देसाई ने प्रदेश मे चुनाव कराने कीमाग को लेकर 7 अप्रैल से 'आमरण अनशन' शुरु कर दिया । 'आमरण अनशन' गॉधीवादी सत्याग्रह पद्धति है जिससे जनतन्त्र को गतिशील बनाकर एव सरकार पर दबाव डालकर अपनी मॉगो को मनवाया जाता है । यह दबाव डालने का शान्तिपूर्ण परन्तु सीधा तरीका है ।'[2] साधारणतया इससे किसी भी प्रजातान्त्रिक देश की सरकार पर इतना दबाव पड जाता है कि वह जनमत के अनुसार कार्य करने के लिये बाध्य हो जाती है ।

इसी बीच इसी माग को लेकर 'जय प्रकाश आन्दोलन' को समर्थन देने वाले सभी विपक्षी राजनीतिक दलों ने राष्ट्रीय स्तर पर सघर्ष छेड़ने का फैसला किया । अन्त मे सरकार आन्दोलनकारियो एव मोरारजी देसाई के अनशन के आगे झुक गयी और उसने जून के आरम्भमे गुजरात विधान सभा के चुनाव कराने की घोषणा की श्री मोरारजी देसाई को अपने एक पत्र मे श्रीमती इन्दिरा गॉधी ने लिखा कि 'यद्यपि इस विधान सभा चुनाव से गुजरात मे सूखा राहत कार्य मे व्यवधानउत्पन्न होगा, क्योकि बहुत से सरकार कर्मचारी चुनाव मे व्यस्त हो जायेगे, परन्तु इस समय आप का जीवन खतरे मे है । अत मै और मेरे सहयोगी यह नही चाहते कि एक उच्चकोटि के स्वतन्त्रता सेनानी का बहुमूल्य जीवन बलिदान हो जाय । मै आपके विचारो से सहमत हूँ और विधान सभा के चुनाव 7 जून के आस पास कराये जायेगे ।'[3]

गुजरात की चुनावी गणनीति केन्द्र सरकार द्वारा गुजरात मे चुनाव कराये जाने की घोषणा ने विपक्षी दलो को एक नयी दिशा प्रदान की । विगत दो वर्षो मे गुजरात एव बिहार के छात्र आन्दोलन के दोरान सभी गैर साम्यवादी विपक्षी दलो ने आपसी एकता के सकेत दिये थे । इसमे श्री जय प्रकाश नारायण ने विपक्षी दलों का नेतृत्व

---

1. कविता नारवेन पूर्वोक्त पृ0 84
2. होंर्स्ट हार्टमैन पूर्वोक्त पृ0 220
3. देखे, कीसिग्गस कान्टेम्पोरेरी आर्किव्स अक्टूबर 6-12, 1975, पृ0 27366

तो नही किया था परन्तु विपक्षी एकता के प्रतीक बन गये थे । श्री जय प्रकाश नारायण ने बिखरे हुये विपक्ष को एकता के लिये नैतिक बल प्रदान किया था । अत गुजरात विधान सभा के चुनाव मे विपक्षी दलो को पहली बार अपनी एकता दिखाने का मौका मिला, इसलिये विभिन्न विचारधारा वाले राजनीतिक दलो ने 'एक कार्यक्रम एव एक ही मच' से चुनाव लडने का फैसला किया इस नये मच या गठबन्धन का नाम 'जनता मोर्चा' रखा गया, 'जिसे जनता पार्टी का अग्रदूत कहा जा सकता है । विपक्षी दलो ने ऐसा विश्वास व्यक्त किया कि "गुजरात चुनाव मे विपक्षी दलो की राष्ट्रीय स्तर की ऐसी, भागीदारी ने भविष्य मे प्रस्तावित 'सघीय पार्टी' के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया है, तथा इससे दूसरे राष्ट्रीय उद्देश्य की भी पूर्ति होगी,' ।[1] औपचारिक रुप से 'जनता मोर्चा' के निर्माण के पूर्व श्री अटल बिहारी बाजपेई ने कहा थाकि 'आने वाले लोक सभा चुनाव के लिये सगठन काग्रेस, भारतीय लोकदल, जनसघ एव सोशलिस्ट पार्टी ने 'एक चुनाव चिन्ह एव समान कार्यक्रम' अपनाने का फैसला किया है तथा गठबन्धन के बाद ये सभी राजनीतिक दल, एक सघीय पार्टी, जो काग्रेस का सशक्त विकल्प होगी, का निर्माण करेगी ।[2]

जनता मोर्चे का निर्माण 'जनता-मोर्चा' पॉच राजनीतिक दलो-सगठन काग्रेस, जनसघ, भारतीय लोक दल, सोशलिस्ट पार्टी एव एक स्थानीय सगठन, नेशनल लेबर पार्टी का गठबन्धन था । रिपब्लिकन पार्टी एव मुस्लिम लीग प्रारम्भमे 'जनता मोर्चे' ने शामिल थे, परन्तु सीटो के आबटन के प्रश्न पर इन दोनो दलो का 'जनता मोर्चे' से मतभेद हो गया एव ये दल अलग हो गये । 'जनता मोर्चे' ने अपने घोषणा पत्र मे कुटीर उद्योगो को बढावा देने, नशाबन्दी लागू करने, छुआछूत उन्मूलन एव साम्प्रदायिक सद्‌भाव बनाये रखने जैसे गॉधीवादी सिद्धान्तो का उल्लेख किया था ।'[3] इस घोषणा द्वारा विभिन्न विचार धारा वाले राजनीतिक दलो ने एक सामान्य राजनीतिक, सामाजिक एव आर्थिक कार्यक्रम स्वीकार करके विपक्षी एकता की पुष्टि की थी

'जनता मोर्चे' के गठन एव उसके चुनावी घोषणा पत्र ने गुजरात की जनता को राहत दी, क्योकि वह (जनता) काग्रेस के शासन मे मूल्यवृद्धि, बेरोजगारी, राजनीतिक भ्रष्टाचार एव प्रदेश मे खाद्यान्नो के कमी के कारण कराह रही थी । इसके अलावा 'गुजरात जन- आन्दोलन' के दौरान सरकार की दमनकारी नीतियो के कारण समाज के सभी वर्गो-शिक्षक विद्यार्थी, वकील, पत्रकार, सरकारी कर्मचारी एव अन्य मध्यमवर्गीय लोगो का सत्तारुढ काग्रेस सरकार से मोहभग हो गया था । उन्हे सरकार के किसी भी आश्वासन पर विश्वास नही रह गया था तथा उसकी समस्त आशाये विपक्ष पर टिकी थी । ऐसी परिस्थितियो मे जन-साधारण यह विश्वास हो गया था कि 'जनता मोर्चे' उन सभी कमियो एव अव्यवस्थाओ को दूर करने का प्रयास करेगा, जिसके लिये उन्होने दो वर्षो से अधिक समय तक सघर्ष किया था, इस प्रकार 'सयुक्त विपक्ष' जनता की भावना के अनुरुप 'काग्रेस के विकल्प' की रुप मे उभरा था ।

गुजरात चुनाव : गुजरात विधान सभा के चुनाव 8 एव 11 जून 1975 को सम्पन्न हुये । वस्तुत गुजरात का चुनाव तीन राजनीतिक शक्तियो एव तीन राजनीतिक व्यक्तियो के इर्द गिर्द घूमता रहा । ये तीन राजनीतिक शक्तिया थी काग्रेस, 'जनता मोर्चो' एव 'किसान मजदूर लोकपक्ष'[4] तथा तीन राजनीतिक व्यक्ति थे- श्रीमती इदिरा गॉधी, श्री

---

1. जे0 ए0 नैयक पूर्वोक्त पृ0 37
2. कीसिंगस् कान्टेम्पोरेरी आर्किव्स् अक्टूबर,6-12, 1975, पृ0 27366
3. वही
4. किसान मजदूर लोकपक्ष का गठन भूतपूर्व काग्रेसी मुख्यमन्त्री श्री चिमन भाई पटेल ने किया था । सन् 1974 मे इन्हें पार्टी विरोधी

मोरारजी देसाई एव श्री चिमन भाई पटेल । श्री मोरार जी देसाई की सगठन काग्रेस 'जनता मोर्चे' की मुख्य घटक एव शक्ति थी । मोर्चे के अन्य दलो की सामूहिक शक्ति भी सगठन काग्रेस से कम थी,परन्तु मोर्चे का दूसरा महत्वपूर्ण घटक जनसघ थी । श्री जय प्रकाश नारायण, जिन्हे 'सयुक्त विपक्ष' ने विपक्षी एकता के प्रतीक के रुप मे स्वीकार किया था, ने जनता मोर्चे के लिये चुनावी दौरे किये । उन्होने लोगो से अनुरोध किया कि वे निरकुश काग्रेस को उखाड़ फेके और सच्चे जनवादी जनतन्त्र का स्थापना के लिये, 'जनता मोर्चे' को विजयी बनाये

गुजरात चुनाव के दौरान श्रीमती इदिरा गॉधी की कई जन सभाओ मे असन्तुष्ट लोगो ने गडबडी फैलाई जिससे छुट-पुट हिसात्मक कार्यवाही हुई । यह हिसात्मक कार्यवाही इस बात का प्रतीक थी कि प्रदेश की जनता सत्तारुढ़ काग्रेस से अत्यधिक अप्रसन्न थी । अत गुजरात विधान सभा चुनाव मे काग्रेस कीहार हुयी, परन्तु किसी भी पार्टी को स्पष्ट बहुमत नही मिल सका । काग्रेस दल को 182 सदस्यीय विधान सभा मे 75 स्थान मिले । 'जनता मोर्चे' को 86 स्थान मिले, इसने सगठन काग्रेस को 57, जनसघ को 18, भारतीय लोक दल को 2 एव सोशलिस्ट पार्टी को2 स्थान मिले, तथा मोर्चे द्वारा समर्थित 6 निर्दलीय एव 1 राष्ट्रीय मजदूर पार्टी का उम्मीदवार ही विजयी हुआ । श्री चिमन भाई पटेल की पार्टी किसान मजदूर लोक पक्ष को 12 स्थान प्राप्त हुये ।

सारणी संख्या 5

गुजरात विधान सभा चुनाव 1975

विभिन्न दलों की स्थिति

दल	जीती गयी सीटो की सख्या	वोटो का प्रतिशत
कुल सीट सख्या	181 •	
जनता मोर्चा	86	
काग्रेस (स0)	57	25 18 • •
जनसघ	18	9 49
सोशलिस्ट पार्टी	2	0 74
भारतीय लोकदल	2	1 47
राष्ट्रीय मजदूर पार्टी	1	1 08
निर्दलीय	6	
काग्रेस	75	39 94
किसान मजदूर लोकपक्ष	12	11 05
सी0 पी0 आई0		0 18
सी0 पी0 आई0 (एम.)	-	0 08
निर्दलीय	8	10 79 • • •

गतिविधियो के कारण काग्रेस से निकाल दिया गया था । इन्होने एक अलग पार्टी का गठन करके स्वतन्त्र रुप से चुनाव मे भाग लिया था । परन्तु इनकी सहानुभूति 'विपक्षी मोर्चे' के साथ थी ।

• कुल स्थान 182 थे परन्तु 1 विधान सभा चुनाव क्षेत्र मे एक उम्मीदवार की मृत्यु के कारण चुनाव स्थगित हो गया था।

• • यह प्रतिशत 56 उम्मीदवार का है।

• • • यह प्रतिशत कुछ 15 निर्दलीय उम्मीदवार का है।

चुनाव के परिणाम से स्पष्ट था कि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नही प्राप्त था। 'जनता मोर्चे' ने किसान मजदूर लोकपक्ष की सहायता से सरकार बनायी। लोकपक्ष सरकार मे सम्मिलित नही हुआ। 18 जून 1975 को मुख्यमन्त्री श्री बाबू भाई पटेल ने 18 सदस्यीय 'जनता मोर्चे' के मन्त्रिमण्डल का गठन किया। किसान मजदूर लोक पक्ष के सहायता से सरकार बनने के कारण, सरकार का स्थिति नाजुक हो गयी थी क्योंकि चिमन भाई की लोकपक्ष पार्टी का कोई भी सदस्य सरकार मे शामिल नही हुआ। अत वह किसी भी समय सरकार से अपना समर्थन लेकर सरकार गिरा सकता था। परन्तु यह तथ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि पहली बार विपक्षी एकता के सन्दर्भ मे गुजरात मे 'जनता मोर्चे मन्त्रिमण्डल' का गठन हुआ।

महत्व गुजरात मे 'जनता मोर्चा' एक नवीन प्रयोग था। गैर साम्यवादी दलो ने जनता मोर्चे का निमार्ण कर सत्ताधारी काग्रेस का एक राष्ट्रीय विकल्प तैयार करने की एक जोरदार पहल की। प्रतिपक्षी दलो के सभी नेताओ ने यह उम्मीद की कि गुजरात मे जिस मोर्चे का गठन हुआ है वह शीघ्र ही एक महासघीय दल के रुप मे बदलेगा और बाद मे उस सबका एक दल के रुप मे विलय हो जायेगा। भविष्य की 'जनता पार्टी' इसी विकल्प की प्रतिरुप थी।बिहार तथागुजरात आन्दोलन ने सर्वप्रथम विपक्षी एकता का मार्गदर्शन किया। "प्ररम्भ मे ये आन्दोलन वास्तव मे मध्यम वर्गीय थे, जिसमे न तो कोई राष्ट्रीय दल शामिल हुआ था और न ही कोई राष्ट्रीय नेता।[1] बाद मे सर्वोदयी नेता श्री जय प्रकाश नारायण ने बिहार आन्दोलन का सक्रिय नेतृत्व किया एव गुजरात आन्दोलन का समर्थन किया। उन्होंने सभी विपक्षी दलो से आग्रह किया कि पूर्ण सामाजिक एव आर्थिक परिवर्तन के लिए आपस मे मिलकर काग्रेस का 'सशक्त राष्ट्रीय विकल्प' तैयार करे। विभिन्न राजनीतिक दलो के सहयोग के कारण बिहार एव गुजरात आन्दोलन सफल रहे। सीमित अर्थो मे विपक्षी एकता परिणति गुजरात मे जनता मोर्चे की सरकार का गठन था। अत जनता पार्टी के गठन मे गुजरात जनता मोर्चे के निर्माण मे महत्वपूर्ण योगदान दियाा।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय का निर्णय एवं प्रभाव

सयुक्त विपक्ष का जून 1975 के गुजरात विधानसभा चुनाव मे विजय हासिल कर लेने के कारण उसका हौसला बढा हुआ था। उसने 1976 मे होने वाले लोकसभा चुनाव को सामने रख एव परिस्थितियो को देखते हुए एक गैर काग्रेसी सगठन के निर्माण की गतिविधियॉ तेजी से आरम्भ की। विरोधी दलो मे सहयोग की प्रक्रिया को एक घटना ने और प्रोत्साहित किया। यह घटना थी, 12 जून 1875 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गॉधी के रायबरेली चुनाव क्षेत्र से चुनाव को अवैध घोषित करने का निर्णय और इसके बाद 24 जून, 1975 को उच्चतम न्यायालय द्वारा श्रीमती गॉधी को इस निर्णय के विरुद्ध पूर्ण स्थगन (Stay) प्रदान करने से इन्कार करना।

---

1 कविता नारवेन पूर्वोक्त पृ0 84

'विरोधी दलो मे इस निर्णय को एक महान उपलब्धि के रुप मे प्रस्तुत किया । श्रीमती इदिरा गॉधी के नेतृत्व मे तथाकथित काग्रेस भ्रष्टाचार के विरुद्ध उनके अभियान को जैसे न्यायिक वैधता प्राप्त होगयी हो ।' [1] इलाहाबाद उच्च-न्यायालय का यह ऐतिहासिक निर्णय कई कारणो से अत्यन्त महत्वपूर्ण था । प्रथम इसने काग्रेस सत्ता के भ्रष्ट चरित्र का पर्दाफ़ाश किया था एव न्यायिक निष्पक्षता का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया । द्वितीय इसने बॅटे हुये विपक्ष को एकता की दिशा मे प्रयास करने का नया आयाम प्रदान किया, जिससे कि वे भविष्य मे लोकसभा के चुनावो मे जनता के भावनाओं के अनुरुप भ्रष्ट काग्रेस सरकार का 'सशक्त राष्ट्रीय विकल्प' प्रस्तुत कर सके । अत श्रीमती इदिरा गॉधी पर लगाये गये आरोपो के आधार पर इलाहाबाद उच्च-न्यायालय का निर्णय, श्रीमती इदिरा गॉधी एव विपक्ष का, इस निर्णय के प्रति दृष्टिकोण, एव विपक्ष का 'इन्दिरा हटाओ' अभियान आदि महत्वपूर्ण बिन्दु है । इन महत्वपूर्ण बिन्दुओं का विवेकपूर्ण परीक्षण करके उन परिस्थितियो तक पहुॅचा जा सकता है, जिसमे श्रीमती इदिरा गॉधी ने सभी प्रजातन्त्रिक मूल्यो को ताक मे रखकर आन्तरिक आपात स्थिति की घोषणा की ।

श्रीमती इदिरा गॉधी के मामले की पृष्ठभूमि श्रीमती इन्दिरा गॉधी मार्च 1971 मे उत्तर प्रदेश के रायबरेली सदीय निर्वाचन क्षेत्र से सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार श्री राज नारायण को हराकर विजयी हुई । [2] श्री राज नारायण ने यह आरोप लगाया कि श्रीमती इन्दिरा गॉधी ने भ्रष्ट तरीकों का इस्तेमाल करके चुनाव जीता है तथा उन्होने इसके विरुद्ध इलाहाबाद उच्च-न्यायालय मे एक याचिका [3] दायर की । राज नारायण ने आरोप लगाया कि—

(1) श्रीमती इदिरा गॉधी ने प्रधानमन्त्री सचिवालय के राज पत्रित अधिकारी श्री यशपाल कपूर से अपने 'चुनाव-एजेन्ट' के रुप मे सेवाये ली है । ये सेवाये उस समय ली गयी जब श्री कपूर ने अपने पद से त्याग-पत्र नही दिया था ।[4]

(2) उन्होने चुनाव सभावनाओ को सफल बनाने के लिये केन्द्र सरकार की सेना की सहयता ली । वायुसेना के विमानो और हेलीकाप्टरो का प्रयोग कर अपने निर्वाचन क्षेत्र की सार्वजनिक सभाओ को सम्बोधित किया ।

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, जून 27, 1975
2. इस चुनाव मे श्रीमती इन्दिरा गॉधी को 183,109 तथा श्री राज नारायण को 71,499 मत मिले । श्रीमती इदिरा गॉधी जीती हुयी थी ।
3. श्री राज नारायण ने श्रीमती इदिरा गॉधी के खिलाफ याचिका अप्रैल 1971 में दाखिल की थी, लेकिन कुछ कारणों से मुकदमे में की सुनवायी मे विलम्ब हो गया । पहले दो जज, जिन्होने मुकदमे की सुनवाई शुरु की,वे साक्ष्यों के पूर्ण अभिलेखन के पूर्व ही सेवा निवृत्त हो गये । न्यायमूर्ति श्री जग मोहन लाल सिन्हा इस मुकदमें की सुनवाई करने वाले तीसरे जज थे । उन्होने 3 सितम्बर 1974 से साक्ष्यो के अभिलेखन की प्रक्रिया पुन आरम्भ की- अन्य विवरण के लिये देखे कीसिंगंस् कॉन्टेम्परेरी आर्किव्स, अक्टूबर 6-12, 1975 पृ0 27367
4. 19 मार्च 1975 को श्रीमती इदिरा गॉधी न अपने साक्ष्यो को प्रस्तुत करते समय कहा कि श्री यशपाल कपूर ने सचिवालय मे अपने पद से 13 फरवरी 1971 को त्याग पत्र दे दिया था, तथा 1 फरवरी 1971 को उनकी नियुक्ति मेरे चुनाव एजेन्ट के रूप मे हुई । श्रीमती गॉधी ने उपर्युक्त आरोप का खण्डन करते हुये कहा कि 14 जनवरी 1971 से श्री यशपाल कपूर द्वारा चुनाव प्रचार करने का सवाल ही नही पैदा होता, क्योकि 14 जनवरी को मै इस क्षेत्र से उम्मीदवार ही नही थी । श्रीमती गाँधी ने रायबरेली चुनाव क्षेत्र से अपना नामाकन पत्र 1 फरवरी को भरा था ।

(3) उन्होंने और उनके चुनाव अभिकर्ता ने उत्तर प्रदेश सरकार की सेवा मे लगे राजपत्रित आफिसर, रायबरेली के जिलाधिकारी, एस0 पी0 और उत्तर प्रदेश के गृह सचिव की सेवाये ली।

(4) श्रीमती इदिरा गॉधी के चुनाव अभिकर्ता यशपाल कपूर ने और उनके दूसरे एजेन्टो ने श्री यशपाल कपूर की सहमति से कम्बल, रजाई, धोती, शराब एव रुपये मतदाताओं को बॉटे।

(5) उन्होंने धार्मिक प्रतीक 'गाय और बिछडे' का प्रयोग मतदाताओ से चुनावी अपील के लिये किया।

(6) श्री यशपाल कपूर ने श्रीमती गॉधी की सहमति से मतदाताओ को मतदान केन्द्र पर लाने के लिये बहुत सी सवारी गाडियो का प्रयोग किया।

(7) उन्होंने विधिविहित रकम से कही अधिक व्यय उपगत या प्राधिकृत किया था। अनुमानत यह रकम रु0 9,27,030 थी। जबकि विधि सीमा 35000 रुपये की है।

उच्च-न्यायालय का निर्णय इलाहाबाद उच्च-न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री जगमोहन लाल **सिन्हा ने** 12 जून 1975 को श्रीमती इदिरा गॉधी के विरुद्ध निर्णय दिया। उन्होंने श्रीमती गॉधी के 1971 के लोक-सभा चुनाव को अवैध घोषित कर दिया और उन्हे ससद के दोनो सदनो एव किसी भी राज्य के विधान-मण्डल की सदस्यता से 6 वर्षो के लिये अयोग्य घोषित कर दिया। यद्यपि न्यायमूर्ति ने इस निर्णय के सदर्भ म 20 दिन का स्थगन आदेश (Stay Order) भी दिया जिससे कि प्रतिवादी उच्चतम न्यायालय में अपील कर सके। परन्तु वास्तव मे यह स्थगन आदश इसलिये दिया गया था कि ससद मे श्रीमती इदिरा गॉधी की जगह कांग्रेस पार्टी के किसी नये नेता का चुनाव हो सके एव सत्ता का सुचारु रुप से हस्तान्तरण हो जाय।

उच्च-न्यायालय ने श्री राज नारायण द्वारा लगाये गये बहुत से आरोपों को निरस्त कर दिया परन्तु दो आरोपों को स्वीकार करते हुये प्रतिवादी के खिलाफ निर्णय दिया। 'उच्च-न्यायालय' ने श्रीमती को 'जनप्रतिनिधित्व अधिनियम' की धारा 123 (7) के अन्तर्गत दोषी ठहराते हुये कहा कि उन्होंने अपने चुनाव मे उत्तर प्रदेश सरकार के राजपत्रित अधिकारियो की सहायता ली है। ये अधिकारी थे- रायबरेली के जिला मजिस्ट्रेट, पुलिस अधीक्षक लोक निर्माण विभाग के अधिशासी अभियन्ता एव बिजली विभाग के अभियन्ता आदि। इसके आलावा न्यायमूर्ति ने श्रीमती इदिरा गॉधी को एक अन्य भ्रष्ट आचरण के लिये भी दोषी ठहराया, उन्होंने कहा कि श्रीमती इदिरा गॉधी ने भारत सरकार के एक राजपत्रित अधिकारी श्री यशपाल कपूर [1] से अपने चुनाव मे सहायता ली है। श्री कपूर प्रधानमन्त्री सचिवालय के 'महत्वपूर्ण विशेष पद पर थे और उन्होने श्रीमती इन्दिरा गॉधी के चुनाव सभव्यताओ को बढ़ाया। न्यायमूर्ति श्री सिन्हा ने कहा कि श्रीमती इन्दिरा गॉधी को 'जन प्रतिनिधित्व अधिनियम के अनुच्छेद 8(ए) के अनुसार इस आदेश की दिनाक से 6 वर्षो के लिये ससद के दोनो सदनो एव किसी भी राज्य के विधान मण्डल की सदस्यता के लिये अयोग्य घोषित किया जाता है। उच्च- न्यायालय ने प्रधान मन्त्री पर लगाये गये अन्य आरोपो, जैसे-वायुसेना के विमानो, हैलीकाप्टर

---

1. उच्च-न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि श्री यशपाल कपूर ने श्रीमती इन्दिरा गॉधी के चुनाव के लिये 7 जनवरी 1971 से कार्य किया था। जबकि 25 जनवरी तक वे भारत सरकार के राजपत्रित अधिकारी रहे। यद्यपि उन्होने अपना त्याग पत्र 13 जनवरी को दे दिया था, परन्तु राष्ट्रपति ने 25 जनवरी को उनका त्यागपत्र स्वीकार किया।

एव विमान चालको का प्रयोग, धार्मिक चुनाव चिन्ह का प्रयोग एव चुनावी खर्चे सम्बन्धी आरोपो को निरस्त कर दिया।'[1]

निर्णय के सन्दर्भ मे काग्रेस जनो का दृष्टिकोण . भारतीय एव विदेशी स्त्रोतो से ऐसी खबर थी कि उच्च-न्यायालय के निर्णय के बाद श्रीमती इन्दिरा गॉधी प्रधान मन्त्री पद से त्यागपत्र देने पर विचार कर रही थी, परन्तु काग्रेस के कुछ वरिष्ठजनो ने उन्हे ऐसा करने से मना किया। "श्रीमती इन्दिरा गॉधी ने अपने चारो ओर जिस गुट की सरचना की थी, वह गुट (Caucus) भी नही चाहता था कि वह अपने पद से त्यागपत्र दे क्योकि श्रीमती इन्दिरा गॉधी ने इस गुट के कुत्सित एव निन्दनीय कार्यो को एक आवरण प्रदान किया था।"[2] इसी बीच श्रीमती इदिरा गॉधी नेइलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट मे अपील की। अत काग्रेस पार्टी के अध्यक्ष सहित बहुत से वरिष्ठ जनो ने एक सयुक्त वक्तव्य मे कहा कि उच्चतम न्यायालय के फैसले तक श्रीमती इदिरा गॉधी को को प्रधानमत्री बने रहना चाहिए। उन्होने घोषणा की कि देश की अखण्डता, स्थिरता एव उन्नति के लिये उनका (श्रीमती इदिरा गॉधी का) गत्यात्मक नेतृत्व अतिआवश्यक है।

इधर काग्रेस पार्टी की गतिविधिया अत्यन्त तेज हो गयी, जिसका सार यह था कि प्रधानमन्त्री अपने पद से त्यागपत्र न दे। सुप्रीम कोर्ट द्वारा किसी भी आदेश एव फैसले के पूर्व ही, 18 जून 1975 को उनके गुट ने उन्हे पुन काग्रेस पार्टी का नेता चुन लिया, यद्यपि चन्द्रशेखर गुट[3] के काग्रेसी सासदो ने इसका विरोध किया। 18 जून को ही काग्रेस ससदीय दल की सभा मे एक प्रस्ताव पास किया गया जिसमे श्रीमती गॉधी 'पर पूर्ण विश्वास एव समर्थन' व्यक्त करते हुये कहा गया कि उनका प्रधानमन्त्री के रुप मे सतत् नेतृत्व राष्ट्र के लिये अपरिहार्य है। श्री देवकान्त बरुआ ने तो यहाँ तक कहा कि 'इन्दिरा ही भारत हैऔर भारत ही इन्दिरा है।'[4] यानी भारत एव इन्दिरा गॉधी एक दूसरे के पर्याय है। इस प्रकार काग्रेसजनो नेव्यक्ति को राष्ट्र मानकर राष्ट्र की प्रतिष्ठा की गहरा धक्का पहुँचाया।

उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिबन्धित स्थगन आदेश . इलाहाबाद हाई कोर्ट के निर्णय के बाद प्रजातान्त्रिक मूल्यो की मॉग थी कि श्रीमती इदिरा गॉधी को त्याग पत्र दे देना चाहिये। उनके कुछ सहयोगियों ने भी सलाह दी कि उन्हे अपने पद से त्यागपत्र देकर एक अच्छी परम्परा की शुरुआत करनी चाहिये। वास्तव मे उनका त्यागपत्र देना एक परम्पर की मॉग न होकर, एक कानूनी आवश्यकता थी। श्रीमती इदिरा गॉधी ने ऐसी किसी भी माग मानने से इन्कार कर दिया जो उनके त्याग पत्र से सम्बन्धित थी। श्रीमती इदिरा गॉधी ने त्यागपत्र देने से इन्कार करने के साथ-साथ हाई-कोर्ट के फैसले के खिलाफ उच्चतम न्यायालय मे एक सशोधनात्मक याचिका दायर की तथा याचना की कि जब तक मामला सुप्रीम कोर्ट मे विचाराधीन है तब तक हाई कोर्ट के फैसले मे पूर्ण स्थगन (Absolute Stay

---

1. (1975) चुनाव याचिका सख्या 5-1971 डी0/-12 6 1975
2 बी० एम० सिन्हा "आपरेशन इमरजेन्सी", हिन्द पाकेट बुक्स प्रा0 लि0 दिल्ली 1977 पृ0 8।
3 इस समय काग्रेस में मुख्य रुप से तीन व्यक्ति ऐसे थे जिन्होने यह विचार व्यक्त किया कि हाई कोर्ट के निर्णय के बाद श्रीमती इदिरा गॉधी को अपने पद से त्यागपत्र दे दना चाहिये। इन लोगो मे काग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्य, श्री चन्द्रशेखर, काग्रेस ससदीय दल के महासचिव श्री रामधन क्बीनेट स्तर, के मन्त्री श्री मोहन धारिया थे। कुछ महीने पहले जय प्रकाश आन्दोलन के समर्थन मे वक्तव्य देने क कारण श्री मोहन धारिया को अपने पद से त्यागपत्र देना पडा था।
4 कीसिंगस् कॉन्टेम्परेरी आर्किव्स, अक्टूबर 6-12, 1975 पृ0 27367

Order) आदेश प्रदान किया जाय । उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री बी० आर० कृष्ण अय्यर ने आशिक रुप याचिका स्वीकार कर लिया एव एक प्रतिबन्धित आदेश प्रदान किया ।

24 जून की न्यायमूर्ति ने प्रतिबन्धित स्थगन आदेश (Conditional Stay Order) मे स्वीकृत किया कि श्रीमती इदिरा गॉधी प्रधान मत्री पद पर बनी रह सकती है, परन्तु सुप्रीम कोर्ट के अन्तिम निर्णय तक उन्हे लोक सभा की कार्यात्मक सदस्यता से वचित किया जाता है । न्यायमूर्ति श्री कृष्ण अय्यर ने अपने लम्बे फैसले मे स्थगन का आदेश देते हुये यह निर्देश दिया कि श्रीमती गॉधी लोक सभा की सदस्या रहेगी और लोक सभा के रजिस्ट्रार पर हस्ताक्षर करने की अधिकारी होगी, किन्तु लोक सभा के सदस्य के रुप मे लोक सभा के अधिवेशन मे भाग नही ले सकेगी और लोक सभा के सदस्य के रुप मे पारिश्रमिक भी नही लेगी । इस उलझन भरे आदेश को स्पष्ट करते हुये माननीय न्यायमूर्ति ने पुन यह कहा कि श्रीमती गॉधी को प्रधानमन्त्री या मन्त्री के रुप मे ससद के दोनो या सयुक्त बैठको मे बिना मतदान किये भाग लेने का पूरा अधिकार होगा एव प्रधानमन्त्री की हैसियत से अपना वेतन लेने का भी पूरा अधिकार होगा ।[1] इस 'आशिक स्थगन आदेश' ने श्रीमती गॉधी की प्रतिष्ठा को सुधारने की जगह और धक्का पहुँचाया । सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के बाद उन्हे 'विकलाग प्रधानमन्त्री' की सज्ञा दी गयी । इसके बाद भी वह और उनका गुट इस योजना मे लगा रहा कि किसी तरह हाई-कोर्ट के निर्णय को निष्प्रभावित करके एव सवैधानिक रुप से उच्चतम न्यायालय को बाध्य करके निर्णय को अपने पक्ष मे किया जाय ।'[2]

इस ऐतिहासिक मामले मे उच्चतम न्यायालय ने श्रीमती इन्दिरा गॉधी की दोहरी स्थिति को मान्यता दी प्रथम एक ससद सदस्य के रुप मे एव द्वितीय प्रधानमन्त्री के रुप मे । अत अपनी 20 वर्षो पुरानी परम्परा का आदर करते हुये न्यायालय ने चुनाव के मामले मे पूर्ण स्थगन आदेश प्रदान नही किया । न्यायालय ने उन्हे केवल प्रधानमन्त्री बने रहने एव उस पद के सभी विशेषाधिकार एव सुविधाये उपभोग करने की अनुमति प्रदान की । भारतीय सविधान भी इस बात की अनुमति देता है कि 'कोई भी व्यक्ति 6 महीने तक ससद का सदस्य न होने पर भी मत्री या प्रधानमन्त्री के पद पर बना रह सकता है' ।[3] इस 6 महीने की अवधि की गणना व्यक्ति द्वारा पद ग्रहण की तारीख से की जायेगी ।

प्रधानमंत्री का वक्तव्य एव विपक्ष की प्रतिक्रिया श्रीमती इदिरा गॉधी जानती थी अगर उन्होंने त्यागपत्र दे दिया तो उनका उत्ताधिकारी बाद मे उनके लिये पद खाली नही करेगा । प्रारम्भ मे उन्होंने एक बार त्याग पत्र देने के विषय मे विचार किया था तथा अपने उत्ताधिकारी के रुप मे सरदार स्वर्ण सिह के नाम की अनुशसा की थी, जो उनके लिये बाद मे पद खाली कर दे ।" परन्तु जब श्री जग जीवन राम ने कहा कि उत्ताधिकारी का चुनाव करना किसी व्यक्ति का नही पार्टी का विशेषाधिकार है, तो उन्हे आने वाले खतरे का पूर्ण एहसास हो गया ।"[4]

इस घटना के बाद उन्होंने कभी भी इस सन्दर्भ मे नही सोचा कि उन्हे त्याग पत्र दे देने चाहिये । उन्होंने

---

1 दि हिन्दुस्तान टाइम्स, जून 25, 1975
2 बी०एम० सिह पूर्वोक्त पृ० 8-9
3 भारतीय सविधान अनुच्छेद 75 (5)
4 कविता नारवेन पूर्वोक्त, पृ० 109-110 ऐसी भी खबर थी कि सरदार स्वर्ण सिह के आलावा बगाल के मुख्य मत्री सिद्धार्थ शकर रे एव रेल मत्री कमलापति त्रिपाठी का नाम भी उम्मीदवार की सूची मे थे ।

देशवासियो को विभिन्न प्रकार आन्तरिक एव बाध्य खतरो के प्रति आगाह करके, जनता की सहानुभूति प्राप्त करने की कोशिश की । 20 जून 1975 को दिल्ली मे भारी जनसभा को सम्बोधित करते हुये श्रीमती इदिरा गॉधी ने कहा कि "देश के अन्दर एव बाहर का कुछ शक्तिशाली ताकते मेरे खिलाफ षडयत्र कर रही है, तथा वे मेरी हत्या का प्रयास भी कर सकती है । उन्होने कहा कि विपक्ष जैसा अक्रामक रुख मेरे विरुद्ध अपना रहा है, वैसा किसी अन्य देश मे बर्दाशत नही किया जा सकता । वास्तव मे अनेक देशो के नेताओ ने मुझसे कहाकि आपने इस सीमा तक जाने की लोगो को अनुमति क्यो दी ?"[1] इस प्रकार के वक्तव्यो से श्रीमती इदिरा गॉधी यह दिखाना चाहती थी कि विपक्ष अपनी नेतिक एव राजनैतिक जिम्मेदारी न निभाते हुए, देश मे हिसा एव अस्थिरता फैलाने की कोशिश कर रहा है । उन्होने कहा कि "मेरा प्रधानमत्री पद पर बने रहना विपक्षी की मॉग पर नही बल्कि मेरी अपनी पार्टी के लोगो की इच्छा एव समर्थन पर निर्भर करता है ।"[2]

इलाहाबाद उच्च न्यायालय एव उच्चतम न्यायालय के निर्णय के सन्दर्भ मे श्रीमती इदिरा गॉधी के वक्तव्यो एव प्रतिक्रियाओ ने एक प्रजातान्त्रिक नेता को तानाशाह मे बदल दिया । आचार्य जे0 बी0 कृपलानी ने एक प्रेस वक्तव्य मे कहा कि "प्रजातन्त्र की भावना एव प्रधानमन्त्री पद की गरिमा का ध्यान रखते हुये उन्हे अपने पद से त्यागपत्र दे देना चाहिये ।"[3] श्रीमती इदिरा गॉधी ने उन लोकतान्त्रिक मूल्यो की परवाह नही की जिनके लिये उनके पिता श्री जवाहर लाल नेहरु ने लम्बे अर्से तक सघर्ष किया था । उन्होने न्यायालय के निर्णयो को मानने से इसलिये इन्कार कर दिया कि उनमे एक 'आत्म सरंक्षण' की भावना ने जन्म मे लिया था । श्रीमती गॉधी द्वारा ऐसा करना नैतिक एव विधिपरक विचारो से नही वरन् राजनीतिक एव व्यक्तिगत विचारो से प्रेरित था ।

सत्याग्रह का आह्वान विपक्ष की इन्दिरा हटाओ रणनीति : इलाहाबाद उच्च न्यायालय एव उच्चतम न्यायालय के निर्णय के बाद विपक्ष तो श्रीमती इन्दिरा गॉधी से इस्तीफे की मॉग कर ही रहा था, परन्तु कांग्रेसी नेताओ मे भी इस मुद्दे पर मतभेद हो गया था ।[4] यह आश्चर्य की बात थी कि "श्रीमती इन्दिरा गॉधी के हटाने के मामले मे जनसघ जैसे दक्षिणी पथी दल एव सी0 पी आई0 (एम0) जैसे वामपथी दल मिलजुल कर कार्य कर रहे थे । कुछ गैर राजनीतिक सगठन जैसे कि जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व वाला सर्वोदय गुट एवं दूसरे अन्य दल भी 'इन्दिरा-हटाओ अभियान' मे शामिल हो गये थे ।"[5]

---

1 देखे, किसिंगस कॉन्टम्पोरेरी आर्किव्स, अक्टूबर 6-12, 1975 पृ0 27367 ।

2 वही

3. उदधृत, आचार्य जे0 बी0 कृपलानी "दि नाइटमेयर एण्ड आफ्टर" पापुलर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई, 1980, पृ0 1.

4 विस्तृत रुप से इसका विवरण दिया जा चुका है कि कुछ कांग्रेसी नेता जैसे श्री चन्द्र शेखर, श्री रामधन एव श्री मोहन धारिया आदि का विचार था कि श्रीमती इदिरा गॉधी को त्यागपत्र दे देना चाहिये, जबकि शेष गुट श्रीमती गॉधी पर पूर्ण समर्थन एव विश्वास प्रकट कर रहा था

5 हॉर्स्ट हार्टमैन· पूर्वोक्त पृ0 230

22 जून 1975 को 'जनता मोर्चे' ने एक जन सभा आयोजित की तथा इन्दिरा गॉधी से सवैधानिक, वैधानिक एव नैतिक आधार पर इस्तीफे की माग की । इस सभा मे श्री जय प्रकाश नारायण शामिल नही थे । अत जय प्रकाश नारायण की उपस्थित मे 25 जून को एक विशाल जन सभा का आयोजन दिल्ली मे किया गया । इस सभा मे सगठन काग्रेस, जनसघ, भारतीय लोकदल सोशलिस्ट पार्टी तथा अकाली-दल ने भाग लिया । इस सभा में ऐतिहासिक सभा मे सी0 पी0 आई0 (एम0) एव द्रविड़ मुनेत्र कडगम (डी0 0,म0 के0) के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे ।

श्री जय प्रकाश नारायण ने अपने 90 मिनट के भाषण मे बहुत से मुद्दो पर प्रकाश डालते हुये कहा कि सुप्रीम कोर्ट के न्याय धीशो को अब श्रीमती इदिरा गॉधी के मामले की सुनवाई नही करनी चाहिये । "उन्होंने श्रीमती इदिरा गॉधी के पक्ष मे हुये जन प्रदर्शन की आलोचना की और कहा कि यह जनता की मदद से न्यायपालिका के निर्णय को बदलने का फासीवादी रवैया है ।" [1] उन्होने पुलिस एव सेना से अपील की कि "सरकारी कर्मचारियो को अन्यायपूर्ण व्यवस्था की आज्ञा का पालन नही करना चाहिये । सेना की यह जिम्मेदारी है कि वह भारतीय प्रजातन्त्र की रक्षा करे एव यह उसका कर्तव्य है कि वह सविधान का सरक्षण करे । पुलिस को अन्धा धुन्ध कार्य करने का प्रशिक्षण दिया गया है, परन्तु उन्हे सोच विचार कर कार्य करना चाहिये ।" [2] इस सभा मे विपक्षी दलों ने यह निर्णय लिया कि 29 जून से एक सप्ताह का सत्याग्रह कार्यक्रम आरम्भ किया जाये । इस कार्यक्रम मे धारा 144 भग करके दिल्ली एवं सभी राज्य की राजधानियो मे प्रदर्शन करना एव श्रीमती इदिरा गॉधी से त्यागपत्र मागना शामिल था । यह भी निश्चय लिया गया कि यदि श्रीमती गॉधी त्यागपत्र नही देती तो एक राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह आन्दोलन शुरु किया जायेगा । श्री जय प्रकाश नारायण ने छात्रो से कक्षाओ का बहिष्कार करनेका आह्वान किया एवं लोगो से अपील की कि वे सरकार का सहयोग न करे एव कर देने से इन्कार कर दे । यह एक प्रकार का 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' था जिसके बल पर महात्मा गॉधी ने भारत मे ब्रिटिश राज की नीव हिला दी थी । श्री जय प्रकाश नारायण इसका प्रयोग 'इन्दिरा-राज' को उखाड फेकने के लिये कर रहे थे ।

आपातस्थिति की घोषणा

25 जून को दिल्ली के रामलीला मैदान मे आयोजित जनसभा मे श्री जय प्रकाश नारायण, श्री मोररजी देसाई एव श्री नानाजी देशमुख के व्याख्यानो ने लोगो मे उत्तेजना भर दी । विपक्ष द्वारा 29 जून से सत्याग्रह का फैसला सुनकर

---

1. उद्धृत, वही, श्री जय प्रकाश नारायण के भाषण का अश ।
2 जय प्रकाश नारायण के भाषण का अश, जून 25, 1975 देखे कीसिग्गस् कॉन्टेम्पेरी आर्किव्स, अक्टूबर 6-12, 1975 पृ0 27368

सरकार घबरा गयी । श्रीमती इन्दिरागॉधी ने यह समझ लिया अगर विपक्षी नेताओं को आन्दोलन का मौका दिया गया तो गुजरात एव बिहार की स्थिति की पुनरावृत्ति केन्द्र मे भी हो सकती है अत "हिटलर एव मुसोलिनी के पद चिन्हो का अनुसरण करते हुये, श्रीमती गॉधी ने बहुत ही खतरनाक निर्णय लिया । परन्तु उन्होंने यह नही सोचा की तानाशाही एक प्रकार की त्रासदी है एव प्रत्येक तानाशाह का बहुत ही घृणित अन्त होता है ।"[1]

गुजरात और बिहार आन्दोलन की सफलता के कारण विपक्ष के हौसले बुलन्द थे परन्तु इस बार उसने काग्रेस पार्टी की शक्ति एव प्रतिक्रिया की क्षमता का गलत अनुमान लगाया । वैसे श्री जय प्रकाश नारायण ने जनता को आगाह किया था कि "इसकी बहुत सम्भावना है कि कि भविष्य मे देश मे प्रजातन्त्र का नामोनिशान मिट जाए ।"[2] परन्तु उनकी यह धारणा थी कि "काग्रेस एव सरकार तुष्टीकरण की नीति अपनायेगी एव उनके खिलाफ कोई कड़ी कार्यवाई नही की जायेगी ।[3] उनके विश्वास का आधार गुजरात का सफल अनुभव था, परन्तु दूसरे ही दिन विपक्ष के इस विश्वास को, जबरजस्त धक्का लगा ।

26 जून 1975 को बिना मन्त्रिमण्डल की सलाह लिये, आन्तरिक आपातस्थिति की घोषणा करके श्रीमती इन्दिरा गॉधी ने भारत एव दूसरे अन्य प्रजातान्त्रिक देशो को चौका दिया । हमारे सविधान मे यह प्रावधान है कि "राष्ट्रपति को अपने कृत्यो का सम्पादन करनेमे सहायता एव मन्त्रणा के लिये एक मन्त्रिपरिषद होगी, जिसका प्रधान, प्रधानमन्त्री होगा । एव राष्ट्रपति ऐसी मन्त्रणा के अनुसार कार्य करेगा ।"[4] श्रीमती इदिरा गॉधी ने आपातकाल की घोषणा के सन्दर्भ मे सविधान के प्रावधानो को ध्यान मे नही रखा एव पूर्ण रुप से एक तानाशाह की भाति कार्य किया । 'आपातकाल घोषणा पत्र म राष्ट्रपति के हस्ताक्षर उस समय लिये गये जब मन्त्रिमण्डल के सदस्य गहरी नीद में सोये हुये थे ।'[5] 25 जून की रात मे बिना मन्त्रिमण्डल की बैठक एव सलाह के राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने श्रीमती इदिरा गॉधी के सलाह पर आपात काल घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर करके भारतीय सविधान के प्रावधानो के तहत कार्य नही किया । राष्ट्रपति ने बहुत ही सक्षेप मे घोषणा की कि "सविधान के अनुच्छेद 352(1) के द्वारा प्रदान की गयी शक्तियो का प्रयोग करते हुये, मै, भारत का राष्ट्रपति, फखरुद्दीन अली अहमद इस आशय की घोषणा करता हूँ कि 'आभ्यन्तरिक अशान्ति'[6] के कारण भारत की सुरक्षा खतरे मे है, अत आपातकाल की घोषणा की जाती है ।"[7]

राष्ट्रपति की अधिसूचना मे उन कारको एव परिस्थितियो का विस्तृत उल्लेख नही था जिनके कारण आपात स्थिति की घोषणा की गयी । यद्यपि बाद मे सरकार के कई दस्तावेज, वक्तव्य एव काग्रेसी नेताओं के स्पष्टीकरण सामने आये, जिन्होंने आपातस्थिति को न्यायोचित ठहराया । गृह-मन्त्रालय से प्रकाशित एक सरकारी दस्तावेज ने आपात स्थिति की घोषणा के कारणो पर प्रकाश डालते हुये कहा कि कुछ राजनीतिक दलो की गतिविधियो के कारण

---

1. कविता नारवेन पूर्वोक्त, पृ0 110
2. बी० एम० सिह पूर्वोक्त पृ० 12
3. होंस्ट हाटमैन पूर्वोक्त पृ0 232
4. भारतीय सविधान अनुच्छेद 74 (1)
5. कविता नारवेन पूर्वोक्त पृ0 110
6. सविधान (चौवालिसवा सशोधन) अधिनियम, 1978 की धारा 37 (क) द्वारा अनुच्छेद 352 मे खण्ड (1) में "आभ्यन्तरिक अशान्ति" के लिये शब्द "सशस्त्र विद्रोह" रखा गया है ।
7. देखे होंस्ट हार्टमैन पूर्वोक्त, पृ0 232

इसकी घोषणा की गयी ।[1] इस दस्तावेज मे गुजरात एव बिहार की घटनाओ का, 1974 की रेलवे हडताल एव 'जनता मोर्चो' एव श्री 'जय प्रकाश नारायण' के आन्दोलन का उल्लेख किया गया और कहा गया कि इसने भारत का एकता, अखण्डता एव आर्थिक स्थिति को खतरा पैदा हो गया था ।

श्रीमती इदिरा गॉधी ने आपातस्थिति को घोषणा को न्यायोचित बताते हुये कहाकि 'मुझे विश्वास है कि आप लोगो को उस गम्भीर षडयन्त्र का अन्दाजा होगा, जो उस समय से चलाया जा रहा है जब से मैने भारत की जनता के लिये कुछ प्रगतिशील आर्थिक उपायो की घोषणा की ।'[2] इस प्रकार श्रीमती इदिरा गॉधी एव सम्पूर्ण काग्रेस तन्त्र शब्दो के जाल मे फसा कर जनता को गुमराह कर रहा था, जिससे कि उनकी दमन कारी कार्यवाहियो का पर्दाफाश न हो । उन्होने कहा कि कुछ लोगो ने सेना एव पुलिस को विद्रोह करने के लिये भड़काया हमारी सेनाये एव पुलिस बल अत्यन्त अनुशासित है, अत इस भडकाने वाली कार्यवाही का उन पर कोई असर नही हुआ । यहाँ श्रीमती इदिरा गॉधी का सीधा सकेत श्री जय प्रकाश नारायण के ओर था । श्रीमती इदिरा गॉधी ने कहा कि इन विघटनकारी शक्तियो ने साम्प्रादायिकता एव हिसा फैला कर देश की एकता एव अखण्डता के लिये खतरा पैदा कर दिया था । अत हमारा प्रथम कर्तव्य है कि इन शक्तियो के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जाय ।

श्रीमती इदिरा गॉधी ने आश्वासन दिया कि इस नयी आपात स्थिति[3] की घोषणा किसी भी प्रकार कानून मे निष्ठा रखने वाले नागरिको के अधिकारो का हनन नही करेगी । उन्होने विश्वास व्यक्त किया 'आन्तरिक स्थिति मे शीघ्रातिशीघ्र सुधार होगा, जिससे हम जल्दी ही जल्दी इस आपातस्थिति से छुटकारा पा जायेगें ।'[4] 27 जून 1975 को श्रीमती इदिरा गॉधी ने अपने द्वितीय प्रसारण मे सरकार की कार्यवाही का उचित ठहराते हुये कहा कि 'एक हिसा एव घृणा का वातावरण पैदा हो गया है जिसके परिणाम स्वरुप केबीनेट स्तर के मन्त्री श्री ललित नारायण मिश्र की हत्या की गयी एव भारत के मुख्य न्यायधीश की हत्या का प्रयास किया गया । विपक्षी दलो ने 29 जून से राष्ट्र व्यापी बन्द, घेराव प्रदर्शन एव आन्दोलन का निर्णय लेकर सब प्रकार से केन्द्रीय सरकार को पगु बनाने का फैसला ले लिया था । हमे इसमे सन्देह नही होना चाहिये कि ऐसे कार्य नागरिक व्यवस्था के लिये गम्भीर खतरा उत्पन्न करेगे एव राष्ट्र की आर्थिक स्थिति चौपट कर देगे । इन्हे रोकना ही श्रेयस्कर था ।... ।'[5] इस सन्दर्भ हम ऐसा कदम उठाना चाहते थे कि जो स्थिति पर नियन्त्रण भी कर ले एव सविधान के ढॉचे के अन्तर्गत हो । आपात स्थिति की घोषणा ऐसा ही कदम था ।[6] श्रीमती इदिरा गॉधी ने श्री जय प्रकाश नारायण की स्थिति स्पष्ट करते हुये कहा कि उनका सम्बन्ध न तो महात्मा गॉधी से है और न ही गॉधी दर्शन से । इण्टर नेशनल फडेरेशन आफ कैथोलिक यूनिवर्सिटी की महासभा के 11 वे

---

1. 'ह्राई इमरजेन्सी', ग्रह मन्त्रालय का दस्तावेज, उद्धृत, होंस्टहार्टमैन, पूर्वोक्त, पृ0 232-233
2. देखे कीसिग्गस् कॉन्टेम्परेरी आर्किव्स, अक्टूबर 6-12, 1975 पृ0 27368
3. यद्यपि 3 दिसम्बर 1971 मे भारत-पाक युद्ध के दौरान घोषित की गयी आपात स्थिति लागू थी, परन्तु इससे सरकार की विपक्षी नेताओ को गिरफ्तार करने का कानूनी आधार नही प्राप्त था । अत इस बात की जरुरत थी कि तथाकथित 'आन्तरिक सुरक्षा' के खतरे से निपटने के लिये द्वितीय (आन्तरिक) आपातस्थिति की घोषणा की जाय ।
4. देखे, कीसिग्गस् कॉन्टेम्परेरी आर्किव्स अक्टूबर 6-12, 1975, पृ0 27368
5 वही
6 देश की उन राजनीतिक परिस्थितियो का विस्तृत विवरण जिसके कारण आपात स्थिति की घोषणा हुई, देखे, काग्रेस कार्यकारिणी समिति का प्रस्ताव, जुलाई 14, 1975, तथा प्रधान मन्त्री का 'सटरडे रिविव्यू' से साक्षात्कार, अगस्त 1, 1975

सत्र का उद्घाटन करते हुये, उन्होंने कहा कि 'हरिजन' पत्रिका मे महात्मा गॉधी द्वारा लिखे गये लेखो से स्पष्ट है कि वह (जय श्री जय प्रकाश नारायण) कभी भी उनके सच्चे अनुयायी नही थे।'[1]

निष्कर्ष

इस प्रकार बिहार एव गुजरात आन्दोलन एव गुजरात मे 'जनता मोर्चे' का गठन की भाति इलाहाबाद उच्च न्यायालय एव उच्चतम न्यायालय के निर्णयो ने भी 'जनता पार्टी' के निर्माण मे सकारात्मक भूमिका निभायी। इन घटनाक्रमो ने ऐसा वातावरण तैयार किया जिसमे राष्ट्रीय स्तर पर विपक्षी एकता की व्यापक चर्चा शुरु हो सके। न्यायालयो के निर्णयो से विपक्ष की काग्रेस के विरुद्ध सामूहिक अभियान मे एक प्रकार से न्यायिक वैधता प्राप्त हो गयी। विजय के उल्लास मे पॉच विरोधी दलो नेएक मोर्चा कायम किया और प्रधानमन्त्री से तुरन्त त्यागपत्र की मॉग को लेकर सत्याग्रह की एक योजना बनायी। इस व्यापक योजना के क्रियान्वित होने के पहले इसे आपातस्थिति की घोषण करके दबा दिया गया। अत विपक्षी एकता की जो आग आपात काल की घोषणा के पहले लगी थी, वह आपात काल के दौरान जेल मे एव जेल के बाहर भूमिगत आन्दोलन के रुप मे सुलगती रही।

यद्यपि उच्चतम न्यायालय के निर्णय बाद कानूनी एव सवैधानिक तौर पर भी श्रीमती इदिरा गॉधी प्रधानमन्त्री बनी रह सकती थी। किन्तु उस समय अत्यन्त व्यक्तिगत और राजनीतिक आशकाओ से आक्रात होकर दूसरे दिन आपातस्थिति की घोषणा करने का मूल कारण शायद यह था कि श्रीमती इदिरा गॉधी को एक ओर प्रबल जनमत से खतरा हो रहा था, तो दूसरी ओर अपनी पार्टी के सदस्यो से भी भयकर आशकाऍ थी। सविधान और राजनीति का इतिहास शायद यही कहेगा कि अविवेक का एक दिन न केवल 19 महीने के लिये देश के लिये अभिशाप सिद्ध हुआ बल्कि भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के लिये भी विनाश एव विश्रृखला के बीज बो गया।

---

1 दि हिन्दुस्तान टाइम्स, अगस्त 15, 1975 विस्तृत विवरण के लिये देखे, हरी किशोर ठाकुर महात्मा गॉधी, जे0 पी0 एण्ड स्टूडेन्टस्, आल इण्डिया काग्रेस कमेटी, नई दिल्ली, 1975

आपातस्थिति में रा॰ नी॰तिक संस्थायें

जब विपक्ष द्वारा आह्वान किया गया सत्याग्रह एव सम्पूर्ण क्रान्त्रि का रथ जून, 1975 की घटनाओं के कारण जडता के दुर्जेय गढो पर निर्णायक प्रहार करने की उद्यत हुआ, तब श्रीमती इदिरा गॉधी ने आपातस्थिति का सहारा लिया। व्यापक परिवर्तन एव विपक्षी एकता का बढा हुआ महत्वाकाक्षी रथ पुलिस-राज लागू करके रोक दिया गया। अब लडाई का तत्कालीन मुद्दा लोकतन्त्र की रक्षा बन गया, परन्तु साथ ही साथ विपक्षी एकता की प्रक्रिया अत्यन्त धीमी गति से चलती रही। आपातस्थिति मे व्यापक पैमाने पर विरोधी नेताओं की गिरफ्तारी हुई, प्रेस पर सेसर थोपा दिया गया, विरोध एव आलोचनाओं पर जबानबदी लागू हुई, न्यायालयों एव व्यवस्थापिका को पगु बना दिया गया एव सतही समर्थन का ढोग रचाकर, श्रीमती इदिरा गॉधी ने पारिवारिक तानाशाही कायम की।

इसी समय 'सजय गॉधी गुट' [1] के रुप मे एक नया गैर-सवैधानिक, निरकुश एवं गैर-जिम्मेदार सत्ता का केन्द्र उभर कर आया। श्री सजय गॉधी ने अपने जबरन नसबन्दी एव शहरी विकास एव सुन्दरीकरण कार्यक्रमो से जन मानस को अत्यन्त क्षुब्ध किया।

आपात काल की इन विषम परिस्थितियो मे भी विपक्ष जेल के अन्दर एकता वार्ताओं के एव जेल के बाहर 'भूमिगत आन्दोलन' के रुप मे लोकतन्त्र की रक्षा एव निरकुश काग्रेस के खिलाफ आन्दोलन चलाता रहा। आपतस्थिति के दौरान सरकार द्वारा विपक्ष पर किये गये अत्याचारो ने बॅटे हुए विपक्ष के लक्ष्यो मे एकता की तीव्र भावना उत्पन्न कर दी। राजनीतिक वातावरण के अलावा देश का सामाजिक वातावरण तथा जन समुदाय भी भयाक्रान्ता के सकट मे डूबा जा रहा था। नौकरी छूटने का भय, जेल-जाने का भय, कही कोई सुनवाई न होने का भय, तरह-तरह के सरकारी दमन का भय बगैरह। आपातस्थिति मे सरकार जिस प्रकार सामाजिक एव राजनीतिक सस्थाओं के प्रति व्यवहार कर रही थीं, उससे जन मानस अत्यन्त भयभीत था। अत सरकार के इस तानाशाही रवैये ने जनता मे काग्रेस (इन्दिरा) विरोधी लहर पैदा करके विपक्षी एकता को प्रोत्साहित किया।

आतंक का राज

जब तक लोकतन्त्र श्रीमती इन्दिरा गॉधी को गद्दी पर बनाये रख सका, तब तक उन्होंने लोकतन्त्र को बनाये रखा। जिस दिन लोकतन्त्र उन्हे प्रधानमन्त्री बनाये रखने मे नाकामयाब होने लगा, श्रीमती इदिरा गॉधी ने लोकतन्त्र को नाकामयाब कर दिया। इस स्थिति मे श्रीमती इदिरा गॉधी को सत्ता पर बनाये रख सकती थी तो सिर्फ एक शक्ति-- पुलिस। श्रीमती गॉधी ने पुलिस राज का ही फैसला किया। विपक्षी नेताओं को गिरफ्तार कर एव प्रेस सेसरशिप लागू कर उन्होंने महाआतक का राज्य चालू किया। "स्वतन्त्र भारत के नागरिकों ने इसका पहली बार अनुभव किया कि शक्तिशाली एव लोकप्रिय नेता कितने 'कमजोर' साबित हुए। उन्होंने देखा कि इतनी बडी घटना के बावजूद छुट पुट घटनाओ के आलावा बगावत जैसे कोई बात नही हुयी। सारा मुल्क आतक एव दहशत मे चुप हो गया। दमनकारी

---

1. इस गुट के प्रमुख व्यक्ति मे श्री सजय गॉधी के आलावा श्री बंसी लाल, श्री विद्याचरण शुक्ल एव श्री ओम मेहता थे।

पुलिस कार्यवाही सिलसिले बार ढग से चलती गई ।" [1]

'अपने हाथो मे शक्ति केन्द्रित करने के साथ-साथ श्रीमती इदिरा गॉधी ने बहुत से विभागो का विभाजन करके उनके महत्वपूर्ण हिस्से को अपने अधीन रखा । इसके लिये उन्होंने अर्द्ध सैनिक बल जैसी सस्थाओं —केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, रेलवे सुरक्षा बल, सीमा सुरक्षा बल, का सहारा लिया । अमरीका की सेन्ट्रल इन्टैलीजेंस एजेंसी एव रुस की के० जी० बी० के तौर तरीके पर स्थापित भारतीय जासूसी सस्था रिसर्च ऐण्ड एनालेसिस विग का उपयोग उन्होंने अपने सत्ता के केन्द्रीकरण के लिये किया ।' [2]

श्रीमती इदिरा गॉधी ने लोकतत्र का भ्रमोत्पादक तानाबाना बना रखा था । उन्होंने लोकतन्त्र की हत्या कर दी थी, पर लोकतात्रिक सस्थाओं के प्राणहीन ढॉचे से उन्हे मोह था । ससद थी और उसकी बैठकें होती थी; पर विरोधी नेता और सासद जेलो मे थे । विरोधी दल थे, पर उनको कार्य नही करने दिया जा रहा था । कार्यकर्ता बन्दी थे, पर नेताओं मे कुछ आपेक्षाकृत कम प्रभावी नेताओं को बराएनाम छोड रखा गया था । सविधान था, पर सशोधनों से उसे पगु बना दिया गया था । सर्वोच्च न्यायालय एव बाकी के न्यायालय थे, पर, न्यायाधीशो को जकडने की पूरी नाके बन्दी सविधान, कार्यपालिका व राजनीतिक स्तर पर की गई थी । अखबार थे, पर सेसर और एक तरफा खबरो का साम्राज्य था और देश के सामूहिक दिमाग की धुलाई-रगाई का बेहद जटिल कार्यक्रम चल रहा था । उन लोगों को हर प्रकार से प्रभावित किया जा रहा था, जो श्रीमती इदिरा गॉधी और श्री सजय गॉधी के खिलाफ थे या उनके लिये तालिया नही बजा रहे थे । "इसका एक ही अर्थ है वह यह कि श्रीमती इदिरा गॉधी तानाशाही को सस्थाबद्ध करेगी एव उसका सवैधानिकीकरण करेगी ।"[3]

विपक्षी नेताओ की वृहद पैमाने पर गिरफ्तारी आपातस्थिति की घोषणा के साथ ही श्रीमती इदिरा गॉधी का दूसरा महत्वपूर्ण कदम बड़े पेमाने पर विपक्षी नेताओं की गिरफ्तारी थी । इसके पहले कि 26 जून 1975 को देश आपातस्थिति के विषय मे जाने, 25 जून की रात को ही बहुत से महत्वपूर्ण विपक्षी नेता गिरफ्तार कर लिये गये । इसमें से अधिकतर 25 जून की 1-4 बजे रात्रि को वन्दी बनाये गये । श्री जय प्रकाश नारायण को 3 बजे रात्रि मे जगाकर गिरफ्तार किया गया । उन्होंने बाद मे यह रहस्योद्घाटन किया कि "इस गिरफ्तारी से मुझे बहुत बडा सदमा लगा । मै सोच भी नही सकता था कि श्रीमती इदिरा गॉधी इस हद तक जा सकती हैं ।" [4]

यद्यपि गिरफ्तार किये गये नेताओं के नाम सरकारी तौर पर नही लिये गये परन्तु गैर सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इन नेताओ मे 'सर्वश्री जय प्रकाश नारायण, श्री मोरार जी देसाई, श्री राजनारायण, असन्तुष्ट कांग्रेस सासद श्री चन्द्र शेखर एव श्री रामधन, भारतीय लोकदल के अध्यक्ष श्री चरणसिह, सी0पी0 आई0 (एम0) के नेता श्री ज्योति बसु, जनसघ के नेता श्री अटल बिहारी बाजपेई एव श्री लाल कृष्ण अडवानी, सोशलिस्ट पार्टी के श्री समर गुहा, सगठन

---

1 दीनानाथ मिश्र "एमरजेसी मे गुप्त क्रान्ति", आई0 बी0 सी0 प्रेस, दिल्ली, 1977, पृ0 15
2 कविता नारवेन पूर्वोक्त, पृ0 111
3 उद्धृत,, दीनानाथ मिश्र पूर्वोक्त, लेखक द्वारा आपातकाल के दौरान लिखा गया 'पोजीशन पेपर' "तानाशाह की अपराजेयता" ? पृ0 159
4. जे0ए0 नैयक "दि ग्रेट जनता रिवोल्यूशन", एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली 1977, पृष्ठ 13

काग्रेस के श्री अशोक मेहता, एव मदरलैण्ड अखबार के सम्पादक श्री के0 आर0 मलकानी थे ।'[1] इसके आलावा अन्य राजनीतिक दलो के महत्वपूर्ण नेता एव कुछ सगठनो जैसे-आनद मार्ग[2], राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ तथा जमात-ए-इस्लामी के सक्रिय सदस्यो को भी गिरफ्तार कर लिया गया । 'श्रीमती गॉधी को सबसे बड़ा खतरा राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ से था, क्योकि यह सगठन अपने सगठित ढॉचे एव अनुशासित सदस्यो के लिये प्रसिद्ध था ।'[3]

केन्द्र ने सभी राज्यो को यह निर्देश दिये कि सभी काग्रेस विरोधी लोगो के गिरफ्तार कर लिया जाए, चाहे वे जिस पार्टी, समुदाय या सगठन के हो । जिससे कोई काग्रेस की नीतियो के खिलाफ आवाज न उठा सके । इन गिरफ्तारियो का असर जन सामान्य पर भी हुआ, और उनमे एक दहशत सी फैल गयी । 'राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के सघ सचालक से लेकर जिला स्तर के सामान्य कार्यकर्ताओ को तथा उन सभी लोगो को गिरफ्तार किया गया जो किसी भी विपक्षी दल से सहानुभूति रखते थे । इन लोगो मे स्त्री, पुरुष, बूढे, कालेज के छात्र-छात्राओं, डाक्टर, अध्यापक, प्रोफेसर, वकील, व्यापारी, छोटे दुकानदार, राजसी परिवारो की महिलाये[4] तथा सभी वर्ग एव समुदाय के नागरिक शामिल थे । इन्हे बिना किसी भेद भाव के कैद कर लिया गया ।'[5]

सरकार ने अपने तानाशाही रवैये पर परदा डालने के लिये कुछ विपक्षी नेताओ का जानबूझकर छोड दिया । इसमे सोशलिस्ट पार्टी के श्री एन0 जी0 गोरे, श्री एस0एम0 जोशी, सगठन काग्रेस के श्री दिग्विजय नारायण सिह, जनसघ के श्री ओम प्रकाश त्यागी और लोक दल के श्री एच0 एम0 पटेल थे । इसके अलावा सरकार जिन लोगो को तमाम घेरे बन्दी के बावजूद नही पकड सकी, उनमे नाना जी देश मुख के अलावा श्री जार्ज फर्नाण्डीज, श्री कपूरी ठाकुर, श्री सुरेन्द्र मोहन, श्री मोहन धारिया, श्री जग प्रसाद माथुर, श्री सुब्रहमण्यम स्वामी, श्री केदार नाथ साहनी, श्री दत्तोपत ठेगडी जैसे कोई एक दर्जन नेता थे । प्रारम्भ मे सरकार ने गिरफ्तार किये गये लोगो के विषय मे कोई सूचना नही थी । परन्तु कुछ दिन बाद 'एक सरकारी प्रवक्ता श्री ए0 आर0 बार्जी ने बताया कि दिल्ली मे 90 लोगो को, मध्य प्रदेश मे 450 को, हरियाणा मे 24 को, राजस्थान मे 12 को, कर्नाटक मे 4 को एव उत्तर प्रदेश एव मध्य प्रदेश मे 2-2 लोगो को गिरफ्तार किया गया है ।'[6] प्रेस मे सेसरशिप होने के कारण गिरफ्तार लोगो के विषय मे सही-सही जानकारी नही मिल रही थी, परन्तु एक अनुमान के अनुसार आपातस्थिति की घोषणा के प्रथम सप्ताह 25,000 लोगो को आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम या मीसा[7] एव भारत रक्षा एव आन्तरिक सुरक्षा नियम के अन्तर्गत गिरफ्तार किया गया ।

---

1. देखे कीसिग्गस कॉन्टेम्परेरी आर्किव्स, अक्टूबर 6-12, 1975, पृ0 27368
2. आनन्द मार्ग ('शाश्वत स्वर्ग सुख का मार्ग')यह हठधर्मी हिन्दुओं का धार्मिक एवं राजनीतिक आन्दोलन है,जिसका मुख्यालय बिहार मे है । इस सस्था ने 1975 के बिहार के श्री जय प्रकाश आन्दोलन का समर्थन किया था,जबकि जय प्रकाश ने इस सस्था से अपने किसी प्रकार के सम्बन्ध होने से इन्कार किया था । अब यह सख्या लगभग मृत हो गयी है ।
3. कविता नारवेन पूर्वोक्त, पृ0 112-113
4. इन महिलाओ मे ग्वालियर की राज माता विजयराजे सिन्धिया एव जयपुर की महारानी गायत्री देवी थी,श्रीमती इदिरा गॉधी के कोप का शिकार हुई थी ।
5. कविता नारवेन पूर्वोक्त , पृ0 113
6. देखे,किसिग्गस कॉन्टेम्परेरी आर्किव्स, अक्टूबर 6-12, 1975, पृ0 27368
7. सविधान के अनुच्छेद 22 के भाग 4,5,6 के अन्तर्गत 'निवारक निरोध' का जो उल्लेख किया गया है,उसके अन्तर्गत ससद द्वारा सन् 1950 मे 'निवारक नजरबन्दी अधिनियम' पारित किया गया । समय समय पर इसकी अवधि बढायी जाती रही और यह अधिनियम 31 दिसम्बर 1969 तक चला । 7 मई 1971 को राष्ट्रपति ने 'आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अध्यादेश' जारी किया और

सरकार के इन कार्यो के देखकर यह कहा जा सकता है कि श्रीमती इदिरा गॉधी बोल्शिविक निकोलाई बुखारिन के कथन का अनुसरण कर रही थी । वह कहा करता था कि 'मै द्वि दलीय व्यवस्था पर विश्वास करता हूँ उनमे से एक सरकार है एव दूसरी जेल' ।

अतिवादी सगठनो मे प्रतिबन्ध श्रीमती इदिरा गॉधी ने अपनी सुरक्षा व्यवस्था और अधिक मजबूत करने के लिये देश के बहुत से राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक एवं धार्मिक सगठनो पर प्रतिबन्ध लगाना चाह रही थी । 4 जुलाई 1975 को तत्कालीन गृहमन्त्री श्री ब्रहमानद रेड्डी ने कहा कि राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ एव जमात-ए-इस्लामी बहुत दिनो से विभिन्न समुदायो के बीच द्वेष फैलाने का कार्य कर रहे है । इनका दर्शन एव दिन-प्रतिदिन के क्रियाकलाप साम्प्रदायिकता फेलाने के लिये जिम्मेदार है एव हमारे धर्म निरपेक्ष प्रजातन्त्र मे साम्प्रदायिक क्रियां कलापो के लिये कोई स्थान नही है ।"[1] उन्होने आनन्द मार्ग एव सी0 पी0 आई0 (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) सगठनो पर भी ऐसे ही आरोप लगाये और कहा कि "इन सगठनो मे आपस मे कुछ भी साम्य नही है और इनके कार्यो को वैधता के दृष्टिकोण से राजनीतिक नही कहा जा सकता है ।"[2]

4 जुलाई 1975 को भारतीय सुरक्षा अधिनियम 1971 के नियम 33 (1) के अन्तर्गत विभिन्न आदेशो द्वारा 26 सगठनो को अवैध घोषित करके उनके क्रियाकलापो पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया ।[3] गृह मन्त्री श्री ब्रहमानन्द रेड्डी ने कहा कि इन सगठनो के क्रिया कलापो से भारत की आन्तरिक सुरक्षा एव नागरिक व्यवस्था की खतरा उत्पन्न हो गया था । अत इन पर प्रतिबन्ध लगाना देश के हित मे है । इस घोषणा के बाद सारे देश मे इन प्रतिबन्धित सगठनो के मुख्यालयो मे छापे मारे गये एव आपत्तिजनक सामग्री को बरामद करके इन्हे सील कर दिया गया । 6 अगस्त की एक अलगाववादी सगठन 'मिजो नेशनल फ्रन्ट' को भी अवैध घोषित कर दियागया । इस प्रकार इन 27 संगठनो के हजारो कार्यकर्ताओ को सारे देश से गिरफ्तार किया गया ।

जून 1971 मे इस अध्यादेश ने कानून का रुप प्राप्त कर लिया । इस कानून को बोलचाल की भाषा मे 'मीसा' जाना जाता है । निवारक निरोध का उद्देश्य व्यक्ति को अपराध के लिये दण्ड देना नही वरन् उसे अपराध करने से रोकना है । इस कानून द्वारा किसी भी ऐसे व्यक्ति को नजरबन्द किया जा सकता है जो भारत की प्रतिरक्षा, सुरक्षा, समाज के लिये आवश्यक आपूर्ति एव सेवाओ की सुरक्षा के विरुद्ध कार्यवाही करता है । परन्तु 1975 मे इन्दिरा सरकार ने इसका प्रयोग अपने राजनीतिक लाभ के लिये किया । मीसा की इस व्यवस्था को आपात स्थिति के दौरान राष्ट्रपति द्वारा विविध अध्यादेश जारी कर और अधिक कठोरता प्रदान की गयी ।

1. देखे किसिंगस कॉन्टेम्परेरी आर्किव्स, अक्टूबर 6-12, 1975 पृ0 27370
2 वही
3 इन प्रतिबन्धित सगठनो के नाम है राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ, जमात-ए-इस्लामी-ए-हिन्द, आनन्द मार्ग, प्राउटिस्ट फोरस आफ इण्डिया, प्राउटिस्ट ब्लाक आफ इण्डिया, विश्व सक्रान्ति सेवा, सेवा धर्म मिशन, शैक्षिक सहायता एव कल्याण समुदाय, प्रगति शील भोजपुरी समाज, बघेलखण्ड समाज, यूनिवर्सल प्राउटिस्ट लेबर फडेरेशन, यूनिवर्सल प्राउटिस्ट स्टूडेन्ट्स फेडेरेशन, रिनेसॉ यूनिवर्सल क्लब, रिनेसा आटिस्ट्स एण्ड राइटर्स एसोशिएशन आनन्द मार्ग यूनिवर्सल रीलिफ टीम, सी0 पी0 आई- एम0 एल0 (चारु मजूमदार समूह-लिन प्यओ समर्थक गुट), सी0 पी0 आई0-एम0एल0 (चारु मजूमदार समूह-लिनप्यओ विरोधी गुट), सयुक्त साम्यवादी पार्टी (मार्क्सवादी लेनिनवादी, एस0एन0सिह,चन्द्र फुलवा रेड्डी समूह) सी0 पी0 आई-एम0एल0 (सुनीतिघोष शर्मा गुट), इस्टर्न इण्डिया जोनल कॉनसोलिडेशन कामेटी ऑफ कम्युनिस्ट पार्टी (कम्युनिम्ट-लेनिननिस्ट), माओइस्ट कम्युनिस्ट सेन्टर, मुक्ति युद्ध समूह, यूनिटी सेन्टर ऑफ कम्युनिस्ट, यूनिटी सेन्टर ऑफ कम्युनिस्टस, भारत के क्रान्तिकारी (मार्क्सवादी लेनिनवादी), सेन्टर ऑफ इण्डिया कम्युनिस्टम्

सरकार ने गिरफ्तार किये गये लोगो का कोई भी विस्तृत विवरण नही दिया । 23 अगस्त 1975 को सूचना एव प्रसारण मत्री श्री विद्या चरण शुक्ला ने बताया कि 'लगभग 10,000 लोगो को गिरफ्तार किया गया था जिसमे एक तिहाई लोगो को छोड दिया गया और इस समय 1000 से कम राजनीतिक बन्दी है ।'[1] 'अमरीकी सरकार के रक्षा विभाग, राष्ट्रीय सुरक्षा विभाग एव सेंट्रल इन्टैलीजेन्स एजन्सी द्वारा तैयार की गयी एक जॉच के अनुसार राजनीतिक बन्दियो की सख्या 6,000 है जबकि अन्य कारणो से गिरफ्तार किये गये लोगो की सख्या 14,000 है ।'[2] जबकि 'विपक्ष के प्रवक्ता का दावा था कि इनकी सख्या 50,000 से 60,000 है ।'[3]

इन गिरफ्तारियो ने देश के राजनीतिक वातावरण के साथ-साथ सामाजिक वातावरण को भी प्रभावित किया । कुछ ऐसे भी परिवार थे जिनके 5-6 वयस्क सदस्यो को गिरफ्तार कर लिया गया था । इन परिवारो मे केवल बच्चे ही बचे थे, जिनकी आर्थिक एव सामाजिक सुरक्षा की कोई भी व्यवस्था नही थी । इन्दिरा सरकार ने हजारो लोगो को बिना किसी न्यायिक प्रक्रिया के एव बिना आरोप पत्र प्रस्तुत किये अनिश्चित काल के लिये ज़ेल मे बन्द कर दिया । हजारो परिवार के सामने जीविको- पार्जन की समस्या आ पडी क्योंकि उनके परिवार के कमाने वाले सदस्य जेलो मे बन्द थे । सरकार के इन कार्यो का प्रभाव केवल पीडित परिवार पर ही नही पडा वरन् आस पडोस के सामान्य परिवारों मे भी असुरक्षा एव भय के बादल छा गये । वे इस बात से भयभीत थे कि यह स्थिति किसी भी समय उनके परिवार पर भी आ सकती है । उन्होंने सरकार की तानाशाही का विरोध तो नही किया परन्तु इन्दिरा सरकार विरोधी भावना उनके मन मे बैठ गयी । इन तानाशाही प्रक्रियाओ के खिलाफ जनता की प्रतिक्रिया उस समय हुई जब देश से आपातस्थिति उठा ली गयी और मार्च 1977 मे लोक सभा के चुनाव कराये गये ।

श्रीमती इदिरा गॉधी आपातस्थिति के दौरान यह दावे कर रही थी सरकार द्वारा उठाये जा रहे कदम प्रजातान्त्रिको मूल्यो की रक्षा के लिये है तथा इससे जनसाधारण की स्थिति मे सुधार हो रहा है । इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुय श्री जय प्रकाश ने अपनी बीमारी हालत मे जसलोक अस्पताल से कहा, "मै भारत एव विदेशो मे रह रहेमित्रो सूचना के लिये यह कह देना चाहता हूँ कि भारत की स्थिति आज भी वैसी ही है जैसी वह जून 1975 की थी अथवा जैसी वह जुलाई 1975 को थी, जिस दिन मैने प्रधानमत्री को पत्र लिखा था । सच तो यह है कि तब से जो अप्रिय घटनाये घटी है, उनमे मेरी आशका दृढ हो गयी है कि इन्दिरा जी तानाशाह है । मै इस बात को इस दृष्टि से स्पष्ट कर रहा हूँ कि मेरी मृत्यु हो जाने पर इस बात को कही तोड़ मरोड़ कर न प्रस्तुत किया जाय"[4] श्री जय प्रकाश नारायण को इन्दिरा सरकार ने इस स्थिति मे छोडा था कि शीघ्र ही उनकी मृत्यु हो जाये । उन्होंने स्वय इसका स्पष्टीकरण करते हुये कहा, "साढे चार महीने के जिस एकाकी कारावास से मुझे अभी हाल मे छोड़ा गया है, उसी अवधि मेरे गुर्दे एकदम खराब हो गये हैं ।"[5]

---

1 देखे, किसिग्गस कॉन्टेम्परेरी आर्किव्स अक्टूबर, 6-12, 1975, पृ0 27371

2 न्यूयार्क टाइम्स, अगस्त 10, 1975

3. देखे, किसिग्गस कॉन्टेम्परेरी आर्किव्स, अक्टूबर 6-12, 1975, पृ0 27371

4. जय प्रकाशनारायण द्वारा जस लोक अस्पताल से दिसम्बर 5, 1975, को दिया गया वक्तव्य, उद्धृत, दीनानाथ मिश्र, पूर्वोक्त, पृ0 129

5. वही

इन्दिरा सरकार द्वारा दमन एव अत्याचार का खेल एक दो महीने नही वरन् पूरे 19 महीने की आपात स्थिति के दौरान खेला गया । इसमे सत्ताधारी नेताओ, नोकरशाहो एव पुलिस ने शक्ति का अधिकतम् दुरुपयोग किया । शाह आयोग [1] ने अपनी जॉच की अन्तरिम रिपोर्ट मे कहा कि बहुत से लोगो का दण्ड सहिता प्रक्रिया की धारा 108 एव धारा 151 के अन्तर्गत् गिरफ्तार किया गया ऐसे लोगो को जब न्यायाधीश के सम्मुख पेश किया गया तो न्यायाधीशो ने या तो जमानत देने से इन्कार कर दिया, या फिर जमानत देने मे अत्यन्त विलम्ब किया । इसी बीच उन्हे 'मीसा' मे गिरफ्तार के आदेश दे दिये गये ।' [2]

किसी भी लोक कल्याणकारी राज्य की सबसे बडी आवश्यकता है, जनता को एक सवेदनशील प्रशासन प्रदान करना । शाह आयोग मे स्पष्ट किया कि आपातस्थिति के दौरान 'प्रशासन स्वतन्त्रता के मौलिक नियमो एव कानून की धाराओ का उल्लघन कर रहा था । अधिकारी वर्ग, अपने उच्च अधिकारियो की आज्ञा का पालन, बिना सोचे समझे एव अपने कार्यो के परिणामो के चिन्ता किये बगैर, कर रहे थे । इसमे समाज सर्वाधिकारवादी हो गया था ।' [3]

जन संचार-माध्यमों का दुरुपयोग

स्वतन्त्र एव निष्पक्ष प्रेस, लोकतन्त्र की एक अनिवार्य शर्त है, इससे एक स्वस्थ जनमत का निर्माण होता है । यह सरकार की नीतियो एव कार्यो पर नजर रखती है एव जनता को जागरुक बनाकर सरकार पर नियन्त्रण रखती है । कोई भी तानाशाह प्रेस की स्वतन्त्रता को बर्दाशत नही कर सकता क्योकि ऐसा करने से उसके सत्ता का चरित्र उभर कर आ जायेगा । वह जनता एव देश के हित का आधार लेकर जनसचार माध्यमो एव प्रेस पर पूर्ण नियत्रण करके उसे सरकारी प्रवक्ता (Mouth Piece) के रुप मे प्रयोग करता है, ऐसा उदाहरण हिटलर, मुसोलिनी एवं स्टालिन की सरकारो के सन्दर्भ मे देखा जा सकता है ।

अत समकालीन इतिहास पर नजर डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि तानाशाह के दमन का पहला शिकार सामान्यत जन सचार माध्यमो को और विशेष रुप से समाचार पत्रो को बनाया जाता है, इन्दिरा सरकार ने आपातस्थिति के घोषणा के बाद प्रेस सेसरशिप की घोषणा कर दी । 26 जून 1975 को केन्द्रीय सरकार ने भारत रक्षा और आन्तरिक सुरक्षा नियम की धारा 48 के आधीन समाचारो टिप्पणियो अथवा आदेश मे निर्दिष्ट अन्य रिपोर्ट के प्रकाशन पर भारत की रक्षा एव लोक सुरक्षा और लोक व्यवस्था बनाए रखने के लिये पूर्व सैसरशिप लगाने के आदेश जारी किये । समाचार पत्रो को यह आदेश दिया गया कि वें ऐसे लेख न छापे जिससे भारत एव विदेशी शक्तियो के सम्बन्ध मे असर पडता हो तथा प्रधानमन्त्री, सशस्त्र सेनाओ, नौकरशाही एव सरकार की प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचता हो । 'आपातस्थिति की घोषणा के तुरन्त बाद समाचार पत्रो के लिये दो दिन तक बिजली के सप्लाई बन्द कर दी गयी जिससे

---

1. जनता सरकार के 'गृह मन्त्रालय' ने 28 मई 1977 को एक जॉच आयोग श्री जे0 सी0 शाह, भारत के मुख्य न्यायाधीश, सेवा निवृत्त, की अध्यक्षता मे, आपातस्थिति के दौरान इन्दिरा सरकार द्वारा की गयी ज्यादतियों की जॉच के लिये, नियुक्त किया । इस आयोग ने आपातस्थिति के दोरान सरकार के क्रियाकलापो का विस्तृत अध्ययन कर के बाद अपने तीन अन्तरिम प्रतिवेदन क्रमश मार्च 1978, अप्रेल 1978 एव जुलाई 1978 को प्रस्तुत किया ।
2. शाह जाच आयोग की रिपोर्ट उद्दृत, आचार्य जे0 बी0 कृपलानी "दि नाइट मेयर ऐण्ड आफ्टर", पापुलर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई, 1980, पृ0 37
3. वही-पृ0 38

26 27 जून का समाचार पत्र प्रकाशित नही हो सके ।'[1] 28 जून को पुन 'दि स्टेटसमैन' एव 'दि मदर लैण्ड' जो कि जनसघ का समाचार पत्र था, का प्रकाशन बन्द करके, उसके सम्पादक श्री के0 आर0 मलकानी को गिरफ्तार कर लिया गया । इस अखबार ने प्रेस सैसरशिप नियमो को मानने से इन्कार कर दिया था तथ 26 जून 1975 को सुबह का संस्करण प्रकाशित कर दिया । इसके प्रथम पृष्ठ की मुख्य खबर की पंक्तिया थी 'विपक्ष पर मध्यरात्रि का कहर' (मिड नाइट स्वूप आन अपोजीशन), इसमे 25 जून का श्री जय प्रकाश का भाषण एव गिरफ्तार किये मुख्य-मुख्य नेताओं ने नाम और चित्र प्रकाशित किये गये । इसने सरकार के तानाशाही रवैये पर भी टिप्पणिया की थी । इसलिये इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया ।

28 जून 1975 को श्री इन्द्र कुमार गुजराल के स्थान पर श्री विद्याचरण शुक्ल को सूचना एव प्रसारण राज्य मन्त्री (मन्त्रालय का स्वतन्त्र कार्यभार) बनाया गया श्री शुक्ल स्वतन्त्र एव निष्पक्ष जन सचार-माध्यमो के दुरुपयोग करने मे इदिरा सरकार के सच्चे एव वफादार प्रचार मन्त्री साबित हुए । 2 जुलाई को श्री शुक्ल ने यह घोषणा की कि 'सरकार की कार्यवाहिया अपरिवर्तनीय है, तथा अन्य लोगो की तरह प्रेस को भी इन कार्यवाहियो के साथ अपना समायोजन करना चाहिये ।[1] श्री शुक्ल के इस कथन से यह सिद्ध होता है कि निष्पक्ष एव स्वतन्त्र प्रेस के अस्तित्व पर चोट की गयी थी एव इसे सरकार की नीतियो का समर्थन करने के लिये मजबूर किया गया था । सरकार जन संचार माध्यमो पर नियन्त्रण करके लोगो को विपक्षी नेताओ के कार्यक्रमो, नीतियो एव विचारो से एकदम काट देना चाहती थी । परन्तु जनता पर इसका प्रतिकूल असर हुआ । भूमिगत आन्दोलन एव भूमिगत साहित्य द्वारा जनता विपक्ष की भावी रणनीतियो एव सरकार की काली करतूतो से जुडी रही । इन्दिरा सरकार चाहती थी कि केवल सरकारी समाचार अखबारो मे छपे, उसके लिये वह सभी समाचार के स्त्रोतो पर नियन्त्रण चाहती थी । सरकार ने चार समाचार एजेन्सियो—प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, दि यूनाइटेड न्यूज आफ इण्डिया, समाचार भारती एवं हिन्दुस्तान समाचार, को एक मे विलीन करके 'समाचार' एजेन्सी का नाम दे दिया । 'इससे सभी समाचार स्त्रोत इन्दिरा सरकार के नियन्त्रण मे आ गये एव यह सम्भव हो सका कि इसमे 'प्रतिबद्ध समाचार' ही छपे ।'[2]

समाचार पत्रो पर दमनकारी कानूनो के जरिये हमला बोला गया । कई सवैधानिक कानून जल्दी से पास कराये गये, जिससे देश मे समाचार पत्रो की स्वाधीनता बिल्कुल समाप्त हो गयी । 8 दिसम्बर को केन्द्रीय सरकार मे तीन अध्यादेश जारी किये जो बाद मे कानून बन गये इसमे 'प्रिवेशन आफ पब्लिकेशन आफ आब्जेक्शनेबिल मैटर्स एक्ट' 1975 पास करके समाचार पत्रो पर, ब्रिटिश राज्य से भी कडे प्रतिबन्ध लगाये गये । इस कानून को सविधान की नवीं सूची मे सम्मिलित करके इसे न्यायिक जॉच-पडताल के क्षेत्र मे बाहर कर दिया । एक अन्य कानून 'प्रेस कौसिल (रिपील) एकट' 1975 बनाकर प्रेस कौसिल समाप्त कर दी गयी । ससदीय कार्यवाही की प्रकाशित करने के सम्बन्ध मे समाचार पत्रो को जो स्वाधीनता प्राप्त थी उसे 'रिपीलिग आफ दि पालियामेन्टरी प्रीसिडिग्स (प्रोटेक्शन ऑफ पब्लिकेशन) एक्ट आफ 1976, के कानून के जरिये खत्म कर दिया गया ।

1 अगस्त 1977 को जनता सरकार के सूचना एव प्रसारण मन्त्री श्री लाल कृष्ण आडवानी ने ससद में आन्तरिक

---

1. देखे, किसिग्गस कन्टेम्परेरी आर्किव्स, अक्टूबर 6-12, 1975, पृ0 27369
2. कविता नारवेन पूर्वोक्त, पृ0 116

आपातस्थिति के दौरान जनसचार माध्यमो के दुरुपयोग के बारे मे श्वेत पत्र पेश किया । यह श्वेत- पत्र के0 के0 दास आयोग की रिपोर्ट पर आधारित था । इस पत्र मे कहा गया कि श्री विद्याचरण शुक्ल को सूचना एव प्रसारण मत्री नियुक्त किये जाने के बाद आपातस्थिति की तथाकथित अच्छाइयो और आर्थिक लाभो का गुणगान एव प्रदर्शन करने का उत्तेजक प्रयास किया गया । श्रीमती इदिरा गॉधी को 19 महीने के दौरान उनके सूचना एव प्रसारण मन्त्री द्वारा आपातस्थिति की क्रूर आवश्यकताओ व उनकी और उनके पुत्र की प्रतिष्ठा स्थापित करने की जरुरत के अनुरुप जनसचार माध्यमो की झुकाने की दिशा मे उठाये गये कदमो की न केवल जानकारी थी, वरन् तत्सम्बन्धी नीतियो के निर्धारण भी उनका हाथ था । प्रचार माध्यमो के सम्बध मे नीति निर्धारण की जुलाई 1975 मे हुई इस बैठक मे श्रीमती इदिरा गॉधी उपस्थित थी । प्रेस कौसिल का अस्तित्व खत्म करने और समाचार की एजेन्सियो को एक ही एजेन्सी मे विलीन करने इत्यादि के सम्बध मे प्रस्ताव भी इस बैठक मे पास किये गये ।' [1]

आकाशवाणी संहिता "फिल्म डिवीजन का इस्तेमाल ऐसे वृत-चित्र और न्यूजरील बनाने के लिये किया गया जिसमे आपातकाल की उपलब्धियो और फायदो को मुख्य रुप से दर्शाया गया था और जिनका उद्देश्य आम तौर पर काग्रेस पार्टी और खासतोर पर श्रीमती इन्दिरा गॉधी की छवि को उभारना था ।" [2] इस प्रकार काग्रेस सरकार आकाशवाणी का प्रयोग भी अपने दलीय हित मे कर रही थी । "आपातस्थिति की घोषणा के तुरन्त बाद प्रमुख राजनीतिक नेताओ की गिरफ्तारी के समाचार को आकाशवाणी एव दूरदर्शन से प्रसारित नही किया गया । दूरदर्शन ने श्री सजय गॉधी को राष्ट्रीय नेता चित्रित करने के लिये मार्ग से हटकर कार्य किया । युवक काग्रेस को समाचारो, रुपको और नाटक, गीतो आदि जैसे अन्य कार्यक्रमो मे प्रमुखता दी गयी ।"[3] प्रचार माध्यम के रुप मे दूरदर्शन एव आकाशवाणी पर दबाव डालकर श्रीमती इदिरा गॉधी एव श्री सजय गॉधी के व्यक्तित्व को उभारने एवं विपक्ष को जनता की निगाह मे गिराने के अनेक प्रयत्न किये गये ।

आपातकाल के दौरान युवक काग्रेस के ब्लाक अध्यक्षो के हुए सम्मेलन के बारे मे विशेष न्यूजरील बनाई गयी थी । फिल्म डिवीजन ने श्री सजय गॉधी की तिरुपति यात्रा की भी न्यूजरील बनायी थी । जिन फिल्म निर्माताओ ने राजनीतिक टीका टिप्पणी की उन्हे आपातस्थिति की कठिनाइयो का सामना करना पडा 'आधी' फिल्म, जिसकी नायिका को एक महत्वाकाक्षी महिला को रुप मे प्रस्तुत किया था, पर रोक लगा दी गयी बाद मे सशोधित रुप से इसे देखने की अनुमति दी गयी । 'किस्सा कुर्सी का' फिल्म पर पहले प्रतिबन्ध लगाया गया बाद मे इसे जब्त कर लिया । आकाशवाणी, दूरदर्शन एव फिल्म के साथ ऐसा दुर्व्यवहार केवल काग्रेस पार्टी को छवि निखारने के लिये हुआ । भारतीय सिनेमा एव दूरदर्शन से हमारा जन समुदाय काफी जुडा हुआ है अत इनकी नीतियो मे परिवर्तन का प्रभाव जन साधरण के मस्तिष्क पर पडता कि सरकार वास्तव मे क्या चाह रही है ? 'आपातस्थिति एवं 20 सूत्री तथा श्री सजय गॉधी के पॉच सूत्री कार्यक्रमो के गुणगान करने के लिये सभी सचार माध्यमो ने तेजी से अभियान चलाए । केवल इसी प्रचार पर लगभग 2.98 करोड़ रु0 खर्च हुआ । यह समन्वित प्रचार कार्यक्रमो पर खर्च हुये 62 लाख रुपये

---

1. दि इण्डियन एक्सप्रेस, अगस्त 2, 1977
2. देखे जनता के समक्ष रिपोर्ट (1) पुस्तिका, "जन सचार माध्यमो के साथ बलात्कार", पूर्वोक्त, पृ0 5
3. वही, पृ0 5-6

के अलावा है ।"[1]

विदेशी संवाददताओ के प्रति व्यवहार इदिरा सरकार यह महसूस कर रही थी अगर भारत मे मौजूद विदेशी सवादताओ को स्वतन्त्रता दी गयी तो वे आपातस्थिति का सही मूल्याकन अपने विदेशी समाचार पत्रो मे करेगे । इससे सम्पूर्ण विश्व एव वहाँ बसे भारतीय लोग भारतीय सत्ता, के चरित्र से अवगत हो जायेगे तथा भूमिगत साहित्य द्वारा यह खबरे भारतीय जनमानस तक पहुँच जायेगी । यह स्थिति सरकार के लिये भयावह होगी । अत '28 जून 1975 को श्री विद्याचरण शुक्ल ने घोषणा की कि यदि विदेशी सवाददाता अपनी विज्ञप्तियो और अभिलेखो को सरकार के नियमो के अनुसार प्रतिबन्धित नही करेगे तो उन्हे देश से निष्कासित कर दिया जायेगा ।'[2] इसी सदर्भ मे 'दि वाशिगटन पोस्ट' के सवाददाता श्री लेविस एम0 साइमन को 30 जून का निष्कासित कर दिया गया तथा 'दि फाइनेन्शियल टाइम्स' के सवाददाता को 14 जुलाई को भारत प्रवेश मे रोक लगा दी । 23 जुलाई को ब्रिटिश ब्रोडकास्ट कारपोरेशन ने दिल्ली से अपने सवाददाता मार्क टली को वापस बुला लिया तथा 12 अगस्त की यू0 एस0 इन्फार्मेशन एजेन्सी ने यह घोषणा की कि वह अपने 'वाइस आफ अमेरिका' के सवादाता को वापस बुला लेगी क्योंकि उसे भारत सरकार द्वारा लागू किये गये प्रेस के 'कठोर नियम' मजूर नही । भारत सरकार की इन कार्यवाही की विदेशी प्रेस ने जमकर आलोचना की । 'न्यूयार्क टाइम्स' ने अपनी टिप्पणी मे कहा कि, कुछ समय के लिये भारत से लोकतन्त्र का अन्त हो गया । ..आज सभी व्यावहारिक प्रयोजनो से श्रीमती इदिरा गाँधी भारत की तानाशाह है । ..यदि प्रधानमन्त्री और उनकी पार्टी यह दावा करती है कि इन्हे पूर्ण बहुमत प्राप्त है, तो क्या वह विपक्ष के सविनय अवज्ञा आन्दोलन का मुकाबला बिना दमन कारी उपायो के नही कर सकती थी ?'[3] अत यह बात निर्विवाद रुप से कही जा सकती है कि श्रीमती इदिरा गाँधी की सरकार ने जनसचार-माध्यमो का प्रयोग हिटलर की भाँति अपनी एव अपनी पार्टी को छवि बिखरने के लिये किया । इसका एक नकारात्मक प्रभाव भी जनता पर पड़ा कि वह यह जान गयी कि इन्दिरा सरकार की यह छवि इसकी वास्तविक छवि नही है, इस 'कारक एव विचार' ने जनता के मन काग्रेस विरोधी बीज बो दिये ।

संसद, संविधान एवं न्यायपालिका की स्थिति

आपातस्थिति की घोषणा के साथ ही देश की मूल सवैधानिक जीवन को लकवा मार गया । 27 जून 1975 की राष्ट्रपति ने सविधान के अनुच्छेद 359 (1) के अनुसार यह घोषणा की कि जिन लोगो को आपातस्थिति एव अतर्गत गिरफ्तार किया गया है वे अनुच्छेद 14, 21 एव 22 के अतर्गत प्राप्त अधिकार के प्रवर्तन के लिये न्यायालय मे अपील नही कर सकते । ये प्रक्रियाये तो सविधान के अतर्गत थी, अत इनकी औचित्यता पर प्रश्न नही उठाया जा सकता । परन्तु जब पूरा विपक्ष जेलो मे बन्द था, उस समय बिना किसी वाद-विवाद के संविधान मे ऐसे सशोधन किय गये एव इसके द्वारा ऐसे कानून पारित किये गये जिनसे श्रीमती इन्दिरा गाँधी एवं उनकी सरकार के कुकृत्यो को औचित्यता प्राप्त हो सके ।

---

1 वही पृ0 10
2. देखे किसिंगस कॉन्टेम्परेरी आर्किव्स, 6-12, अक्टूबर 1975 पृ0 27369
3. उद्धृत, कविता नारवेन पूर्वोक्त, पृ0 115

जिससे काग्रेस पार्टी एव सरकार को मजबूत बनाया जा सके । "इस अनाचार को सम्मानित तथा प्रतिष्ठित करनेके लिय सविधान की आड़ ली गयी । सविधान बनाने वाले मनीषियो ने जिन आस्थाओ की धरोधर जनता को सौपी थी उनका गबन किया गया । इन सशोधन द्वारा सविधान के उन मूलाधारो को खोखला कर डाला गया जिसका न्यास 1950 मे हुआ था ।"[1]

अडतीसवॉ सवैधानिक संशोधन[2] (जुलाई 1975) . इस सवैधानिक सशोधन द्वारा राष्ट्रपति, राज्यपालो और उप राज्यपालो द्वारा उद्घोषित आपातकालीन स्थिति वाले अध्यादेश को न्यायालयो के सुनवाई के क्षेत्राधिकार से अलग कर दिया गया; अर्थात इन विषयो पर न्यायालयो को विचार करने का अधिकार नही है । इस सवैधानिक सशोधन द्वारा मुख्य रुप से सविधान के अनुच्छेद 123, 352, 356, 359, और 360 को सशोधित किया गया ।

सविधान के अनुच्छेद 123 के अतर्गत ससद के विश्राम काल मे राष्ट्रपति के द्वारा जो आदेश जारी किये जाते हे, इस सवैधानिक सशोधन के अनुसार उनकी जॉच करने का अधिकार भी न्यायालय को नही होगा । इस सम्बन्ध मे राष्ट्रपति का समाधान हो जाना ही अध्यादेश जारी करने के लिये पर्याप्त है और न्यायालय इस बात की जॉच नही कर सकेगा कि तुरन्त कार्यवाही करने के लिये बाध्य करने वाली परिस्थितियॉ विद्यमान थी अथवा नही । इस प्रकार राज्यपाल और केन्द्र शासित क्षेत्रो मे प्रशासन द्वारा अध्यादेश जारी करने की शक्तियो की जॉच भी न्यायालयो मे नही हो सकती ।

इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 356 मे एक पॉचवे उपखण्ड को जोडकर इस अनुच्छेद मे सशोधन किया गया । सशोधन का आशय यह था, कि शासन मे इसके कुछ विपरीत होने पर भी यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाय कि राज्य या राज्यो मे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है, जिसमे राज्य का शासन इन सविधान के उपबन्धो के अनुसार नही चलाया जा सकता, तो वह सम्बन्धित राज्य के विषय मे सकटकाल की घोषणा कर सकेगा । ऐसी स्थिति मे राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा जो कार्य करेगा, उनके बारे मे कोई मुकदमा अदालत मे नही लाया जा सकेगा ।

उन्तालीसवॉ सवैधानिक सशोधन[3] (अगस्त 1975) : इस सवैधानिक सशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति लोकसभा अध्यक्ष और प्रधानमन्त्री, इन चार पदाधिकारियो के निर्वाचन को उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय मे चुनौती नही दी जा सकेगी । इस संशोधन मे यह व्यवस्था की गयी कि इन चार उच्च पदाधिकारियो के चुनाव विवादो की सुनवाई के लिये ससद के द्वारा एक नवीन समिति का गठन किया जायेगा । औरससद द्वारा इस सम्बन्ध मे किये गये व्यवस्थापन को किसी न्यायालय मे चुनौती नही दी जा सकेगी ।इस सवैधानिक सशोधन द्वारा सविधान की नवी अनुसूची को भी सशोधित किया गया । इस अनुसूची को सशोधित करते हुये उसमे 1951 के जनप्रतिनिधित्व अधिनियम (1974और 1975 मे किये गये सशोधनों सहित) और अन्य चुनाव कानूनो, आतंरिक

---

1 जनता पार्टी चुनाव घोषणा पत्र 1977", प्रकाशन नई दिल्ली, पृ0 5

2. जनता सरकार मे 44वे सवैधानिक सशोधन (1979) द्वारा जो व्यवस्थाएँ की गयी है, उसके कारण 38वॉ सवैधानिक सशोधन समाप्त हो गया है ।

3. 44वे सवैधानिक सशोधन (1979) द्वारा जो व्यवस्थायें की गयी है, उनके कारण 38वॉ सवैधानिक सशोधन और 39 वे सशोधन द्वारा चार पदाधिकारियो के चुनाव विवादा की सुनवाई के सम्बन्ध में की गयी व्यवस्था समाप्त हो गयी ।

जनसचार माध्यमो मे तो प्रतिबन्ध लगा था परन्तु विदेशो मे 39वे सविधान सशोधन सहित इन सशोधन को तीव्र भर्त्सना हुयी । विदेशी प्रेस ने इस विधेयक को 'इन्दिरा दोष मुक्ति विधेयक' की सज्ञा दी ।'[1] विदेशी पत्रकारो ने अपने पत्रो पर टिप्पणिया की कि 'जब-जब श्रीमती इन्दिरा गॉधी ने कानून भग किया, तब तब कानून ने सशोधन किया गया ।'[2] श्रीमती इदिरा गॉधी एव उनके कानून मन्त्री श्री एच0 आर0 गोखले इस तथ्य को भली प्रकार जानते थे कि आपातस्थिति एव कटकविहीन ससद के होते हुये, वे अपने निहित स्वार्थो के अनुसार सविधान मे सशोधन करके उसे एक नया रुप प्रदान कर सकते है ।

42वाँ संविधान संशोधन

1975 मे आपातस्थिति के दौरान श्रीमती इदिरा गॉधी एव शासक दल के एक वर्ग द्वारा इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया । कि देश की सामाजिक आर्थिक प्रगति के लिये सविधान मे व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है । तत्कालीन कानून मन्त्री श्री एच0 आर0 गोखले ने सशोधन पर हुई बहस पर एक प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा कि 'कानून समय (वर्तमान) से एक पीढी पीछे है, वकील दो पीढ़ी पीछे है, और जज तीन पीढी पीछे है ।'[3] इस प्रकार 'प्रगतिशील विधायन' (Progressive Legislation) के नाम पर इस सशोधन द्वारा सबसे बडा कुठाराघात न्यायपालिका की शक्तियो पर किया गया ।

ससद की सर्वोच्चता स्थापित करने के आवरण मे यह काम और भी आसान हो गया । यह तर्क दिया गया कि ससद देश की प्रतिनिधि सस्था है तथा इसे सर्वोच्चता प्रदान करके देश के नागरिक को सर्वोच्चता प्रदान की गयी है । 42वे सविधान सशोधन मे कुल 59 सशोधन किये । परन्तु यहाँ केवल उन्ही सशोधनो की विवेचना की जायेगी, जिसके द्वारा श्रीमती इदिरा गॉधी एव काग्रेस दल की शक्ति मे वृद्धि हुई तथा अप्रत्यक्ष रुप से विपक्ष एव विपक्षी दलो को पगु बना दिया गया । सरकार के इस षडयत्र को बुद्धिजीवियो एव जन साधारण ने भी भॉप लिया था परन्तु अपने स्वय के अधिकारो मे कटौती एव सरकार के तानाशाही रवैये के कारण वे मौन थे । इन सशोधनो मे कुछ सशोधन निम्न प्रकार है

मौलिक अधिकारो का हनन[4] इसके द्वारा ससद को राष्ट्र विरोधी गतिविधियो पर नियन्त्रण या रोक लगाने का अधिकार दिया गया, चाहे उससे मौलिक अधिकार सीमित होते हो । इसके द्वारा मौलिक अधिकारो की तुलना मे नीति निर्देशक तत्वो को प्रमुखता प्रदान की गयी । इससे यह कहा गया कि कि नीति निर्देशक सिद्धान्तो को लागू करनेके लिये ससद जिन किन्ही कानूनो का निर्माण करे, उन्हे इस आधार पर चुनौती नही दी जा सकेगी कि ये कानून सविधान मे दिये गये किसी मौलिक अधिकार को समिति या समाप्त करते है ।[5] मौलिक अधिकारों को समिति करके, राज्य की शक्ति एव स्वच्छन्दता को बढाया गया था दूसरे शब्दों मे 'न्यायपालिका, विधायिका के स्थान पर कार्यपालिका की शक्ति बढा दी गई । जिसका अर्थ था प्रधानमत्री की शक्ति को बढ़ाना । इस प्रकार चारो ओर से

1. उद्धृत, कविता नारवेन पूर्वोक्त, पृ0 102
2. वही
3. वही; पृ0 103
4. मौलिक अधिकारो हनन करने वाली व्यवस्थाओ को 43वे और 44वे सशोधन द्वारा समाप्त कर दिया गया ।
5. इस व्यवस्था को 'मिनर्वा मिल्स विवाद (1980) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवैध घोषित कर दिया गया ।

प्रधानमत्री ने शक्ति बटोर ली ।'[1]

राष्ट्रपति की स्थिति राष्ट्रपति केवल एक औपचारिक प्रधान है, इस बात को स्पष्ट करते हुए सविधान मे उल्लेख किया गया है कि 'राष्ट्रपति अपने कार्यो के सम्पादन मे मन्त्रिपरिषद से प्राप्त परामर्श के आधार पर कार्य करेगा ।' इसके साथ राष्ट्रपति को कुछ महत्वपूर्ण कार्य भी सौपे गये । जैसे ससद सदस्यो के चुनाव सम्बन्धी विवादो के सन्दर्भ मे योग्यता एव अयोग्यता का निर्णय राष्ट्रपति चुनाव आयोग की परामर्श से करेगा । भारत का राष्ट्रपति जो ससद एव राज्यो के विधान मण्डलो के निर्वाचित सदस्यो द्वारा चुना जाता है, वास्तव मे बहुमत दल द्वारा निर्देशित होता है, इसलिये उसका निर्ण/ एक 'राजनीतिक निर्णय' होगा । 'अत राष्ट्रपति की शक्ति को बढाने के आवरण मे सरकार और अन्ततोगत्वा प्रधानमत्री की शक्ति को बढ़ाया गया ।'[2] क्योंकि राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद की सलाह से ही कार्य करेगा तथा आपात स्थिति मे प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गॉधी ने मन्त्रिपरिषद को भी नपुसक बनाकर सम्पूर्ण शक्तिया स्वय मे केंद्रीत कर ली थी ।

ससद की सर्वोच्चता • 42वे सवैधानिक सशोधन का एक प्रमुख उद्देश्य 'ससद की सर्वोच्चता' स्थापित करना बतलाया गया । अत यह व्यवस्था की गयी कि, 'ससद द्वारा सविधान मे किये गये किसी भी सशोधन को (जिसमे सविधान का भाग 3 भी शामिल है), इसके अतिरिक्त अन्य किसी आधार पर न्यायालय मे चुनौती नही दी जा सकेगी कि इसमे अनुच्छेद 368 द्वारा बतलायी गई प्रक्रिया को नही अपनाया गया है ।' सविधान सभा के राजनीतिक पण्डितो न यह व्यवस्था स्पष्ट रुप से की है कि भारत म सविधान सर्वोच्च है, तथा कार्यपालिका विधायिका एव न्यायपालिका के मध्य एक समन्वय एव सन्तुलन स्थापित हो । कि ससद की सर्वोच्चता का तात्पर्य यह है कि ससद मे बहुमत प्राप्त दल की मनमानी एव बहुमत दल कैसा भी सशोधन कर सकता है । यह सम्भावना उस समय और बढ जाती है जब बहुमत दल अपने निहित स्वार्थी से प्रेरित होकर सविधान सशोधन कर रहा हो और ससद से विपक्ष गायब हो जैसा कि आपातस्थिति के दौरान हुआ । संसद और राज्य के विधान सभाओं का कार्यकाल 5 के स्थान पर 6 वर्ष कर दिया गया । • इसका अर्थ यह हुआ कि राजनीतिक प्रकिया में जनता की हिस्सेदारी कम करना ।

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयो की शक्ति मे कमी • 42व सविधान सशोधन का मुख्य लक्ष्य न्यायपालिका के अधिकारो मे कटौती थी । यह कार्य ससद की सर्वोच्चता स्थापित करने के आवरण में बहुत ही घातक तरीके से किया गया । श्रीमती इदिरा गॉधी को अपने चुनाव विवाद मे न्यायपालिका की शक्तियो के कारण बहुत अपमान सहना पडा था । अत उन्होने उच्च न्यायालय एव सर्वोच्च न्यायालय से इन शक्तियो को लेकर उन्हे राष्ट्रपति को दे दिया था ।

(• ताराकित व्यवस्था को 43वे एवं 44वे सवैधानिक संशोधन द्वारा समाप्त कर दिया गया)

---

1. डा० युगेश्वर "आपाताकाल का धूमकेतु राजनारायण" हिन्दी प्रचारक सस्थान, विशाचमोचन, वाराणसी, 1970 पृ० 197
2. कविता नारवेन पूर्वोक्त, पृ० 107

इसके आलावा इस सवैधानिक सशोधन द्वारा कई रुपो मे सर्वोच्च न्यायातय एव उच्च न्यायालयो की शक्ति मे कमी की गयी । **प्रथम**, इस सशोधन के अनुसार देश का कोई भी न्यायालय सवैधानिक सशोधन की वैधता पर विचार नही कर सकता । सर्वोच्च न्यायालय राज्य के कानून की वैधता पर विचार नही कर सकता ।**द्वितीय**, इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा किये जाने वाले 'न्यायिक पुनर्विलोकन' की प्रक्रिया को कठिन बना दिया गया तथा प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रो म न्यायाधिकरणो (Tribunals) की स्थापना की व्यवस्था करके भी न्यायालयो के क्षेत्राधिकार को समिति करने का प्रयत्न किया गया ।

42वे सविधान सशोधन के द्वारा सवैधानिक सशोधन के 'न्यायिक पुनर्विलोकन' को अत्यन्त समिति कर दिया था । इदिरा सरकार ने अपने निहित स्वार्थो को पूर्ति के लिये ससद को सर्वोच्च सस्था के रुप मे स्थापित करने का स्वॉग रचाया । लेकिन तर्कपूर्ण विवेचना से यह तथ्य उभर कर आता है कि 'दल-व्यवस्था मे, और जब एक दल अत्यन्त शक्तिशाली हो, एव विपक्ष कमजोर हो तो, ससद को दी जाने वाली सभी शक्तियॉ वास्तव मे कार्यपालिका को ही दी जाती है, और जब कार्यपालिका जीहुजूरिया किस्म का हो तो, इन सभी शक्तियो का उपयोग प्रधानमन्त्री करता है ।'[1] श्रीमती इदिरा गॉधी ने सम्पूर्ण शक्ति को अपने हाथो मे लेकर उसका दुरुपयोग सत्ता पर अपनी पकड मजबूत करने के लिये किया ।

तत्कालीन शासकवर्ग द्वारा इस सवैधानिक सशोधन के चाहे जो भी लक्ष्य और उद्देश्य बतलाये गये हो, वस्तुत इस सवैधानिक सशोधन का सर्वप्रमुख उद्देश्य प्रधानमन्त्री एव कार्यपालिका के हाथो मे सत्ता का अधिकाधिक केन्द्रीकरण ही था । भूतपूर्व महाधिवक्ता श्री सी० के० दफ्तरी के शब्दो मे, '42वे सवैधानिक सशोधन का उद्देश्य व्यवस्थापिका की सर्वोच्चता स्थापित करना घोषित किया गया था, लेकिन वस्तुत इसका मूल उद्देश्य प्रधानमन्त्री पद मे मूर्तिमान कार्यपालिका की पूर्ण सत्ता स्थापित करना था । इस प्रकार 42वे सवैधानिक सशोधन के उद्देश्य और लक्ष्य के सम्बन्ध मे जनता को भ्रम मे डाला गया ।"[2]

मूल कर्तव्यो की व्यवस्था . सविधान मे 10 मूल कर्तव्यो की व्यवस्था करके सरकार ने यह घोषणा की कि इनसे देशवासियो के राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण मे सहायता मिलेगी । जनता को हमेशा अपने अधिकारो के साथ-साथ कर्तव्यो का भी ध्यान रखना चाहिये, अगर जनता अपने कर्तव्यो के प्रति उदासीन है,तो सरकार को इस दिशा मे समुचित एव सकारात्मक कदम उठाना चाहिये, ताकि राष्ट्रीय चरित्र उन्नत हो । आपातस्थिति मे सरकार ने सविधान में ऐसे कर्तव्यो का समावेश किया, जो अत्यन्त उदात्त एव पवित्र थे । परन्तु इनके पीछे सरकार की कलुषति भावना निहित थी । वह नागरिको के जीवन मे अनाश्वयक अतिक्रमण करके भय एव आतक फैलना चाह रही थी । डा० युगेश्वर के शब्दो मे "नागरिको के ये दस ऐसे कर्तव्य है जिनसे पूर्णत पुलिस राज की स्थापना हो सकती है किसी भी नागरिक को हर वक्त जेल जाने के लिये तैयार रहना होगा । इतने अस्पष्ट एव उलझे नियम केवल पुलिस की मदद कर सकते है ।"[3]

---

1. कविता नारँवेन पूर्वोक्त, पृ० 105
2. दि इण्डियन एक्सप्रेस, अप्रैल 11, 1977
3. डा० युगेश्वर पूर्वोक्त , पृ० 188

श्रीमती इदिरा गॉधी के मुकदमे का सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने श्रीमती इदिरा गॉधी के 1971 के रायबरेली के चुनाव को अवैध घोषित कर दिया था। श्रीमती इदिरा गॉधी ने इस निर्णय के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय मे अपील की तथा न्यायालय ने इस मुकदमे मे 'प्रतिबन्धित स्थगन आदेश' (Conditional Stay Order) दिया। इसी बीच आपातस्थिति की घोषणा कर दी गयी एव सविधान एव जन प्रतिनिधित्व अधिनियम मे व्यापक परिवर्तन किये गये। इन सशोधनो मे उन नियमो को बदल दिया गया, जिसके आधार पर श्रीमती इदिरा गाधी का चुनाव अवैध घोषित हुआ था।

छ सप्ताह तक दोनो पक्षो की सुनवाई के बाद 7 नवम्बर को सर्वोच्च न्यायालय ने अपना निर्णय दिया और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के ऐतिहासिक निर्णय को उलट दिया। 'अपने निर्णय मे न्यायाधीशो ने 1974 एव 1975 मे हुए जन प्रतिनिधित्व अधिनियम मे सशोधन की वैधता को स्वीकार किया एव 39वा सविधान सशोधन की वैधता का अनुमोदन भी कर दिया।'[1]

इन सशोधनो को पूर्व प्रभावी माना गया था तथा इन्ही के प्रकाश मे सर्वोच्च न्यायालय ने अपना निर्णय दिया। अत श्रीमती इदिरा गॉधी के चुनाव को वैध घोषित कर दिया गया क्योकि नियमो मे परिवर्तन करके उन मुद्दो को अप्रभावी बना दिया गया था, जिनके आधार पर श्रीमती इदिरा गॉधी के चुनाव को पहले अवैध घोषित किया गया था। इस मुकदमे का वास्तविक फैसला सर्वोच्च न्यायालय ने नही वरन् ससद ने किया था, "क्योकि ससद ने न्यायालय का काम किया। श्रीमती इदिरा गॉधी ने भारतीय ससद से वह कार्य कराया जो उसकी बदनामी का स्थायी प्रमाण होगा।"[2]

आपातकाल में श्री संजय गाँधी की भूमिका

जनता पार्टी के उदय का सीधा सम्बन्ध इन्दिरा सरकार के पतन से है। इन्दिरा सरकार के पतन के लिये बहुत सी घटनाये एव प्रक्रियाये जिम्मेदार हैं, जिसमे सबसे महत्वपूर्ण घटना थी—आपातस्थिति के दौरान श्री सजय गॉधी एव उसकी चौकडी[3] का उदय। इस चौकड़ी को इन्दिरा सरकार का वरदहस्त प्राप्त था एव स्वय श्रीमती इन्दिरा गॉधी इसे प्रशय दे रही थी। इस चौकडी ने, जिसके सरगना श्री सजय गॉधी थे, सत्ता पक्ष एव विपक्ष के नेताओ के साथ-साथ सरकारी कर्मचारियो एव सम्मानित नागरिको के साथ अत्यन्त घिनौना व्यवहार किया और श्रीमती इन्दिरा गॉधी इसे चुपचाप देखती रही। इससे जन साधारण का इन्दिरा सरकार से मोह-भग हो गया।

'इस चौकड़ी ने केवल दल के सगठन पर नही वरन् सरकार पर भी नियन्त्रण कर लिया। इस गुट को 'सविधानेत्तर शक्ति के केन्द्र' के रुप मे जाना गया। यही गुट केन्द्र एव राज्य कर्मचारियों तथा सरकारी तन्त्र को कार्य

---

1 हॉर्स्टहार्टमैन "पोलिटिकल पार्टीज इन इण्डिया," पूर्वोक्त 1982, पृ0 229
2. डा0 युगेश्वर पूर्वोक्त, पृ0 185
3. इस चौकडी के प्रमुख व्यक्तियो में श्री सजय गॉधी श्री बसीलाल, श्री विद्याचरण शुक्ल एव श्री ओम मेहता थे। वास्तव मे इन्दिरा सरकार मे इस चौकडी की सरचना सोपानवत् थी। सबसे ऊपर श्रीमती इदिरा गॉधी श्री देवकान्त बरुआ एव अन्य लोग थे; मध्य मे श्री सजय गॉधी, श्री बशीलाल एव अन्य लोग तथा तीसरे स्तर सबसे नीचे कुछ मुख्यमन्त्री, स्थानीय नेता एव कुछ सरकारी कर्मचारी थे।

सम्पादन का आदेश देता था। कुछ मुख्यमन्त्रियो का इसलिये अपदस्थ कर दिया गया, क्योकि उन्होने 'इस गुट' के सदस्या के प्रति सम्मान जनक रवैया नही अपनाया था। श्री सजय गॉधी को राष्ट्रीय नता एव श्रीमती इदिरा गॉधी के उत्तराधिकारी के रुप मे प्रतिबिम्बित किया गया।'[1]

श्रीमती इन्दिरा गॉधी की कार्यशैली ऐसी थी कि वे अपने चापलूसो की सहायता से, हमेशा अपने चारो ओर एक 'रहस्यमय प्रभामण्डल' बनाये रखती थी। परन्तु इस प्रभामण्डल की आभा आपातस्थिति मे धूमिल हो गयी थी। "आपातस्थिति के कुछ पहले उन्होने राजवशीय शासन के स्थापना की प्रक्रिया शुरु कर दी थी एव आपातस्थिति की घोषणा देश मे राजवशीय शासन के स्थापना के लिये की गयी थी।"[2] अनेक गलत कार्यो के बावजूद जन समर्थन ने उन्हे अन्धा भी बना दिया। उन्होने गलत और सही का विवेक खो दिया। वे भूल गयी कि जनता की अपनी चेतना भी होती है। वे आत्म केन्द्रित के साथ ही परिवार केन्द्रित होती गई।

"आपातकाल के दौरान एक ऐसे राज्य का उदय हुआ जिसमे प्रधानमन्त्री के अतिरिक्त उनका पुत्र शासक हो गया। ओहदेदार अफसर, प्रदेशो के मुख्यमन्त्री, केन्द्रीय मन्त्री आदि सब उनके इशारे एव हुक्म पर काम करने लगे। सारे राजनयाचार को खत्म कर पुलिस, सेना एव ऊचे पदाधिकारी प्रधानमन्त्री के पुत्र श्री सजय गॉधी की अगवानी करने लगे। उनके स्वागत मे लाखो रुपयो का व्यय सरकारी साधनो द्वारा होने लगा। सरकार एक परिवार की मिल्कियत हो गई। लोकतन्त्र के नाम पर परिवार तन्त्र हावी हो गया। सारी जनता मूक दर्शक बन गयी।"[3]

श्री सजय गॉधी दुनिया के सरकारी इतिहास मे अद्‌भुत व्यक्ति माने जायेगे। वे सरकारके किसी पद पर नही थे। यहॉ तक कि वे किसी विधान मण्डल के सदस्य भी नही थे, किन्तु भारत सरकार के सब कुछ थे। उनके आदेश के बिना सरकारी पीपल के पत्तो ने हिलना बन्द कर दिया था। सभी काग्रेसी राजनीतिज्ञ इस युवक की कृपा चाहते थे। इन सभी काग्रेसियो के मन मे डर समा गया था कि अगर राजकुमार नाराज हुए तो उनकी खैर नही। परन्तु अपमानित राजनीतिज्ञो के मन ही मन मे आक्रोश पनप रहा था, जिसका प्रदर्शन काग्रेस जनो ने 1977 के लोकसभा के चुनाव मे हार के बाद किया। श्रीमती इंदिरा गॉधी का वरदहस्त प्राप्त करने के लालच मे कुछ लोगो ने खुलकर श्री सजय गॉधी के खिलाफ कार्यवाही की माग नही की। परन्तु "श्री देवकान्त बरुआ, श्री ब्रहमानन्द रेड्डी और काग्रेस दल के दूसरे नेताओ से मिलकर सुश्री सुभद्रा जोशी और श्री देसराज गोयल यह कहते रहे कि दल को साफ तौर से यह कहना चाहिये कि श्रीमती इदिरा गॉधी और सजय गॉधी की चौकड़ी चुनाव मे हार के मुख्य कारण रहे हैं।"[4]

श्री सजय गॉधी का सरकारी तन्त्र पर अधिकार था। श्री सजय गॉधी की तुलना उन नेताओ से नही की जा सकती जो सरकार के बाहर रहकर भी सरकार को प्रभावित करते है ऐसे नेता प्राय सत्तात्यागी, लोकमान्यता वाले व्यक्ति होते है। वे सरकार विशेषकर सरकारी नीतियो, चुनावो जैसी चीजो को प्रभावित तो करते है किन्तु सीधे सरकार

---

1 जनता सरकार मे राष्ट्रपति ने ससद के सयुक्त अधिवेशन को सम्बोधित करते हुये कहा। दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, मार्च 28, 1977
2. जे0 ए0 नैयक्र पूर्वोक्त, पृ0 15
3 डा0 युगेश्वर पूर्वोक्त, पृ0 197
4. जर्नादन ठाकुर इदिरा गॉधी का राजनीतिक खेल, हिन्दी अनुवादक दीनानाथ मिश्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागज नई दिल्ली, नवम्बर 1979, पृ0 14 (अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के सदस्य श्री देसराज गोयल के साथ लेखक की भेटवार्ता)

नही चलाते । वे शासकों के गुरु या नेता होते है, परन्तु सता मे अनुचित हस्तक्षेप नही करते । इस कोटि मे गॉधी जी, डा० लोहिया, श्री जय प्रकाश नारायण जैसे व्यक्ति आते हैं । किन्तु सजय गॉधी सरकारी कठपुतली का सूत्राधार था । देश के सरकारी तन्त्र पर श्री सजय गॉधी का जन्म एक तानाशाह के रुप म हुआ था ।

काग्रेस की पराजय का मुख्य कारण श्री सजय गॉधी की चौकडी एव उसकी निरकुश कार्य -शैली थी । ५ मई 1977 को अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के अधिवेशन मे पूर्व-उद्योग मन्त्री श्री टी०ए० पई, जिन्होने स्वय 'दरबार' के दबाव के सामने आत्म समर्पण कर दिया था, ने स्पष्ट रुप से बताया कि कैसे काग्रेस पार्टी की ऐसी दुर्दशा हुई । उन्होने कहा, "यह भीषण पराजय तो काग्रेस कमेटी के चडीगढ़ अधिवेशन मे ही शुरु हो गयी थी जब श्री सजय गॉधी की छवि उभारने की कोशिश की गयी थी, और गौहाटी अधिवेशन मे तो यह तबाही पूरी हो चुकी थी, जब अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की जगह युवक काग्रेस को देने की कोशिश की गयी थी । श्री सजय गॉधी कांग्रेस के असली नेता हो गये थे और सच तो यह है कि वे सरकार के सर्वेसर्वा हो गये थे । बिना किसी कानूनी अधिकार के वह सरकार को सभी फाइले देख सकते थे । वह मन्त्रियो तक की नियुक्ति एव पदोन्नति का निर्णय करने लगे । जो उनके सामने नतमस्तक नहीं होते थे, उन्हे आतक घेरे रहता था ।" [1]

सजय गॉधी का नसबन्दी अभियान श्री सजय गॉधी की निरकुश कार्य-शैली के दो पक्ष थे । एक पक्ष वह जिसका वर्णन ऊपर किया गया, जो सरकार के खोखलेपन को उजागर करता है तथा दूसरा पक्ष वह जिसके कारण भारत का जन समुदाय भयभीत एव आतकित था । यह श्री सजय गॉधी का परिवार नियोजन कार्यक्रम या नसबन्दी अभियान था, यह कार्यक्रम उनके ५ सूत्री कार्यक्रमो मे सबसे महत्वपूर्ण था ।

श्री सजय गॉधी की आज्ञा से सारे देश मे परिवार नियोजन का अभियान चला । इस कार्यक्रम को चलाने का भार 'स्वास्थ्य एव परिवार नियोजन मन्त्रालय' [2] ने लिया एव इस तरह से कार्यान्वित किया कि ऐसा लगा नसबन्दी ही भारत का प्रमुख कार्यक्रम है । " केन्द्रीय सरकार के निर्देश से देशमे परिवार नियोजन कार्यक्रम की ऑधी चलाई गयी । जिसमे था दमघोटू धुऑ, काली काली रेखाये, दिल दिमाग और फेफड़ो को जकड देने वाली सरकारी धूल । इससे सारे देश की ऑखो मे अधेरा छा गया ।" [3] परिवार नियोजन कोई बुरी चीज नही है, परन्तु इसके लिये लोगो का समझाया जाता है, स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है एव अच्छे-बुरे का ज्ञान कराया जाता है । "किन्तु यहॉ तो डडा था । श्रीमती इदिरा गॉधी के डडे से कठोर एव मारक डडा था, उनके पुत्र श्री सजय गॉधी का डडा ।"[4]

परिवार नियोजन के अन्य सारे तौर तरीके व्यर्थ कर दिये गये । केवल नसबन्दी का दरवाजा खोल दिया गया । 'लक्ष्य - दपतियो' पर पहाड टूट पडा एव नसबन्दी के नाम पर जुल्म की लम्बी यात्रा चली । इससे जन समुदाय कराह उठा । नसबन्दी न करने पर लोगो को अनेक परेशानियो का सामना करना पडा । "इसमे शहर वालो का राशन

---

1. ५ मई 1977 को अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के अधिवेशन मे टी० ए० पई द्वारा दिया गया वक्तव्य, दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, मई 6, 1977
2. जनता- सरकार मे स्वास्थ्य मन्त्री श्री राजनारायण ने इस मन्त्रालय का नाम बदलकर 'स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मन्त्रालय' रख दिया ।
3. डा० युगेश्वर पूर्वोक्त, पृ० 203
4. वही

बन्द हो गया । चीनी नही दी गयी । गाडियो के लाइसेस, बन्दूको के लाइसेसो के नवीनीकरण रोक दिये गये । गॉव के लोगो को बिजली का कनेक्शन नसबन्दी के आधार पर मिलने लगा । सबसे बड़ी आफत आयी नौकरी करने वाले छोटे सरकारी कर्मचारियो पर । प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षको पर, इनका वेतन रोक दिया गया । खुद नसबन्दी कराइये या दूसरो की करवाइये । अच्छे कार्यो का कोई अतिरिक्त पुरुस्कार नही, किन्तु नसबन्दी केस ने लाने का दण्ड मिलने लगा ।"[1]

श्री सजय गॉधी के नसबन्दी कार्यक्रम को सफल बनाने मे एक महिला का नाम तेजी से उभर कर आया-यह थी रुकसाना सुल्ताना[2] जबरन नसबन्दी एव शहर के सुन्दरीकरण के नाम पर झुग्गी झोपड़ियो का सफाया करके हजारो को बेघर कर दिया गया । इन अमानवीय कृत्या मे इस महिला ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । यह श्री सजया गॉधी को प्रसन्न करके दिल्ली मे युवा मुस्लिम वर्ग का नेता बनना चाहाती थी । इससे नसबन्दी को सफल बनाने के लिये 'नसबन्दी शिविरो' की व्यवस्था की, इसमे दिल्ली के 'युजाना हाउस कैप' के अमानवीय कृत्य सर्वविदित है । यहॉ रेल के 'बिना-टिकट यात्री' रिक्शा चालक, रास्ता चलते अनपढ साधारण लोगो के बलात आपरेशन होने लगे । न चाह कर भी रोजी रोटी के लिये देश ने नसबन्दी स्वीकार ली । "नसबन्दी रुस का कन्सन्ट्रेशन कैम्प" हो गयी । हदबन्दी अमीरी के विरुद्ध थी और नसबन्दी गरीबो के विरुद्ध । यही कारण था सभी प्रकार के लोग काग्रेस सरकार के विरुद्ध हो गये ।"[3]

सारा देश नसबन्दी के घेरेबदी मे पहुॅच गया था । अस्पताल के चाकू विभिन्न शिविरो मे चमकने लगे कितने ही 'कुवारे' एव 'सन्तान विहीन दम्पतियो' की जबरन नसबदी कर दी गयी । भय की स्थिति यह थी कि बच्चे डरने लगे । "पापा-मम्मी हम स्कूल नही जायेगे । हमारी नसबन्दी हो जायेगी ।"[4] जब स्कूलो मे पोलियो एव तपैदिक की सुइया लग रही थी तो अफवाह फैली कि सरकार 'नसबन्दी की सुइया' लगवा रही है । यह एक अफवाह थी, परन्तु यह समाज मे व्याप्त भय को स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित करती है ।

श्री सजय गॉधी के इस अभियान ने काग्रेस सरकार को जितना बदनाम किया उतना अन्य दूसरे कार्यक्रमो ने नही । सरकार द्वारा आपातस्थिति की घोषणा, सविधान सशोधन एव जनसचार माध्यमो के साथ दुर्व्यवहार आदि से लोगो मे आक्रोश भरा था, परन्तु 'नसबन्दी अभियान' से लोगो मे भय की लहर दौड़ गयी । लोगो ने समझा कि इस अभियान के द्वारा उनके व्यक्तित्व पर हमला किया जा रहा है । भारत जैसे आस्था एव विश्वास वाले देश मे लोगो ने (मुख्यत हिन्दूओं एव मसलमानो ने) इसे अपने धार्मिक विश्वासो पर हमला माना । अत देश का प्रत्येक वर्ग, जाति एव समुदाय काग्रेस सरकार के एकदम खिलाफ हो गया, और जब चुनाव का मौका आया तो उसने इन्दिरा सरकार के

---

1. डा() युगेश्वर पूर्वोक्त, पृ() 204-205
2. **31 वर्षीया खुबसूरत रुकसाना सुल्ताना उच्च समाज की आधुनिक महिला थी । इसने कई विवाह किये परन्तु सबकी परिणित तलाक म हुई । अपनी इस 'स्वच्छन्द एशवर्य यात्रा' के दौरान वह मीनू बिम्बेट (रुकसाना सुल्ताना का कुवारेपन का नाम) से रुकसाना सुल्तान बनी । सन् 1975 मे दिल्ली मे एक फिल्म महोत्सव मे इसकी भेट श्री सजय गॉधी से हुई । इसने श्रीसजय गॉधी को प्रभावित किया और शीघ्र ही उनकी अभिन्न मित्र बन गयी ।**
3. डा() युगेश्वर पूर्वोक्त, पृ() 205
4. वही

विरोध मे जनता पार्टी को अपना मत दिया । इस प्रकार इस अभियान को इन्दिरा सरकार के पतन के महत्वपूर्ण कारको मे एक कारक माना जाना चाहिये ।

उसके आलावा श्री सजय गॉधी के अन्य कार्यो से भी इन्दिरा सरकार काफी बदनाम हुई । श्री सजय गॉधी की दिल्ली शहर की सुन्दरीकरण की योजना, हजारो गरीबो एव झुग्गी झोपड़ियो मे रहने वालो के लिये अभिशाप बन गयी । लगभग 80,000 लोगो को केवल कुछ घटो का नोटिस देकर बेघर कर दिया गया तथा उनकी झोपडियो को बुलडोजरो से रौद डाला गया । इन घटनाओ मे 'तुर्कमान गेट त्रासदी' ने तो सरकार के मुख पर कालिख पोत दी । श्री सजय गॉधी के सौन्दर्य बोध को तुर्कमान गेट के पास की झुग्गी झोपड़िया एव गन्दी बस्तियॉ रास नही आयी । उसने आदेश दिया कि इन झोपडियो को यहॉ से हटा दिया जाए । वहॉ के लोगो ने इसका विरोध किया एव गेट पर धरना देकर बैठ गये । पुलिस ने उन्हे हटाने की कोशिश मे पहले लाठी चार्ज किया । फिर गोलियो चलाई । इसमे बच्चो सहित बहुत से लोगो की जाने गयी तथा पुलिस ने औरतो के साथ दुर्व्यवहार किया । सरकार चुपचाप इस घटना को देखती रही ।

यह असम्भव है कि इस घटना की जानकारी श्रीमती इदिरा गॉधी को नही थी, जैसा कि उन्होने बयान दिया । "यदि वे ऐसा दावा करती है तो उन्हे राष्ट्र मे शासन करनेका अधिकार नही है ।" [1] क्योकि इससे देश की जनता के प्रति उनकी उदासीनता स्पष्ट हो जाती है ।

"झुग्गी झोपडियों मे रहने वाले गरीब लोगो ने पहले के सभी लोक- सभा, मेट्रोपोलिटन कौसिल, एव नगर निगम के चुनावो मे काग्रेस पार्टी के लिये वोट दिया था । काग्रेस के आका लोग इन्हे सरक्षण प्रदान करके, राजनीतिक रुप इनका शोषण करते थे । इन्होने इन लोगो को यह आश्वासन दिया था कि जब तक उनकी पार्टी सत्ता मे है, उन्हे कोई हानि नही पहुॅची जायेगी ।"[2] श्री संजय गॉधी की एक सनक ने राजधानी से काग्रेस के इस आधार को नष्ट कर दिया, क्योकि आपातस्थिति के दौरान इन लोगो बहुत यातनाये सही थी । अत "क्या यह स्वाभाविक नही था कि जिन लोगो ने इन्दिरा सरकार द्वारा इतनी यातनाये झेली है, वे लोग मत पेटियो द्वारा इस सरकार का पूरी तरह से सफाया कर दे ?" [3]

निष्कर्ष

अत आपातकाल की समीक्षा करके यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि "आपातकाल की घोषणा सिह की सवारी थी । चढना भी कठिन, चढा रहना भी कठिन एव उतरना भी कठिन । किन्तु भारत मे यह सब आनन-फानन मे हो गया । श्रीमती इन्दिरा गॉधी आपातकाल रुपी सिह पर सवार हो गयी । यह सिह विरोध को रौंदने लगा ।"[4] सारे विपक्षी नेता जेल मे बन्द हो गये । अखबार एव अन्य जनसचार माध्यमो का गला घोट दिया गया । दमन चक्र शुरू हो गया, यह देश के लिए काला शासन चक्र था ।

---

1. कविता नारवेन पूर्वोक्त, पृ() 127
2. बी() एम() सिह "आपरेशन इमरजेन्सी", पूर्वोक्त पृ() 135
3. कविता नारवेन पूर्वोक्त, पृ() 127
4. डॉ० युगेश्वर पूर्वोक्त, पृ() 195

ससद गूगी बहरी हो गयी । न्यायपालिका को पगु बना दिया गया । सविधान के साथ बलात्कार किया गया । केवल कार्य पालिका के हाथो शक्ति केन्द्रित थी । लोकतन्त्र बेहाश हो गया । परिवर्तन का रथ जेल की सींखचो मे था । प्रधानमन्त्री के भ्रष्ट पुत्र का आदश ही कानून बन गया । सड़के चौडी होने वाला । बुलडोजरो की मार से पूरा शहर कॉप उठा । नसबन्दी के नाम पर धरपकड, जोर जबरदस्ती, वेतन रोको, तबादले करो क्या नही हुआ । प्रेस सेंसरशिप के कारण जनता एव सरकार के बीच बातचीत बन्द दी । केवल सरकार बोलती थी । केवल सुनो । इन्दिरा वाणी सुनो । सजय उवाच सुनो । इस शासन मे विरोध का कोई स्थान नही था । किसी शासन मे विरोध प्रदर्शन 'सेफ्टी वाल्व' जेसा होता है, इससे उबलती भाप निकलती रहती है । उसका निकलना रुका कि विस्फोट हुआ, बर्तन फूटा । 1977 के लोक सभा चुनाव मे जनता के भीतर सचित भाप एकाएक फूट गया । आपातकाल का भडा फूट गया । इस विस्फोट ने श्रीमती इन्दिरा गॉधी के पूरे साम्राज्य को ध्वस्त कर दिया ।

आपातकाल ने भारतीय जन मानस के मन मे काग्रेस के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी थी और लोग श्रीमती इदिरा गॉधी का तानाशाह समझने लगे थे जो उनके सामाजिक एव राजनीतिक मूल्यो एव हितो को क्रूरता से दमन कर रही थी । अत जहां आपातकाल मे एक और जेलो मे विभिन्न राजनीतिक दलो को एक सूत्र मे बॉधकर विपक्षी एकता को प्रोत्साहित किया वही दूसरी ओर भारतीय जनमानस को 1977 के लोकसभा चुनाव मे श्रीमती इदिरा गॉधी के विरुद्ध अपना समर्थन व्यक्त करने को भी तैयार किया । जनता पार्टी को जन्म देने के पूर्व भारतीय सामाजिक एव राजनीतिक व्यवस्था आपातकाल-रुपी भयानक प्रसव पीडा से गुजरी थी । यदि प्रसव-पीडा इतनी भयानक न होती तो शायद जनता पार्टी का जन्म न हुआ होता ।

आपातकाल में भूमिगत- आ··ोलन की भूमिका

इन्दिरा सरकार के पतन के अकुर तो श्री जय प्रकाश नारायण के आन्दोलन के दौरान ही फूट पडे थे । गुजरात एव बिहार मे इस आन्दोलन की सफलता ने इन्दिरा सरकार की नीद उड़ा दी थी । इन घटनाओं से 'विपक्षी एकता' को नया बल मिला था । इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय के बाद विपक्ष ने सामूहिक रुप से श्रीमती इन्दिरा गॉधी से त्यागपत्र की मॉग की एव एक देशव्यापी आन्दोलन छेडने का आह्वान किया । इसी समय सरकार ने आपातकाल की घोषणा करके सम्पूर्ण विपक्ष को जेल मे डाल दिया एव विपक्षी एकता के प्रयासो पर पानी फेरने की नाकाम कोशिश की । ऐसी परिस्थितियो मे विपक्ष के पास एक ही मार्ग बचा था कि भूमिगत- आन्दोलन द्वारा विपक्षी एकता का प्रयास किया जाय एव सरकार के तानाशाही चरित्र का पर्दाफाश किया जाय ।

सरकार अपनी पूरी कोशिशों के बावजूद विपक्ष के बहुत से भूमिगत नेताओ एव कार्यकर्ताओ को नही पकड सकी । उनके नही पकड़े जाने की चिन्ता श्रीमती इदिरा गॉधी को सताती रहा और किसी न किसी रुप मे वह चिन्ता प्रकट करती रही । सिर्फ उनका गिरफ्तार न होना भूमिगत -आन्दोलन की बहुत बडी सफलता थी । "भूमिगत कार्यकर्ता तानाशाही से जूझ रहे थे, जेल और पुलिस-उत्पीडन के खतरो को उठाकर भी भूमिगत साहित्य लिख रहे थे, छपा रहे थे और बॉट रहे थे । भूमिगत कार्यकर्ताओ को सगठित कर रहे थे । भूमिगत सचार-व्यवस्था का 'समानान्तर- तन्त्र' चला रहे थे । छोटे छोटे कमरो मे छोटी-छोटी बैठके कर रहे थे ।" [1] इन सभी कार्यों से विपक्षी एकता के बुझते हुये चिराग को एक नयी ऊर्जा मिली एव 1977 के लोकसभा चुनाव में इसका प्रकाश सारे देश मे फैल गया ।

भूमिगत आन्दोलन क्यों ?

आपातस्थिति और श्रीमती इदिरा गॉधी की तानाशाही ने न केवल सरकार का मूल चरित्र बदल डाला बल्कि, एक बडी सीमा तक भारतीय जन मानस को भी प्रभावित किया । एक ओर सम्पूर्ण समाज धीरे-धीरे भयाक्रान्तता के भीषण सकट मे डूब रहा था, और दूसरी तरफ विपक्ष के बडे-बडे नेतागण जेलो मे पड़े थे तथा उनके पुन शक्तिशाली होने की जन मान्यता समाप्त सी हो गयी थी ।

श्रीमती इदिरा गॉधी को समझने मे विपक्ष ने शायद भूल की । श्रीमती गॉधी इस हद तक तानाशाह हो सकती है, शायद ही कुछ लोगो ने उसकी सम्भावना को कभी माना होगा । जब लोकतन्त्र उनकी कुर्सी रक्षा के लिये व्यर्थ सिद्ध होने लगा तो उन्होंने लोकतन्त्र को ही अपग कर दिया । लोकतन्त्र मृत्यु शय्या पर पडा अन्तिम घड़िया गिनने लगा । सवैधानिक सशोधन, आकाशवाणी, टेलीविजन, समाचार- सेसरशिप आदि के मौजूदा रग ढ़ग, विपक्षी नेताओ

---

1. दीनानाथ मिश्र "एमरजेन्सी मे गुप्त क्रान्ति", मे श्री अटल बिहारी बाजपेई द्वारा लिखित भूमिका से, आई0 बी0 सी0 प्रेस, दिल्ली, 1977, पृ0 8

कार्यकर्ताओ और उनके द्वारा नियन्त्रित सस्थाओ के साथ किये गये सलूक, काग्रेस पर व्यक्तिवादी वर्चस्व आदि सभी ने जाहिर कर दिया कि हिन्दुस्तान मे लोकतन्त्र का अर्थ तानाशाही है । श्रीमती इदिरा गॉधी ने गॉधीवादी भाषा को समझने और उसमे बातचीत करने से साफ इन्कार कर दिया था । अगर विपक्ष या जनता के सक्रिय कार्यकर्ताओ द्वारा सरकार के विरुद्ध खुला आन्दोलन चलाया जाता तो उसकी सफलता संदिग्ध थी, क्योकि गॉधीवादी तकनीकी इस माहौल मे पुरानी पड गयी थी । इस लिये जरुरी यह था कि विपक्ष नयी रणनीति का विचार करे । यह नयी रणनीति कुछ और नही बल्कि भूमिगत आन्दोलन था ।

श्री जय प्रकाश नारायण ने भी सभी स्वतन्त्रता प्रेमी भारतीयो का इस पुनीत कार्य के लिये आह्वान किया एव कहा, "लोक चुप और निष्क्रिय इस लिये है कि ये समझ ही नही रहे है कि क्या हो रहा है ? एकतरफा प्रचार के कारण बहुत से लोगो ने यह मान लिया है कि जो हुआ है, उनकी भलाई के लिये हुआ है । इसलिये सबसे पहला एव जरुरी काम यह है कि लोगो को एक बार फिर से बताया जाय कि स्वतन्त्र और लोकतान्त्रिक समाज के आधार क्या है, बुनियादी तत्व क्या है । यह काम समझदारी से करना है । इसके लिये जरुरी है कि सरल भाषा म, जानकारी क साथ, और यह बताते हुये कि क्या करना है, पर्चे फोल्डर, पुस्तिकाए आदि तैयार की जाये । जाहिर है कि इनका प्रकाशन और प्रचार गैर-कानूनी ढग से ही हो सकेगा । बहुत से लोग इन लिखित चीजो की पढ और समझ भी नही सकेगे, लेकिन ये 'टेक्स्ट-बुक' का काम करेगी ।" [1]

विपक्ष द्वारा भूमिगत आन्दोलन चलाने की आवश्यकता इसलिये भी महसूस हुयी क्योकि यहाँ की जनता से किसी प्रकार की हिसक क्रान्ति की आशा करना बेकार था । श्री मधुलिमये ने इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया कि श्री जय प्रकाश नारायण जैसे लोकप्रिय नेता को गिरफ्तारी से कोई जन-विद्रोह नही खड़ा हुआ । वास्तव भारत की जनता उत्पीड़न सहने की अभूतपूर्व क्षमता रखती है । शताब्दियो तक उन्होने विदेशी आतताइयो को झेला है । इसलिये इसमे कोई आश्चर्य नही कि वह आपातकाल की तानाशाही को स्वीकार कर ले । इसके अलावा यहा "इतिहास के दबाव, शान्ति की परम्परा एव सहिष्णुता की आदत ने किसी भी स्वाभाविक विद्रोह की भावना पर रोक लगा रखी है ।" [2] भारतीय जनता धार्मिक सवालो पर उत्तेजित हो सकती है, और बगावत कर सकती है, लेकिन भारत की जनता से लोकतन्त्र की समाप्ति या लोकतान्त्रिक मूल्यो के लिये क्रान्ति की उम्मीद नही की जा सकती । पूरे इतिहास मे भारत की आम जनता ने कोई सफल हिसक क्राति नही की ।" [3] अत कहा जा सकता है कि विशेष राजनीतिक सन्दर्भो मे भारतीय जन मानस असवेदनशील है, परन्तु इन परिस्थितियो मे विपक्ष ने एक सक्रिय राजनीतिक आन्दोलन चलाने का प्रयास किया । यह आन्दोलन खुले आम नही चल सकता था, अत वह भूमिगत हो गया ।

भूमिगत आन्दोलनः चरित्र, रणनीति एवं नेतृत्वः

चरित्र : इस भूमिगत आन्दोलन का चरित्र दुनिया के दूसरे भूमिगत आन्दोलनो से पूरी तरह अलग था । सामान्यतया भूमिगत क्रान्तिकारी सत्ता की किलेबन्दी पर हिसक चोट करते है । भारत का यह आन्दोलन अहिसा के

---

1. जय प्रकाश नारायण का वक्तव्य तरुण क्रान्ति, सघर्ष कार्यलय पटना कीओर से प्रसारित, बम्बई, मई 2, 1976
2. कविता नारवेन पूर्वोक्त, 152
3. उद्धृत, दीनानाथ मिश्र पूर्वोक्त, लेखक द्वारा लिखित 'पोजीशन पेपर', "तानाशाह की अपराजेयता" से पृ0 162

सिद्धान्तो का पालन करता रहा । आमतौर से भूमिगत आन्दोलनो को प्रारम्भ मे आप जन समर्थन प्राप्त नही होता परन्तु यहाँ आम जनता प्रारम्भ से ही मानसिक रुप से भूमिगत आन्दोलनकारियो से सहानुभूति का अनुभव कर रही थी ।

प्राय भूमिगत आन्दोलन किसी न किसी विदेशी सरकार की मदद से चलते है । भारत का यह भूमिगत आन्दोलन सिर्फ स्वदेशी शक्ति एव प्रेरणा से चलता रहा । वैसे श्रीमती इदिरा गाँधी ने इस बारे मे विपक्ष पर आरोप लगाया कि वे विदेशी ताकतो के हाथो खेल रहे है, लेकिन न तो वे इस बेबुनियाद आरोप को सिद्ध का सकती थी, और न ही कर पाई । जनता ने भी इस पर विश्वास नही किया । "मानवीय शक्ति और समर्थन के पैमाने पर भारत का भूमिगत आन्दोलन दुनिया का सबसे बडा भूमिगत आन्दोलन था । दुनिया की दूसरी भूमिगत बगावतो के समक्ष बहुत कम शक्ति से सत्ता परिवर्तन का लक्ष्य होता था । इसलिये उनकी प्रक्रिया जटिल और दुस्साहस पूर्ण होती थी, यहा लक्ष्य तो बड़े थे लेकिन आपेक्षाकृत अनुकूलताए भी अधिक थी ।" [1]

भारत मे आपातकाल के दौरान चलाये गये भूमिगत आन्दोलन की तुलना अफ्रीकी देशो वियतनाम, या बोलिबिया अथवा कही के भूमिगत गोरिल्ला सघर्षो से नही की जा सकती । इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि इन देशो के आन्दोलन का मूल चरित्र हिसक क्रान्त्रियाँ थी तथा इनकी दार्शनिक प्रेरणा कही न कही मार्क्सवाद से जुडी थी । भारत का भूमिगत आन्दोलन मूलत अहिसक था तथा इसकी दार्शनिक प्रेरणा माहात्मा गाँधी एव श्री जय प्रकाश नारायण से जुडी थी ।

"एक अर्थ मे यह गाँधीवादी 'सत्याग्रह-असहयोग' की तकनीकी का अगला विस्तार था, अहिसक युद्ध सघर्ष के आयाम का अविष्कार था । यह खून के हर कतरे के बारे मे सवेदनशील भारत की सास्कृतिक चेतना के अनुरुप था । अहिसक होना इसकी नियति ही नही थी, बल्कि मानव मात्र के लिये पाशविक सघर्ष से शिष्ट सघर्ष की ओर बढने के 'प्रयोग- सिद्ध विकल्प' की खोज भी थी ।"[2] वास्तव मे भारत जैसे देश मे ही ऐसा आन्दोलन सम्भव था जहाँ श्री जय प्रकाश नारायण जैसे गाँधीवादी जननायक जनता की टूटती हुयी आशाओ का प्रतीक बने हुये थे, विपक्षी एकता की घुरी बने हुये थे । अपनी बीमारी हालत मे देश के आम जनता एव नव युवको मे जोश भर रहे थे, आशा जगा रहे थे । उन्होने केवल भूमिगत आन्दोलन के प्रमुख कार्यकर्ताओं को नही, बल्कि आम जनता का आह्वान किया कि "जो लोग व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा स्वतन्त्र लोकतान्त्रिक सगठनो में विश्वास करते है, वे फौरन चाहे जिस तरह सम्भव हो, तीन-तीन, चार-चार की टोली बनाकर जनता से घुस जाये और लोगो को बताना शुरु कर दे कि क्या हो रहा है, और कौन-कौन से बुनियादी सवाल पैदा हो गये है ?" [3] यह साधारण सी अपील बहुत ही महत्वपूर्ण थी । यह जनता के नाम सन्देश था । गाँधीवादी तकनीक का अनुप्रयोग था । जनसाधारण ने इस आह्वान को आत्मसात कर लिया । लोगो मे उत्तेजना भर गयी परन्तु तानाशाही के प्रभाव मे यह उत्तेजना भीतर ही भीतर उबलती रही । इस आन्दोलन के बल पर सम्पूर्ण जनता विपक्ष से जुडती गयी एव विपक्षी दलो मे स्वंयेव एकता बढ़ती गयी ।

---

1 दीनानाथ मिश्र पूर्वोक्त, पृ0 26

2. उद्धत, दीनानाथ मिश्र पूर्वोक्त, मे श्री अटल बिहारी बाजपेई द्वारा लिखित भूमिका से, पृ0 9

3. जय प्रकाश नारायण, तरुण क्रान्ति, सघर्ष कार्यालय, पटना की ओर से प्रसारित, बम्बई, मई 1, 1976

रणनीति इस भूमिगत आन्दोलन का अन्तिम लक्ष्य तो सम्पूर्ण व्यवस्था मे आमूल परिवर्तन एव सरकार को सत्ताच्युत करना था, लेकिन इसका प्राथमिक एव तात्कालिक लक्ष्य था- तानाशाही से मुक्ति । इसकी मूल प्रेरणा मुक्तिवादी थी । इस आन्दोलन एव 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन मे जबरजस्त अन्तर था । इस बार तानाशाह विदेशी नही था उसने लोकतन्त्र का भ्रमोत्पादक तानाबाना बना रखा था । श्रीमती इदिरा गॉधी ने लोकतान्त्रिक सस्थाओ के प्राणहीन ढॉचे को बनाये रखा था । भूमिगत कार्यकताओ ने सरकार के खिलाफ एक भावनाप्रधान आदर्शवाद की व्यापक अपील की, परन्तु इस अपील का जनसाधारण पर काई विशेष प्रभाव नही पडा, क्योकि जिन स्तरो पर तानाशाही प्रहार विशेष रुप से उत्पीडक था, वह आम जनता का नही बल्कि सक्रिय नागरिको, बुद्धिजीवियो और नेताओ का स्तर था लेकिन तानाशाही के 'नसबन्दी अभियान' ने आम जनता को तानाशाही की अनुभूति दी । भले ही वे तानाशाही की व्याख्या न कर सकते हो परन्तु अनुभूति के धरातल पर तानाशाही निर्विवाद रुप से प्रमाणित हो गयी । इसे भूमिगत कार्यकर्ताओं को जनमानस की भावनाओं को झकृत करने वाला एक प्रहार बिन्दु मिला । यह मुक्तवादी लक्ष्य स्थूलत नकारात्मक नजर आ सकता है, लेकिन लोकतन्त्र की लडाई किसी भी नाम से मूलत विधायक या रचनात्मक ही होती है,और थी । इसका मूल लक्ष्य था- नयी व्यवस्था का निर्माण । यह तभी सम्भव था, जब सभी विपक्षी दल मिलकर एक नया दल बनाये । तानाशाही का अन्त करे । काग्रेस पार्टी का राष्ट्रीय विकल्प प्रस्तुत करे । इन्दिरा सरकार के स्थान पर नयी सरकार बनाये । "यही आदर्शवादी लक्ष्य सम्पूर्ण संगठन का विधायक सूत्र था । यही तरह-तरह के तत्वो को एकसाथ बॉधता था । मतभेद को विलीन करता था ओर 'एक्शन प्रोग्राम' को पीछे से धक्का देकर सघर्ष आगे बढाता था ।" [1]

लोकतन्त्र को फिर से कायम करना या तानाशाही का विरोध करना अपने आप मे एक तैयार शुदा लक्ष्य था । यह कही से कृत्रिम माग नही थी । यह आम आकाक्षा थी । यही कारण था कि भूमिगत सघर्ष ने बिना किसी दार्शनिक प्रशिक्षण के एक दिशा ग्रहण कर ली । ऊपरी तोर पर देखने मे तो यह सघर्ष बहुत ही सामान्य लगता था । परन्तु इसका गहन अध्ययन एव विशलेषण करने से ऐसा प्रतीत होता है कि इस आन्दोलन ने ऐसी उपजाऊ सामाजिक एव राजनीतिक पृष्ठभूमि तैयार की, जिसमे विपक्षी एकता की बीज आसानी से अकुरित हो सके । आपातकाल के दौरान पूरे विपक्ष का इन्दिरा सरकार द्वारा दमन किया गया था । विपदाये विरोधियो को भी करीब ला देती है, और जब विपदाओ का स्रोत एक हो तो उससे मुक्त होने के साधनो मे भी एकता आ जाती है । अत इस सघर्ष के दौरान सभी विपक्षी दलो के लक्ष्यो मे एकता आ गयी । इस आन्दोलन ने कुछ ऐसे कार्य किये जिससे जनसाधारण का इन्दिरा काग्रेस से मोह भग हो गया । किसी भी नयी व्यवस्था के गठन के पहले यह जरुरी है कि पुरानी व्यवस्था की हटाया जाय । उसके आधारो को नष्ट किया जाय । तत्पश्चात एक नयी सोच से उस दिशा मे कार्य किया जाय । इस आन्दोलन ने इन्दिरा सरकार के पतन एव जनता पार्टी के गठन, दोनो मे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । प्रारम्भ मे इस आन्दोलन ने जो कार्य किया उसकी प्रमुख रश्मिया निम्न प्रकार है । [2]

---

1. दीनानाथ मिश्र पूर्वोक्त, पृ0 16
2. दीनानाथ मिश्र पूर्वोक्त, पृष्ठ 25

(1) श्रीमती इन्दिरा गॉधी के तानाशाही शासन की कथनी एव करनी के बीच के अन्दर को उजागर करना ताकि तानाशाह का चरित्र जन समाज समझा सके ।

(2) यह भूमिगत आन्दोलन क्रूर शासको के नैतिक और सैद्धातिक मनोबल को अपनी चोटो से गिरा रहा था और तानाशाह एव उसके समर्थको की आवाज से नैतिक बल समाप्त कर रहा था ।

(3) यह आन्दोलन भूमिगत कार्यकार्ताओ के तमाम कार्यों को जनता की नजरो मे नैतिक, कानूनी, एव राजनैतिक धरातल पर देश-विदेश मे न्यायोचित प्रतिपादित कर रहा था । उनकी तमाम मागो को गरिमा प्रदान कर रहा था ।

(4) यह आन्दोलन सघर्ष कर्ताओ और आम जनता को कष्ट सहने एव बडा से बडा बलिदान करने का उत्साह पैदा करता रहा ।

(5) यह आन्दोलन सघर्ष कर्ताओ मे एकता एव सामूहिकता का सचार कर रहा था ।

जनता ने भूमिगत आन्दोलन और कार्यकर्ताओ का जो साथ दिया उसके पीछे लोकतन्त्र की व्यापक निष्ठाओं की प्रेरणा थीं । जनता के सघर्ष के इतिहास मे जो बल उत्साह पूर्वक संचारित किया गया उसका श्रेय लोकतन्त्र की अपनी आन्तरिक आत्मशक्ति को भी है ।

श्रीमती इदिरा गॉधी न आपातस्थिति लागू करके गिरफ्तारिया, सेसरशिप आदि से परिवर्तनकारी नेताओ एव आम जनता के बीच की सचार व्यवस्था काट दी थी । उनका सोचना यह था कि इससे ये नेता जनता से कट जायेगे और सत्ता के वास्तविक चरित्र का पर्दाफाश नही होगा । अत भूमिगत आन्दोलन के सामने सबसे बड़ा काम तोड़ी गयी सचार व्यवस्था को भूमिगत प्रचार अभियान के माध्यम से पुन स्थगित करना था । इसने बडी सफलता से जनता और क्रान्त्रिकारी नेताओ के बीच सचार हर कीमत पर बनाये रखा । उस्की गति सरकारी प्रचार से कम थी । लेकिन विश्वसनीयता सरकारी प्रचार से अधिक थी ।

भूमिगत आन्दोलन ने एक अन्य महत्वपूर्ण मुद्दे पर सरकार को बुरी तरह से पराजित किया । सिर्फ यह तथ्य कि सरकार एडी चोटी का जोर लगाकर भी लाखो भूमिगत कार्यकताओ को गिरफ्तार नही कर सकी, सरकार के लिये निराशाजनक और जनता के लिये आशा एव उत्साह का कारण बना रहा । नानाजी देशमुख और श्री जार्ज फर्नाडीज को सरकार जब तक गिरफ्तार नही कर सकी तब तक मात्र उनका गिरफ्तार नही किया जाना जनता के लिये चमत्कारिक था । इसी तरह प्रो0 सुब्रह्मण्यम स्वामी, श्री केदार नाथ साहनी एव जनसघ के अनेक नेताओ का अन्त तक गिरफ्तार न होना, जहॉ तानाशाही के लिये सिरदर्द का कारण था, वही यह आम जनता एव कार्यकर्ता के लिये आशा का प्रबल ज्योति स्तम्भ था ।

"भूमिगत आन्दोलन की तरफ से जो सत्याग्रह किया गया वह एक तरह से जनता एव सरकार के समक्ष भूमिगत - आन्दोलन की शक्ति का प्रदर्शन था । साथ ही प्रकट रुप मे कुछ नही होने के कारण जो मानसिक दुर्बलता लोकमानस मे पैदा हो सकती थी, उसे रोकने का प्रभावी उपकरण था ।" [1] भूमिगत आन्दोलन के सन्दर्भ मे श्री जार्ज

1. दीनानाथ मिश्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ 27

फर्नाडीज का रास्ता थोडा अलग था। जिस तरीके से 'लोक सघर्ष समिति' भूमिगत सघर्ष चला रही थी। कदाचित उनका उसमे विश्वास नही था। "लेकिन लक्ष्य के बारे मे मतभेद न होने के बावजूद तरीको के बारे मे मतभेद थे। वे गर्म रास्ते के हिमायती थे, अपने तरीके से वह कुछ कर भी रहे थे, लेकिन गर्म रास्ते का अर्थ यह नही कि वे खून खराबे के हिमायती थे। अलबत्ता वे खून खराबे और सरकार को ठप्प कर देने के बाकी रास्ते मे विवेक पूर्वक फर्क करते थे।" [1] इस तरह की गर्मी किसी भी मुल्क की आजाद तमन्नाओ की खास पूँजी होती है। कौन जनता है, अगर आपात काल और लम्बे समय तक चलता तो सघर्ष निराशोन्मत होकर उसी रास्ते मे चलने का बाध्य होता जिसकी दिशा श्री जार्ज फर्नाडीज़ ने दिखाई थी।

भूमिगत आन्दोलन के सन्दर्भ मे श्रीमती इदिरा गॉधी ने जो सचार अवरोधक पैदा किया, वे स्वय उसकी शिकार बनी। यह सचार अवरोध जहॉ भूमिगत आन्दोलन को बड़ा 'अवसर' देता है, वही श्रीमती इदिरा गॉधी को एक अर्थ मे पगु बना रहा था। उन्हे जनता की असली मनोदशा मालुम नही हो सकी। "यहॉ तक कि गुप्त चर व्यवस्था भी जनता की मनोदशा को सही तौर पर नही ऑक सकी। यही कारण है कि श्रीमती इदिरा गॉधी अपनी 'रिसर्च ऐण्ड एनालिसिस विग' द्वारा दिये गये सम्भावित चुनाव परिणाम के आकलन के मुगालते मं आकर और देश विदेश सब ओर से पड़ने वाले दबाव मे लोकसभा चुनाव (1977) करा बैठी।' [2]

नेतृत्व भूमिगत आन्दोलन का असली नेतृत्व कौन कर रहा था, उसे समझने के लिये थोडा विस्तार से जाना आवश्यक है। लोकनायक जय प्रकाश नारायण आपातस्थिति लागू होते ही गिरफ्तार कर लिये गये। जब वे छूटे ता उन पर कडी निगरानी बनी रही। इसलिये यह कहना कि भूमिगत आन्दोलन का नेतृत्व वे कर रहे थे सम्भव प्रतीत नही होता। परन्तु थोड़ी गहराई मे जाये तो श्री जय प्रकाश नारायण भूमिगत आन्दोलन के प्राण रुप नजर आते है। श्री जय प्रकाश नारायण की स्थूल काया भले ही चण्डीगढ के कैद खाने या जसलोक अस्पताल अथवा कदम कुआ के निवास स्थान पर कही भी रही हो, लेकिन अपनी प्रेरणा के रुप मे पूरे भूमिगत आन्दोलन में सब जगह स्थित थे। शायद ही कोई महीना गया हो जब श्री जय प्रकाश जी ने भूमिगत आन्दोलन के नाम कोई प्रेरणास्पद सन्देश जारी न किया हो। उन्होंने सभी स्वतन्त्रता प्रेमी भारतीयो के नाम अपने आह्वान मे कहा, "पूरे देश मे सभाये हो- आम जनता की तथा विभिन्न सस्थाओ एव सगठन की और उसमे मॉग की जाये कि आपातस्थिति उठाई जाये, राजनीतिक बन्दी छोड़े जाए, लोक सभा के चुनाव कराये जाये तथा प्रेस और बोलने की, विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता वापस दी जाए।" [3]

19 महीनो के दौरान उन्होंने हर महत्वपूर्ण मौके पर भूमिगत कार्यकर्ताओ को 'ऐक्शन प्रोग्राम' दिया। भूमिगत आन्दोलन के सारे साहित्य की वे धुरी थे। जनता पार्टी के गठन सम्बन्धी वार्ताओ के भी केन्द्र बिन्दु वही थे। सभी पक्षो के जो भी नेता बन्दी नही बनाये जा सके थे- वे बराबर उनसे मुलाकात करते रहते थे, जिससे विभिन्न दलो के शीर्षस्थ नेताओं के बीच नयी पार्टी के गठन की रुपरेखा पर भी विचार विमर्श किया जाता था। इसी सन्दर्भ मे "भूमिगत

---

1. वही पृष्ठ 28
2. वही, पृष्ठ 28
3. जय प्रकाश नारायण, बम्बई, 2 मई, 1976 (तरुण कान्ति, सघर्ष कार्यालय, पटना की ओर से प्रसारित)

आन्दोलन के दौरान श्री जय प्रकाश नारायण का 'लोकनायकत्व' अथवा 'वैयक्तिक चुम्बकत्व' अधिक प्रभावी हुआ। यही भूमिगत कार्यकर्ताओं के आत्मिक बल का पाथेय था। उनका व्यक्तित्व एक शक्तिशाली राजनैतिक चुम्बक बन गया। भारतीय राजनीति के अधिकाश शक्तिशाली राजनैतिक नेताओ को अपने लेफ्टिनेंट्स के रुप मे सहयोगी बना लेना, उनके क्रान्तिकारी नेतृत्व का एक जबरजस्त पहलू है। आदर्शवाद, चेतना और विचार के धरातल पर लोकनायक का नेतृत्व भूमिगत आन्दोलन को मिला, यह राजनैतिक परिवर्तन के भूमिगत आन्दोलन के इतिहास मे एक बहुत महत्वपूर्ण घटनाक्रम है।" [1]

भूमिगत आन्दोलन एवं राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ

आपातस्थिति के ठीक पहले 'लोक-सघर्ष समिति' का गठन हो गया था। इसमे भारतीय जनसघ, भारतीय लोकदल, सगठन काग्रेस, और सोशलिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियो के आलावा कुछ ऐसे लोग भी थे जिनका किसी पक्ष से सम्बन्ध नही था। इसके आलावा पजाब का अकाली दल भी इसमे था।

आपातस्थिति की घोषणा के बाद तमाम केन्द्रीय नेता पकड़ लिये गये किन्तु सघर्ष समिति के सचिव श्री नानाजी देशमुख ने पकड़े जाने से अपने आप को बाल बाल बचा लिया। असल मे भूमिगत आन्दोलन की प्रथम चुनौती उनके सम्मुख उपस्थित हुई। लोकनायक ने सघर्ष के नेतृत्व करने का दायित्व उन्हे ही दिया। उन्हे ही गिरफ्तारियो से छिन्न-भिन्न राजनैतिक शक्तियो को जोड़ने का काम करना था। उन्हे ही भूमिगत प्रचारतन्त्र के व्यापक अभियान का सूत्रपात करना था। "उन्होंने सभा पक्षो के भूमिगत नेताओ से- यथा सगठन काग्रेस के श्री रवीन्द्र वर्मा, श्री मोहिन्दर कौर, सोशलिस्ट पार्टी के श्री सुरेन्द्र मोहन, एव भारतीय लोकदल के प्रमुख नेताओ से सतत् सम्पर्क रखते हुये व्यापक पेमाने पर भूमिगत सगठन खड़ा किया।" [2]

भूमिगत आन्दोलन के निर्णयो का कार्यान्वियन मुख्य रुप से राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के कार्यकर्ताओं द्वारा ही हुआ। यह बिल्कुल अतिशयोक्ति नही कि यदि राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ न होता तो भूमिगत आन्दोलन उतनी सफलता से न चला होता, जितनी सफलता से आपात काल के दौरान चला। जब राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ पर प्रतिबन्ध लगाया गया तो उसके नेताओं को आश्चर्य नही हुआ क्योकि उसके नेता जानते थे कि श्रीमती इदिरा गॉधी का विपक्ष को दमन करने का यह एक स्वाभाविक कदम होगा। इस पर प्रतिबन्ध लगाने पर इसके अधिकतर प्रचारक भूमिगत हो गये,"परन्तु सघ के सभी सदस्य भूमिगत नही हो सके क्योकि श्रीमती इदिरा गॉधी ने विपक्ष का दमन करने मे कोई कसर नही छोड़ी थी। विपक्ष के मात्र छोटे-बडे कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार ही नही किया बल्कि उसके परिवारो को भी प्रभावित किया और यह घोषणा करा दी कि जिन व्यक्तियो को सरकार गिरफ्तार करना चाहती है, अगर उन्होंने गिरफ्तारी नही दी तो उनकी सम्पत्ति आदि को जब्त कर लिया जायेगा। इसलिये वे लोग, जिनके पास परिवार एवं सम्पत्ति थी भूमिगत नही हो सके।" [3]

---

1. दीनानाथ मिश्र, पूर्वोक्त, पृ0 30
2. वही, पृ0 31
3. कविता नारवेन-पूर्वोक्त, पृ0 150

ऐसी परिस्थिति मे "राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ ही ऐसा मजबूत सगठन (सवर्ग) था जिसमे बहुत बडी सख्या मे प्रचार को एव कार्यकर्ताओ के पास 'परिवार एव सम्पत्ति' नही थी। ये सघ के 'कुवारे एव पूर्णकालीन' सदस्य थे ओर इसी कारण ये अपने आपको इस 'मुक्ति आन्दोलन' मे पूर्णरुप से समर्पित कर सके।" [1]

सघ ने अपनी पूरी शक्ति से 'लोक सघर्ष समिति' के निर्णयो को कार्यान्वित किया। निर्णय के धरातल पर सघर्ष समिति के नेता सघ के सभी नेताओ से हर मौके पर विचार विमर्श करते थे। सही मायने मे सघ भूमिगत आन्दोलन की रीढ की हड्डी था, इसे सर्व श्री माधवराव मुले, श्री मोरोपन्त पिगले, श्री भाउराव देवरस, श्री बाबूराव मोघे, श्री दन्तोपन्त ठेगडी, और प्रोफेसर राजेन्द्र सिह के नेतृत्व मे लोक सघर्ष को सफल बनाने के लिये राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ ने अतुलनीय योगदान किया। "प्रान्तो मे, राजस्थान मे श्री ब्रहमदेव वर्मा, उत्तर प्रदेश मे श्री हरिश्चन्द्र, श्री अशोक जी, श्री जय गोपाल जी, श्री कौशल किशोर और श्री राम बहादुर राय, बिहार मे सर्वश्री मधुसूदन देव, श्री कैलाश पति मिश्र, और श्री गोविन्दाचार्य, मध्य प्रदेश मे बाबा साहेब मातू और श्री प्यारे लाल खण्डेलवाल, दिल्ली मे श्री मदन लाल खुराना, और श्री धनराज ओझा, श्री विश्व नाथ एव श्री सुरेश बाजपेई, दक्षिण मे श्री शेषाद्रि जी, बगाल मे श्री बसन्त राव भट्ट, हिमाचल मे श्री प्रेमचन्द्र, उडीसा मे श्री बापूराव पालधीकर, महाराष्ट्र मे श्री बसन्त राव केलकर, पजाब मे श्री नारायण दास कर्नाटक मे श्री महवराव, आन्ध्र मे श्री सोनैया, असम मे श्री श्रीकान्त जोशी वगैरह ऐसे नेता थे जिन्होने अपने क्षेत्रो मे भूमिगत आन्दोलन को कार्यान्वित किया।" [2]

राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ ने सबसे पहला कार्य लोगो के मन में बसी आतक एव भय की भावना का निकालकर उसने आत्मविश्वास भरना था। इस कार्य मे सघ काफी सफल रहा। सघ ने गिरफ्तार लोगो के परिवारो की भरपूर आर्थिक सहायता की। एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठाया जाता है कि जब राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ के पास अनुशासित सवर्ग का सगठन था तो उसने देश व्यापी बगावत क्यो नही की ? वास्तव मे इसके दो कारण थे। पहला शान्ति की परम्पराओ एव सहिष्णुता के सस्कारो ने हमारे स्वाभाविक बगावत के चरित्र को दबा दिया था और दूसरा इस प्रकार की बगावत एक गृह-युद्ध का रुप धारण कर सकती थी। जिस कारण तानाशाह सरकार को अपनी दमनात्मक कार्यवाही के लिये औचित्यता मिल जाती।

अत विपक्ष एव विशेषकर राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ ने बगावत के स्थान पर सत्याग्रह का सहारा लिया। दिसम्बर 1975 से जनवरी 1976 तक तानाशाही के खिलाफ देशभर मे सत्याग्रह हुआ। पूरे समाज में ऊपरी तौर से पूरी चुप्पी एव शक्ति के बावजूद जब 'लोक सघर्ष समिति' द्वारा सत्याग्रह का फैसला हुआ तो देश के सभी प्रदेशो के विभिन्न केन्द्रो मे सत्याग्रह हुये। "कर्नाटक, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान दिल्ली, गुजरात आदि कुछ राज्य मे सत्याग्रह आशातीत रुप से सफल रहा। अकेले कर्नाटक मे 15 हजार लोगो ने सत्याग्रह किया। देशभर मे सत्याग्रह एव जेल जाने वालो की सख्या एक लाख थी।" [3]

---

1 वही, पृ0 150-151
2. दीनानाथ मिश्र, पूर्वोक्त, पृ0 33
3. दीनानाथ मिश्र पूर्वोक्त, पृ0 48

लोक सघर्ष समिति मे जो राजनीतिक दल थे, उसमे सगठन कांग्रेस, भारतीय लोकदल और समाजवादी पार्टी के प्रमुख और जुझारु नेता गिरफ्तार कर लिये गये थे और कुछ भूमिगत हो गये थे। केडर वाली जनसघ के भी अधिकाश लोग गिरफ्तार हो गये थे ज्यादातर राज्यो मे 'नेतृत्व की दूसरी पक्ति' के लोग भूमिगत हो गये थे। और इन्होने ही अन्य राजनीतिक दलो के भूमिगत कार्यकर्ताओ के साथ मिलकर भूमिगत आन्दोलन का वास्तविक सचालन किया।

सघ के सर सघ चालक श्री बाला साहब देवरस प्रारम्भ मे गिरफ्तार हो गये थे परन्तु सघ के बहुत से केन्द्रीय नेताओ को पुलिस बहुत समय तक गिरफ्तार न कर सकी आपातकाल के उत्तरार्ध मे दक्षिणाचल के प्रचारक श्री यादवराज जोशी को पुलिस ने पकड लिया। परन्तु श्री माधव राव मूले, श्री मोरापन्त पिगले, श्री भाऊराव देवरस, श्री बापूराव मोधे, प्रोफेसर राजेन्द्र सिह, श्री दन्तोपन्त ठेगडी, श्री शेषाद्रि आदि मे से पुलिस किसी को भी गिरफ्तार नही कर सकी। हालकि ये सब देश भर मे प्रवास करते रहे और भूमिगत आन्दोलन के माध्यम से नये राजनैतिक गठबधन के प्रयास करते रहे। आपातकाल के दौरान सचार माध्यमो एव प्रेस पर सरकार का नियन्त्रण था, वह गलत सूचनाये देकर जनता को गुमराह कर रही थी। इसलिये विपक्ष द्वारा महसूस किया गया कि किसी प्रकार ऐसे प्रचार तन्त्र को जीवित रखा जाय जो जनता के सामने सरकार की वास्तविक स्थिति रख सके। अत राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ ने अन्य विपक्षी राजनीतिक दलो के माध्यम से प्रचार तन्त्र की स्थापना की जिससे भूमिगत आन्दोलन मे एक नया जीवन आ गया। इस आन्दोलन के माध्यम से विपक्षी राजनीतिक दलो को एक साथ कार्य करने का अवसर मिला, इसे विपक्षी एकता का मार्ग प्रशस्त हुआ।

भूमिगत- साहित्य

आपातकाल की घोषणा के प्रथम 4-5 सप्ताह तक दिल्ली मे कई स्थान से भूमिगत पर्चे निकलते रहे। पुलिस के आतक एव साधन की कमी के कारण इसमे कुछ पर्चे निकलना बद हो गये परन्तु एक 'भूमिगत पेपर' जो पुलिस एव इन्टेलीजेंस, सभी की आखो मे धूल झोक कर निकलता रहा वह था- 'जनवाणी'। यह साप्तहिक पत्र दिल्ली के आसपास के ज़िलो के आलावा, बम्बई,कलकत्ता, हरियाणा, पजाब एव राजस्थान मे भी काफी लोकप्रिय साबित हुआ। इसके लोकप्रिय होने का कारण यह था कि इसमे दिल्ली ही नही वरन् देश के विभिन्न भागो की खबरे छपती थी। ऐसा इसलिये सम्भव हो सका क्योंकि 'दिल्ली, सघर्ष समिति, 'लोक सघर्ष समिति' से लगातार सम्पर्क बनाये हुये थी। यह पत्र सरकार के लिये सिरदर्द बना हुआ था।

जनवाणी के आलावा कुछ अन्य प्रमुख भूमिगत पेपर, प्रतिरोध, [1] युवा सघर्ष [2], रेजिस्टेन्स [3] आदि थे वैसे तो देश विभिन्न भागो मे भूमिगत पेपर एव बुलेटिन निकलती थी जैसे 'लोक सघर्प', 'सत्य-समाचार', 'दिल्ली न्यूज

---

1 'प्रतिरोध का सम्पादन भारतीय लोक दल के युवा नेता श्री राजेन्द्र चौधरी द्वारा किया जाता था जिसकी सहायता श्री के0 सी0 त्यागी- एव श्री सत्य देव त्रिपाठी जैसे भूमिगत नेता कर रहे थे।

2 'युवा सघर्ष' एक अन्य भारतीय लोक दल के युवा नेता श्री राम शकर के प्रयासो का फल था।

3 रिजिस्टन्स का सम्पादन समाजवादी युवा नेता श्री ललित मोहन गौतम कर रहे थे। उपर्युक्त तीनो पत्र पुलिस द्वारा जब्त एव बन्द करा दिये गये।

बुलेटिन', 'दर्पण, मार्शल', 'वेस्ट बगाल', 'न्यूज लेटर', 'सत्य भारत', 'असली-समाचार', 'कर्नाटक न्यूजलेटर', केरल न्यूजलेटर आदि है ।'[1] इन पत्र पत्रिकाओ के माध्यम से लोगो को सरकार द्वारा की गयी गिरफ्तारियो, जेल मे बन्दियो को दी गयी प्रताड़नाओ एव क्रूरताओ का पता चलता रहता था । भूमिगत साहित्य ने श्री सजय गॉधी के भ्रष्ट आचारण का कच्चा चिट्ठा लोगो के सामने रखा । प्रचारको ने इन पत्रों के वितरण मे बडा जोखिम उठाया । वे अर्धरात्रि के समय घरो दुकानो एव स्कूलो को दिवारो मे इन्हे चिपकाते थे । इसके आवाला प्रचारको ने इन पत्रो को देश के लगभग 20,000 पतो मे डाक द्वारा प्रेषित किया । इससे राष्ट्र-जागरणके आन्दोलन को बल मिला और विपक्ष द्वारा अपनाया गया प्रतिरोध सरकार के दमन के बावजूद टिका रहा ।'[2]

विदेशी समर्थन

नेतृत्व, सगठन एव आदर्शवादी लक्ष्य के अतिरिक्त एक अन्य तत्व, जो भूमिगत आन्दोलन के लिये बहुत आवश्यक होता है,वह है- विदेशी जनमत । आज के विश्व में घरेलू (आन्तरिक) स्थितियों पर अन्तर्राष्ट्रीय जनमत सन्तुलन का व्यापक असर पडता ह । अन्तर्राष्ट्रीय जनमत दश की सरकार पर दबाव डालकर उसे देशीय जन भावनाओ के अनुकूल बनाने का कार्य करता है । इसलिये स्वाभाविक रुप से कोई भी आन्दोलन अपनी समस्या का अन्तर्राष्ट्रीय करण करता है । आन्दोलन विरोधी शक्तिया भी अपने ताने बाने को स्थानीय स्थितियो के परिपेक्षय मे विदेशी जनता एव सरकार को प्रभावित करने के लिये विदेशो मे फैलाती है । इसलिये श्रीमती इदिरा गॉधी ने भी अपना दृष्टिकोण दुनिया भर मे फेलाने की भरपूर कोशिश की ।

लेकिन भूमिगत आन्दोलन के प्रतिनिधियो को स्वाभाविक रुप से व्यापक समर्थन अप्रवासी भारतीयो और दुनिया की 'समझदार मुक्त जनता' से मिला । इस समय "अन्तर्राष्ट्रीय जनमत भी श्रीमती इदिरा गाँधी के विरुद्ध था । एक तो श्रीमती इदिरा गॉधी द्वारा भारत को सोवियत सघ के साथ जोड़ देने के कारण स्वाभाविक रुप से स्वतन्त्र विश्व के जनमानस का झुकाव भूमिगत आन्दोलन के साथ था । दूसरे भारत के भूमिगत आन्दोलन ने रुपये पैसों एव साधनो के लिये विदेशी मदद का निषेध किया था अलबत्ता भूमिगत आन्दोलन विदेशो से नैतिक एव भावनात्मक समर्थन चाहता था और वह उसे मिला ।"[3]

अन्तर्राष्ट्रीय जनमत की महत्ता समझकर भूमिगत आन्दोलन के द्वारा विदेश भेजे गये कार्यकर्ताओं ने उपलब्ध स्थितियो का इस्तेमाल भूमिगत आन्दोलन के समर्थन के लिये किया । विदेशो मे प्रचार के लिये यूरोप, अमेरिका, कनाडा, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया मे रहने वाले भारतीयों की मदद से विभिन्न 'सेल एव सगठन' बनाये गये । इसके लिये 'लोक सघर्ष समिति' ने लगभग डेढ़ दर्जन प्रमुख कार्यकर्ताओ को गुप्त तरीके से विदेश भेजा । इसमे प्रोफेसर सुब्रहमण्यम स्वामी, श्री केदारनाथ साहनी, और श्री मकरन्द देसाई आदि प्रमुख थे । श्री राम जेठ मलानी एवं श्रीमती

---

1 देखे कविता नारवेन पूर्वोक्त, पृ() 154

2 वही ।

3. दीनानाथ मिश्र पूर्वोक्त, पृ() 37

लैला फर्नांडीज इसी हेतु विदेश गये ।इन व्यक्तियों तथा 'फ्रेंडस ऑफ इण्डिया सोसायटी' एवं 'इण्डिया फॉर डेमोक्रेसी' जैसी संस्थाओं के प्रयासों से सरकारी प्रचार का प्रभाव क्षीण हो गया । [1]

इन नेताओं ने विश्व के जनमत को श्रीमती इंदिरा गाँधी की वास्तविकता से अवगत कराया जिससे इन्दिरा सरकार की विदेशों में कटु आलोचना हुई । 5 मार्च, 1976 को 'न्यूयार्क टाइम्स' में पाल ग्राहम्स की एक खबर प्रकाशित हुई, जिसमें आठ अमरीकियों द्वारा पारित एक 'विरोध प्रस्ताव' का विस्तार से उल्लेख है । प्रस्ताव में 26 जून 1975 को भारत में आपात स्थिति को घोषणा और नागरिकों के मानवीय अधिकार की समाप्ति पर गहरी चिन्ता व्यक्त की गयी । साथ ही साथ यह मांग की गयी कि भारतीय नागरिकों के ये अधिकार शीघ्र वापस किये जाये और श्रीमती गाँधी की वैयक्तिक तानाशाही का दौर खत्म हो । प्रस्ताव के शब्द है 'हम भारत में होने वाली घटनाओं की विशेषरुप से भत्रसना करते है, क्योंकि वहाँ आजादी की एक लम्बी लड़ाई के बाद लोकतन्त्र की स्थापना हुई थी, और इस लड़ाई का नेतृत्व उन लोगों ने किया जो इस शताब्दी में मानव अधिकारों के महान प्रवर्तको में रहे हैं । हम इस लिये भी इसकी भत्रसना करते है कि लोकतान्त्रिक भारत ने मानव अधिकारों के प्रति जो सम्मान व्यक्त किया है, वह वर्षो से नये आजाद होने वाले और प्रगतिशील देशों के लिये प्रकाश स्तम्भ की तरह था ।' [2]

प्रस्ताव तैयार एवं प्रसारित करने में मूख्य भूमिका रही श्रीमती डोरोथी नार्मन की, जिन्होंने जवाहर लाल नेहरु का जीवन चरित्र लिखा हैं । इसके अलावा हिन्दुस्तान टाइम्स के भूतपूर्व संवाददाता सिडनी हजवर्ग और पोर्ट्रेट आंफ इण्डिया के लेखक तथा न्यूयार्कर मैगर्जीन से सम्बद्ध वेद मेहता भी थे । हस्ताक्षर करने वालों में विज्ञान, कला, शिक्षा, पत्रकारिता, खेलकूद, साहित्य और संगीत के क्षेत्रों के प्रतिष्ठित लोग शरीक थे । इसमें भाषा विशेषज्ञ डा0 नौम शोम्सकी, प्रख्यात कवि एलेनगिसंबर्ग, लोकगीत गायक जोन ब्राज, हारवर्ड विश्वविद्यालय के समाज शास्त्र के विभाग के डा0 डेनियल ब्रेल, प्रसिद्ध कलाकार रिशाएकाउस, न्यूयार्क विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के प्रोफेसर इरविंग हो, विश्वधर्म एवं शान्ति सम्मेलन के प्रधान सचिव डा0 होमर जैक, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश डा0 फिलिप जेसप के आलावा चार नोबुल पुरस्कार विजेता भी शामिल थे- जिसमें नाम है- सालबेडार लूटिया (मेडिसिन-1969), डा0 लाइनस पावलिंग (रसायन शास्त्र-1954); डा0 पाल सैमुएलसन (अर्थशास्त्र-1970), डा0 जार्ज वाल्ड (शरीर विज्ञान-1967). ।' [3]

वास्तव में यह प्रचार एवं हस्ताक्षर पत्र अमरीकी जीवन के उस प्रबुद्ध वर्ग की नुमाइदंगी करते हैं, जो मानव अधिकारों में अटूट विश्वास रखता है और विश्व के किसी भी भाग में इसकी सुरक्षा एवं प्राप्ति के लिये छेड़े गये संघर्ष का पूरा-पूरा समर्थन करता है । श्रीमती इंदिरा गाँधी के प्रचार तन्त्र के विरोध में विपक्ष का भूमिगत प्रचार तन्त्र एवं साहित्य, वास्तव में विपक्ष की बहुत बड़ी सफलता थी जिसमें देश-विदेश में श्रीमती गाँधी के तानाशाही रवैये का पर्दाफाश किया गया । भूमिगत आन्दोलन के जरिये विपक्ष को ऐसा परिवेश या वातावरण मिला जिसें नये राजनीतिक

---

1. देश के बाहर के भारतीयों ने इसमें खूब सहयोग किया । इन दोनों संस्थाओं का गठन विपक्ष द्वारा किया गया इनका मुख्य ध्येय देश तथा मुख्य रुप से विदेश में इंदिरा सरकार के मिथ्या प्रचार का खण्डन करके विदेश स्थित भारतीय एवं अन्य स्वतन्त्रता प्रेमी प्रबुद्ध-जनों को भारत की वर्तमान स्थिति से अवगत कराना था ।
2. देखें; 'तरुण क्रान्ति' बिहार प्रदेश छात्र जन संघर्ष की बुलेटिन, जून 5, 1976.
3. वही.

विपक्षी दलों द्वारा कांग्रेस के राष्ट्रीय विकल्प की तलाश

विलय एवं विघट के सैद्धान्तिक आधार

जनता पार्टी की उदय एक ऐतिहासिक घटना थी, जिसके भारतीय राजनीतिक मे दूरगामी परिणाम हुए । सच्चे अर्थो मे सम्पूर्ण "जनता प्रक्रिया" (Janata Phenomenon) को समझने के लिये, विलय एव विभाजन की प्रक्रिया को समझना आवश्यक है । "राजनीतिक दल अत्यधिक विचार विमर्श करने के पश्चात विलय की प्रक्रिया मे भाग लेते है । अत्यधिक चुनौती पूर्ण राजनीतिक घटनाओ, राजनीतिक नेतृत्व, दलीय नौकरो शाही एव बड़ी सख्या मे दलीय सदस्यो के दबाव के कारण चार या पाच राजनीतिक दलो का विलय होता है, तथा अत्यन्त बाध्यकारी परिस्थितियो मे व्यापक सामाजिक एव राजनीतिक लक्ष्यो के लिये, राजनीति नेतृत्व अपने राजनीतिक अस्तित्व का समर्पण करते है ।" [1]

कभी-2 छोटे एव निराश राजनीतिक दल मात्र अपने अस्तित्व के लिये आपस मे विलय करके एक मजबूत राजनीतिक इकाई बनाते है,ताकि वे मजबूत राजनीतिक विपक्ष की भूमिका निभा सके । देश का बदलता हुआ सामाजिक एव राजनीतिक वातावरण भी 'विलय एव विभाजन की प्रक्रिया' को बढ़ावा देते है । सामाजिक परिवर्तन तथा कुछ नये राजनीतिक गुटो एव ताकतो के उदय के कारण पुराने राजनीतिक सगठन नयी "लोक-मॉगो" को पूरा करने मे असमर्थ हो जाते है और इन मॉगो के अनुरुप नये राजनीतिक सगठनो का उदय होता है । पश्चिमी समाज मे 'मजदूर वर्ग' के उदय ने अनेक नये राजनीतिक गुटो को जन्म दिया । ये गुट अन्ततोगत्वा मजबूत राजनीतिक दलो मे बदल गये । इन समाजो के सामाजिक सम्बन्धो मे मौलिक परिवर्तन आ रहा था इसलिये समाजवादी राजनीतिक दलो को एक "सामाजिक एव राजनीतिक सत्यता" के रुप मे स्वीकार किया गया । आज स्थिति पुन बदल रही है ।

एक ,राजनीतिक दल या गुट अपनी बढती हुई राजनीतिक सगतता को पहचान कर, सक्रिय राजनीति मे अपनी भूमिका को बनाये रखने के लिये किसी शक्तिशाली राजनीतिक दल से सम्पर्क करते है । इसी सिद्धान्त के आधार पर 'सीमान्त राजनीतिक गुट' भी किसी शक्तिशाली राजनीतिक गुट से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेते है, वैचारिक मतभेदो के आधार पर विभिन्नता, इन दलो के वास्तविक क्रिया कलापो मे बहुत ही कम प्रतिबिम्बित होती है । सक्षेप मे, 'राजनीतिक दलो के विलय और विभाजन की रणनीति, औचित्यता, अस्तित्व की रक्षा, व्यक्तित्व के समीकरण और सामाजिक परिवर्तन से उत्पन्न बाध्यताओ द्वारा निर्देशित होती है ।' [2]

जनता पार्टी का गठन उन गैर- साम्यवादी राजनीतिक दलो द्वारा हुआ, जो 'एक दलीय प्रधान व्यवस्था' के विरुद्ध सघर्ष कर रहे थे । इस 'एक दल प्रधानता वाली बहुदलीय व्यवस्था' ने भारतीय प्रजातन्त्र के लिये खतरा उत्पन्न

---

1 सी0 पी0 भाम्भरी "दि जनता पार्टी ए प्रोफाइल" नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली, 1980, पृ0 2

2. सी0 पी0 भाम्भरी "दि जनता पार्टी ए प्रोफाइल", पूर्वोक्त पृ0 3

कर दिया था। 'आपातस्थिति के उत्पीडन एव श्री जय प्रकाश नारायण द्वारा विपक्षी एकता के आह्वान ने सभी गैर-काग्रेसी एव गैर- साम्यवादी सगठनो को करीब ला दिया। ये दल ऐसी व्यवस्था की तलाश मे थे, जो निरकुश दलीय व्यवस्था का विकल्प' हो एव उनके राजनीतिक अस्तित्व की रक्षा भी कर सके।[1] यह विलय कर्ताओं (राजनीतिक दलो) का ऐतिहासिक प्रयास था "क्योंकि यह देश मे प्रजातन्त्र को जीवित रखने के नाम पर किया गया था।"[2]

विपक्षी एकता के पूर्ववर्ती प्रयास और अनुभव

भारतीय राजनीति मे विपक्ष की भूमिका अत्यन्त शोचनीय रही है। इसका मूल कारण भारतीय दलीय व्यवस्था का स्वरुप था भारत मे "एक दल प्रभावी बहु-दलीय व्यवस्था" है, जिसमे एक प्रभावी दल (काग्रेस) सत्ता पर एकाधिकार प्राप्त कर लेता है जबकि विपक्ष बिखरा हुआ रहता है। चूकि भारत के अधिकाश राजनीतिक दल सिद्धान्त एव विचार को नही, बल्कि व्यक्ति को केन्द्र बनाकर गठित होते रहे है अत इनके विलय मे व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाएं एव अवसरवादिता हावी रहती है। यही कारण है विभिन्न राजनीतिक दल विलय के लिये इच्छुक नही होते है। अगर विलय के लिये राजी हुये तो विलय के बाद भी अपने घटक के अस्तित्व के प्रति चिन्तित रहते है। राजनीतिक दलो की यह भावना विलय के लिये घातक एव दुर्भाग्यपूर्ण है। इससे एक सशक्त विपक्ष के निर्माण की सम्भावना क्षीण हो जाती है।

स्वतन्त्रता के बाद सत्ता सीन काग्रेस के विरुद्ध विपक्षी एकता के अनेक प्रयास हुये। नेहरु काल की राजनीति के सर्वप्रमुख तथ्य थे— केन्द्रीय एव राज्य सत्ता पर काग्रेस का एकाधिकार और श्री जवाहरलाल नेहरु का करिश्मावादी व्यक्तित्व। इन दोनो ने विपक्षी दलो की भूमिका एव राज्य की राजनीतिक को लगभग शून्य कर दिया था, इस काल मे राज्यो की राजनीति केन्द्र द्वारा निर्देशित होती थी। सन् 1967 के चौथे ग्राम चुनाव मे कतिपय राज्यो मे काग्रेस की हार तथा 1969 मे काग्रेस के महाविघटन ने विपक्षी एकता की प्रक्रिया मे उत्प्रेरक का काम किया।

चौथा आम चुनाव (1967) "चतुर्थ आम चुनाव अवसाद निराशा, अनिश्चितता, और लगभग लगातार आन्दोलनो की वातावरण मे सम्पन्न हुये"।[3] इस चुनाव को प्रथम वास्तविक आम चुनाव की सज्ञा दी गयी। इन चुनाव परिणामो ने असदिग्ध रुप से स्पष्ट कर दिया कि भारतीय जनता परिवर्तन के लिये आतुर है यद्यपि केन्द्र मे राजनीतिक सत्ता काग्रेस के पक्ष मे रही लेकिन लोकसभा मे काग्रेस की सदस्य सख्या बहुत कम हो गयी। उस समय भारतीय सघ मे सत्रह राज्य थे। सोलह राज्यो मे चुनावो के परिणाम स्वरुप आठ राज्यों- आन्ध्र प्रदेश, असम, गुजरात, हरियाणा, जम्मू और कश्मीर, मैसूर, महाराष्ट्र एव मध्य प्रदेश मे काग्रेस को बहुमत मिला और उसकी सरकारे बनी। मद्रास मे सी० एम० एन्नादुराई के नेतृत्व मे डी० एम० के० को पूर्ण बहुमत मिला। शेष सात राज्यो में 'सविद सरकारे' बनी। इसमे छ. राज्यो —बिहार, केरल, उडीसा, पजाब, उ०प्र० और पश्चिमी बगाल मे गैर-काग्रेसी 'सविद- सरकारे' बनी जबकि राजस्थान में काग्रेस के नेतृत्व मे मिली जुली सरकार बनी। कुछ दिनो बाद हरियाणा एव मध्य प्रदेश मे काग्रेस मे दल बदल के कारण गैर काग्रेसी मन्त्रिमण्डल का निर्माण हुआ। नागालैण्ड मे 1964 के चुनाव के बाद नागा

---

1. जे० सी० जौहरी "भारतीय शासन एव राजनीति", स्टर्लिग पब्लिशर्स प्राइवेट लि०, नई दिल्ली, 1982, पृ0 896
2. सी० पी० भाम्भरी पूर्वोक्त, पृ० 3
3. नारमन डी० पामर "भारत के चतुर्थ आम चुनाव (एसियन सर्वे भाग मई, 1967) पृ0 277

नेशनलिस्ट पार्टी सत्ता मे थी। इन चुनावो से राज्यो की राजनीति मे 'सविद सरकारो' का दौर प्रारम्भ हुआ और दल-बदल की दूषित प्रवृत्ति भी प्रबल हो गयी।

'भारतीय राजनीति मे प्रथम बार कई राज्यो मे विपक्षी दलो ने 'मिली जुली सरकार' बनाकर कांग्रेस का विकल्प प्रस्तुत किया। ये सभी सरकारे गैर- कांग्रेसवाद के नकारात्मक आधार पर निर्मित हुयी थी। सरकार के गठन के तुरन्त बाद इनमे आन्तरिक विरोधाभास परिलक्षित होने लगे। इसी कारण इसमे से कोई भी सरकार दो वर्ष से ज्यादा नही चल सकी। 'आयाराम-गयाराम' की तर्ज पर मन्त्रिमण्डल बनते बिगडते रहे। "इन सविद सरकारो ने एक ओर साम्यवादी दलो एव दूसरी ओर जनसघ से समझौता किया था अत यह स्पष्ट रुप से यह एक राजनीतिक औचित्यता पर आधारित व्यवस्था थी।"[1]

फरवरी 1967 के चतुर्थ आम चुनाव का भारतीय राजनीति मे व्यापक प्रभाव पडा इसके कारण भारतीय राजनीतिक एव दलीय व्यवस्था मे मौलिक परिवर्तन दृष्टि गोचर हुए। कांग्रेस को राज्यो के साथ-साथ केन्द्र मे भी आघात लगा। केन्द्र मे उसे बहुमत तो मिला परन्तु लोकसभा मे कुल 520 स्थानो मे मात्र 283 स्थान ही प्राप्त हुए। जबकि अनेक विपक्षी दलो—स्वतन्त्र दल, जनसघ सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की स्थिति मे सुधार हुआ। कुल विपक्षी दलो (एव निर्दलीय सदस्यो को मिलाकर) को 237 स्थान प्राप्त हुए। (देखे सारणी सख्या-2)

दलीय व्यवस्था के विकास के इस बिन्दु पर ऐसा प्रतीत हुआ कि भारतीय जनता का मोह कांग्रेस से भग हो रहा है, और "एक दलीय प्रभावक बहुदलीय व्यवस्था" "बहुदलीय व्यवस्था" मे परिवर्तित हो रही है। वैसे इस स्थिति मे ऐसा नही प्रतीत हो रहा था कि एक 'सशक्त विपक्ष' का उदय हो रहा है परन्तु सामूहिक विपक्ष की स्थिति अपनी पूर्व स्थिति से ठीक थी। ससदीय व्यवस्था की सफलता के लिये बहुदलीय व्यवस्था नही बल्कि 'दो दलीय व्यवस्था' आवश्यक होती है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था ऐसी है कि यहाँ दो दलीय व्यवस्था का जन्म एक दूर की सम्भावना लगती है। परन्तु सशक्त विपक्ष के निर्माण के लिये विरोधी दलो मे सुगबुगाहट प्रारम्भ हो गयी थी, अनेक विद्धानो का मत था कि "इन चुनाव परिणामो से ऐसा प्रतीत होता है कि भारत मे 'एक दल प्रभावी व्यवस्था' का अन्त हो गया है।"[2]

कांग्रेस मे मतभेद तो प्रारम्भ से ही थे, चतुर्थ आम चुनाव और 1969 मे कतिपय राज्यो (बिहार, पजाब, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बगाल एव हरियाणा) मे मध्यावधि चुनावो से इसमे वृद्धि हुई। 1969 मे कांग्रेस का विभाजन हो गया —सत्ता कांग्रेस एव सगठन कांग्रेस। कांग्रेस के विभाजन के बाद सत्ता कांग्रेस अल्पमत मे रह गयी। लेकिन श्रीमती इदिरा गाँधी द्वारा भारतीय साम्यवादी दल, द्रविड मुनेत्र कड़गम, प्रजा समाजवादी दल और निर्दलीय सदस्यो की सहायता से अपनी सरकार का सचालन किया जाता रहा। यह सरकार भी मूलत. 'एक सविद सरकार' थी। भारत मे केन्द्र स्तर पर 'सविद सरकार' का यह प्रथम अनुभव था। अपनी प्रकृति के अनुरुप मिली जुली सरकार अटक-अटक कर चल रही थी और "श्रीमती इदिरा गाँधी विभिन्न राजनीतिक दलो के समर्थन से अपनी सरकार के सचालन मे

---

1. ब्रहमदत्त "फाइव हेडेड मॉन्सटर ए फैकचुअल नरेटिव ऑफ दि जेनिसिस ऑफ जनता पार्टी", सर्ज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, अगस्त 1978, पृ0 1
2. इकबाल नारायण "स्टेट पोलिटिक्स इन इण्डिया", मेरठ, 1967, पृ0 64-3

असुविधा महसूस कर रही थी । अत उन्होंने राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि को लोकसभा भग करने का परामर्श दिया । राष्ट्रपति द्वारा 27 दिसम्बर 1970 को लोकसभा भग करके मध्यावधि चुनाव की घोषणा की गयी ।[1]

पचम (मध्यावधि) आम चुनाव 1971 इन चुनाव मे सगठन काग्रेस, जनसघ, स्वतन्त्र दल और सयुक्त समाजवादी दल द्वारा 'चार दलीय मोर्चे' का निर्माण किया गया । काग्रेस को आन्तरिक एव बाह्य दोनो स्तरो पर विरोध का सामना करना पड रहा था । ऐसी स्थिति मे यह 'चार दलीय मोर्चा' केन्द्र मे अपनी सरकार की स्थापना या पर्याप्त 'शक्तिशाली विरोधी दल' का स्थान ग्रहण करने के प्रति बहुत अधिक आशान्वित था । लेकिन चुनाव परिणाम विपक्षी दलो की आशाओ के नितान्त विपरीत रहे । चुनाव मे काग्रेस को अपूर्व सफलता मिली जिसमे सत्ता काग्रेस का कुल 518 स्थानो मे 352 स्थान प्राप्त हुए । (देखे सारणी सख्या 3)

सत्ता काग्रेस द्वारा मार्च 1972 मे सत्रह राज्यो एव 2 केन्द्र शासित प्रदेशो मे आम चुनाव की घोषणा की गयी विपक्षी दलो ने इसका विरोध किया क्योकि उनका मानना था कि दिसम्बर 1971 के 'भारत-पाक युद्ध' के बाद इसका अत्याधिक बोझ जनता पर पडेगा परन्तु श्रीमती गाँधी अपने निर्णय मे अटल रही ।इन विधान सभाओं के चुनावो के परिणाम [2] आश्चर्य जनक रहे, काग्रेस को 15 राज्यो एव एक केन्द्र शासित प्रदेश मे बहुमत प्राप्त हुआ ।

सन् 1971-72 के लोकसभा एव राज्य विधान सभाओ के चुनावो परिणामो ने विपक्षी एकता के प्रतीक 'सयुक्त विधायक दल' [3], एव 'चार दलीय मोर्चे' (महागठबन्धन) के अस्तित्व को धूल मे मिला दिया । विपक्ष की अपमान-जनक हार ने सिद्ध कर दिया कि जन साधारण का विश्वास पूरे विपक्ष से उठ गया है । काग्रेस स्थायी - सरकार के नाम पर सत्ता प्राप्त करने मे सफल रही । काग्रेस की सफलता का मूल कारण यह है कि "वास्तव मे काग्रेस कमोवेश विभिन्न राजनीतिक हितो, मनोभावो का वृहद गठबन्धन है, जिसमे विभिन्न विचारो एव तत्वो को आत्मसात करने एव अपने अनुकूल बनाने की व्यापक क्षमता है । इस सगठन मे अनेक महापुरुषो ने विभिन्न दृष्टिकोण रखते हुए भी एक झण्डे के नीचे मिल जुलकर कार्य किया है ।" [4]

काग्रेस की इस सफलता ने दलीय व्यवस्था के पूर्व निष्कर्षो को गलत सिद्ध कर दिया कि काग्रेस का 'एक प्रभावी दल" के रुप मे अस्तित्व समाप्त हो गया है और सशक्त विपक्ष का शनै शनै उदय हो रहा हे । भारतीय मतदाता का साधारणतया "मत व्यवहार" रहा है कि वह उसी दल को समर्थन देता रहा है जो स्थायी सरकार बना

---

1. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली दिसम्बर 28, 1970
2. मार्च 1972 मे 17 राज्यों— आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, कर्नाटक, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, पजाब, मध्य प्रदेश, राजस्थान, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, पश्चिमी बगाल, त्रिपुरा, जम्मू-कश्मीर, एव केन्द्र शासित प्रदेश- गोवा एव दिल्ली मे चुनाव हुए इसमे मेघालय, एव गोवा को छोडकर शेष स्थानो मे काग्रेस सत्ता मे आयी । मेघालय में ऑल पार्टीज हिल लीडर कांफ्रेंस एव गोवा मे महाराष्ट्रवादी गोमन्तक दल की सरकार बनी ।
3. मार्च 1967 मे चतुर्थ आम चुनाव के बाद जिन राज्यो मे काग्रेस को बहुमत नही मिला । वहा लगभग सभी विपक्षी दलो ने मिलकर "सयुक्त विधायक दल" का निर्माण किया । जेसे उ0 प्र0 मे निर्मित 'सयुक्त विधायक दल' मे चरणसिह गुट, (जन काग्रेस), प्रसोपा, ससोपा, सी0 पी0 आई, सी0 पी0 आई (एम0), स्वतन्त्र पार्टी, जनसघ आदि शामिल थे ।
4. डी0 सी0 पावते "कोअलिशन गवर्नमेल्टस् देयर प्राब्लम एण्ड प्रोस्पेक्ट", एन0 सी0 साहनी (एडिटेड) "'कोअलिशन पोलिटिक्स इन इण्डिया", पृ0 156

सके । 1967 के चुनाव के बाद कई राज्यो मे 'सविद सरकार' बनी थी । वे सभी असफल हो चुकी थी अत 1971 के मध्यावधि चुनाव मे जनता ने यह महसूस किया कि यदि केन्द्र मे किसी दल का बहुमत नही मिला तो यही स्थिति उत्पन्न होगी । जनता ने भारी मतो से काग्रेस (सत्ता) को विजय बनाया । "1971 के चुनाव परिणामो ने भारतीय राजनीति के प्राय सभी देशी विदेशी प्रक्षको को हतप्रभ कर दिया था, किसी को भी यहाँ तक कि सत्ता काग्रेस की नेता श्रीमती इन्दिरा गाँधी को भी यह आशा नही थी कि सत्ता कांग्रेस को लोक-सभा मे दो-तिहाई बहुमत प्राप्त हो सकेगा ।" [1] इन परिणामो से विपक्ष को बहुत निराशा हुई परन्तु शीघ्र से विपक्षी एकता के प्रयास पुन प्रारम्भ हुए ।

1971-72 के लोक सभा एव विधान सभा चुनाव मे विपक्षी दलो की हार 'विपक्षी एकता' के मुँह पर करारा तमाचा था । काग्रेस एक प्रभावी दल के रुप मे पुन उभरी थी और विपक्ष पूर्णतया बिखर गया था । भारतीय दलीय व्यवस्था व्यक्ति पर आधारित है एव इसके वैचारिक मतभेद भी मूलत अहम् के सघर्ष के प्रतिरुप है । यह सत्य है कि भारत मे घोर दक्षिण पथी दल-जनसघ एव वामपथी साम्यवादी दलो का अस्तित्व है । परन्तु वैचारिक पृष्ठभूमि पर आधारित जनसघ एव साम्यवादी दलो ने सत्ता एव चुनावी लाभ के लिये समय-समय पर "गैर विचारधारावादी" दलो से समझौता किया है । भारतीय दलो की यही प्रकृति 'दलीय एकता एव दलीय विघटन' की मूल प्रेरणा रही है । 1971-72 की हार के बाद विभिन्न विपक्षी दल स्वत ही पुन काग्रेस के विरुद्ध मोर्चा बनाने के प्रयास मे जुट गये थे एव उनके द्वारा किये गये प्रयासो से 'विपक्षी एकता' को नयी दिशा मिली । श्री जय प्रकाश नारायण द्वारा चलाये गये आन्दोलनो ने इस एकता को प्रोत्साहित किया । सभी गैर साम्यवादी विपक्षी दलो ने इस आन्दोलन का समर्थन किया इससे उनके दृष्टिकोण मे परिवर्तन आया और इससे एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार हुई जिसमे विपक्षी दल 'एकता एव विलय' के लिए तैयार हो सके ।

वैसे श्री जय प्रकाश नारायण के आन्दोलन के पूर्व ही विभिन्न राजनीतिक दलो द्वारा आत्मावलोकन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी थी ये सभी राजनीतिक दल काग्रेस को देश के लिये घातक मान रहे थे और अपने वक्तव्यो द्वारा ऐसे सकत दे रहे थे कि अगर काग्रेस के विरुद्ध एक 'सशक्त सयुक्त मोर्चा' बनाया जाय तो इसे आसानी से परास्त किया जा सकता है । इस आधार पर विभिन्न राजनीतिक दलो द्वारा अपने स्तर पर एकता के प्रयास किये जा रहे थे । इस दिशा मे सोशलिस्ट पार्टी, सगठन काग्रेस एव जनसघ सभी प्रयासरत थे । परन्तु विपक्ष एकता के लिये सबसे ज्यादा प्रयास उत्तर भारत के कृपक नेता चौधरी चरणसिह द्वारा किये गये ।

8 जनवरी 1973 को जार्ज फर्नांडीज की अध्यक्षता मे सोशलिस्ट पार्टी का दिल्ली मे एक सम्मेलन बुलाया गया जिसमे यह प्रस्ताव पारित किया गया कि "काग्रेस धनी किसानो, बुर्जुआ, नौकरशाहो के हितो के साधन का मुख्य उपकरण है जिसे सत्ता से अपदस्थ कर देना चाहिये ।" [2] श्री जार्ज फर्नाडीज ने अन्य दलो से आग्रह किये कि वे काग्रेस की नीतियो के विरुद्ध समान दृष्टिकोण अपनाये । इस क्रम मे "सगठन काग्रेस के श्री एस० एन० मिश्र, स्वतन्त्र पार्टी के श्री पी० के० देव, जनसघ के श्री अटल बिहारी बाजपेई, 17 फरवरी को दिल्ली मे मिले । उन्होने इस बात पर सहमति

---

1. श्रीमती इँदिरा गाँधी ने दलीय चुने जाने के समय लोकसभा के काग्रेसी सदस्यो को सम्बोधित करते हुये स्वीकार किया था । टाइम्स ऑफ इण्डिया, मार्च 19, 1971
2 दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, जनवरी 9, 1973

व्यक्त की कि कल से प्रारम्भ होने वाले ससद के सत्र मे मिल जुलकर कार्य करेगे ।" [1] इस प्रकार विभिन्न विपक्षी दल- जनसघ, स्वतन्त्र पार्टी, काग्रेस (सगठन) और द्रविड मुनेत्र कडगम एक समयबद्ध कार्यक्रम के आधार पर एक साथ कार्य करने को राजी हुए, जिससे 'काग्रेस के विकल्प' का प्रादुर्भाव हो सके ।" [2]

श्री चरण सिंह द्वारा विपक्षी एकता के प्रयास

विलय एव विपक्षी एकता की विचार धारा के साथ-साथ आशकाओ की भी अर्तधारा बह रही थी । विपक्षी नेता 1971-72 के चुनावी अनुभव को नही भुला पा रहे थे । भारतीय क्रान्तिदल के अध्यक्ष श्री चरण सिह का मत था कि "इसमे कठिनाइया बहुत है परन्तु इसके आलावा कोई चारा भी नही है । प्रजातन्त्र के विकास के लिये सभी दलो के अस्तित्व का विलय करके काग्रेस के विकल्प के रुप मे एक मजबूत दल का निर्माण किया जाना चाहिये ।"[3] श्री चरण सिह ने सगठन काग्रेस के नेता श्री सी० बी० गुप्ता मे इस सन्दर्भ मे वार्ता की परन्तु कोई परिणाम नही निकला । "वास्तव मे दोना नेताओ के बीच मतभेद नीतियो एव कार्यक्रमो के लेकर नही था, बल्कि उनके अहम्, प्रतीक एव नारे आपस मे टकरा रहे थे ॥" [4] सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के नेता श्री राजनारायण ने दोनो के बीच एकता स्थापित करने का प्रयास किया परन्तु कोई सकारात्मक परिणाम नही निकला ।

विपक्षी एकता के प्रयासो का मूल कारण काग्रेस एव श्रीमती इदिरा गॉधी के प्रति घृणा भाव था । किसी भी सगठन के स्थायित्व का आधार सकारात्मक मूल्य होने है, नकारात्मक दृष्टिकोण नही । अनेक विपक्षी नेताओ ने श्री चरण सिह से "एकता के प्रयास जारी रखने के लिए कहा परन्तु चेतावनी भी दी कि 'गैर- काग्रेसवाद' एव 'इदिरा-विरोध' से उपजी विपक्षी एकता अस्थायी होगी । अत नीतियो एव कार्यक्रमो मे समझौता हो जाना चाहिये ।" [5]

चौधरी चरण सिह के विपक्षी एकता के प्रयासो के फलस्वरुप "सात राजनीतिक दलो ने अपने अस्तित्व को विलय कर के एक नई पार्टी **'भारतीय लोक दल'** की स्थापना का निश्चय किया । ये दल थे— **भारतीय क्राति दल** (चौधरी चरणसिह), **स्वतन्त्र पार्टी** (पीलूमोदी गुट), **उत्कल कांग्रेस** (बीजू पटनायक), **राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक सघ** (बालराज मधोक), **सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी** (राजनारायण), **किसान मजदूर पार्टी** (चॉद राम), **पजाब खेतीबारी मजदूर यूनियन** (बाबा महेन्द्र सिह) । इन दलो मे केवल स्वतन्त्र पार्टी ही राष्ट्रीय दल था, शेष सभी दल क्षेत्रीय थे । [6] इसके पूर्व मुस्लिम मजलिस, भारतीय खेतिहार संघ (डा० राम सुभग सिह) और हरिजन सघर्ष समिति ने भी भारतीय लोकदल मे विलय की सहमति व्यक्त की थी, परन्तु 14 अप्रैल 1974 को दिल्ली मे हुई बैठक मे ये दल विलय को राजी नही हुए । इस विलय के दो प्रमुख घटको—भारतीय क्रान्तिदल एव स्वतन्त्र पार्टी, के कुछ सदस्यो ने इस विलय का विरोध किया । स्वतन्त्र पार्टी के विलय विरोधी घटक के नेता मीनू मसानी का विचार था कि "जब

---

1. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, फरवरी 18, 1973
2. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली मार्च 4, 1973
3. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, 25 जुलाई 1973
4. दि हिन्दूस्तान टाइम्स, दिल्ली, 10 अगस्त 1973
5. दि हिन्दूस्तान टाइम्स, दिल्ली, 5 सितम्बर 1973
6. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, 15 अप्रेल, 1974

तक अन्य राष्ट्रीय दलो-जैसे सगठन काग्रेस एव जनसघ का, सहयोग नही मिलेगा तब तक सत्ता काग्रेस का राष्ट्रीय विकल्प उत्पन्न नही होगा ।" [1]

"**भारतीय लोकदल** का उद्घाटन समारोह 28 अगस्त 1974 को सम्पन्न हुआ एव सात दलो के स्वैच्छिक विलय से भारतीय लोक दल अस्तित्व मे आया और चौधरी चरण सिह इसके अध्यक्ष बने ।" [2] सगठन काग्रेस, जनसघ, सोशलिस्ट पार्टी डी० एम० के०, अकाली दल और दूसरे अन्य दल इस विलय से बाहर रहे । यद्यपि इनके साथ विपक्षी एकता के लिए वार्ता एव प्रयास जारी थे । साम्यवादी दलो को विलय के लिए नही आमन्त्रित किया गया था ।

इस घटना ने उन लोगो को, जो विपक्षी एकता के लिये प्रयासरत थे, आशा एव उत्साह प्रदान किया । सर्वोदयी नेता श्री जय प्रकाश नारायण एव आचार्य जे० बी० कृपलानी ने इसका स्वागत किया ।" आचार्य कृपलानी ने कहा इसमे भ्रष्ट सरकार को उखाड़ फेकने मे मदद मिलेगी । जब कि श्री जय प्रकाश नारायण न आशा व्यक्त की कि यह प्रयास एक सशक्त विपक्षी दल का रुप धारण करेगा ।" [3] आशाओ के अनुरुप विपक्षी एकता एव राजनीतिक ध्रुवीकरण का युग प्रारम्भ हो गया था । इसी क्रम मे "20 अक्टूबर 1974 को **बगला कांग्रेस** ने भारतीय लोक दल मे विलय की घोषणा कर दी ।" [4] बगला काग्रेस बगाल का एक छोटा सा क्षेत्रीय दल था, परन्तु इस विलय से भारतीय लोक दल की आभा मे वृद्धि हुई । इस विलय से यह प्रतिबिम्बत होता है कि विपक्षी एकता के लिए समाज से भी सकारात्मक प्रेरणा प्राप्त हो रही थी ।। चौधरी चरण सिह के नेतृत्व म बना "भारतीय लोकदल अपने सकीर्ण अर्थो मे मात्र एक राजनीतिक दल ही नही था बल्कि समान विचारधारा वाले विभिन्न राजनीतिक दलो के विलय के आन्दोलन का एक हिस्सा था ।" [5]

काग्रेस के चुनावी इतिहास से यह विदित होता है कि उसने हमेशा लगभग 40 या 45 प्रतिशत मत प्राप्त करके सत्ता सभाली है और विभाजित विपक्ष 55 या 60 प्रतिशत मत पाता रहा है । इस प्रक्रिया से यह आशा व्यक्त की गयी कि विपक्ष के मत विभाजन मे रोक लगेगी और "ऐसी सरकार का निर्माण होगा जो सच्चे अर्थो मे बहुमत की इच्छा को व्यक्त करेगी ।" [6] भारतीय लोकदल ने इस विचारधारा का प्रतिपादन किया, कि वर्तमान परिस्थितियो मे वामपथी एव दक्षिणीपथी विचारधारा के आधार पर मतभेद बनाये रखना विपक्ष एव ससदीय लोकतन्त्र दोनों के लिए हानिकारक है । "भारतीय बुद्धिजीवी एव विपक्ष, वामपथ और दक्षिणपथ, प्रगतिशील एव प्रतिक्रियावादी, बुर्जुआ एव सर्वहारा जैसे निरर्थक गुटो मे बटे है । हमे एक तानाशाह सरकार का सामना करने के लिये इन लेबिलो से मुक्त होना चाहिये ।" [7] भारतीय लोकदल की इस विचारधारा से लगभग सभी गैर साम्यवादी दल प्रभावित थे । समाजवादी

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, 13 अगस्त 1974
2. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, अगस्त 29, 1974
3 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, सितम्बर 1, 1974
4. दि स्टेटमैन, दिल्ली, अक्टूबर 21, 1974
5 जे० ए० नैयक "दि ग्रेट जनता रिवोल्यूशन", पूर्वोक्त, पृ० 31
6. बी० एल० डी० की नीतियो के ड्राफ्ट स्टेटमेन्ट से, बी० एल० डी० प्रकाशन, पृ० 4
7. भारतीय लोक दल की नीतियो के ड्राफ्ट स्टेट मेण्ट से पूर्वोक्त पृ० 5

रुझान वाले दल भी इस दिशा मे सोचने लगे थे परन्तु वैचारिक प्रतिबद्धता उन्हे किसी अन्य विकल्प की ओर उन्मुख कर रही थी । विलय के इस वैचारिक आन्दोलन मे समाजवादी एव वामपथी रुझान वाले दलो की गतिविधियो पर दृष्टिपात करना प्रासागिक होगा ।

वामपंथी रुझान वाले दलों का दृष्टिकोण

सोशलिस्ट पार्टी ने इस दिशा मे प्रयास प्रारम्भ किया । सोशलिस्ट पार्टी का विचार था कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, फॉरवर्ड ब्लाक, रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी एव अन्य वामपथी एव प्रगतिवादी विचारधारा के समूहो को मिलाकर एक "रेडिकल पार्टी" का 'सयुक्त मोर्चा' तैयार करना चाहिये । भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सी० पी० अाई) सन् 1969 से काग्रेस के सहयोगी दल के रुप म कार्य कर रही थी अत उसने 'सयुक्त मोर्चे' के निर्माण की ओर कोई ध्यान नही था । परतु "इस प्रयास के सकारात्मव परिणाम सोशलिस्ट पार्टी एव मार्क्स वादी कम्युनिस्ट पार्टी (सी० पी० एम०) के समझौते के रुप मे सामने आया । जिसके फलस्वरुप दोनो दल सरकार के विरुद्ध एक आन्दोलन चलाने के लिये राजी हो गये ।" [1] सी० पी० आई के अध्यक्ष एस० ए० डॉगे ने इस समझोते की आलोचना की । उन्होने "इसे सिद्धान्तहीन" बताया ओर कहा इस समझौते के चार आधार है— इन्दिरा गॉधी के प्रति घृणा, चीन के प्रति प्रेम, सोवियत सघ की आलोचना एव सी० पी० आई का विरोध । इन चार आधारो पर ये दल किसी अन्य दल से समझौता कर सकते ह ।" [2]

भारतीय साम्यवादो दलो का चरित्र भारतीय राजनीतिक व्यवस्था एव राजनीतिक मूल्यो के अनुरुप कभी नही रहा । ये दल सोवियत सघ एव चीन के वैचारिक ढॉचे की पृष्ठभूमि मे रखकर अपनी नीतिया एव कार्यक्रम वनाते रहे हैं । जून 1974 मे सोशलिस्ट पार्टी, ने सभी रेडिकल दलो को मिलाकर एक "सशक्त रेडिकल मोर्चा" बनाने के लिये एक सम्मेलन बुलाने का प्रस्ताव किया । सी० पी० आई० ने आग्रह किया कि उसे भी सम्मेलन मे आमन्त्रित किया जाना चाहिये । परन्तु "सोशलिस्ट पार्टी के सचिव श्री सुरेन्द्र मोहन ने कहा कि सी० पी० आई० दोहरा मापदण्ड अपना रही है । एक ओर वह काग्रेस की यथास्थितिवादी सरकार का सहयोग करती और दूसरी ओर साम्यवादी होने का नाटक करती है सी० पी० आई० एक उग्र वामपथी दल नही अत उसे सम्मेलन मे आमन्त्रित नही किया जा सकता है।" [3] भारतीय वामपंथी दल सदा की भॉति इस मुद्दे पर भी विभाजित रहे और सरकार के विरुद्ध कोई भी "सयुक्त रेडिकल मोर्चा" बनाने मे असफल रहे ।

विपक्षी दलो द्वारा चलाये गये विलय सम्बधी आन्दोलनो मे गैर-साम्यवादी दलों को ही सफलता मिली । विपक्ष एकता के प्रयासो से भारतीय लोक दल (बी० एल० डी०) का निर्माण हुआ, परन्तु अनेक प्रमुख विपक्षी दल— जनसघ, सगठन काग्रेस एव सोशलिस्ट इससे अलग रहे । जनसघ एव सोशलिस्ट पार्टी ने विशेष मुद्दो पर भारतीय लोकदल को सहयोग देने का वचन दिया । बाद के महीनो मे जब बी० एल० डी० ने राष्ट्रीय स्तर पर विलय का मुद्दा उठाया, तो जनसघ ने यह विचार प्रतिपादित किया कि पहले ससद मे "एक विपक्षी गुट" का निर्माण किया जाना

---

1. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, सितम्बर 26, 1973
2. वही
3. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, अगस्त 18 1974

चाहिये, जबकि सोशलिस्ट पार्टी का विचार था कि विपक्षी एकता सुदृढ सुधार वादी नीतियो एव कार्यक्रमो के आधार पर होनी चाहिय ।"[1]

भारतीय दलीय व्यवस्था मे नीतियो एव कार्यक्रम से ज्यादा व्यक्ति एव दलीय नेता का महत्व रहा है । यही कारण है कि विभिन्न दलो के आपसी गठबन्धन मे नीतियो का टकराव कम व्यक्तित्व का टकराव अधिक रहा है । विपक्षी एकता के विशेष सन्दर्भ मे यह स्थिति और भी निराशाजनक थी, क्योकि भारतीय लोकदल, जनसघ, एव सोशलिस्ट पार्टी सामान्य अर्थो मे समाज के विभिन्न एव विरोधी गुटीय हितो को प्रतिबिम्बित करते थे । भारतीय लोकदल को धनी ग्रामीण वर्गो के 'हित-साधक' के रुप मे देखा जाता था जबकि जनसघ को उच्च जातियो एव शहरी धनी वर्गो का समर्थन प्राप्त था । इन दोनो से हटकर सोशलिस्ट पार्टी समाजवादी रुझान वाली पार्टी थी, जो प्रगति-शील सामाजिक- आर्थिक नीतियो का समर्थन करती थी ।, अत इन दलो का मेल मिलाप एक टेढी खीर था । भारतीय दलीय व्यवस्था मे सत्ता के प्रति आक्रोश का नकारात्मक भाव विपक्षी एकता का महत्वपूर्ण कारक रहा है, यही कारण इन दलो को एकता के लिये प्रेरित कर रहा था । परन्तु "वे एक ऐसे व्यक्ति एव अवसर की तलाश मे थे जिससे उनके अह्म को चोट पहुँचे बिना विपक्षी एकता स्थापित हो सके । उनकी दृष्टि मे ये व्यक्ति और अवसर क्रमश श्री जय प्रकाश नारायण एव उनका आन्दोलन था ।"[2]

'जय प्रकाश आन्दोलन' एवं विपक्षी राजनीतिक दल

जय प्रकाश नारायण ने गुजरात एव बिहार की विधान सभाओ को भग करने के लिये क्रमश 1974 एव 1975 म आन्दोलन चलाया, यह आन्दोलन जनता पार्टी के निर्माण की दिशा मे महत्वपूर्ण कदम था । चूँकि इस आन्दोलन को विभिन्न विपक्षी दलो का समर्थन प्राप्त था, इसलिए उन राजनीतिक दलो का इस आन्दोलन के प्रति दृष्टिकोण समझना प्रासगिक होगा जिन्होने बाद मे मिलकर जनता पार्टी का निर्माण किया । इस आन्दोलन ने विभिन्न विपक्षी दलो को एक दूसरे को समझने एव 'साझा-अनुभव' का अवसर प्रदान किया । श्री जय प्रकाश नारायण के आन्दोलन को समर्थन देने वाले विभिन्न विपक्षी दलो के अपने विशिष्ट राजनीतिक हित थे । राजनीतिक दलो के ये विशिष्ट हित एव दृष्टिकाण विलय की प्रक्रिया के प्रमुख प्रेरक बिन्दु थे । जनसघ, भारतीय लोकदल, सगठन कांग्रेस एवं सोशलिस्ट पार्टी, जिन्होने 1977 मे जनता पार्टी का निर्माण किया, की विलय के सन्दर्भ मे अलग-अलग अवधारणाए थी ।

सन् 1974 एव 1975 मे गुजरात एव बिहार के आन्दोलनो को व्यापक जन समर्थन प्राप्त हो रहा था । श्री जय प्रकाश नारायण ने "इन आन्दोलनो की तीव्रता और इनमे नवयुवको एव छात्रो के योगदान को देखकर यह आशा व्यक्त की कि अब भारत के नव युवक ही उनकी 'सम्पूर्ण क्रान्ति' का स्वप्न साकार करेंगे ।"[3] श्री जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व मे आन्दोलन का प्रभाव क्षेत्र शैन- शने व्यापक होने लगा । इस स्थिति मे असन्तुष्ट जन समुदाय विभिन्न सामाजिक सगठनो एव प्रमुख विपक्षी दलो— जनसघ, भारतीय लोकदल,सोशलिस्ट पार्टी एव सगठन कांग्रेस ने इसे अपना पूर्ण समर्थन देने का वचन दिया ।

---

1 वही, फरवरी 4, 1975
2 डॉ0 सी0 गुप्ता "इण्डियन गवर्नमेट एण्ड पोलिटिक्स", विकास पब्लिशिग हाउस प्राइवेट लि0, नई दिल्ली, 1979, पृ0 163
3 बसन्त नारगोल कर "जे0 पी0 विन्डिकेटेड । नई दिल्ली, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी, 1977, पृ0 103

अपने वर्गीय चरित्र मे 'जय प्रकाश- आन्दोलन' मूलत 'शहरी मध्यम वर्ग' का सरकार के प्रति विद्रोह था चूकि जनसघ एव उसके सम्पूर्ण ढॉचे को इसी वर्ग का सहयोग प्राप्त था, अत जनसघ इस आन्दोलन म सक्रिय रुप से सम्मिलित हो गयी । इस आन्दोलन का 'चरित्र एव प्रकृति' ऐसी थी कि विभिन्न दलो के प्रदेश एव जिल स्तर के नेता, अपन केन्द्रीय नेतृत्व की अनुमति से पूर्व ही इस आन्दोलन मे शामिल हो गये । बिहार एव गुजरात के आन्दोलनो के मुख्य कर्ता-धर्ता विभिन्न विपक्षी राजनीतिक दल एव उनके सहयोगी सगठन थे । "जनसघ, सगठन काग्रेस, सोशलिस्ट पार्टी, और इनके सहयोगी सगठन जैसे अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, समाजवादी युवाजन सभा, सर्वोदय मण्डल आदि अग्रगामी सगठन आन्दोलन की अग्रिम पक्ति मे थे । राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ के कार्यकर्ता गुप्त रुप से आन्दोलन का प्रसार कर रहे थे ।"[1] अत 'पार्टी नेतृत्व के पास इस आन्दोलन को समर्थन देने के आलावा कोई चारा नही था । श्री जय प्रकाश नारायण भी इन दलो के सहयोग के लिए लालायित थे क्योकि उनके पास आन्दोलन का प्रचार-प्रसार करने के लिये सगठन की कमी थी जिसे ये दल प्रदान कर रहे थे ।

"इन विपक्षी दलो मे जनसघ सुदृढ सगठन वाला दल था । इसके सदस्य अपने सहयोगी सगठन अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद एव राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ से सामन्जस्य स्थापित करके अपनी योजनाओ को कार्यरुप प्रदान कर रहे थे ।"[2] इसके नेताओ ने सार्वजनिक रुप से आन्दोलन मे सक्रिय रुप से भाग लेने की घोषणा की । जनसघ के अखिल भारतीय सचिव नानाजी देशमुख ने कहा, "वर्तमान राजनीतिक एव प्रशासनिक व्यवस्था के प्रत्येक स्तर पर फैले हुए, भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद, अन्याय एव अक्षमता का अन्त करने के लिए सम्पूर्ण क्राति अवश्यभावी है ।"[3] यहाँ तक कि "जन सघ के प्रमुख नेता श्री अटल बिहारी बाजपेयी आन्दोलन मे पूर्ण रुप से कार्य करने के लिये अपनी लोकसभा सीट से त्यागपत्र देने के इच्छुक थे ।"[4]

विपक्षी एकता एवं विभिन्न राजनीतिक दल

जनसघ का दृष्टिकोण जनसघी नेताओ ने विशेष कर श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने विपक्षी दलो से अपील की कि वे अपने आपसी मतभेदो को भुलाकर एक जुट हो जाये, क्योकि "आने वाले दिन मे केवल दो शक्तियो के बीच मुकाबला होगा, **प्रथम** सत्ता पक्ष की तानाशाही शक्तियॉ एव **द्वितीय** वे सभी शक्तिया जो शान्तिपूर्ण ढग से समाज मे मौलिक परिवर्तन का प्रयास कर रही है ।"[5] आपातकाल के पूर्व जनसघ नेतृत्व का विचार था कि सभी "राष्ट्रवादी एव प्रजातान्त्रिक" शक्तियो को मिलाकर काग्रेस के विरुद्ध एक 'सयुक्त विपक्षी मोर्चे' का निर्माण करना चाहिये ।"[6]

---

1 घनश्याम शाह 'प्रोटेस्ट मूवमेन्ट इन टू इण्डियन स्टेटस् ए स्टडी आफ गुजरात एण्ड बिहार मूवमेन्टस्', अजन्ता पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, 1977, पृ0 52
2. घनश्याम शाह पूर्वोक्त, पृ0 131
3. मदर लैण्ड, दिल्ली दिसम्बर 9, 1974
4. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, दिसम्वर 14, 1974
5 वही, दिसम्बर 23, 1974
6. देखे, मदर लैण्ड, दिल्ली, दिसम्बर 30, 1974

काग्रेस के विरुद्ध चुनाव लडने के लिए "विपक्षी एकता का जनसघी मॉडल" एक समान प्रत्याशी, एक समान न्यूनतम कार्यक्रम, और एक समान चुनाव चिन्ह पर आधारित था।"[1] जनसघ की राजनीतिक योजना थी कि विपक्षी दलो को ससद मे एक "सयुक्त विपक्षी गुट बनाना चाहिये और एक निश्चित न्यूनतम कार्यक्रम एव समान जनता प्रत्याशी के आधार पर चुनाव लडना चाहिये।"[2] भारतीय दलीय व्यवस्था मे भारतीय जनसघ एक वैचारिक प्रतिबद्धता वाली पार्टी थी। इसकी वैचारिक प्रतिबद्धता ने इस पार्टी को एक सशक्त एव कठोर सगठन प्रदान किया है। अत जनसघ अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता का अतिक्रमण करके अन्य दलो से समझौता नही करना चाहती थी। इससे इसकी सगठनात्मक शक्ति मे ह्रास की सम्भावना थी। श्री लाल कृष्ण आडवानी ने विपक्षी एकता के लिये श्री जय प्रकाश नारायण के आन्दोलन की सराहना की परन्तु उन्होंने विभिन्न विपक्षी दलो के विलय का स्पष्ट रुप से विरोध किया।[3]

आपातकाल की घोषणा के कुछ दिन पूर्व 16 जून 1975 को माउन्ट आबू मे जनसघ की केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई। इस बैठक मे यह विचार प्रतिपादित किया गया कि 'जय प्रकाश के आन्दोलन' को समर्थन देने वाले सभी विपक्षी दल मिलकर एक 'सघीय दल' बनाये। बैठक मे यह भी कहा गया कि "हमने गुजरात मे इस सघीय विचार को उल्लेखनीय सफलता के साथ यथार्थ मे परिवर्तित होते देखा है इसलिये इस प्रयोग को राष्ट्रीय स्तर पर आरम्भ किया जाना चाहिये।"[4]

भारतीय लोकदल का दृष्टिकोण विपक्षी एकता के विषय मे भारतीय लोक दल का दृष्टिकोण भिन्न था। जहाँ जनसघ किसी भी प्रकार के विलय का विरोध कर रही थी, वही भारतीय लोकदल का विचार था कि "सभी गैर-साम्यवादी विपक्षी दलो के विलय से नवीन दल का निर्माण किया जाना चाहिये।"[5] भारतीय लोकदल ने विपक्षी एकता के 'जनसघी मॉडल' की कटु आलोचना की। उनका विचार था कि विपक्षी दलो का 'ढीला सघीय गठबन्धन' एक अस्थिर राजनीतिक व्यवस्था होगी। हमे 1967-68 के बीच उत्तर प्रदेश की राजनीति मे सयुक्त विधायक दल की सरकार एव सन् 1971 के लोक सभा चुनाव मे "सयुक्त मोर्चे" की असफलता के अनुभव से शिक्षा लेनी चाहिए। भारतीय लोक दल के विपक्षी एकता के प्रयासो को अनेक राजनीतिक दल सन्देह की दृष्टि से देख रहे थे क्योंकि "इसका प्रभाव मूल रुप से उत्तर प्रदेश एव उडीसा तक ही सीमित था।"[6]

भारतीय लोक दल ने विलय के प्रयासो के साथ-साथ अपनी नीतियो और कार्यक्रमो की रुपरेखा भी प्रस्तुत की इसने पचवर्षीय योजनाओ की आलोचना की और कहा कि इससे ग्रामीण एव शहरी आय के बीच खाई चौडी हुई है। भारतीय लोक दल भारतीय अर्थ व्यवस्था मे राज्य की बढती हुई भूमिका से चिन्तित था। इसने राज्य की शक्ति

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली फरवरी 13, 1975
2 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया जून 16 1975
3 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली जनवरी 25, 1975
4. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, जून 17, 1975
5 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया दिल्ली जनवरी 25 1975
6. डी0 एन0 सिह मदर लैण्ड, दिल्ली सितम्बर 7, 1974

के विकेन्द्रीकरण का समर्थन किया । भारतीय लोक दल का विचार था कि, "वह भारत मे कृषि विकास को वरीयता देगा और उसकी आर्थिक नीतियॉ कृषक एव ग्रामीण विकासोन्मुख होगी ।" [1]

भारतीय लोकदल के प्रयासो एव नीतियो का सगठन काग्रेस एव जनसघ पर कोई प्रभाव नही पडा । ये दल काग्रेस के 'राष्ट्रीय विकल्प' के निर्माण के लिये भारतीय लोकदल के साथ विलय के अनिच्छुक थे । जनसघ ने भारतीय लोकदल का मजाक उडाते हुए कहा कि "इस दल के अनेक सिपहसलार जिस प्रकार बाते एव व्यवहार कर रहे हैं वह उनका बडबोलापन है ।"[2]

जब चौधरी चरण सिह ने देखा कि विभिन्न दलो के बीच विलय को लेकर मतभेद है तो उन्होने इस विषय मे स्पष्ट अपना मत व्यक्त किया—

(1) भारतीय लोकदल 'सयुक्त मोर्चे' के सदस्य के रुप मे चुनाव लडने का विरोध करता है ।

(2) भारतीय लोकदल, काग्रेस का मुकाबला करने के लिये विपक्ष दलो के विलय के उपरान्त बने 'एक राजनीतिक दल' के निर्माण का समर्थन करता है ।

(3) भारतीय लोकदल ने जन सघ के इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया कि ससद मे एक "विपक्षी गुट" बनाया जाय ।

(4) भारतीय लोकदल 'जय प्रकाश आन्दोलन' का समर्थन करता है, परन्तु वह इस विचार से सहमत नही है कि काग्रेस के राष्ट्रीय विकल्प का प्रादुर्भाव इस प्रकार के आन्दोलन से अपने आप हो जायेगा ।

(5) अन्त मे चौधरी चरण सिह भारतीय लोकदल की नीति वक्तव्य मे पुनर्विचार करने को राजी हो गये थे जिससे अन्य प्रजातान्त्रिक दलो को "गॉधीवादी सामाजिक आर्थिक एव राजनीतिक ढॉचे के अन्दर विलय के लिए प्रेरित किया जा सके ।"[3]

विलय के सन्दर्भ मे जनसघ एव भारतीय लोकदल मे गम्भीर मतभेद थे । जनसघ केवल भारतीय लोकदल के विलय के विचार का विरोध ही नही कर रही थी बल्कि उसका मानना था कि भारतीय लोकदल मे ऐसी क्षमता नही है कि वह अपने को राष्ट्रीय विकल्प के रुप मे प्रस्तुत कर सके । क्योंकि "यह स्वय एक सुगठित दल न होकर विभिन्न दलो एव विरोधी गुटो का ढीला ढाला गठबन्धन है ।"[4] लेकिन चौधरी चरण सिह ने विलय के लिए जो विचार प्रतिपादित किए थे उन्हे पर्याप्त समर्थन मिला था और उसका यथार्थ रुप भारतीय लोकदल के रुप मे विद्यमान भी था । भारतीय लोकदल कठोर वैचारिक प्रतिबद्धताओ से मुक्त था । अत अन्य विरोधी दलो का ध्यान आकृष्ट कर सकता था । यह स्थिति भारतीय दलीय व्यवस्था के अनुकूल थी । चौधरी चरण सिह इन परिस्थितियो मे काग्रेस विरोधी भावनाए उभाड़कर विलय की प्रक्रिया को प्रेरित करना चाहते थे परन्तु विलय के लिये ये नकारात्मक प्रेरणा

1. भारतीय लोकदल पॉलिसी एण्ड प्रोग्राम, नई दिल्ली, भारतीय लोकदल प्रकाशन
2. मदर लण्ड, दिल्ली दिसम्बर 4, 1974
3. चौधरी चरण सिह की प्रेस कान्फ्रेस, इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, दिसम्बर 9, 1974
4. मदरलेण्ड, दिल्ली, जनवरी 4, 1975

पर्याप्त नही थी, क्योकि "किसी भी प्रकार का विलय एव विपक्षी एकता मात्र गैर-काग्रेसवाद एव इन्दिरा विरोधी भावनाओ के आधार पर स्थायी नही हो सकती थी"।[1]

सगठन काग्रेस का दृष्टिकोण जनसघ के अलावा, सगठन काग्रेस भी अन्य दलो के साथ विलय की इच्छुक नही थी। सगठन काग्रेस के अध्यक्ष श्री अशोक मेहता, सत्ता काग्रेस की प्रजातान्त्रिक विरोधी नीतियो से मुकाबला करने के लिए एक 'सघीय दल' बनाना चाहते थे। परन्तु वे "जनसघ एव सी0 पी0 आई0 (एम0) जेसे राजनीतिक दलो के साथ किसी प्रकार गठबन्धन एव राजनीतिक समझौता नही करना चाहते थे।"[2] सगठन काग्रेस 1969 मे काग्रेस के महाविघटन के पश्चात अस्तित्व मे आयी थी। अभी तक न तो इसका अपना कोई सुदृढ सगठन विकसित हो पाया था और न ही यह अपना जनाधार व्यापक बनाने मे सफल हुई थी। अत किसी व्यापक जनाधार वाले दल जनसघ या भारतीय लोकदल के साथ विलय कर अपना अस्तित्व नही खोना चाहती थी। दूसरी ओर इसमे श्री मोरार जी देसाई जैसे नेता थे जो अपने सिद्धान्तो एव मतव्यो मे कोई परिवर्तन एव समझौता करने के लिए राजी नही थे।

श्री मोरार जी देसाई का विचार था कि "विपक्षी दलो का किसी भी प्रकार का गठबन्धन 'निश्चित सिद्धान्तो' पर आधारित होना चाहिए"[3] उन्होने कहा कि "काग्रेस के विरुद्ध सभी समान विचार वाले दलो को चुनावी समझौता कर लेना चाहिए, परन्तु गुजरात में उन्होने ऐसी किसी भी सम्भावना से स्पष्ट इकार कर दिया क्योकि उनका मानना था कि वे अपने बल पर गुजरात का चुनाव जीत लेंगे।"[4] सगठन काग्रेस का गुजरात मे पर्याप्त जनाधार था अत वह वहॉ अकेले या प्रमुख दल बनकर एव चुनाव जीतकर राष्ट्रीय स्तर पर अपनी सौदेबाजी की क्षमता बढ़ाना चाहती थी। इसी सार्वजनिक वक्तव्यो के बावजूद सगठन काग्रेस गुजरात मे जून 1975 मे हुए विधान सभा चुनाव मे अन्य विपक्षी दलो के साथ 'जनता मोर्चा' बनाने को राजी हो गयी क्योकि श्री जय प्रकाश नारायण सहित अन्य विपक्षी नेता 'जनता मोर्चा' बनाने के लिये दबाव डाल रहे थे। वैसे भी सगठन काग्रेस कोई ऐसी सशक्त पार्टी नही थी, कि वह प्रारम्भ से ही विपक्षी एकता की प्रक्रिया मे अन्य विपक्षी राजनीतिक दलो की अवहेलना करती। "यह एक कमजोर पार्टी थी, जिसका प्रभाव केवल गुजरात एव कर्नाटक मे सीमित था। अत विलय के सन्दर्भ मे उसकी विचार धारा अत्यन्त अस्पष्ट एव नकारात्मक थी।"[5]

सोशलिस्ट पार्टी का दृष्टिकोण · विलय के प्रश्न पर सोशलिस्ट पार्टी का द्वन्द वैसा ही गम्भीर था जैसा जनसघ का। सोशलिस्ट पार्टी ने भी श्री जार्ज फर्नाडीज के नेतृत्व मे श्री जय प्रकाश नरायण के आन्दोलन मे भाग लिया था, लेकिन यह पार्टी "काग्रेस के विकल्प के रुप मे वामपथी प्रगतिशील ताकतो का गठबन्धन चाहती थी।"[6] समाजवादियो का विचार था कि इस प्रकार का गठबन्धन ही सत्ता काग्रेस को चुनौती देने मे सक्षम होगा।

---

1. इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली जनवरी 23, 1975
2. दि स्टेटसमैन, दिल्ली, सितम्बर 30, 1974
3. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, दिसम्बर 31, 1974
4. चालीस गाव मे हुये सगठन काग्रेस के सम्मेलन मे व्यक्त विचार, टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, जनवरी 6, 1975
5. सी0 पी0 भाम्भरी "दि जनता पार्टी ए प्रोफाइल" पूर्वाक्त, पृ0 11

सोशलिस्ट पार्टी ने अनेक वामपथी दलो—जैसे कि सी0 पी0 आई (एम0), फारवर्ड ब्लाक, रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी, सोशलिस्ट यूनिटी सेन्टर, और पीजेन्ट एव वार्कर पार्टी आदि से गठबन्धन बनाने के लिये वार्तायें प्रारम्भ की । सोशलिस्ट पार्टी के महामन्त्री श्री सुरेन्द्र मोहन ने अपनी एक रिपोर्ट मे कहा कि इन वार्ताओ क सफलता के आसार कम है क्योकि "सी0 पी0 आई (एम0) का मतव्य है कि जिन दलो को प्रस्तावित 'सयुक्त वाममोर्चे' मे शामिल होने के लिए बुलाया जाय, सर्व प्रथम उनके बीच नीतियो एव कार्यक्रमो को लेकर समझौता हो जाना चाहिए ।"[1] इसकी सम्भावना बहुत कम थी । अत सत्ता काग्रेस के 'वामपथी विकल्प' के निर्माण के श्री जार्ज फर्नाडीज एव श्री सुरेन्द्र मोहन क प्रयासो को सफलता नही मिली ।

समाजवादियो के साथ समस्या यह थी कि वे अपना वैचारिक आधार त्यागकर अपने दल के अस्तित्व एव महत्व को कम नही करना चाहते थे । परन्तु वैचारिक आधारो मे नरमी लाये बिना किसी भी प्रकार की विपक्षी एकता सम्भव भी नही थी । श्री जय प्रकाश नारायण के समाजवादी रुझान के कारण समाजवादियो का व्यक्तिगत झुकाव उनकी ओर था और उनका विश्वास था कि श्री जय प्रकाश नारायण का आन्दोलन विभिन्न राजनीतिक ताकतो को भविष्य मे गठबन्धन के लिए ऊर्जा प्रदान करेगा । मधुलिमये का विचार था कि "बिहार मे चल रहे आन्दोलन से ही काग्रेस के विकल्प के रुप मे 'सशक्त रेडिकल दल' का प्रादुर्भाव हो सकता है ।"[2] जार्ज फर्नाडीज न भी "इस आन्दोलन से एक सशक्त विपक्ष के प्रादुर्भाव की सम्भावना व्यक्त की थी ।"[3]

समाजवादी, भारतीय लोकदल के विलय सम्बन्धी विचार को सिद्धान्तहीन मानते थे । भारतीय लोकदल ने गॉधीवादी समाजवाद के आधार पर जनसघ जैसी दक्षिणपथी पार्टी के विलय के लिए आमन्त्रित किया था । समाजवादियो के लिए यह सम्भव नही था क्योकि इससे उनके वैचारिक प्रतिबद्धता को आघात पहुँचता दूसरी ओर उनका 'एक सयुक्त वाम मोर्चे' के निर्माण का प्रयास भी असफल रहा क्योकि सी0 पी0 आई0 (एम0) जैसे कठोर वैचारिक प्रतिबद्धता वाली पार्टियॉ पर्याप्त सहयोग नही कर रही थी । इसी दुविधा की स्थिति मे समाजवादियो ने श्री जय प्रकाश नारायण के आन्दोलन का समर्थन किया । उनका विचार था कि "यह आन्दोलन एक सिद्धान्तवादी गठबन्धन की राजनीति की प्रक्रिया को प्रारम्भ करेगा ।"[4]

विभिन्न गैर- साम्यवादी विपक्षी दलो के दृष्टिकोण के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि जून 1975 मे आपातकाल की घोषणा के पूर्व तक इन दलो के मध्य गम्भीर मतभेद थे । परन्तु इसी बीच इससे दो सकारात्मक आयाम भी उभरकर आये **प्रथम** कोई भी राजनीतिक दल 1971 की "महागठबन्धन" जैसी विपक्षी दलो की चुनावी रणनीति के पक्ष म नही था । और **द्वितीय,** जय प्रकाश नारायण का उदय निर्विवाद रुप से विपक्षी दलों के नायक के रुप मे हुआ और विभिन्न दलो के बीच समझौतो मे उनकी बातो को महत्व दिया जाने लगा ।

---

6 दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, नवम्बर 8, 1974 >
1 दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, दिसम्बर 31, 1974
2 टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, जनवरी 1, 1975
3 इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, जनवरी 3 1975
4. सी0 पी0 भाम्भरी "दि जनता पार्टी ए प्रोफाइल", पृ0 12

आपातकाल की घोषणा एवं विपक्षी एकता

25 जून 1975 की मध्य रात्रि मे आपातकाल की घोषणा एव सभी गैर साम्यवादी विपक्षी दलो के प्रमुख नेताओ की गिरफ्तारी ने दलीय राजनीति के एक नये अध्याय की शुरुआत की । आपातकाल एव जेल के अनुभवो ने विपक्षी दलो के नेताओ को एकता के लिए नये सिरे से सोचने के लिए मजबूर किया । पीडा अवसाद और वेदना से घिरे विपक्षी नेताओं के हृदय मे आततायी सत्ता से मुकालबला करने के लिए नयी दृष्टि मिली । प्रख्यात मनोवैज्ञानिक साहित्यकार के अज्ञेय के अनुसार "वेदना मे एक शक्ति है, जो दृष्टि देती है । जो यातना मे है वह दृष्टा हो सकता है ।"[1] अत जेल के अनुभवों ने विपक्षी एकता के लिए उत्प्रेरक का कार्य किया । परन्तु "श्री जय प्रकाश नारायण एव विपक्षी नेताओ के प्रयासो एव अटकलो से यह परिलक्षित होता है कि विपक्षी एकता एव विलय की यह यात्रा सुगम नही थी ।"[2]

प्रमुख विपक्षी नेताओ की गिरफ्तारी के उपरान्त एकता एव विलय की प्रक्रिया मे आघात तो लगा, लेकिन जेल के अन्दर एव बाहर इसके लिए प्रयास जारी रहे । जनवरी 1976 मे ससद मे विपक्षी दलो ने 'जनता मोर्चा' का निर्माण किया । श्री एन० जी० गोरे और श्री एच० एम० पटेल क्रमश राज्य सभा एव लोकसभा मे 'सयुक्त विपक्षी मोर्चे' के नेता बने । ये नतागण देश मे प्रजातन्त्र के बहाली के लिए श्रीमती इदिरा गॉधी से वार्तायें करना चाहते थे । चूकि आपातकाल मे ससद पगु हो गयी थी, अत श्रीमती इदिरा गॉधी ने विपक्षी नेताओं के आग्रह पर कोई ध्यान नही दिया और विपक्ष पर देश की शान्ति भंग करने का आरोप लगाती रही ।

जेल के एकान्त एव सूनेपन मे कितने ही महान राजनीतिज्ञो ने असाधारण काम किया था । लोकमान्य तिलक, महात्मा गॉधी एव पडित जवाहर लाल नेहरु आदि नेताओं ने अपनी अनेक महत्वपूर्ण राजनीतिक योजनाये जेलो मे ही बनायी एव अपनी विश्व विश्रुत पुस्तकें भी जेलो मे लिखी । विपक्षी एकता के लिए वार्तायें तिहाड एव बम्बई जेल जहाँ श्री जय प्रकाश नारायण स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे, मे जारी रही "जनता पार्टी के नेताओं का यह दावा कि जनता पार्टी का जन्म जेल मे हुआ भावनात्मक नही, बल्कि आपातकाल के दौरान जेल में किये गये ठोस प्रयत्नो पर आधारित था ।"[3]

"इसी तिहाड जेल मे 8 फरवरी 1976 को चौधरी चरणसिह ने जेल मे अपने दूसरे साथियो सरदार प्रकाश सिह बादल, जयपुर के राज कुमार श्री भावनी सिह, नाना जी देशमुख, मदरलैण्ड के सम्पादक श्री मलकानी, राजमाता महारानी सिन्धिया आदि से विचार- विमर्श करके इस योजना को सुनिश्चित रुप दिया कि सभी विरोधी दलो को मिलाकर 'एक नया दल' बनाया जाय । जेल मे एक दूसरे से मिलने की सुविधा नही थी । फिर भी दूसरे से तीसरे और तीसरे से चौथे तक यह बात पहुँचायी गयी । इसकी पहली बैठक तिहाड जेल के "बी" श्रेणी के वार्ड न० 14 मे चौधरी साहब की अध्यक्षता मे हुई इससे विपक्षी एकता के विचार का बीज बोया गया । ।"[4]

---

1. अज्ञेय "शेखर एक जीवनी (प्रथम भाग)" , सरस्वती प्रेस, 5 सरदार पटेल मार्ग इलाहाबाद, उपन्यास की प्रथम पंक्ति, पृ० 7
2. देखे ब्रहमदत्त, 'फाइव हेडेड मान्सटर' पूर्वोक्त, पृ० 4
3. सी० पी० भाम्भरी "दि जनता पार्टी ए प्रोफाइल," पूर्वोक्त पृ० 14
4. अनिरुद्ध पाण्डेय धरती पुत्र चौधरी चरण सिह, ऋतु प्रकाशन गाजियाबाद, 1986, पृ० 122-123

7 मार्च 1976 को 'एम्नेस्टी इण्टरनेशनल की रिपोर्ट पर श्री अशोक महता आदि नेताओ के साथ श्री चौधरी चरण सिह भी तिहाड जेल से अचानक रिहा कर दिये गये'।[1] इसके पूर्व 12 नवम्बर 1975 को लोकनायक जय प्रकाश नारायण स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणो से जेल से पैरोल पर छोड़ दिये गये थे। "चोधरी चरण सिह ने जेल से छूटने के बाद एक बेठक बुलायी जिसमे सशक्त विपक्षी दल बनाने के लिये एक समिति का गठन किया गया। श्री एन0 जी0 गोरे उस समिति के सयोजक मनोनीत किये गये। श्री शान्ति भूषण, श्री ओ0 पी0 त्यागी, एव श्री एच0 एम0 पटेल सदस्य बने।" चौधरी चरणसिह ने कहा कि "अगर आज की परिस्थितियो मे काग्रेस का वैकल्पिक दल नही बना तो भविष्य मे विपक्ष का नामोनिशान मिट जायेगा।"[2] "22-23 मई 1976 को बम्बई मे इस सम्बध मे प्रमुख विपक्षी नेताओ की दूसरी बेठक हुयी परन्तु उसमे भी एक दल बनाने की सब की सहमति नही हो सकी।"[3] इसी बीच विपक्षी दलो की सयोजक समिति ने श्री जय प्रकाश नारायण से अनुरोध किया गया कि वे विलय के उपरान्त 'एक नये दल' के गठन का प्रयास करे। श्री जय प्रकाश नारायण इसके लिये राजी भी हो गये।

विलय के विचार का विरोध भी विभिन्न दलो के द्वारा हो रहा था, "सगठन काग्रेस की गुजरात शाखा एव पश्चिमी बगाल शाखा के श्री बाबू भाई पटेल और श्री प्रताप चन्द्र चन्दर ने न केवल विलय का विरोध किया बल्कि उनके निदेशन मे विलय के विरोध मे प्रस्ताव भी पारित किये गये।"[4] इस प्रकार 'नयी पार्टी' की रुपरेखा के विषय मे विभिन्न विपक्षी दलो के नेताओ के बीच मतभेद कायम रहा। श्री जय प्रकाश नारायण के प्रयत्नो के बावजूद **'पूर्ण विलय' और सघीय मॉडल'** के समर्थक विपक्षी दल किसी भी समझौते पर नही पहुँच सके। चौधरी चरण सिह ने दिशा निर्देशन समिति के अध्यक्ष श्री एन0 जी0 गोरे को लिखा कि "मै यह बात दुहराना चाहता हूँ कि समय का बहुत महत्व है, यद्यपि कुछ दलो के लोग इस विलय प्रक्रिया को मेरा व्यक्तिगत स्वार्थ समझते होगे। आप उन्हे विश्वास दिलाये कि मे नय दल का नेतृत्व किसी तरह स्वीकार नही करुगा। .... लेकिन प्रजातन्त्र की सफलता के लिये 'काग्रेस का लोकतान्त्रिक विकल्प' बनाना अति आवश्यक है।"[5]

इस घटना क्रम मे बिल्कुल साफ है कि जहाँ दूसरे दल वैकल्पिक पार्टी के स्वरुप के विषय मे अनिश्चितता की स्थिति से गुजर रहे थे, वही चौधरी चरण सिह विलय के लिये व्याकुल थे। चौधरी साहब ने अपने पत्र मे जो त्याग एव बलिदान की बात कही थी, वह उनकी कूटनीति का एक हिस्सा थी, जिसे अन्य विपक्षी राजनीतिक दल बखूबी से समझ रहे थे, इसीलिए वे विलय से कतरा रहे थे।

विपक्ष का सरकार के प्रति समझौतावादी रुझान : श्रीमती गाँधी की कूटनीति

विपक्षी एकता मे एक अन्य बाधा श्रीमती इदिरा गाधी की कूटनीति थी। उन्होंने विपक्ष मे फूट डालने के उद्देश्य से कुछ नेताओ को रिहा कर दिया एव कुछ विपक्षी नेताओ के प्रति अपना व्यवहार मृदु रखा। इससे जेल के

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली मार्च 8, 1976
2. अनिरुद्ध पाण्डेय पूर्वोक्त, पृ0 125
3. वही, पृ0 127
4 वही, पृ0 128
5. 8 जुलाई 1976 को चौधरी चरण सिह द्वारा एन0 जी0 गोरे को लिखा गया पत्र। उद्धृत, अनिरुद्ध पाण्डेय "धरती पुत्र चरण सिह", पूर्वोक्त, पृ0 128

अन्दर (In-Siders) और बाहर (Out-Siders) के विपक्षी नेताओ के मध्य न केवल समझोता वार्ता होने मे बाधा हो रही थी, बल्कि वे एक दूसरे के आचारण को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे थे । कुछ विपक्षी नेताओ द्वारा यह आरोप लगाया गया कि श्री बालाजी देवरस एव श्री बीजू पटनायक श्रीमती इदिरा गॉधी से समझौता वार्ता करने का प्रयास कर रहे है । ब्रहमदत्त ने आरोप लगाया कि "बाला साहब देवरस ने यरवदा सेन्ट्रल जेल से श्रीमती इदिरा गॉधी से पत्र द्वारा आग्रह किया है कि वे राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ से प्रतिबन्ध हटा ले एवं स्वयसेवको को जेल से रिहा कर दे ताकि वे सरकार के विकास कार्यो मे उनकी मदद कर सके ।" [1]

सन् 1976 के प्रारम्भिक दिनो मे कुछ विपक्षी नेताओ का विचार था कि सघर्ष का रास्ता त्यागकर सरकार से समझौता वार्ता प्रारम्भ करना चाहिए । श्रीमती इदिरा गाधी की कूटनीति एव तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो ने इस विचार को बढावा दिया । ससद मे विपक्षी गुट के नेताओ—श्री एच0 एम0 पटेल एव एन0 जी0 गोरे— ने इसकी पहल की परन्तु सरकार चाहती थी कि सर्वप्रथम विपक्ष अपना आन्दोलन वापस ले और सवैधानिक तरीके से कार्य करे । विपक्ष के अधिकाश नेता जेल मे थे एव सम्पर्क के अभाव मे उनकी ओर से कोई आधिकारिक वक्तव्य देना उचित नही था । साथ ही साथ कुछ नेता जैसे श्री जार्ज फर्नाडीज सरकार से समझौते के बिल्कुल पक्ष मे नही थे ।

जेल से रिहा होने के बाद चौधरी चरण सिह ने "दिल्ली मे भारतीय लोकदल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की सभा की ओर घोषणा की कि अगर सरकार नागरिक स्वतन्त्रता एव प्रेस को स्वतन्त्रता प्रदान करे एव आपातकाल को समाप्त करे तो वार्ता के लिये वातावरण बन सकता है श्री चरण सिह ने लोक सघर्ष समिति से नाता तोडने की घोषणा की और इसकी सूचना । जून 1976 को श्री जय प्रकाश नारायण को पत्र द्वारा दे दी ।" [2] 26 जून 1976 आपातकाल की प्रथम वर्षगाठ मे चौधरी चरण सिह ने श्रीमती इदिरा गाधी को पत्र लिखा, जिसमें उन्होने आग्रह किया "कि आपातकाल को समाप्त किया जाय, राजनीतिक बन्दियो का रिहा किया जाय, नागरिक स्वतन्त्रता बहाल की जाय, लोक सभा क चुनाव कराये जाय तथा सरकार एव विपक्षी नेताओ की मीटिग बुलायी जाय ।" इस पत्र का सरकार ने कोई औपचारिक जवाब नही दिया । वास्तव मे भारतीय लोकदल की ये मॉगे व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित न होकर सम्पूर्ण विपक्ष के लिए लाभप्रद थी । इससे यह प्रतीत होता है कि भारतीय लोकदल सरकार से केवल अपना पक्ष ही नही रख रहा था, बल्कि एक जिम्मेदार विपक्ष के रुप मे कार्य कर रहा था ।

बीजू पटनायक का दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही सरकार के प्रति नरम था । जेल से छूटने के बाद जिन्होने 5 अक्टूबर 1976 को भुनेश्वर मे एक लिखित वक्तव्य जारी किया, उसमे कहा गया था कि "देश ने आपातकाल मे आर्थिक क्षेत्र मे प्रगति की है । अनुशासन की स्थिति सुधारी है और 20 सूत्री कार्यक्रम के माध्यम से सामाजिक आर्थिक जीवन मे सुधार हुआ ।" विपक्षी नेताओ ने इस विवादस्पद वक्तव्य की आलोचना की एव चौधरी चरण सिह को भी यह विचार अति समझौतावादी लगा जिससे वे पूर्णतया सहमत नही थे । नवम्बर 1976 मे भारतीय लोकदल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी मे श्री बाल राज मधोक ने एक प्रलेख प्रस्तुत किया, जिसमे आग्रह किया गया था कि "भारतीय लोकदल नेताओ को अपने मूल सिद्धान्तो को बिना आघात पहुँचाये सरकार के साथ, 'अनुक्रियावादी सहयोग' का रास्ता अपनाना

---

1. ब्रहमदत्त, "फाइव हेडेड मॉन्सटर", पूर्वोक्त, पृ0 28
2 वही, पृ0 73

चाहिए ।" उनकी धारणा थी कि वर्तमान स्थिति मे दोनो पक्षो का अतिवादी दृष्टिकोण लोकतन्त्र के लिए हानिकारक ह ।

सरकार स समझोतावादी दृष्टिकोण के प्रमुख प्रतिवादक भारतीय लोकदल के नेता थे । जिसमे श्री बीजू पटनायक [1] एव श्री बालराज मधोक [2] का नाम प्रमुख था । चौधरी चरण सिह [3] ने भी श्रीमती गाधी को पत्र लिखा था, परन्तु उनका दृष्टिकोण अन्य भारतीय लोकदल के नेताओ की तरह सरकार के प्रति प्रशसात्मक नही था । यरवदा सेंट्रल जेल मे राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ के सर सघचालक श्री बाला साहब देवरस ने श्रीमती इन्दिरा गाधी [4] एव विनोबा भावे [5] को पत्र लिखे । जिसमे उन्होने सरकार की प्रशसा करते हुए राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ के प्रति मृदु होने का आग्रह किया था । "इन पत्रो की प्रतियो को जनसघ एव राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के कार्यकर्ताओ ने अपने हितो चिन्तको को बुकलेट के रुप मे बॉटी ।" [6] इससे प्रतीत होता है कि आर० एस० एस० के दृष्टिकोण को एक सीमा तक जनसघ का भी समर्थन प्राप्त था ।

उल्लेखनीय है कि चार प्रमुख विपक्षी दलो - (सगठन काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, भारतीय लोकदल एव जनसघ) मे केवल जनसघ एव भारतीय लोकदल ही, दलीय सगठन एव लोकप्रियता की दृष्टि से सुदृढ थे । इन्होने जय प्रकाश आन्दोलन को खुला समर्थन किया था, अत इन दलो के नेताओ का सरकार के प्रति रुझान आश्चर्य मे डालने वाला था । वैसे यह सत्य नही है कि भारतीय लोकदल एव जनसघ के नेतृत्व का दृष्टिकोण सरकार प्रति नर्म था, परन्तु इन दलो का एक महत्वपूर्ण गुट सरकार से समझौता वार्ता करने को उत्सुक था । वास्तव मे अन्य दलो की तुलना मे भारतीय लोकदल का जनाधार व्यापक था, जिसके आधार पर वह सत्ता का महत्तम् लाभ उठाना चाहता था । अत भारतीय लोकदल एक ओर विलय के आन्दोलन का मार्गदर्शन रहा था, तो दूसरी ओर सत्ता से सहयोग करने की अपील भी कर रहा था, जिससे किसी भी प्रकार के सत्ता समीकरण मे उसे अधिकतम लाभ हो ।

राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ एव जनसघ की भी यही स्थिति थी अन्तर केवल इतना था कि इनका सगठन भारतीय लोकदल से सुदृढ था परन्तु लोकप्रियता उससे कम थी । ये अपनी सगठनात्मक क्षमता के आधार पर एक ओर विपक्षी एकता का समर्थन कर रहे थे, तो दूसरी ओर सत्ता से सहयोग का प्रयास कर रहे थे । दोनो ही प्रकार के समीकरणो से उन्हे लाभ की सम्भावना थी ।

सगठन काग्रेस एव सोशलिस्ट पार्टी का सगठन एव जनाधार दोनो कमजोर थे, अत उनकी प्रथम चिन्ता अपने अस्तित्व की थी । सत्ता काग्रेस का व्यक्तित्व बहुत विशाल था, अत सगठन काग्रेस एव सोशलिस्ट पार्टी

---

1 बीजू पटनायक द्वारा 15 अक्टूबर 1976 को भुवनेश्वर से जारी लिखित वक्तव्य उद्धृत- ब्रहमदत्त, पूर्वोक्त, पृ0 82-84

2. बालराज मधोक द्वारा भारतीय लोकदल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी मे प्रस्तुत प्रलेख, उद्धृत- वही, पृ0 84-88

3. चोधरी चरण सिह द्वारा श्रीमती इदिरा गॉधी को लिखा गया पत्र, 20 जून 1976, उद्धृत- वही, पृ0 74-79

4. बाला साहब देवरस द्वारा श्रीमती इन्दिरा गाधी को 22 अगस्त एव 10 नवम्बर 1975 को लिखे गये पत्र, उद्धृत- वही, परिशिष्ट IV पृ0 138 144

5 बाला साहब देवरस द्वारा आचार्य विनोबा भावे को 12 जनवरी 1976 को लिखा गया पत्र, उद्धृत- वही, पृ0 145-147

6 ब्रहमदत्त, पूर्वोक्त, पृ0 30

उसके साथ किसी भी प्रकार की समझौता वार्ता करके अपने बौनेपन को नही प्रकट करना चाहती थी । सोशलिस्ट नेता श्री जार्ज फर्नांडीज ने विपक्षी दलो के समझौतावादी दृष्टिकोण की कटु आलोचना की थी ।

विपक्षी एकता मे एक बडी बाधा विभिन्न दलो के "सगठन एव लोकप्रियता" के आधार को लेकर उत्पन्न हुई । इस आधार पर भारतीय लोकदल एव जनसघ सुदृढ़ थे, जबकि सगठन काग्रेस एव सोशलिस्ट पार्टी कमजोर थी । भारतीय लोकदल एव जनसघ विपक्षी एकता की ऐसी रुपरेखा चाहते थे, जिसमे उनके महत्व की वृद्धि हो जबकि सगठन काग्रेस एव सोशलिस्ट पार्टी ऐसी रुप रेखा चाहते थे, जिसमे उनके महत्व एव अस्तित्व को आघात न पहुँचे । अत कहा जा सकता है कि विपक्षी एकता के माध्यम से भारतीय लोकदल एव जनसघ अपने महत्व मे वृद्धि की तथा सगठन काग्रेस एव सोशलिस्ट पार्टी अपने अस्तित्व की लडाई लड़ रहे थे ।

दिसम्बर 1976 तक अनेक विपक्षी नेता जेल से रिहा हो गये थे । ये सभी नेता बडी असमजस मे थे कि वर्तमान राजनीतिक सकट से किसी प्रकार निपटा जाय । भारतीय लोकदल एव राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ की समझोतावादी अपीलो स सरकार के कान म जूं नहीं रेग रही थी । धर्म सकट मे पडे विपक्षी नेताओ को समझ मे नही आ रहा था कि उन्हे कोन सा कदम उठाना चाहिए, कि जिससे वे डूबते हुये उदारवादी लोकतन्त्र के जहाज को बचा सके । अत इस बार सम्पूर्ण विपक्ष ने एक जुट होकर सरकार से अपील की कि वह देश मे प्रजातान्त्रिक मूल्यो की स्थापना के प्रयास करे ।

दिसम्बर 1976 को चौधरी चरण सिह की सहमति से बीजू पटनायक द्वारा एक 'एप्रोच पेपर' तैयार किया गया । 4 दिसम्बर 1976 को चौधरी चरण सिह ने इसे व्यक्तिगत रुप से भारत के गृह राज्य मत्री श्री ओम मेहता को सौपा । इस पेपर मे ससदीय लोकतन्त्र के क्रियान्वयन के लिये 'सशक्त विपक्ष' के निर्माण पर जोर दिया गया था । इसमे कहा गया था कि ससद के अन्दर एव बाहर प्रजातन्त्र की स्थापना होनी चाहिए । राष्ट्रीय अनुशासन जनता की इच्छा से उत्पन्न होता है, भय से नही, अत सरकार को भयमुक्त समाज की स्थापना के प्रयास करना चाहिये ।[1] कुछ विपक्षी नेताओ ने इस पत्र का विरोध किया एव इसे 'आत्मसमर्पण का प्रलेख'[2] कहा । श्री बीजू पटनायक ने सरकार की शका का निवारण करने के लिए भारत सरकार के गृहराज्य मन्त्री श्री ओम मेहता को पत्र[3] द्वारा सूचित किया कि उन्हे प्रदान किये गये 'एप्रोच पेपर' को सम्पूर्ण विपक्ष का समर्थन प्राप्त है ।

इसी क्रम मे डी० एम० के० नेता श्री करुणानिधि ने स्वय को विपक्षी दलो के प्रवक्ता के रुप मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया । उन्होने 15 दिसम्बर 1976 की अपनी अध्यक्षता मे 'गैर साम्यवादी विपक्षी दलो' की एक सभा आहूत की । इसका उद्देश्य विपक्ष एव सरकार के बीच सवाद की सम्भावनाओ को तलाश करना था । इसमे प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गॉधी को भी आमन्त्रित किया गया, परन्तु उन्होने भाग लेने से इन्कार कर दिया । इस सभा मे जनसघ के अटल बिहारी बाजपेयी भारतीय लोकदल के श्री एच० एम० पटेल, श्री पीलू मोदी, श्री बीजू पटनायक, संगठन काग्रेस के श्री अशोक मेहता, श्री दिग्विजय नारायण सिह और श्री बनारसी दास, सोशलिस्ट पार्टी के श्री एन० जी० गोरे, श्री समर

---

1. एप्रोच पेपर के मूल पाठ से उद्धृत-ब्रहमदत्त पूर्वोक्त, पृ० 91-93
2. ब्रहमदत्त पूर्वोक्त, पृ० 94
3. बीजू पटनायक द्वारा ओम मेहता को 1 जनवरी 1977 को लिखा गया पत्र उद्धृत-ब्रहमदत्त पूर्वोक्त, पृ० 94-96

गुहा, श्री सुरेन्द्र मोहन एव निर्दलीय सासद श्री कृष्ण कान्त और श्री शेर सिह आदि नेता सम्मिलित हुए । इस सभा के दृष्टिकोण को जय प्रकाश नारायण का समर्थन प्राप्त था ।[1] करुणानिधि ने यह सुझाव दिया कि वर्तमान राजनीतिक गत्यावरोध समाप्त करने के लिए व्यावहारिक होगा कि दोनो पक्ष बिना किसी पूर्व शर्तो के सवाद प्रारम्भ करे ।[2]

16-17 दिसम्बर को श्री एच0 एम0 पटेल की अध्यक्षता मे विपक्षी दलो की बैठक हुई । इस बैठक मे भी सगठन काग्रेस भारतीय लोकदल, जनसघ, सोशलिस्ट पार्टी एव डी0 एम0 के0 नेताओ सहित अनेक निर्दलीय सासदो ने भाग लिया । विपक्षी दलो के कार्यकारी प्रवक्ता श्री एच0 एम0 पटेल ने कहा कि प्रजातात्रिक मूल्यो की रक्षा के लिए वर्तमान गत्यारोध का अत होना चाहिए । विपक्ष, काग्रेस के कुछ कार्यक्रमो जैसे परिवार नियोजन एव वृक्षारोपण आदि का समर्थन करता है, परन्तु इन्हे लागू करने की पद्वति मे हमारा मतभेद है, सरकार को विपक्ष से वार्ता करके सर्वसम्मति से इन कार्यक्रमो को लागू करना चाहिए । यह दृष्टिकोण किसी भी व्यक्ति या सरकार के लिए अपमान जनक नही है ।[3] परतु सरकार ने कोई सकारात्मक पहल नही की ।

विलय का नवीन विचार

जनवरी 1977 के प्रारम्भिक दो सप्ताहो के दौरान विलय के एक नये विचार का प्रादुर्भाव हुआ । "भारतीय लोकदल के कुछ नेता इस विचार पर राजी हो गये कि भारतीय लोकदल का, सगठन काग्रेस मे विलय विपक्षी एकता का प्रथम चरण होगा । यह प्रावधान किया गया कि सगठन काग्रेस के सविधान मे परिवर्तन किया जायेगा जिससे भारतीय लोक दल उसमे समाहित हो सके तथा श्री अशोक मेहता के स्थान पर चौधरी चरण सिह इसके अध्यक्ष होगे । 13 जनवरी 1977 को लोकदल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने इन विचार का अनुमोदन कर दिया ।"[4]

14 जनवरी 1977 को पुन भारतीय लोकदल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक हुई । उसमें भारतीय लोकदल के नेता ब्रहमदत्त ने इस विषय मे अनेक आपत्तिया उठायी और स्पष्टीकरण मॉगे । उन्होंने कहा कि 'केवल नेतृत्व परिवर्तन से सम्पूर्ण भारतीय लोकदल का समायोजन सगठन काग्रेस मे नही हो पायेगा एव इससे भारतीय लोकदल के सदस्यो का महत्व कम हो जायेगा । उन्होंने सुझाव दिया कि यह विलय तभी सार्थक होगा जब अखिल भारतीय सगठन काग्रेस एक प्रस्ताव द्वारा चरण सिह को अपना अध्यक्ष चुने एव अपनी केन्द्रीय, राज्य एव जिले स्तर की ईकाइयो को विघटित कर दे और नये अध्यक्ष को यह अधिकार दिया जाय कि वे नयी कार्यकारिणी, नयी अखिल भारतीय काग्रेस (सगठन) कमेटी, और नयी राज्य एव जिले स्तर की ईकाइयो का गठन करे । इससे भारतीय लोकदल का सगठन काग्रेस मे उचित समायोजन होगा ।'[5]

---

1. दि इण्डियन एक्सप्रेस दिल्ली दिसम्बर 16, 1975
2. वही •
3. दि इण्डियन एक्सप्रेस दिल्ली दिसम्बर 18, 1976
4. ब्रहमदत्त पूर्वोक्त, पृ0 110
5. वही

जब लोकदल ने इस प्रस्ताव को सगठन काग्रेस के नेताओ के समक्ष रखा, तो राजी नही हुए । इस पर भारतीय लोकदल नेता श्री चादराम ने कहा कि "विपक्षी नेताओ के बीच विश्वास का अभाव हे । अत हमे निरर्थक वार्तायें बन्द कर देनी चाहिये एव भारतीय लोकदल को मजबूत बनाने का कार्य करना चाहिये ।"[1]

पुनः गत्यावरोध

एकता एव विलय की रुपरेखा पर कोई अन्तिम समझौता नही हो पा रहा था । मतभेदो के एक नही अनेक स्तर एव प्रकार थे । "इसी बीच सगठन काग्रेस ने यह भी सुझाव दिया कि नये दल का, अगर वह बनता है, नाम 'भारतीय जनता काग्रेस' रखा जाय । सोशलिस्ट पार्टी एव जनसघ ने प्रस्तावित नाम पर सहमति प्रकट की । चौधरी चरण सिह ने 'काग्रेस' शब्द पर घोर आपत्ति प्रकट की ।"[2] इस नाम से चौधरी चरण सिह को यह सन्देह हुआ कि मोरारजी देसाई नव गठित दल के अध्यक्ष बनना चाहते है । चरणसिह ने 16 जनवरी 1977 के श्री जय प्रकाश नारायण के एक पत्र आग्रह पूवर्क लिखा "नये दल का गठन हो सकेगा, यह विश्वास हम जनता को नही दे पा रहे है । सगठन काग्रेस वाले रोडा अटका रहे है । यदि वह सहमत भी हो जाये, तो फरवरी गुजर जायेगी जबकि आम चुनाव सम्भावित है । अत दल का गठन चुनाव की घोषणा के पूर्व हो जाना आवश्यक है, क्योकि चुनाव की घोषणा के बाद नव गठित दल का वह प्रभाव नही बन पायेगा जो पहले बनने से होगा ।"[3]

सक्षेप मे आपातकाल के दौरान विपक्षी दलो क बीच हुए वार्तालाप से यह निष्कर्ष निकलता है कि श्री जय प्रकाश नारायण जैसे चमत्कारी नेता के प्रयासो के बावजूद विलय एव एकता सम्बन्धी कोई समझौता नही हो सका । ब्रहमदत्त लिखते है "18 जनवरी 1977 तक विपक्षी नेतागण अपने भविष्य के प्रयासो के विषय मे अनिश्चित थे । अनेको विकल्पो के विषय मे वार्तायें हुई थी, लेकिन कोई सुदृढ़ निर्णय नही लिया जा सका था ।"[4]

लोकसभा चुनाव की घोषणा

श्री जय प्रकाश नारायण स्वय 'एक प्रजातान्त्रिक राष्ट्रीय विकल्प' के रुप म एक नये दल का गठन करना चाहते थे, परन्तु उनका यह प्रयास भी निष्फल रहा । विपक्षी राजनीतिक दलो द्वारा विपक्षी एकता के अनेक मॉडल एव रुप - रेखायें प्रस्तुत की गयी थी, परन्तु कोई अन्तिम समझौता नही हो पा रहा था । अचानक श्रीमती इदिरा गाधी ने 18 जनवरी 1977 को लोकसभा के चुनाव कराने की घोषणा कर दी, जिससे विपक्षी दलो ने एकता के प्रयास तीव्र कर दिये । "अत विपक्षी दलो को 'विलय एव एकता' का कुछ श्रेय श्रीमती इदिरा गाधी को भी दिया जाना चाहिए, जिन्होने जनवरी 1977 मे चुनाव की घाषणा कर दी ।"[5] 18 जनवरी 1977 को श्रीमती इदिरा गाधी आकाशवाणी एव दूरदर्शन पर बिना पूर्व निर्धारित कार्यक्रम से आयी और उन्होने लोक सभा को भग करने और मार्च 1977 मे आम चुनाव कराये जाने की घोषणा की । उसी दिन श्री मोरार जी देसाई छोड़ दिये गये । चुनाव की घोषणा से विपक्षी खेमे मे हलचल

---

1. उद्धृत ब्रहमदत्त पूर्वोक्त, पृ0 111
2. उद्धृत, अनिरुद्ध पाण्डेय "धरती पुत्र चरण सिह", पूर्वोक्त, पृ0 128
3. पत्र के मूल पाठ से, उद्धृत, अनिरुद्ध पाण्डेय वही, पृ0 129
4. ब्रहमदत्त पूर्वोक्त, पृ0 111
5. सी0 पी0 भाम्भरी पूर्वोक्त, पृ0 16

मच गयी । श्री पीलू मोदी जो 'वैकल्पिक दल' बनाने का प्रयास कर रहे थे, श्री मोरार जी से मिलने उनके आवास पर गये, तो मोरार जी ने तपाक से मोदी से कहा कि "अच्छा हुआ चुनाव घोषित हो गया, विलय के पाप से बच गये, अब मोर्चा बनाकर लडा जायेगा ।"[1]

उसी समय जनसघ नेता श्री लाल कृष्ण अडवानी ने कहा कि 'एकीकृत विपक्ष' हमारी त्वरित आवश्यकता है । उन्होंने कहा कि "विपक्षी दलो को तथ्य सम्मत एकीकरण हो जाना चाहिए । विधि सम्मत विलय बाद मे वैधानिक एव तकनीकी औपचारिकताओ के पूर्ण होने के बाद कर लिया जायेगा । 19 महीने की आपातकाल ने सम्पूर्ण विपक्ष को एक धरातल पर खडा कर दिया है, और विपक्षी एकता आपातकाल का सबसे बडा काम होना चाहिए ।"[2]

18 जनवरी 1977 की रात्रि को श्री मोरार जी के नई दिल्ली वाले निवास 5 डूप्ले रोड पर सभी प्रमुख विपक्षी दलो की बेठक हुई । उसमे चौधरी चरण सिह, श्री अटल बिहारी बाजपेयी, श्री सुरेन्द्र मोहन, श्री पीलू मोदी, नानाजी देशमुख श्री एन0 जी0 गोरे, श्री अशोक मेहता शामिल हुए । इस बैठक मे भी सभी नेता विलय के लिए राजी नही हो पा रहे थे । बेठक मे भी मोरार जी देसाई ने मोर्चा बनाने पर जोर दिया जबकि चौधरी चरण सिह एव एन0 जी0 गोरे ने उत्तेजित होकर विलय की मॉग की । दिल्ली आकर श्री जय प्रकाश नारायण न स्थिति को समझ कर ऐलान किया कि "अगर एक दल नही बनाया जाता तो मै चुनाव प्रसार नही करुगा ।"[3]

20 जनवरी 1977 को नई दिल्ली मे हुई विपक्षी दलो की बैठक मे ऐतिहासिक निर्णय लिया गया । सगठन काग्रेस, जनसघ भारतीय लोकदल, और सोशलिस्ट पार्टी इस बात पर राजी हो गये कि 'आने वाले लोकसभा चुनाव मे वे मिलकर 'एकदल' की तरह कार्य करेगे । इस दल का नाम 'जनता पार्टी' होगी और वे एक झण्डे एव कार्यक्रम के तहत चुनाव लडेगे ।'[4]

उसी दिन श्री मोरार जी देसाई ने एक प्रेस को बताया कि हमने निश्चय किया है कि हम 'एक दल' के रुप मे चुनाव लड़गे । अनेक वैधानिक एव तकनीकी कठिनाइयो के कारण अभी 'नये दल' के निर्माण की घोषणा नही की जा सकती है, वैसे हम बाद मे 'एकदल' बनाने के लिये दृढ प्रतिज्ञ है । इस 'नये दल का मॉडल' अतीत के 'सयुक्त मोर्चे' या चुनावी गठबन्धन से भिन्न था । श्री मोरार जी ने स्वय कहा कि 'इस दल का पैटर्न गुजरात के जनता मोर्चा से अलग होगा चुनाव मे प्रत्याशियो का चयन व्यक्तिगत दल द्वारा नही, वरन् 9 सदस्यीय समिति द्वारा किया जायेगा ।'[5] इस प्रेस सम्मेलन मे चौधरी चरण सिह श्री अटल बिहारी बाजपेयी, एव श्री मधुदण्डवते आदि नेता उपस्थित थे ।

सोशलिस्ट नेता श्री जार्ज फर्नाडीज ने चुनाव के बहिष्कार की वकालत की परन्तु श्री मोरार जी देसाई ने कहा कि वे बहिष्कार को उचित नही मानते तथा वर्तमान स्थिति मे चुनाव मे भाग लेने के आलावा कोई दूसरा रास्ता नही

---

1. उद्धृत अनिरुद्ध पाण्डेय पूर्वोक्त, पृ0 129
2. दि इडियन एक्सप्रेस बम्बई, 20 जनवरी 1977, उद्धृत एस0 देवदास पिल्लई "दि इनक्रेडिबल इलेवशन्स 1977, एक ब्लो बाइ ब्लो डॉकुमेन्टस ऐज रिपोर्टेड इन इडियन एक्सप्रेस" (सम्पादित) पापुलर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई, 1977, पृ0 37
3. उद्धृत अनिरुद्ध पाण्डेय, पृ0 129
4. दि इण्डियन एक्सप्रेस, बम्बई, जुलाई 21, 1977, उद्धृत एस0 देवदास पिल्लई पूर्वोक्त, पृ0 38
5. वही

है । इस क्रम मे 22 जनवरी सोशलिस्ट पार्टी की कार्यकारिणी ने निर्णय लिया कि सोशलिस्ट पार्टी, जनता पार्टी के साथ मिलकर कार्य करेगी ।

अन्ततोगत्वा 23 जनवरी को जय प्रकाश नारायण की उपस्थित मे एक प्रेस सम्मेलन मे 'जनता पार्टी' का उद्घाटन किया गया । चारो दलो के नेताओ ने यह वचन दिया कि वर्तमान जनता पार्टी का गठन इस विचार से किया गया हे कि बाद मे 'एक दल' का निर्माण हो जाय । जनता पार्टी की एक 27 सदस्यीय समिति का भी गठन किया गया । सगठन काग्रेस के श्री मोरार जी देसाई को इसका अध्यक्ष एव भारतीय लोकदल के चौधरी चरण सिह को उपाध्यक्ष बनाया गया । पूर्व काग्रेसी नेता श्री रामधन, जनसघ के श्री एल० के० अडवानी एव सोशलिस्ट पार्टी के श्री सुरेन्द्र मोहन को महासचिव एव श्री शान्ति भूषण को कोषाध्यक्ष का पदभार दिया गया । इसके आलावा समिति मे 21 अन्य सदस्य थे । यह जनता पार्टी की सर्वोच्च निर्णयकारी समिति थी, जिसका प्रथम कार्य चुनावी घोषणा पत्र का निर्माण करना था ।

23 जनवरी 1977 को घोषित जनता पार्टी मात्र, एक व्यवस्था' थी, जिसमे घटको का औपचारिक रुप से एक दल मे विलय नही हुआ था, हालाकि उन्होने विलय का निश्चय कर लिया था । कई दलो जैसे—सगठन काग्रेस एव जनसघ के दलीय सविधान मे यह प्रावधान था कि किसी भी विलय के पूर्व इन दलो को अपनी पार्टी की आम सभा द्वारा अनुमोदन प्राप्त करना जरुरी था । समयाभाव के कारण चुनाव के पूर्व इस प्रकार का अनुमोदन सम्भव नही था । अत यह निश्चय किया गया कि चुनाव के बाद मे, दल अपने दलीय सम्मेलन मे यह अनुमोदन प्राप्त करेगे । मार्च 1977 म लोक सभा चुनाव के बाद घटक दलो वे अपने दलीय सम्मेलन मे यह अनुमोदन प्राप्त कर लिया, और घटको के औपचारिक विलय के बाद 1 मई 1977 को 'जनता पार्टी' का औपचारिक एव विधि सम्मत गठन हो गया । श्री चन्द्रशेखर उसके अध्यक्ष बने । जनता पार्टी के अनेक नेताओ के द्वारा इसके जन्म के सन्दर्भ मे अनेक प्रशसात्मक वक्तव्य दिये गये । श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने दावा किया कि 'भगवान कृष्ण की भॉति जनता पार्टी का जन्म जेल मे हुआ, जेल से ही हमे विपक्षी एकता का विचार मिला, इसके लिये प्रधानमन्त्री (श्रीमती इदिरा गॉधी) का आभार व्यक्त करना चाहिए ।' [1]

निष्कर्ष

*जनता पार्टी के उदय के तथ्यो के विश्लेषण से यह विदित होता है कि विलय के विषय मे विपक्षी दलो के बीच अनेको आशाये, शकाये और पूर्वाग्रह थे । इन शकाओ एव पूर्वाग्रहो का प्रशमन आशाओ एव स्वार्थों के धरातल पर हुआ और एकता का मार्ग प्रशस्त हुआ । बिखरे हुये विपक्षी दल न तो सशक्त विपक्ष की भूमिका निभा पा रहे थे, और न ही अपना महत्व बढा पा रहे थे । ऐसी स्थिति मे सभी विपक्षी दलो के व्यापक हित मे था कि वे आपसी मतभेदो का भुलाकर एक जुट हो जाये और सत्ता काग्रेस को चुनौती दे । विपक्षी एकता से एक साथ अनेक सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए । **प्रथम** विभिन्न विपक्षी दलो के अस्तित्व एव महत्व को नया जीवन मिला, **द्वितीय** जनता को सत्ता काग्रेस की तानाशाही से मुक्ति मिली, तृतीय लोकतान्त्रिक मूल्यो की स्थापना हुई ।*

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, मार्च 1, 1977

नि सन्देह जनता पार्टी के उदय मे आपातकाल का निर्णायक प्रभाव पडा । यदि आपातकाल के बिना विपक्षी एकता के प्रयास किये तो सम्भव था कि विभिन्न घटको मे आन्तरिक फूट पड जाती । पूर्व के अनुभवो से यह विदित होता है कि दलो के विलय की प्रक्रिया मे घटको (दलो) में पुन· विघटन हुआ, जिसके एक धड ने विलय का समर्थन किया तो दूसरे ने विरोध किया । इस प्रकार विलय के बाद बने दल की शक्ति एव लोकप्रियता प्रारम्भ से ही क्षतिग्रस्त रही, इससे वे न तो चुनाव मे सफल हुए और न ही उनका गठबन्धन स्थायी रहा । भारतीय राजनीति की यह नवीन घटना थी कि विभिन्न दल बिना गम्भीर आन्तरिक विभाजन एव मतभेद के विलय के लिए राजी हुए थे ।

1977 मे विपक्षी एकता एव जनता पार्टी का उदय इस लिए सम्भव हो पाया क्योकि इस विशेष समय मे विभिन्न विपक्षी दलो के व्यक्तिगत स्वार्थो एव राजनीतिक व्यवस्था के प्रजातान्त्रिक मूल्यो मे एक सामन्जस्य स्थापित हो गया था । इस सामन्जस्य ने विपक्षी एकता को सामाजिक मान्यता एव विलय के आन्दोलन को व्यापक समर्थन प्रदान किया । जनता पार्टी का विधि सम्मत गठन लोक सभा के चुनाव के बाद हुआ । इसलिये मार्च 1977 के छठी लोक सभा के चुनाव भारतीय राजनीतिक एव भारतीय दलीय व्यवस्था के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण एव मील का पत्थर है ।

[illegible]तीय - अध्याय

छठीं लोक सभा का चुनाव (1977) :
जनता लहर एवं कांग्रेस युग का अन्त

छठीं लोकसभा का चुनाव (1977) :
जनता लहर एवं कांग्रेस युग का अन्त

प्रस्तावना

आपातकाल के दौरान देश एक ऐसे राजनीतिक एव सवैधानिक विकास के दौर मे था, जिसमे विवेक की आवाज सत्ता के गलियारे मे डूब गयी थी । एक छद्म लोकप्रियता, लोकतत्र एव विकास का आवरण देश मे सर्वत्र छाया था और सत्ता के सामने घुटने टेकने और उसे अनुकूल साबित करने की भागम् दौड मची थी । परन्तु हतिहास पर नजर डालने पर यह सत्य उभरता है कि ऐसी ही सघन रात्रि के बाद उषाकाल का आगमन हुआ है । ऐसे समय लोकसभा के चुनाव की घोषणा जनता एव विपक्ष के लिये मुँह माँगा वरदान थी ।

18 जनवरी, 1977 को श्रीमती इदिरा गॉधी ने लोकसभा को भग कराने और मार्च 1977 मे आम चुनाव कराये जाने की घोपणा की, उन्होंने यह भी कहा कि मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलो की विहित राजनीतिक गतिविधियो के लिये आपात स्थिति मे और ढील दी जा रही है ।

जनता, विपक्ष एव बुद्धिजीवियो के लिये यह घोपणा आश्चर्यजनक थी क्योकि अभी कुछ ही समय पहले लोकसभा की कार्यावधि एक वर्ष के लिये बढ़ा दिया गया था । भारतीय सविधान के अनुच्छेद 83 के उपबन्ध (2) के अनुसार, "जब तक आपातकाल की उद्घोषणा प्रवर्तन मे है, तब तक लोकसभा की कालावधि को ससद विधि द्वारा किसी भी कालावधि के लिये बढा सकेगी, जो एक बार मं एक वर्ष से अधिक न होगी तथा किसी भी अवस्था मे भी उद्घोषणा के प्रवर्तन का अन्त हो जाने के पश्चात् छः मास की कालावधि से अधिक विस्तृत न होगी ।"[1]

पॉचवी लोकसभा का मार्च 1971 में गठन हुआ था और इसकी कालावधि मार्च 1976 तक थी । परन्तु इसी प्रावधान के अनुसार लोकसभा की कालावधि को दो बार बढ़ाया जा चुका था । प्रथम बार फरवरी 1976 और दूसरो बार नवम्बर 1976 को । इसके अलावा सरकार ने दिसम्बर 1976 को 42वॉ संविधान सशोधन भी पारित कर दिया था । जिसके अनुसार भी लोकसभा की सामान्य कालावधि को पॉच वर्ष से बढाकर छः वर्ष कर दिया था । अत. इधर एक वर्ष तक किसी को चुनाव की आशा नहीं थी ।

श्रीमती इदिरा गॉधी ने आकाशवाणी एव दूरदर्शन मे अत्यन्त प्रजातात्रिक मुद्रा मे बोलते हुए कहा, "वैसे अगले 18 महीनो तक वैधानिक रूप से वर्तमान लोकसभा की कालावधि है, परन्तु अब प्रश्न यह है कि उन राजनीतिक

---

1. भारतीय सविधान अनुच्छेद 83(2) ।

नेतागण सजय गाँधी से महत्वपूर्ण विषय मे विचार-विमर्श करते थे । देश के महत्वपूर्ण सरकारी मामले एव गुप्तचर रिपोर्टे सजय गाँधी के माध्यम से इदिरा गाँधी तक पहुँचती थी । परन्तु वास्तव मे सजय गाँधी को इस प्रकार के राजनीतिक हस्तक्षेप का कोई वैधानिक अधिकार प्राप्त नही था । अत श्रीमती इदिरा गाँधी, श्री सजय गाँधी एव उसके समर्थको का लोकसभा मे लाकर इस प्रक्रिया को वैधानिकता प्रदान करना चाहती थी । वे छद्म लोकप्रियता के कारण अपनी जीत के लिये आश्वस्त भी थी । अत उन्होने चुनाव की घोषणा कर दी ।[1]

(3) एक मत यह भी है कि श्रीमती इदिरा गाँधी के पास ऐसी भी सूचनाये पहुच रही थी कि सेना का एक भाग उनके सभी निर्णयो का समर्थन नही कर रहा है । सेना में जवान-वर्ग इस बात से चिंतित था कि श्री सजय गाँधी द्वारा चलाया गया, जबरजस्त 'नसबन्दी अभियान' उनके गाँव एव परिवार मे कहर ढा रहा है । इस बात से उनमे आक्रोश था । इससे श्रीमती इदिरा गाँधी भी चिन्तित थी और वे शीघ्रातिशीघ्र इस स्थिति का अन्त करके सामान्य स्थिति बहाल करना चाहती थी । अत उन्होने चुनाव की घोषणा कर दी ।

(4) विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित तथ्य यह भी उद्‌घाटित करते है कि इन्टैलीजेन्स ब्यूरो एव रॉ (रिसर्च ऐण्ड एनालेसिस विग) जैसी गुप्तचर सस्थाओ ने श्रीमती इदिरा गाँधी को यह सूचना दी थी कि यदि शीघ्र (जनवरी 1977 से जून 1977 के बीच) लोकसभा के चुनाव कराये जाये; तो सत्ता काग्रेस को **लगभग 400 स्थानो मे विजय प्राप्त होगी । इन गुप्तचर संस्थाओ की गणना** इस अनुमान पर आधारित थी कि विपक्ष बिखरा हुआ है और उसका एक जुट होना सभव नही है, तथा **जनता एवं मतदाता इतने भयभीत है कि वे गैर-कांग्रेसी प्रत्याशी को मत नही देगे ।**[2]

स्वयं प्रधानमत्री श्रीमती इदिरा गाँधी को यह विश्वास था कि उसके चुनावी-ससाधन एव तत्र विपक्ष से हजारो गुना उत्तम है । साथ ही साथ विपक्ष को अपनी चुनावी रणनीति के लिये समय भी कम मिल रहा है, इसका लाभ सत्ता को ही मिलेगा । अत: उनकी जीत सुनिश्चित है, इसलिये श्रीमती इदिरा गाँधी ने चुनाव की घोषणा कर दी ।

(5) चुनाव की घोषणा के सदर्भ मे कुछ **बाह्य-दबावों** का जिक्र करना भी प्रासगिक होगा । 'यद्यपि श्रीमती इदिरा गाँधी नें इस बात से इन्कार किया था कि उन्होने चुनाव कराने का निर्णय किसी विदेशी या बाह्य दबाव मे आकर लिया था ।'[3] परन्तु तथ्य कुछ और ही इगित करते है । उस समय विदेशी सचार माध्यम, श्रीमती इदिरा गाँधी को एक 'तानाशाह' एव उदारवादी प्रजातान्त्रिक सस्थाओ के शत्रु के रूप मे प्रस्तुत कर रहे थे । **एमनेस्टी इण्टरनेशनल, सोशलिस्ट इण्टरनेशनल** और दूसरे अन्य मानवतावादी सगटन, विदेशी प्रेस की सहायता से ये तथ्य उजागर कर रहे थे कि श्रीमती इदिरा गाँधी ने सत्ता मे बने रहने के लिये सभी मानवाधिकारो एव मौलिक स्वतत्रताओ को तिलाजलि दे दी है । विश्व के अनेक बुद्धिजीवियो ने श्रीमती इदिरा गाँधी को पत्र लिखे और भारत की स्थिति पर दु ख व्यक्त करते हुये माँग की कि देश मे सामान्य स्थिति बहाल करके प्रजातात्रिक मूल्यो की पुनर्स्थापना की जाए ।[4]

---

1. कुलदीप नैयर · 'दि जजमेण्ट' विकास, दिल्ली, 1977 ।
2. विभिन्न राष्ट्रीय दैनिकों प्राप्त तथ्य, देखे, होंर्स्ट हार्टमैन "पॉलीटिकल पार्टीज इन इण्डिया", पूर्वोक्त, पृ0 254 ।
3. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया; दिल्ली, फरवरी 8, 1977 पृ0 1 ।
4. इसी सदर्भ में लन्दन के 'दि टाइम्स' मे 15 अगस्त, 1975 को 500 बुद्धिजीवियो एव समाज-सुधारको का हस्ताक्षर सहित एक

बाह्य दबाव का एक अन्य आयाम भी है । श्रीमती इदिरा गॉधी देश की बिगडती आर्थिक स्थिति को ध्यान मे रखकर अमेरिका से सबध सुधारना चाहती थी । अमरीकी राष्ट्रपति जिमी कार्टर ने चुनाव अभियान के दौरान यह घोषणा की थी कि "विश्व मे मानवाधिकार और स्वतत्रता की रक्षा करना हमारी विदेश नीति की रीढ़ होगी ।"[1] **श्रीमती इंदिरा गॉधी अमेरिका को यह दिखाना चाहती थी कि वे मानवाधिकारो की रक्षक हैं। अत उन्होने चुनाव की घोषणा कर दी।**

(6) दिसम्बर, 1976 मे जब प्रेस सेसरशिप मे थोड़ा ढील दी गयी तो देश की तमाम पत्र-पत्रिकाओं मे सरकार से आपातस्थिति खत्म करने एव नागरिक स्वतत्रताओ को बहाल करने की अपील की गयी । इण्डियन एक्सप्रेस के सम्पादक **श्री वी० के० नरसिंहम् ने अनेक क्रमबद्ध लेखों द्वारा 'तानाशाही के खबरो' को उजागर किया । इसी दैनिक मे** 21 एव 22 दिसम्बर को जे० ए० नैयक ने 'डेमोक्रेसी एण्ड डेवेलपमेण्ट' **नामक लेख पर अपने विचार व्यक्त किये । उन्होने आधुनिक इतिहास के राजनीतिक नियम के रूप मे इस अवधारणा का प्रतिपादन किया कि अगर तानाशाही लम्बे अरमे तक जारी रही, तो देश का विघटन हो जायेगा।**[2]

इन लेखो का श्रीमती इदिरा गॉधी पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा, क्योकि उन्होने तुरन्त पत्र द्वारा विपक्ष को सूचित किया कि वे ससदीय लोकतत्र का आदर करती है एव वर्तमान परिस्थितियो को सामान्य बनाने के लिये इच्छुक है ।[3] 18 जनवरी, 1977 को लोकसभा चुनाव की घोषणा इसी पत्र का व्यावहारिक रूपान्तर कही जा सकती है ।

उपरोक्त वर्णित सभी कारकों के विश्लेषण के उपरान्त भी यह कहना कठिन है कि इन कारकों मे किस एक या दो कारकों ने श्रीमती इदिरा गॉधी को सबसे ज्यादा प्रभावित किया, जिससे उन्होंने चुनाव कराने का निर्णय ले लिया । वास्तविकता यह है कि सभी कारकों के सामूहिक प्रभाव न श्रीमती इदिरा गॉधी को चुनाव की घोषणा के लिये बाध्य किया । एक कहावत है, जिन तानाशाहो को देवता नष्ट करना चाहते हैं, उन्हे पहले अन्धा बना देते है । श्रीमती इदिरा गॉधी भी गलत गणनाओं के कुचक्र मे फॅस चुकी थी और तब नियति ने हस्तक्षेप किया । अब तक की एक चालाक और हिसाबी राजनीतिज्ञ, जो अपनी सही समय की पकड़ के लिये प्रसिद्ध रही है, उनकी (इदिरा गॉधी की) उस घटनाक्रम पर मुट्ठी ढीली पड़ गयी, जिसे उन्होंने गति दी थी ।

जनता पार्टी एव कांग्रेस की चुनावी रणनीति

1977 के लोकसभा चुनाव भारतीय प्रजातत्र के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण थे । इसमें भारतीय जनमानस ने श्रीमती इदिरा गॉधी की तानाशाह काग्रेसी सरकार को नकार दिया था । जनता पार्टी के लिये यह चुनाव एक चुनौती एव अवसर दोनो था । जनता पार्टी को सफलता एव असफलता पर भारतीय प्रजातत्र का भविष्य निर्भर था, **जो कि सरटोरी के शब्दो में 'विजड़ित एवं विखण्डित'[4] हो चुका था।**

विज्ञापन प्रकाशित किया गया, उद्धृत डी0 सी0 गुप्ता, पूर्वोक्त, पृ0 672, 25 अप्रैल, 1976 के 'न्यूयार्क टाइम्स' की अपील, उद्धृत, दीनानाथ मिश्र; पूर्वोक्त, पृ0 153 ।

1. 'दी स्टेट्समैन' दिल्ली, मार्च 19, 1977 ।
2. देखें, जे0 ए0 नैयक · पूर्वोक्त, पृ0 48 - 49 ।
3. २३ दिसम्बर, 1976 को श्रीमती इदिरा गॉधी ने श्री अशोक मेहता को पत्र लिखा, उद्धृत, ब्रह्मदत्त, पूर्वोक्त, पृ0 101-103 ।

भारतीय प्रजातत्र के लिये यह चुनाव और महत्वपूर्ण हो गया था क्योंकि यह आपातकाल की पृष्ठभूमि मे हो रहा था तथा इसी चुनाव के माध्यम से जनता पार्टी के रूप मे एक नवीन प्रयोग की परीक्षा होनी थी । जनता पार्टी ने इस परीक्षा मे सफल होने की व्यापक तैयारी की थी । **उसने अपनी सम्पूर्ण चुनावी रणनीति का तानाबाना लोकतंत्र बनाम सर्वाधिकारवाद के मुद्दे पर केन्द्रित किया था ।** उसने आपातकाल के दौरान की गयी ज्यादतियो को उभारकर काग्रेस एव श्रीमती इदिरा गॉधी पर आक्रमण प्रारम्भ किया ।

विरोधी पक्ष की त्वरित प्रतिक्रिया एव जनता पार्टी की सामूहिक चुनावी रणनीति से श्रीमती इदिरा गॉधी उग्र हो उठी । 22 फरवरी, 1977 को कानपुर मे एक सार्वजनिक सभा को सम्बोधित करते हुये उन्होने कहा कि 'विरोधी दलो की नीतियो को लेकर चुनाव लडना चाहिये । जब वे इतनी अलग-अलग नीतियो का अनुसरण कर रहे है तो उनका एक साथ इकट्ठा हो जाना लोकतात्रिक नही है ।'[1] इसी प्रकार का आरोप भारत के गृह राज्यमत्री श्री ओम मेहता ने लगाया, 'उन्होने उसी दिन मद्रास मे बोलते हुये कहा कि जनता पार्टी का उद्देश्य जन विरोधी है उसके पास इदिरा हटाओ के सिवा कोई कार्यक्रम नही है ।'[2]

जगजीवन बम

जनता पार्टी एव काग्रेस अपने चुनावो की भावी रणनीतियो पर विचार कर ही रहे थे कि भारतीय राजनीति मे एक नया धमाका हुआ । यह श्रीमती इदिरा गॉधी के लिए अधिक अशुभ घटना थी जिसे 'जगजीवन बम' कहा गया, क्योकि इसका भारत की राजनीति पर प्रचण्ड प्रभाव पडा । 2 फरवरी, 1977 को भारत के केन्द्रीय कृषिमत्री श्री जगजीवन राम ने मत्रिमण्डल एव काग्रेस दल से अपने त्यागपत्र की घोषणा की ।

श्री जगजीवन राम ने अपने त्यागपत्र देने के मन्तव्य को पूर्णतया गोपनीय रखा । 2 फरवरी को प्रात 10 बजे उन्हे काग्रेस राष्ट्रीय बोर्ड की बैठक मे उन्हें आना था परन्तु 10 30 बजे तक वे अपना त्यागपत्र भेज चुके थे । जब तक उनका त्यागपत्र श्रीमती गॉधी क पास पहुँचा श्री जगजीवन राम एक प्रेस सम्मेलन बुला चुके थे । उन्होने सवाददाताओ से बातचीत के दौरान एक विस्तृत वक्तव्य जारी किया । उन्होने कहा कि सत्ता काग्रेस के अन्दर एवं बाहरी प्रशासनिक व्यवस्था मे तानाशाही प्रवृत्तियॉ खतरनाक तरीके से बढ़ रही हैं और सत्ता का केन्द्रीकरण, एक गुट या व्यक्ति मे होता जा रहा है । काग्रेस के सभी स्तरो पर प्रजातत्र का केवल ह्रास ही नही हुआ है बल्कि अन्त हो गया है । उन्होने त्यागपत्र का कारण बताते हुये कहा कि इस सरकार मे नागरिको का जीवन एव स्वतत्रता सुरक्षित नही है अत मैं ऐसी सरकार के साथ अपने को और ज्यादा सम्मिलित नही कर सकता ।[3]

सरकार एव दल से श्री जगजीवन राम का त्यागपत्र एक से अधिक कारणो से विशिष्ट था । इस कदम ने उस भयानक गतिरोध को तोड दिया और भय की उस काली चादर को फाड डाला जो मत्रियो को, काग्रेस दल को और

---

4. गिऑवार्नी मार्टोरी "पार्टीज एण्ड पार्टी सिस्टम्स ए फ्रेमवर्क फॉर एनालेसिस," वायलुम-I, लन्दन, कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, 1976, पृ0 145-152 ।
1. उद्धृत, एस0 देवदास पिल्लई, दि इनक्रेडिबल इलेक्शन 1977 पूर्वोक्त पृ0 41 ।
2. वही, पृ0 42 ।
3. वही, पृ0 74-75 ।

पूरे राष्ट्र को अपने मे लपेटे थी ओर सबकी सास रोके हुये थी । इस अर्थ मे उन्होने बिल्ली के गले घटी बॉधने का काम किया था ।

श्रीमती इदिरा गॉधा ने इसे 'विश्वासघात' की सज्ञा दी एव प्रधानमत्री के समर्थको ने इसे 'पीठ मे छुरा भोकना' बताया । काग्रेस अध्यक्ष श्री देवकान्त बरुआ ने कहा कि एक व्यक्ति का त्यागपत्र कोई महत्व नही रखता और इससे दल मे कोई प्रभाव नही पड़ने वाला है । 'जगजीवन बम' ने राजनीतिक विखण्डन की प्रक्रिया को गति दी जो देखते ही देखते पूरे उत्तरी भारत मे व्याप्त हो गयी । **श्री जगजीवन राम के साथ अन्य लोग भी थे ।** 'इसमे उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमत्री श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा, उडीसा की पूर्व काग्रेसी मुख्यमत्री श्रीमती नन्दिनी सत्पथी, पूर्व वित्त राज्यमत्री श्री के० आर० गणेश, बिहार के प्रमुख काग्रेसी सासद श्री डी० एन० तिवारी एव उत्तर प्रदेश के पूर्व काग्रेसी मत्री श्री राजमगल पाण्डेय का नाम उल्लेखनीय है । इन नेताओ ने एक नये राजनीतिक दल बनाने की घोषणा की, जिसका नाम "काग्रेस फॉर डेमोक्रेसी" (सी० एफ० डी०) रखा । श्री जगजीवन राम इसके अध्यक्ष एव श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा महासचिव बनें ।'[1]

जनता पार्टी का चुनाव अभियान

इसी बीच श्री जगजीवन राम एव श्री मोरार जी देसाई के बीच यह सहमति हुई कि दोनो दल एक चुनाव चिन्ह, एक राजनीति मच एव एक प्रत्याशी के आधार पर चुनाव लड़ेगे । सी० एफ० डी० का चुनाव घोषणा पत्र भी जनता पार्टी के समान था अर्थात् दानो दलो के चुनावी घोषणा-पत्र समान सिद्धान्तो एव मुद्दो की वकालत कर रहे थे । वैसे जनता पार्टी का चुनाव अभियान प्रारम्भ हो चुका था परन्तु काग्रेस फॉर डेमोक्रेसी के साथ गठबन्धन के पश्चात् इसमे तेजी आयी । श्री मोरार जी देसाई ने कहा कि "यदि जनता पार्टी सत्ता मे आयी तो वह ऐसी व्यवस्था करेगी कि भविष्य मे कोई भी सरकार निरकुश होकर जनता की इच्छाओ का दमन न कर सके ।"[2]

श्री जय प्रकाश नारायण ने जनता से आग्रह किया कि "यदि वे इस बार जनता पार्टी को विजयश्री नही दिला सके तो भविष्य मे स्वतत्र निष्पक्ष एव भयरहित चुनाव की सभावना खत्म हो जायेगी ।"[3] श्री अटल बिहारी वाजपेई ने जनता पार्टी के लक्ष्यो की व्याख्या करते हुये कहा कि "जनता पार्टी एक गठबधन नही बल्कि एक दल है, जो काग्रेस के निरकुश शासन एव प्रतिक्रिया स्वरूप उभरा है, हमने स्वय अपने घरो को फूँककर एकता की ज्योति जलायी है ।"[4] पूरे उत्तर भारत मे जनता लहर दिखाई पड रही थी । जनता पार्टी के नेताओ का भव्य स्वागत हो रहा था । लोग मीलो पैदल चलकर जनता पार्टी की सभाओ मे नेताओ को सुनने और उन्हे समर्थन देने पहुॅच रहे थे ।

चुनाव अभियान मे प्रत्येक राजनीतिक दल अपने दल के उद्देश्यो एव कार्यक्रमो का गुणगान करके अपनी उच्च राजनीति छवि जनता के समक्ष प्रस्तुत करते है और विरोधी दलो की आलोचना करके उनकी कमियो और असफलताओ को उजागर करते है । चुनाव अभियान मे जनता पार्टी का सबसे महत्वपूर्ण कार्य स्वय को 'एक दल'

---

1. वही, पृ० 75 ।
2. दि इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, मार्च 2, 1977 ।
3. दि इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, फरवरी 6, 1977 ।
4. दि स्टेट्समैन, दिल्ली, 6 फरवरी, 1977 ।

के रूप में प्रक्षेपित करना था, क्योंकि वास्तव में अपनी वर्तमान स्थिति मे यह विभिन्न दलो का चुनाव के लिये एक 'चुनावी गठबन्धन' था । जनता पार्टी ने अपना चुनावी घोषणा-पत्र[1] 'रोटी और आजादी' को केन्द्र बिन्दु मानकर प्रस्तुत किया था । इसम गाधीवाद, विकेन्द्रीकृत लोकतत्र और ग्रामीण विकास के प्रति प्रतिबद्धता प्रदर्शित की गयी थी ।

घोषणा-पत्र की 19 सूत्री राजनीतिक रूपरेखा काफी व्यापक थी । उसमे कहा गया था कि जनता पार्टी के आदर्श है- **स्वाधीनता और लोकतत्र** । पार्टी के मतव्य मे भय रहित वातावरण का विशेष महत्व है । अतएव जनता पार्टी नागरिको की स्वतत्रता, मौलिक अधिकार, विधि की सर्वोच्चता, प्रेस की स्वतत्रता और न्यायपालिका के यथोचित कार्यभार का पुनरोद्धार करेगी । घोषणा-पत्र मे कहा गया है कि जनता पार्टी स्वतत्रता सग्राम की उच्च परम्पराओ, देश की सास्कृतिक विरासत एव गॉधीवादी आदर्शों से प्रेरणा ग्रहण करके भारत मे एक प्रजातात्रिक एव समाजवादी राज्य का निर्माण करना चाहती है ।

घोषणा-पत्र मे नवीन आर्थिक एव सामाजिक रूपरेखा का समर्थन किया गया । इसमे कहा गया कि 'सामाजिक न्याय' मगल कामनाओ की कोरी धारणा नही है । यह एक जीवन दर्शन है, जिसे जीवन मे उतारना चाहिये । हम एक ऐसी अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर हो, जिसमे कृषि और कुटीर उद्योगो को प्राथमिकता दी जाए तथा सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार की सूची से अलग किया जाए । इसके अलावा पार्टी सामाजिक उत्थान के लिये शिक्षा आवास, स्वास्थ्य, नव-ग्राम आन्दोलन और सामाजिक सुरक्षा जैसे मुद्दे पर विशेष ध्यान देगी जिससे एक लोकतात्रिक राज्य ही नही बल्कि लोकतात्रिक समाज की भी स्थापना हो ।

नव-निर्मित जनता पार्टी केवल सही मुद्दो और प्रचार के माध्यम से चुनाव नही जीत सकती थी । इसके लिये व्यापक रणनीति की आवश्यकता थी । जनता पार्टी की 27 सदस्यीय 'सर्वोच्च निर्णय समिति' ने निम्न मुख्य निर्णय लिये–

(1) समिति ने लोकदल के चुनाव चिन्ह 'हलधर किसान' को जनता पार्टी का चुनाव चिन्ह स्वीकार किया ।

(2) समिति ने 10 दिन के अन्दर राज्य ईकाइयो से प्रत्याशियो की अनुमोदन सूची मॉगी ।

(3) समिति ने अकाली दल एव डी0 एम0 के0 के साथ चुनावी गठबधन करने का निश्चय किया ।

(4) समिति ने चुनावी गतिविधियो मे सामन्जस्य स्थापित करने के लिये क्षेत्रीय नेताओ (पर्यवेक्षको / सयोजको) की नियुक्ति की ।

(5) श्री चरण सिह को उत्तर भारत मे चुनावी गतिविधियो के सचालन का भार सौंपा गया– इसमें पजाब, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, जम्मू एव कश्मीर तथा दिल्ली शामिल थे ।

(6) श्री पी0 सी0 सेन को पूर्वी भारत मे चुनावी गतिविधियो के सचालन के लिये नियुक्त किया गया – इसमे पश्चिमी बगाल, असम, मणिपुर, त्रिपुरा, उडीसा, नागालैण्ड, मिजोरम और अरुणाचल पदेश शामिल थे ।

---

1 देखें 'जनता पार्टी' का चुनाव घोषणा-पत्र, 1977, नई दिल्ली 1977, यह 10 फरवरी, 1977 को जारी किया गया ।

(7) श्री एन० सजीवा रेड्डी भारत के दक्षिणी राज्यो की गतिविधियाँ देख रहे थे ।

(8) श्री एस० एम० जोशी महाराष्ट्र मे, श्री बाबू भाई पटेल गुजरात मे और श्री इरस्मो सूरा गोवा मे चुनाव की गतिविधियो का सचालन कर रहे थे ।

इन क्षेत्रीय सयोजको को प्रत्येक राज्य मे चुनावी गतिविधियो के सचालन के लिये राज्य स्तरीय सयोजको की नियुक्ति का अधिकार दिया गया था । इस प्रकार विभिन्न राज्यो के लिये 14 सयोजको की नियुक्ति हुई । इसमे जनसघ एव भारतीय लोकदल के प्रतिनिधियो की सख्या ज्यादा थी ।

जनता पार्टी के विभिन्न घटको मे जिस राज्य मे जिस दल का अधिक प्रभाव था, उसे उस राज्य का सयोजक बना दिया गया । उदाहरण के लिये राजस्थान मे जनसघ को एव उत्तर प्रदेश, हरियाणा और उड़ीसा मे भारतीय लोकदल को सयोजक बनाया गया । इस रणनीति के तहत जनता पार्टी अपने घटकों के प्रभाव को महत्तम लाभ उठाने मे सफल रही । जनता पार्टी की चुनावी रणनीति काग्रेस के विरुद्ध 'सयुक्त विपक्ष' के रूप मे प्रस्तुत हुई थी । जनता पार्टी एव इसके 'चुनावी-सहयोगी दल' के मध्य सीटो का बॅटवारा इस प्रकार हुआ था कि जनता पार्टी ने वहाँ अधिकतम् स्थानो मे चुनाव लडा जहाँ इसकी या इसके घटको की स्थिति मजबूत थी ।

जनता पार्टी ने अपने चुनाव प्रसार मे विभिन्न दलो, समुदायो एव सगठनो का बहुआयामी सहयोग प्राप्त किया । जामा मस्जिद के शाही इमाम ने काग्रेस को अत्याचारी बताते हुये, जनता पार्टी की प्रशसा की । उन्होने घोषणा की कि "क्या तुर्कमान गेट पर घटित गेलीकाण्ड के पीछे राष्ट्रीय स्वय सेवक का हाथ था ?"[1] शिरोमणि अकाली दल के अध्यक्ष श्री मोहन सिह तुर ने सभी सिक्खो से अपील की कि वे जनता पार्टी को ही विजयी बनाये । उन्होने कहा, "जनता पार्टी की विजय अकाली दल की विजय है ।"[2] फारवर्ड ब्लाक सी० पी० एम० एव अनेको दूसरे क्षेत्रीय एव स्थानीय दलो ने जनता पार्टी के समर्थन मे अपील जारी की । श्रीमती इदिरा गाँधी की बुआ, श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित ने पूरे देश मे दौरा करके इदिरा गाँधी की तानाशाही की खिलाफत की । उन्होने कहा कि, "काग्रेस को वोट देने का तात्पर्य बर्बरता को वोट देना है ।"[3]

श्रीमती इदिरा गाँधी ने आरोप लगाया कि जनता पार्टी के सत्ता मे आते ही प्रधानमत्री पद के लिये झगड़ा प्रारम्भ हो जायेगा । श्री मोरार जी देसाई ने कहा कि अगर काग्रेस मे प्रधानमत्री बनने योग्य एक व्यक्ति है, तो हमारी पार्टी मे अनेको व्यक्ति है । यह गौरव की बात है, हम सर्वसम्मति से प्रधानमत्री का चुनाव करेगे । जनता पार्टी को जनता का अपार समर्थन प्राप्त हो रहा था । लोगो मे काग्रेस-विरोधी एवं इदिरा-विरोधी भावना प्रबल थी । जनता पार्टी की सभाओ एव रैलियों मे विशाल जन-समूह हिस्सा ले रहा था, जबकि काग्रेस को अनेको चुनावी सभाओ को श्रोताओ के अभाव मे स्थगित करना पडा ।

---

1. दि इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, फरवरी 26, 1977 । आपातकाल के दौरान पुलिस फायरिग मे तुर्कमान गेट में मुस्लिम समुदाय के कुछ लोग मारे गये थे । अत यह सरकारी दमन का प्रतीक बन गया था ।
2. इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, मार्च 6, 1977 ।
3. वही, मार्च 5, 1977 ।

कांग्रेस का चुनाव अभियान

सत्तारुढ़ कांग्रेस ने 8 फरवरी, 1977 को अपना घोषणा-पत्र[1] जारी किया उसने 'गरीबी हटाओ और असमानता एव अन्याय' को अपना आदर्श वाक्य माना। घोषणा-पत्र मे कहा गया कि काग्रेस की **शक्तिशाली एव स्थायी सरकार धर्म-निरपेक्षता एव सुरक्षा व्यवस्था के प्रति कृत संकल्प है।** काग्रेस ने विपक्ष पर अराजकता एव हिसा फैलाने तथा प्रजातत्र को खतरे मे डालने का आरोप लगाया। घोषणा-पत्र मे कहा गया कि काग्रेस, प्रजातत्र, समाजवादी मूल्यो, एव ग्रामीण नीतियो के प्रति प्रतिबद्ध है। वह बहुसख्यको के साथ-साथ अल्पसख्यको की सुरक्षा के लिये भी चिन्तित है।

चुनाव की घोषणा के समय श्रीमती इदिरा गाँधी को शायद अपनी विजय का एहसास होगा, परन्तु चुनाव अभियान मे उनका यह भ्रम टूट गया। 'जगजीवन बम' ने उन्हे हिला दिया था। इसके बाद उनके भाषणो का लहजा इस ओर इशारा करते है कि बारी-बारी से वे चिडचिडी एव रक्षात्मक हो गयी थी। श्री जगजीवन राम के कारण हरिजन मतो का काग्रेसी समीकरण गडबडा गया था। 'हरिजन वोट बैंक' का रुझान काग्रेस से हटकर श्री जगजीवन राम के दल की ओर इगित था। काग्रेस के लिये यह अपने मे घातक प्रहार था।

काग्रेस के चुनाव अभियान को आरम्भ करने के लिये 5 फरवरी को राजधानी मे जो पहली सभा हुयी, उसी मे लोगो की मन स्थिति और श्रीमती इदिरा गाँधी के लहजे में आया परिवर्तन स्पष्ट हो गया था। इस सभा मे जबरदस्ती लोगो को लाया गया था। श्रीमती इदिरा गाँधी ने मुट्ठी बाँधकर कहा, "यदि जरूरत पड़ी तो हम अपना खून बहायेंगे, अपना जीवन देंगे, लेकिन देश को कमजोर नही पडने देंगे।"[2] आपात स्थिति के विरुद्ध तथा राजनीतिक नजरबदियो के बारे मे विरोधी दलो की आलोचनाओ का हवाला देते हुये उन्होंने कहा कि, "दुनिया की कोई भी सरकार और कोई भी दूसरा प्रधानमत्री विरोधी पक्ष को उतना बर्दास्त नही करेगा जितना हमने किया है।"[3] इस सभा मे भी श्रीमती इदिरा गाँधी के विरुद्ध नारे लगे और भीड़ अस्थिर हो उठी इससे श्रीमती इदिरा गाँधी को अपना भाषण छोटा करना पड़ा।

श्रीमती इदिरा गाँधी ने अपने चुनाव अभियान मे अनेक घटिया तरीको का इस्तेमाल किया। 6 फरवरी की रामलीला मैदान मे होने वाली जनता पार्टी की सभा को असफल बनाने के कुत्सित प्रयास किये गये। सरकार द्वारा नियन्त्रित दूरदर्शन ने इसमे महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने रविवार की सध्या के लिये निश्चित फिल्म 'वक्त' के स्थान पर सदाबहार 'बॉबी' को घोषित किया, और सामान्य से एक घटा पहले उसे शुरू कर दिया। ताकि फिल्म का समय जनता पार्टी की सभा के समय से टकरा जाए फिर भी उस सध्या को रामलीला मैदान मे मानव का समुद्र उमड़ पड़ा। श्रोताओ ने खड़े होकर श्री जय प्रकाश नारायण एव श्री जगजीवन राम का स्वागत किया। यह बात इस देश की सभाओ मे पहले नही देखी गयी थी। यह काग्रेस की हार का पूर्व सकेत थी।

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, फरवरी 9, 1977।
2. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, फरवरी 6, 1977।
3. वही।

अब तक श्रीमती इदिरा गॉधी दश के आर- पार चल रही 'जनता लहर' के प्रति अत्यन्त सचेत हो चुकी थी उन्होंने लोगो की भावनाओ को छूना प्रारम्भ किया । पश्चिम बगाल मे कोन्ताई मे 19 फरवरी को एक भाषण मे श्रीमती इदिरा गॉधी ने कहा कि 'ये विपक्षी दल मुझे घेरने और छुरा भोकने एकत्र हुए है । आगामी सप्ताओ मे श्रीमती गॉधी के अभियान का यही मुख्य स्वर बन गया ।' जनता पार्टी ने 'घेरने और छुरा धोपने' के इन आरोपो पर आपत्ति तो की ही इसके अलावा उन्हे यह डर भी लगा कि कही श्रीमती इदिरा गॉधी भय और हिसा का ऐसा वातावरण न पैदा कर दे, जिससे सार्वजनिक शान्ति भग हो जाए और चुनाव रुक जाए । जनता पार्टी ने इस विषय मे चुनाव आयोग को पत्र भी लिखा ।

श्रीमती इदिरा गॉधी की मन स्थिति आशका से आतक तक नीचे उतर आई थी । चुनाव अभियानो पर लिखने वाले पत्रकार जनता लहर की, और आपात स्थिति के दौरान किये गये अपमानो एव अत्याचारो पर लोगो के रोष की अविश्वसनीय कहानियॉ लेकर लौट रहे थे । "सजय और इदिरा, दमन एव एकाधिकारवाद का प्रतीक बन चुके थे । जिस ढग से अफसरो ने लोगो से व्यवहार किया था, उससे मानवीय प्रतिष्ठा पर आघात हुआ था ।"[1]

हरियाणा मे श्री बशीलाल के चुनाव-क्षेत्र भिवानी मे बोलते हुये श्रीमती इदिरा गॉधी ने लोगो से अनुरोध किया कि "वे ज्यादतियो को भूल जाये और उन्हे क्षमा कर दे तथा काग्रेस से नये सम्बन्ध जोड़े ।"[2] श्री बशीलाल, श्रीमती इदिरा गॉधी एव अन्य नेताओ द्वारा क्षमा-याचना के बावजूद लोग अवसर की प्रतिक्षा मे थे, कि कब वे राजनीतिक नक्शे से शासक दल को मिटा डाले ।भारत की जनता श्री बशीलाल, एवं उनके पुत्र, युवा काग्रेस नेता सुरेन्द्र तथा श्री सजय गॉधी की कारगुजारियो से पूर्ण परिचित थी । अमेठी मे श्री सजय गॉधी एव श्रीमती मेनका गॉधी द्वारा प्रचार के दौरान जनता ने काग्रेस विरोधी नारे लगाये और उनके द्वारा दिये गये उपहारो को ठुकरा दिया । श्रीमती मेनका गॉधी मे एक ग्रामीण स्त्री ने कहा हम आपको जिताकर अपने मर्दो एव बच्चो की नसबदी नही कराना चाहते ।

अन्त मे, राज्यो की काग्रेसी सरकारे एव स्थानीय प्रशासन सामूहिक रिश्वते देने मे जुट गये । पजाब सरकार ने अपने कर्मचारियो को जनवरी 1977 की पिछली तारीखों से दो अतिरिक्त मॅहगाई भत्ते देने की घोषणा की । पश्चिमी बगाल के राज्य कर्मचारियो का किराया भत्ता 10 से बढ़ाकर 15 प्रतिशत कर दिया गया । उत्तर प्रदेश के नगरो की नगरपालिकाओं ने अपने कर्मचारियो को किराया भत्ता देने की घोषणा की । मुस्लिम मतदाताओं को खुश करने के लिये चमडा कमाने के कारखाने के कर्मचारियो के न्यूनतम वेतन बढ़ा दिये गये ।

राजस्थान मे कर्मचारियो का रुका हुआ वेतन तत्काल भुगतान किया गया । बिहार के मुख्यमत्री श्री जगन्नाथ मिश्र ने "प्राइवेट सेक्टर" की नौकरियो मे अनुसूचित जाति एव अनुसूचित जनजातियो के लिये आरक्षण का आश्वासन दिया तथा राज्य की नौकरियो के लिये उर्दू मदरसो से प्राप्त डिग्रियो को मान्यता प्रदान की गयी । इसी प्रकार के अनेक रियायतों की घोषणा केरल, कर्नाटक, मध्य प्रदेश एव दिल्ली मे की गयी, जिससे जनता को लुभाया जा सके ।[3]

---

1. डी() आर() मेनकेकर और कमला मेनकेकर .(डेक्लाइन एण्ड फाल ऑफ इदिरा गॉधी नाइन मन्थस ऑफ इमरजेन्सी का हिन्दी अनुवाद) इंदिरा गॉधी का पतन इमर्जेन्सी की लोमहर्षक कहानी,(अनुवादक वीरेन्द्र कुमार गुप्ता),राज्यपाल एण्ड सन्स,कश्मीरी गेट,दिल्ली,पृ() 202 ।
2. वही ।

श्री जगजीवन राम और 'जनता पार्टी' के नेता, 'मतदाताओ को खुश करने के लिये सरकारी अधिकारो के दुरुपयोग' पर झीकते रहे । लेकिन इसके बारे मे वे कुछ कर नही सकते थे । घृणास्पद 'नसबदी अभियान' को रातोरात सजय गॉधी के पॉच सूत्री कार्यक्रम के साथ दफना दिया गया । फिर भी क्षमा-याचनाये, धमकियॉ, रिश्वते, साम्प्रदायिक एव जातीय अपीले लोगो के क्रोध को शान्त नही कर सकी ।

इसके अलावा अन्य राजनीतिक दलो ने भी अपने घोषणा-पत्र जारी किये जिसमे — कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया और कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (मार्क्सवादी) —प्रमुख थी । इन दलो ने भी प्रजातत्र की बहाली, प्रेस की स्वतत्रता, आर्थिक समानता को प्रमुख मुद्दा बनाया । परन्तु 1977 का चुनाव कुछ मुद्दो पर ज्यादा केन्द्रित था, जैसे – नसबन्दी, प्रेस सेसरशिप, सजय का सुन्दरीकरण अभियान, आपातकाल की तानाशाही । इन मुद्दो पर लगभग सारा विपक्ष एकमत था और सत्तारुढ काग्रेस के विरुद्ध था और काग्रेस का 'सुदृढ एव स्थायी सरकार' का मुद्दा जनता को प्रभावित न कर सका । जनता की दृष्टि एक केन्द्रीय मुद्दे मे थी । वह मुद्दा था – **स्वतंत्रता या गुलामी, लोकतंत्र या एक वश की तानाशाही ।**

चुनाव परिणाम : कांग्रेस युग का अन्त

अपने निश्चित समय से मार्च 1977 के तीसरे सप्ताह लोकसभा के चुनाव सम्पन्न हुये । इसमे 5 राष्ट्रीय और लगभग 14 क्षेत्रीय दलो ने भाग लिया । इसमे से अनेक क्षेत्रीय दलो[1] का जनता पार्टी के साथ चुनावी गठबन्धन भी था जिसके आधार पर जनता पार्टी के विजयश्री का मार्ग प्रशस्त हुआ ।

20 मार्च, 1977 से लोकसभा चुनाव के चुनाव परिणाम आने प्रारम्भ हो गये थे । उसी दिन सध्या 5 बजे तक दिल्ली वालो ने स्तम्भित करने वाला समाचार सुन ही लिया कि दिल्ली की सातो लोकसभा निर्वाचन क्षेत्रो से काग्रेस जनता पार्टी से हार गयी है । इन परिणामो ने पूरे उत्तरी भारत के लिये एक रुख निश्चित कर दिया ।

उसी दिन रात्रि म लगभग 8 बजे खबर आयी कि श्री सजय गॉधी अमेठी निर्वाचन क्षेत्र से जनता पार्टी के प्रत्याशी श्री रवीन्द्र प्रताप सिह से चुनाव हार गये है और देर रात्रि तक यह आश्चर्यजनक समाचार लोगो को प्राप्त हुआ कि रायबरेली मे श्रीमती इदिरा गॉधी अपने निकटतम प्रतिद्वन्द्वी श्री राजनारायण से चुनाव हार गयी है । दिल्ली की जनता ने इस आनन्दपूर्ण समाचार पर एक-दूसरे को बधाईयॉ दी, आलिगन किया और खुशी से चीखकर आकाश गुँजा दिया ।[2]

'मन्त्रिमण्डल की एक तत्कालीन बैठक प्रधानमत्री के घर 10 बजे रात्रि बुलाई गयी और उस क्षण की स्थिति पर विचार किया गया । मन्त्रिमण्डल ने कार्यकारी राष्ट्रपति श्री बी0 डी0 जत्ती से आपातस्थिति को उठा लेने की सिफारिश की । कार्यकारी राष्ट्रपति के सोमवार 21 मार्च, 1977 की प्रात इसमे हस्ताक्षर कर दिये ।'[3*]

---

3. एस0 देवदास पिल्लई . दि इन्क्रेडिबल इलेक्शन 1977, पूर्वोक्त पृ0 287-292 । (मूल स्रोत इण्डियन एक्सप्रेस) ।
1. महाराष्ट्र की पीसेन्ट्स एण्ड वर्कर्स पार्टी (पी0 डब्ल्यू0 पी0), केरल एव पश्चिमी बगाल की सी0 पी0 आई0 (एम0), तमिलनाडु की डी0 एम0 के0 तथा पजाब की अकाली दल के साथ जनता पार्टी का चुनावी गठबन्धन था ।
2. दि इण्डियन एक्सप्रेस, मार्च 21, 1977, उद्धृत एस0 देवदास पिल्लई, पूर्वोक्त, पृ0 435 ।
3.* वही, मार्च 22, 1977, पृ0 436 ।

रात 1 बजे रायबरेली मे गितनी पूरी हुई । अब कोई भी सन्देह नही रह गया था कि श्रीमती गाँधी उस चुनाव क्षेत्र से चुनाव हार गयी है, जिसे उन्होंने इतनी लगन एव पक्षपात से पाला-पोसा था । तथाकथित अनियमितताओं के आधार पर फिर से गिनती कराने का अन्तिम क्षण का प्रयास भी विफल हो गया था । 21 मार्च को प्रात जब समाचार-पत्र आये तो श्रीमती इदिरा गाँधी के पराजय की खबर से दुनिया की नसो मे बिजली सी दौड़ गयी और देश ने हर्ष मनाया । अततोगत्वा लम्बी काली रात का अन्त हो गया और सूर्य फिर से चमक रहा था ।

कोई भी तानाशाह अपनी गलती स्वीकार नही करता है चाहे उसका पतन क्यो न हो गया हो, "और जब इस ग्रीक त्रासदी का परदा गिर रहा था तो देश ने और ससार ने श्री मती इदिरा गाँधो को अब भी राजनीतिक मच के बीचो-बीच खडे देखा । इस नाटकीय उपसहार के लिये अब भी पश्चाताप-रहित, अनम्र, अविनत भाव से वे प्रेस को, विरोधी पक्ष के तरीको को, नौकरशाही को और अपने चतुर्दिक हर व्यक्ति और हर चीज को दोष दे रही थी ।"[1]

इदिरा गाँधी के चारो ओर अधेरे मे उस दुर्ग के खण्डहर और टूटे-फूटे पत्थर बिखरे पडे थे जिस दुर्ग का नाम भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस था, जो अभेद्य, अनश्वर और शाश्वत माना जाता था । इन खण्डहरो के बीच कोने मे दुबका सजय गाँधी दिख रहा था – जो इस भयानक विनाश के लिये सबसे अधिक जिम्मेदार था ।

जनता पार्टी की विजय ने काग्रेस के 30 वर्ष के शासन के एकाधिकार को खत्म कर दिया था । यह एक युग का अन्त और दूसरे की शुरुआत थी । जनता पार्टी और उसकी सहयोगी सी० एफ० डी० ने 299 सीटो पर विजय पायी थी जबकि काग्रेस को मात्र 153 सीटे मिली । जनता पार्टी को पूर्ण बहुमत प्राप्त होने के कारण इसमे एकता की भावना मे वृद्धि हुई । 1977 के लोकसभा ने जनमत पूर्णत जनता पार्टी के पक्ष मे था । राष्ट्र की भावना एव जनता का रुझान निश्चित रूप से काग्रेस के स्थान पर दूसरी सरकार चाहता था ।

चुनाव परिणामों का विश्लेषण

1977 के लोकसभा चुनाव मे सम्पूर्ण भारत मे जनता का रुझान एक सा नही था । चुनाव परिणामो से ऐसा प्रतीत होता है कि देश के विभिन्न भागो मे मतदाताओं के मत-व्यवहार मे अन्तर था । जेसे देश के उत्तरी क्षेत्र मे काग्रेस का पूर्णतया सफाया हो गया था । पूर्वी भारत की कमोवेश यही स्थिति थी । जबकि दक्षिणी भारत मे काग्रेस को पर्याप्त सफलता मिली, यहाँ जनता पार्टी की स्थिति अत्यन्त दयनीय रही ।

'उत्तरी भारत मे जनता पार्टी को पूर्ण विजय मिली । काग्रेस उत्तर प्रदेश, बिहार, पजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली मे एक भी सीट नही जीत सकी । मध्य प्रदेश और राजस्थान मे उसे एक-एक स्थान मिला । अत सम्पूर्ण हिन्दी भाषी क्षेत्र के 44% मतो मे काग्रेस को मात्र 2 सीटे ही मिली । पूर्वी राज्यो में भी काग्रेस बुरी तरह परास्त हुई । वह पश्चिमी बगाल एव उड़ीसा मे क्रमश 3 एव 4 स्थानो मे ही विजयी रही ।'[2] इस प्रकार उत्तरी, मध्य एव पूर्वी भारत मे जनता पार्टी को आशातीत सफलता प्राप्त हुई ।

---

1. डी० आर० मेनकेकर और कमला मेनकेकर पूर्वोक्त, पृ० 208 ।
2. विभिन्न दैनिक समाचार-पत्र, देखें, जे० ए० नैयक पूर्वोक्त, पृ० 50 ।

सारणी संख्या - 6

1977 के लोकसभा चुनाव परिणाम

राज्य	कुल स्थान	काग्रेस	जनता पार्टी	सी0पी0आई0	सी0पी0एम0	अन्य दल ●	निर्दलीय
आध्र प्रदेश	42	41	1	-	-	-	-
असम	14	10	3	-	-	-	1
बिहार	54	-	54	-	-	-	-
गुजरात	26	10	16	-	-	-	-
हरियाणा	10	-	10	-	-	-	-
#हिमाचल प्रदेश	4	-	3	-	-	-	-
#जम्मू एव कश्मीर	6	2	-	-	-	2	-
कर्नाटक	28	26	2	-	-	-	
केरल	20	11	-	4	-	5	-
मध्य प्रदेश	40	1	37	-	-	1	1
महाराष्ट्र	48	20	19	-	3	6	-
मणिपुर	2	2	-	-	-	-	-
मेघालय	2	1	-	-	-	1	-
नागालैण्ड	1	-	-	-	-	1	-
उडीसा	21	4	15	-	1	-	1
#पजाब	13	-	3	-	1	8	-
राजस्थान	25	1	24	-	-	-	
सिक्किम	1	1	-	-	-	-	-
तमिलनाडु	39	14	3	3	-	19	-
त्रिपुरा	2	1	1	-	-	-	-
उत्तर प्रदेश	85	-	85	-	-	-	-
प0 बगाल	42	3	15	-	17	6	1
सघीय प्रदेश							
अडमान	1	1	-	-	-	-	
अरुणाचल प्रदेश	2	1	-	-	-	-	-
चडीगढ	1	-	1	-	-	-	-
दादर और नगर हवेली		1	1	-	-	-	-
दिल्ली	7	-	7	-	-	-	-
गोवा	2	1	-	-	-	1	-
लक्ष्यद्वीप	1	1	-	-	-	-	-
मिजोरम	1	-	-	-	-	-	1
पॉडिचेरी	1	-	-	-	-	1	-
कुल	542	153	299	7	22	51	7

• अन्य दल मे अकाली, डी0एम0के0, ए0आई0ए0 डी0एम0के0, मुस्लिम लीग एव अन्य दल शामिल है ।

पजाब, हिमाचल प्रदेश एव जम्मू एव कश्मीर की एक-एक सीट पर बाद मे चुनाव हुआ । अत मार्च 1977 मे कुल 539 लोकसभा सीटो का चुनाव सम्पन्न हुआ ।

सत्तारुढ़ दल के बडे-बड़े दिग्गज इन क्षेत्रो में बुरी तरह से पराजित हुये । प्रधानमत्री और उनके पुत्र के अलावा काग्रेस के अनेक पूर्व मत्री उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पजाब, पश्चिमी बगाल, उड़ीसा एव दिल्ली से अपना चुनाव हार गये । इन दिग्गजो मे श्री बशीलाल, श्री वी० सी० शुक्ला, डा० एस० डी० शर्मा, श्री चन्द्रजीत यादव, श्री के० डी० मालवीय, श्री स्वर्ण सिह आदि प्रमुख थे ।

इन क्षेत्रो मे जनता पार्टी की विजय ही नही, बल्कि विजयी एव पराजित उम्मीदवारो के मतो का अन्तर भी महत्वपूर्ण था । 'उत्तरी एव पूर्वी भारत के 239 निर्वाचन क्षेत्रो मे, अधिकतर स्थानो से जनता पार्टी के प्रत्याशी अपने निकटतम् काग्रेसी प्रतिद्वन्दियो से लगभग 1,00,000 या उससे अधिक मतो से विजयी हुये थे । श्रीमती इदिरा गॉधी एव सजय गॉधी क्रमश लगभग 55,000 एव 75,000 मतो मे पराजित हुये थे । इन राज्यो मे किसी भी स्थान पर कॉटे की टक्कर जैसी कोई चीज नही थी ।'

भारत के दक्षिर्णी राज्यो मे काग्रेस को आश्चर्यजनक विजय मिली । 'आध्र प्रदेश, कर्नाटक एव केरल की 129 सीटो म काग्रेस 92 स्थानो पर विजयी रही । सम्पूर्ण दक्षिणी क्षेत्र मे जनता पार्टी को केवल 6 स्थान प्राप्त हुये ।' तमिलनाडु और केरल मे काग्रेस की सफलता इसके सहयोगी दलो पर निर्भर थी । काग्रेस का तमिलनाडु मे ए0 डी0 एम0 के0 एव केरल मे सी0 पी0 आई0 से चुनावी गठबधन था । आंध्र प्रदेश और कर्नाटक मे काग्रेस को अपने प्रबल जनाधार के कारण विजय मिली । यहॉ विपक्ष की स्थिति अत्यन्त निर्बल थी ।

उत्तरी, मध्य, पूर्वी एव दक्षिणी क्षेत्रो के पूर्ण ध्रुवीकरण के विपरीत पश्चिम क्षेत्र मे काग्रेस एव जनता पार्टी के बीच सीटो का लगभग सन्तुलित बॅटवारा हुआ । यद्यपि सन्तुलन जनता पार्टी के पक्ष मे था । 'महाराष्ट्र की कुल 48 एव गुजरात की 26 सीटो में काग्रेस को क्रमश 20 एव 10 स्थान प्राप्त हुये । जनता पार्टी को इन राज्यो मे क्रमश 19 एव 16 स्थान प्राप्त हुये ।' अत यह कहा जा सकता है कि उत्तर की लहर पश्चिम मे कारगर नही रही । महाराष्ट्र की 19 सीटो मे 6 बम्बई शहर और एक पुणे की थी जहॉ जनता लहर काफी तेज थी ।

मत-व्यवहार के विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि उत्तरी भाग की 'जनता लहर' दक्षिण मे बिल्कुल नही पहुॅची थी, और पश्चिमी भाग मे केवल शहरो तक सीमित थी । पश्चिमी भाग के ग्रामीण जन कमोवेश इस लहर से अनभिज्ञ थे । इसी कारण आंध्र प्रदेश और कर्नाटक काग्रेस के अभेद्य गढ बने रहे । गुजरात एव महाराष्ट्र मे इनकी स्थिति मजबूत थी, जबकि तमिलनाडु और केरल मे काग्रेस ने अपने सहयोगी दलो के माध्यम से विजय प्राप्त की । इसके अलावा उत्तरी भारत की तरह दक्षिणी एव पश्चिमी भारत मे, सजय गॉधी का नसबन्दी अभियान उतनी जबरदस्ती और तीव्रता से नही लागू किया गया । अत जनमानस का आक्रोश काग्रेस के प्रति कम था ।

जनता पार्टी की चुनावी विजय से इसके औपचारिक गठन की प्रक्रिया को बल मिला । जनता पार्टी एव इसके विभिन्न घटकों के नेताओ को यह एहसास हो गया था कि अगर वे देश की बागडोर थामना चाहते है तो उन्हे अपनी एकता को सुदृढ करना होगा ।

जनता पार्टी के सामने सबसे बड़ा कार्य प्रधानमंत्री का चयन था इस मुद्दे पर विभिन्न घटक गुटों के मध्य तीव्र मतभेद उत्पन्न हो गया । श्री मोरार जी देसाई, श्री जगजीवन राम एवं श्री चरण सिंह प्रधानमंत्री पद के प्रमुख दावेदार थे । यह अच्छी शुरूआत नहीं थी । श्री जय प्रकाश नारायण एवं आचार्य जे0 बी0 कृपलानी ने अपने सद्प्रभावों के माध्यम से मतभेदों का सतही निवारण किया और घोषणा की कि श्री मोरार जी देसाई को लगभग सर्वसम्मति से प्रधानमंत्री बनाया जा रहा है ।

24 मार्च, 1977 को कार्यकारी राष्ट्रपति बी0 डी0 जत्ती ने श्री मोरारजी देसाई को प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई और इसी दिन जनता पार्टी के चुने हुये सांसदों ने राजघाट बापू की समाधि पर श्री जयप्रकाश जी की उपस्थिति में निम्न शपथ ग्रहण (प्रतिज्ञा) की ।

"राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की समाधि पर एकत्रित जनता के हम चुने हुये प्रतिनिधि उससे प्रेरणा लेते हुये संकल्पपूर्वक शपथ लेते हैं कि हम पूरे मन से उनके शुरू किये हुये कामों को पूरा करेंगे । अपने देशवासियों की सेवा करेंगे और उनमें जो सबसे कमज़ोर और गरीब है उन पर विशेष ध्यान देंगे ।

हम अपने गणराज्य के नागरिकों की जानमाल और आजादी के मूलभूत अधिकारों की रखा करेंगे ।

हम मिलजुल कर समर्पण की भावना से काम करेंगे । राष्ट्रीय एकता और सद्‌भाव के लक्ष्यों को पूरा करेंगे और गाँधी जी के जीवन एवं कामों से सूचित होने वाली अचूक दिशा में बढ़ते रहेंगे ।

हम अपने व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन में सादगी एवं ईमानदारी को व्यावहारिक रूप में अपनाएंगे ।

गाँधी जी का आशीर्वाद, हमारा मार्ग प्रशस्त करें !"[1]

जनता पार्टी का औपचारिक गठन

सरकार की जिम्मेदारी संभालने के बाद जनता पार्टी के नेताओं ने घटकों के औपचारिक विलय का कार्य पूरा किया । 29-30 अप्रैल को संगठन कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोकदल और समाजवादी दल ने औपचारिक रूप से अपने अस्तित्व को समाप्त कर जनता पार्टी में विलय की घोषणा की । पहले इन दलों की 'कार्यसमितियों' ने विलय प्रस्ताव पारित किये और बाद में प्रतिनिधि सम्मेलन में उनका अनुमोदन किया । लोकतंत्रीय कांग्रेस (सी0 एफ0 डी0) ने प्रारम्भ में कुछ हिचकिचाहट दिखाई परन्तु बाद में विलय के लिये राजी हो गयी । श्री जगजीवन राम ने 1 मई को प्रगति मैदान की सभा में स्वयं उपस्थित होकर 'लोकतंत्रीय कांग्रेस' की जनता पार्टी में विलय की घोषणा की । इस प्रकार 1 मई, 1977 को जनता पार्टी का औपचारिक गठन हो गया और जनता पार्टी वास्तविक रूप में अस्तित्व में आयी ।[2] श्री चन्द्रशेखर को सर्वसम्मति से पार्टी का अध्यक्ष चुना गया । 11 मई को चुनाव आयोग द्वारा जनता पार्टी को राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता प्रदान की गयी ।

---

1. जन-विश्वासघात; जनता पाटी प्रकाशन; साधना प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली, अगस्त 1979; पृ0 1 ।
2. दि इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली; मई 2, 1977 ।

11 मई, 1977 को नई दिल्ली प्रगति मैदान मे आयोजित सस्थापना सम्मेलन मे घटक-दलो के प्रतिनिधियो ने, जो गत दिवस तक भारतीय राजनीति की 5 विभिन्न धाराओं से सम्बन्धित थे, नई पार्टी (जनता पार्टी) को 'जनता की इच्छा का मुखर एव अनुक्रियाशील साधन' बनाने का सकल्प लिया।[1]

निष्कर्ष एवं महत्व

चुनाव परिणामो ने भारतीय राजनीति के नक्शे को बुरी तरह से अस्त-व्यस्त कर डाला। ये चुनाव परिणाम अत्यन्त दूरगामी एव विशिष्ट सिद्ध हुये। इन परिणामो से भारतीय राजनीति मे लम्बे समय से स्थापित अनेको धारणाएँ एव मान्यताएं बदल गयी तथा नये मापदण्डो एव मूल्यो ने उनका स्थान ले लिया।

जनता पार्टी की विजय का वास्तविक महत्व आकने के लिये उन मुद्दो का विश्लेषण करना होगा, जिनके कारण जनसाधारण के मत-व्यवहार मे परिवर्तन आया। इस लोकसभा चुनाव मे उत्तर भारत के लोगो का मत-व्यवहार जाति, वर्ग एव साम्प्रदायिक शक्तियो से प्रभावित नही था। श्रीमती इदिरा गॉधी एव काग्रेस का यह दावा खोखला सिद्ध हुआ कि वे ही अल्पसख्यको एव दलितो के मसीहा है। यहाँ भारत के ग्रामीण क्षेत्रो मे जनता लहर प्रवेश कर गयी थी और वहाँ इसने तूफान बनकर क्रान्ति को जन्म दिया। यह एक शान्तिपूर्ण क्राति थी।

यद्यपि इस चुनाव मे आपातस्थिति, भ्रष्टाचार, नसबन्दी आदि मुद्दे ज्वलन्त रूप से हावी थे। परन्तु उत्तर भारत के मतदाताओ का यह पैटर्न रहा है कि वे पृथक-पृथक मुद्दो से नही, बल्कि सरकार के सम्पूर्ण क्रियाकलापो (जैसे- भ्रष्टाचार, कुशासन, तानाशाही आदि) से प्रभावित होकर निर्णय लेते है और कमोवेश लहर का निर्माण करते है, जैसे 1967 मे 'काग्रेस विरोधी लहर', 1971 मे 'इदिरा लहर' तथा 1977 मे 'जनता लहर' थी।

वैसे भी जयप्रकाश नारायण ने इस चुनाव मे 'प्रजातत्र बनाम तानाशाही' को केन्द्रीय मुद्दा बना दिया था। परन्तु इसे आधार मानकर दक्षिणी एव पश्चिमी राज्यो के मत-व्यवहार का विश्लेषण नही किया जा सकता है। क्या दक्षिण एव पश्चिम ने तानाशाही का समर्थन किया था ? नही। यह सत्य है कि यहाँ आपातस्थिति का प्रभाव कम था, परन्तु था,अवश्य। यहाँ काग्रेस की विजय के दो मुख्य कारण थे।

प्रथम– जन-सचार माध्यमो मे सरकारी नियत्रण के कारण उत्तरी भारत के लोग जिस भयानक रात से गुजर रहे थे, उससे दक्षिण के लोगो को अनजान रखा गया तथा श्री सजय गॉधी ने दक्षिण भारत की यात्राये भी कम की। इसलिये दक्षिणवासियो ने लोकसभा चुनाव मे अतीत के ढग पर ही मत दिये।

द्वितीय-- उत्तर के मतदाताओ ने अपनी जाति, वर्ग एव सम्प्रदाय आदि सीमाओ से परे जाकर, शासको को उनके सम्पूर्ण क्रिया-कलापो के आधार पर वोट दिया। दक्षिण एव पश्चिम के मतदाता जाति, वर्ग और धन के प्रभाव से मुक्त नही हो पाये थे। तमिलनाडु मे करुणानिधि को भ्रष्ट सरकार से लोग रुष्ट थे अत यहाँ डी0एम0के0 बुरी तरह पराजित हुई। इसका लाभ काग्रेस एव उसके सहयोगी दल को मिला। इसके अलावा जनता पार्टी इस क्षेत्र मे काग्रेस के 'भ्रष्ट एव तानाशाह चरित्र' को उद्घाटित करने मे असफल रही। अत. काग्रेस यहाँ विजयी रही।

---

1. जन-विश्वासघात, पूर्वोक्त, पृ0 1।

इस चुनाव का एक अन्य आयाम भी उल्लेखनीय है । वास्तव मे उत्तर भारत मे काग्रेस की हार का तात्पर्य मूलत जन साधारण की विजय थी, न कि केवल जनता पार्टी की । उत्तर मे वास्तविक सघर्ष काग्रेस और जनता पार्टी के बीच न होकर वशानुगत तानाशाही एव ससदीय लोकतत्र के बीच था । जनता के पास विकल्प अत्यन्त सीमित थे अत उसने क्रूर शासको को एक ही प्रहार मे सत्ताच्युत कर दिया । "भारतीय इतिहास की यह प्रथम घटना थी कि जनसाधारण ने शक्तिशाली शासको को एक ही आघात मे पदच्युत कर दिया । अत इस घटना को मात्र चुनाव कहना उसके ऐतिहासिक महत्व एव जनसाधारण की उपलब्धियो का अपमान करना है ।"[1] यह नि सन्देह एक शान्तिपूर्ण क्राति थी ।

---

1 जे() ए() नैयक पूर्वोक्त, पृ() ५५ ।

चतुर्थ - अध्याय

केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार का गठन :

दलीय एकता में दरारें

केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार का गठन :
दलीय एकता में दरारें

ससदीय लोकतन्त्र मे, ससद मे बहुमत प्राप्त दल ही सरकार का निर्माण करते है ओर सामान्यत सरकार की शक्ति सत्तारूढ दल की शक्ति पर निर्भर होती है । यदि दल सुदृढ़, सगठित एव लोकप्रिय है तो सरकार भी मजबूत और शक्तिशाली होगी । इसके विपरीत अनेक गुटो से मिलकर बने दल की सरकार अपेक्षाकृत कम स्थायी होगी । ऐसी सरकार मे आन्तरिक सघर्ष आम बात है और सरकार का भविष्य अधर पर अटका रहता है । कांग्रेस की स्थायी सरकारो की पृष्ठभूमि मे उसके 'दलीय सगठन' की महत्वपूर्ण भूमिका थी । जनता पार्टी के सन्दर्भ मे इस स्थिति का आकलन करना है । जनता पार्टी की विजय 'जनता - लहर' के कारण हुई, इससे जनता पार्टी मे 'एकता की भावना' सुदृढ हुयी थी । अब महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या यह 'एकता की भावना' सरकार के गठन म अक्षुण्ण बनी रही ?

मार्च 1977 मे जब जनता पार्टी ने छठी लोकसभा चुनावो मे भाग लिया था, उस समय वह औपचारिक रूप से एक दल न होकर अनेक दलो का 'ढीला सगठन' थी । जिसने एक 'झण्डे एव एक चुनाव चिन्ह' के नीचे चुनाव लड़ा था, इस चुनाव मे उसे अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई थी । यद्यपि चुनाव के पूर्व जनता पार्टी के सभी घटको ने 'विलय' के लिये सहमति व्यक्त की थी । परन्तु इस सफलता से उत्पन्न हुई 'एकता की भावना' या 'जनता-भावना' ने दलीय एकीकरण को प्रोत्साहित किया । यह 'एकता की भावना' किसी औपचारिक सगठन से अधिक महत्वपूर्ण थी, क्योकि उसमे जनता का विश्वास विवेक एव आशाये निहित थी ।

इसी 'एकता की भावना' को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिये 24 मार्च 1977 को राजघाट मे जनता सासदो ने 'एकता एव विश्वास' की प्रतिज्ञा की थी । परन्तु प्रधानमत्री के चयन मे यह प्रतिज्ञा निर्मूल सिद्ध हुई एव प्रधानमत्री के चयन मे जनता पार्टी जिस प्रक्रिया से गुजरी वह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण थी । जनता पार्टी की सरकार के गठन के समय से पार्टी के घटक-दलो के बीच अविश्वास और कटुता पैदा हो गयी थी ।

आपसी अविश्वास की पृष्ठभूमि

जिस प्रकार कहा जाता है कि वर्साय सन्धि (पेरिस शान्ति समझौते) 1919 मे ही द्वितीय विश्व युद्ध के बीज बो दिये गये थे, उसी लहजे मे जनता पार्टी की सरकार के गठन ने जनता पार्टी के विघटन की दिशा निर्धारित कर दी थी । प्रधानमत्री के चयन के सन्दर्भ मे विभिन्न घटक-दलो के मध्य शक्ति परीक्षण प्रारम्भ हो गया था । परन्तु श्री जय प्रकाश नारायण एव आचार्य कृपलानी के प्रयासो से जो आम सहमति स्थापित की गयी, उससे इस समस्या का सतही निवारण हुआ । अनेक जनता नेताओ की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाये एव निहित स्वार्थ उनके सीने मे सिसक कर रह गये, जिसकी चीखें शीघ्र ही जनता को सुनाई पडने लगी थी । वैसे घटकों के मध्य अविश्वास और शकाये तो जनता

पार्टी क गठन की प्रक्रिया मे दृष्टिगोचर हुयी थी, परन्तु राजनीतिक परिस्थितियो एव 'साझा स्वार्थो' ने उन्हे विलय के लिये बाध्य किया था ।

विलय की पृष्ठभूमि मे जनता पार्टी के घटको के मध्य जो मत वैभिन्नय था, वह उनके निहित स्वार्थो के अनुकूल था । भारतीय लोकदल सभी गैर-साम्यवादी दलो का विलय करके 'काग्रेस का विकल्प' प्रस्तुत करना चाह रहे थे । जबकि जनसघ का विचार था कि विपक्षी दलो की एक 'सघीय व्यवस्था' स्थापित की जाय, जिसमे प्रत्येक दल की अपनी अलग पहचान हो । वास्तव मे वे एक 'यूनाइटेड फ्रन्ट' बनाकर चुनाव लडना चाहते थे । काग्रेस (सगठन) भी किसी विलय के विरुद्ध थी, उसका प्रभाव क्षेत्र सीमित था– मात्र गुजरात के चुनाव तक-- अत वे विलय करके अपने अस्तित्व को मिटाना नही चाहते थे । समाजवादी पार्टी वामपथी दलो का गठबधन चाहती थी अत विलय के सदर्भ मे इतने भिन्न दृष्टिकोण के कारण एक सुदृढ दल का निर्माण एक टेढी खीर थी ।

दल विहीन प्रजातन्त्र के समर्थक, जयप्रकाश नारायण के लिये 'सयुक्त विपक्ष' का निर्माण एक महान कार्य बन चुका था । वे इस विलय को राजनीतिक नही बल्कि ऐतिहासिक घटनाक्रम के रूप मे देख रहे थे । उन्होंने सभी विपक्षी दलो को चेतावनी दी कि 'यदि विपक्षी दलो ने एक दल के रूप मे चुनाव नही लडा तो इन दलो से मेरा कोई लेना देना नही रहेगा ।'[1] इस चेतावनी के बाद सकारात्मक परिणाम सामने आये । 20 जनवरी 1977 को श्री मोरार जी देसाई के आवास पर विपक्षी दलो की बैठक हुयी, श्री देसाई ने इस बैठक की अध्यक्षता स्वय कर ली । स्वय को 'सयुक्त विपक्ष' का प्रबल नेता मानने वाले श्री चरणसिह ने इसका विरोध किया और बैठक मे भाग न लेने का फैसला किया । परन्तु श्री लालकृष्ण अडवानी एव श्री अटल बिहारी बाजपेई के आग्रह पर श्री चरणसिह बैठक मे सम्मिलित हुये । तब तक श्री मोरारजी देसाई ने स्वय को 'सयुक्त विपक्ष' का अध्यक्ष मानकर कार्यवाही प्रारम्भ कर दी थी । बैठक मे श्री चरणसिह के विलय की माग लगभग स्वीकार कर ली गयी । परन्तु इस बैठक से बिना किसी बहस के यह मुद्दा भी निश्चित हो चला था कि श्री मोरार जी देसाई 'सयुक्त विपक्ष' के नेता होगे ।

चरणसिह के समर्थको ने इस व्यवस्था पर तीव्र आक्रोश व्यक्त किया और कहा कि यह श्री चरणसिह के लिये अपमान का विषय है अत उन्हे इस विलय से हाथ खीच लेना चाहिये ।[2] श्री चरणसिह स्वय इसी विचार से सहमत थे, परन्तु वे जनमत का दवाब महसूस कर रहे थे । उनका मानना था कि अगर उन्होने ऐसा किया तो उनकी तीव्र आलोचना होगी और सम्भव है उनके कुछ राजनीतिक मित्र उनका साथ छोड़ दे । अत उन्होने केवल नेतृत्व का प्रश्न उठाया । उन्होने कहा कि 'पहले नेतृत्व का सवाल तय हो जाना चाहिये ।' नेतृत्व के प्रश्न को छोड़ना ठीक नही होगा, उन्होने कहा कि इस विषय मे मुझे श्री जयप्रकाश नारायण का निर्णय मान्य होगा । श्री चरणसिह का विचार था कि सर्वोदय नेता श्री जयप्रकाश नारायण उन्हे ही 'सयुक्त विपक्ष' का नेता चुनेगे । इस पर समाजवादी नेता श्री एस० एम० जोशी न श्री चरणसिह को श्री जयप्रकाश का लिखा एक पत्र दिखाया, जिसमे उन्होने श्री मोरारजी देसाई को नये

---

१ दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली जनवरी 20, 1977 ।

२ वही, जनवरी 21, 1977 ।

दल का नेतृत्व सौपने की बात कही थी । चरणसिह ने अवसादपूर्ण ढग से इसे स्वीकार कर लिया ।[1] श्री चरणसिह को नये दल नव गठित दल (जनता पार्टी) का उपाध्यक्ष बनाया गया ।

इस घटना क्रम के बाद चौधरी चरणसिह के हृदय मे गाठ पड़ गयी । उन्होने अत्यन्त अवसाद पूर्ण ढ़ग से अपने उद्गार व्यक्त किये कि 'सारी जिन्दगी की कमाई बरबाद हो गयी और अब मुझे सी० बी० गुप्ता, जैसे लोगो से वोट मागना पड़ेगा ।'[2] जनता पार्टी के किसी भी वरिष्ठ नेता का ऐसा वक्तव्य नव जात पार्टी के लिये निश्चय ही घातक था । किसी भी अति महत्वाकाक्षी व्यक्ति की यह कमजोरी होती है कि वह अपने स्वार्थ पूर्ति के लिये अनेको विरोधाभासी समीकरणो पर विश्वास कर लेता है जो उसके एव उससे सम्बन्धित सस्था के हानिकारक होते है । यह टिप्पणी कमोवेश रूप से सभी जनता पार्टी के नेताओ पर लागू होती है, परन्तु श्री चरणसिह के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर यह कथन पूर्ण रूप से खरा उतरता है ।

श्री चरणसिह की लोकप्रियता एव आक्रोश को ध्यान मे रखकर उन्हे पूरे उत्तर भारत मे टिकटो के बॅटबारे का दायित्व सौपा गया । टिकट बटवारे मे कृपादृष्टि प्राप्त करने के लिये जनसघ के वरिष्ठ नेताओ ने श्री चरणसिह से कहा कि 'श्री मोरारजी को तो देवकान्त बरूआ बनाया गया है, इदिरा तो आप बनेगे ।'[3] श्री चरणसिह जैसे अति महत्वाकाक्षी व्यक्ति के लिये यह आश्वासन असाध्य रोग बन गया, जिसके लक्षण सरकार के गठन के समय से ही दृष्टिगोचर होने लगे थे । जनसघी नेतागण सत्ता की होड मे प्रत्यक्षत शामिल न होकर सत्ता का खेल बखूबी खेल रहे थे ।

प्रधानमन्त्री पद के दावेदार एवं वस्तुस्थिति

छठी लोकसभा चुनाव मे जनता पार्टी को ससद मे पूर्ण बहुमत मिला और उसे ससदीय लोकतन्त्र की मान्यताओ के अनुरूप सरकार बनाने के लिये आमन्त्रित किया गया । जनता पार्टी के लिये प्रधानमत्री का चुनाव एव सरकार का गठन एक परीक्षा की घडी थी । इसमे जनता पार्टी की एकता, सुदृढता, आपसी सहयोग एव सामजस्य की परीक्षा होनी थी क्योकि औपचारिक अर्थो मे अभी भी यह एक दल न होकर अनेक दलो का 'ढीला गठबन्धन' था । जनता पार्टी इस परीक्षा मे खरी न उतर सकी । सर्वसम्मति से प्रधानमत्री के चयन मे पार्टी जिस घटनाक्रम से गुजरी उसे सराहनीय नही कहा जा सकता । इसमे जनता पार्टी के सर्वोच्च नेताओ के बीच खुला सघर्ष दृष्टिगोचर हुआ और इससे जनसाधारण मे भी पार्टी की छवि धूमिल हुयी ।

लोकसभा चुनाव के दौरान श्रीमती इंदिरा गॉधी ने जनता पार्टी पर आरोप लगाया था कि 'यह एक दल न होकर अनेक स्वार्थी दलो की भीड है जो देश को नेतृत्व नही प्रदान कर सकते ।' उन्होने कहा कि अगर जनता पार्टी को बहुमत प्राप्त होता है तो प्रधानमंत्री कौन बनेगा ?[4] श्रीमती गॉधी यद्यपि विरोधी दल की नेता थी, तथापि जनता

---

1 जर्नादन ठाकुर "ऑल दि जनता मेन", विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि०, नई दिल्ली, 1978, पृ० 2 ।

2 वही, पृ० 3

3 वही ।

4 दि इण्डियन एक्सप्रेस दिल्ली, फरवरी 18, 1977 ।

पार्टी की प्रकृति देखते हुये उन्होंने सार्थक प्रश्न किया था । 'जनता लहर' मे लोगो ने इस प्रश्न पर ध्यान नही दिया परन्तु जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री मोरार जी देसाई ने इन आरोपो का खण्डन करते हुये कहा कि 'यदि जनता पार्टी को बहुमत प्राप्त होता है तो प्रधानमत्री का चुनाव बिना किसी मतभेद के होगा ।'[1] जनता पार्टी के उपाध्यक्ष श्री चरणसिह ने भी स्पष्ट किया कि 'हमारी पार्टी मे नेतृत्व के प्रश्न पर कोई मतभेद नही हे । जनता पार्टी को 'काग्रेस का राष्ट्रीय विकल्प' बनाने के लिये पार्टी के अनेक लोगो ने अपने हितो का बलिदान किया । मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि दल के नेता का चुनाव सर्वसम्मति से होगा ।'[2]

श्री मोरारजी एव श्री चरणसिह के ये आश्वासन समय की कसौटी मे खरे नही उतरे । श्रीमती इदिरा गॉधी के प्रश्न का उत्तर देते समय शायद इन नेताओ को यह विश्वास रहा होगा कि प्रधानमत्री तो वे ही बनेगे । इन नेताओ के इस विश्वास से ही परस्पर अविश्वास का प्रादुर्भाव हुआ । प्रारम्भ मे श्री मोरार जी एव श्री चरणसिह ही प्रधानमत्री के पद की दौड मे शामिल थे, चुनाव के बाद श्री जगजीवन राम भी इसमे शामिल हो गये । इन नेताओ के प्रधानमन्त्री बनने के लिये अपने अपने तर्क एव पूर्वाग्रह थे ।

श्री मोरार जी देसाई जनता पार्टी के वयोवृद्ध नेता थे । वे अपनी गॉधीवादी छवि बरकरार रखते हुये, काग्रेस सरकार मे अनेक महत्वपूर्ण पद धारण कर चुके थे । उम्र मे श्री जयप्रकाश से बडे एव गॉधीवादी रूझान के कारण श्री जयप्रकाश के निकट थे । अपने काग्रेस काल मे वे कई बार प्रधानमत्री पद का दावा पेश कर चुके थे । वे स्वय को प्रधानमन्त्री पद का एक मात्र दावेदार समझ रहे थे, उनका विचार था कि वर्तमान राजनीतिक समीकरणो मे उन्हे ही श्री जयप्रकाश का आर्शीवाद प्राप्त होगा ।

प्रधानमन्त्री पद के लिये दूसरे प्रमुख दावेदार श्री चरणसिह थे, जो स्वय को जनता पार्टी का असली जन्मदाता समझते थे । विलय की लम्बी प्रक्रिया मे श्री चरणसिह का सहयोग एव प्रयास सराहनीय थे एव उत्तर भारत मे उनके घटक दल (बी० एल० डी०) को व्यापक समर्थन प्राप्त था । जनता पार्टी मे जनसघ के बाद उनका ही सबसे बड़ा घटक था (जनसघ-९३, भारतीय लोक दल-71) और जब जनसघ ने अपना दावा पेश नही किया तो वे स्वय को प्रधानमन्त्री के पद का एकमात्र दावेदार समझने लगे । इसके पूर्व जब श्री मोरारजी देसाई जनता पार्टी के अध्यक्ष बने थे उस समय जनसघ के वरिष्ठ नेताओ ने श्री चरणसिह को प्रधानमन्त्री बनने मे सहायता देने का सब्ज-बाग दिखाया था ।[3] उत्तर भारत मे अपनी सुदृढ़ स्थिति, जनता पार्टी के स्वयभू जन्मदाता एव जनसघ की कृपादृष्टि के आधार पर चरणसिह स्वय को प्रधानमत्री का एक मात्र दावेदार समझते थे ।

जनता पार्टी के तीसरे दिग्गज नेता बाबू जगजीवन राम थे । वे हरिजन कुल के थे और आजादी के बाद से ही देश के हरिजनो के बडे नेता माने जाते थे । आजादी के बाद मे केन्द्रीय सरकार मे वरिष्ठ मत्री रहे थे । उनकी कुशाग्र बुद्धि एव राजनीतिक सूझ-बूझ उच्च कोटि की मानी जाती थी । जनता पार्टी की ऐतिहासिक विजय मे श्री जगजीवन

---

1 सण्डे स्टैडर्ड दिल्ली, फरवरी 20, 1977 ।

2 दि स्टेटसमैन दिल्ली, फरवरी 19 1977 ।

3 जर्नादन ठाकुर "ऑल दि जनता मेन", पूर्वोक्त, पृ 13 ।

राम की पार्टी 'सी० एफ० डी०' की भूमिका उल्लेखनीय थी। काग्रेस से उनके त्याग पत्र ने काग्रेस की हार सुनिश्चित कर दी थी क्योंकि 'हरिजन वोट बैंक' काग्रेस से खिसककर जनता पार्टी के पक्ष मे आ गया था।

प्रारम्भ म श्री जगजीवन राम नेतृत्व की दौड़ मे शामिल नही थे, परन्तु जैसे ही चुनाव परिणाम सामने आये वैसे ही व भी इस दौड़ मे शामिल हो गये। व्यक्तिगत रूप से श्री जगजीवन राम और श्री जयप्रकाश मे अच्छे सम्बध थे। यही कारण था कि उन्होने अपने सार्वजनिक वक्तव्यो मे बिहार आन्दोलन की तो आलोचना की परन्तु अन्य काग्रेसी नेताओ की भाँति श्री जय प्रकाश नारायण पर व्यक्तिगत आक्षेप नही किया।[1] इसके अलावा जनसघी एव समाजवादी नेतागण भी श्री जगजीवन राम को प्रधानमत्री बनाने के पक्ष मे थे। 'वे महसूस कर रहे थे कि एक हरिजन को देश का प्रधानमत्री बना देने से निश्चित लाभ होगा, तथा उनकी मजी हुई प्रशासनिक कुशलता और विभिन्न विचारो के लोगो को साथ लेकर चलने की योग्यता नये प्रशासन के लिये वरदान सिद्ध होगी।'[2] इसी पृष्ठभूमि मे श्री जगजीवन राम को प्रधानमत्री बनने की आशा हो गयी थी और इसी कारण वे श्री जयप्रकाश नारायण से मिलने से पूर्व 'इस बात पर राजी हो गये थे कि सी० एफ० डी० का जनता पार्टी मे विलय हो जायेगा।'[3] जबकि श्री मोरारजी देसाई के प्रधानमन्त्री बनने के बाद उन्होने सवाददाताओ को बताया कि उनकी पार्टी 'ससद मे एव उसके बाहर' अपना पृथक अस्तित्व रखेगी।[4]

इन परिस्थितियो मे जनता पार्टी के नेता का चुनाव सरल कार्य नही था। चुनाव अभियान के दौरान जनता पार्टी के नेताओ ने नेतृत्व के प्रश्न को आसानी से टाल दिया था, परन्तु अब वे इसे टाल नही सकते थे, परिस्थितिया निर्णायक स्थिति पर पहुँच चुकी थी। 23 मार्च 1977 को श्री जयप्रकाश नारायण दिल्ली पहुँच चुके थे। वे जनता पार्टी के नेताओ की महत्वाकाक्षाओ, पूर्वाग्रहो, योग्यताओं एव क्षमताओ से परिचित थे। वे चाहते थे कि नेता के चुनाव मे ऐसी उठा-पटक न हो कि नवगठित जनता पार्टी का भविष्य सकट मे पड़ जाये, परन्तु वे नेताओ के तेवर देखकर किकर्तव्यविमूढ़ थे। जनता पार्टी के 302 सासदो मे (बाद मे तीन निर्दलीय सासद जनता पार्टी मे शामिल हो गये थे) विभिन्न घटको की स्थिति इस प्रकार थी – जनसघ-93, बी० एल० डी०-71, सगठन काग्रेस-51, समाजवादी पार्टी-28, सी० एफ० डी०-28, चन्द्रशेखर गुट-6, क्षेत्रीय एवं अन्य-25। पुन भारतीय लोक दल के 71 सासदो मे 26 राजनारायण गुट के, 14 बीजू पटनायक गुट के थे, शेष श्री चरणसिह के धुर अनुयायी थी। इन परिस्थितियो मे एक दूसरे के सहयोग एव समर्थन के बिना कोई भी प्रधानमत्री नही बन सकता था। चुनाव अभियान के दौरान नेतृत्व के प्रश्न पर श्री मोरारजी देसाई एव श्री चरणसिह द्वारा दिये गये, आदर्शवादी बयान शून्य मे तिरोहित हो गये यथार्थ का सामना होते ही शतरज बिसात बिछ गयी और सर्वोच्च सत्ता प्राप्ति का नग्न खेल प्रारम्भ हो गया।

प्रधानमत्री दौड़ मे शामिल नेताओ मे श्री चरणसिह सबसे ज्यादा सशकित थे। दो माह पूर्व पार्टी अध्यक्ष के चुनाव मे वे श्री मोरार जी देसाई से मात खा चुके थे। अत वे इस बार शीघ्रता से समीकरण बैठाने का प्रयास कर रहे

---

1 जनार्दन ठाकुर "आल दि जनता मेन", पूर्वोक्त पृ० 21।

2 अटल बिहारी बाजपेई (लेख) "वर्तमान सकट के लिये सभी जिम्मेदार", "सिद्धान्त या अवसरवादिता" ? जनता पार्टी प्रकाशन, दिल्ली, अगस्त 1979, पृ० 10।'

3 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, मार्च 23, 1977।

4 दि इण्डियन एक्सप्रेस, मार्च 25, 1977।

थे । जनसघी नेताओ के पूर्व के आश्वासनो एव जनता पार्टी मे उनकी गुटीय शक्ति के आधार पर श्री चरणसिह का विचार था कि जनसघ घटक उनके लिये उपयोगी सिद्ध होगा और यदि वे जनसघ को प्रसन्न कर लेते है तो ताज उनके सिर पर होगा । श्री चरणसिह अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिये अपने निकटतम सहयोगियो की बलि चढाने मे नही चूके । अत उन्होने जनसघ से सम्बन्ध सुधारने के हर सम्भव प्रयास किये ।

श्री सतपाल मलिक एव श्री ब्रह्मदत्त बी० एल० डी० के प्रमुख नेता एव श्री चरणसिह के प्रति अत्यन्त निष्ठावान व्यक्ति थे । परन्तु ये नेताद्वय बी० एल० डी० एव जनसघ के बढते हुये सम्बन्धो से अप्रसन्न थे । श्री चरणसिह ने पहले इन्ही सेनापतियो[1] को जनसघ के विरुद्ध प्रचार के लिये तैयार किया था । इसी कारण इन नेताओ, विशेषकर सतपाल मलिक के जनसघ से सम्बन्ध अत्यन्त तनाव पूर्ण थे । ये लोग श्री चरणसिह एव जनसघ के बढ़ते हुये सम्बन्धो के लिये घातक सिद्ध हो सकते थे । इसलिए श्री चरणसिह इनसे छुटकारा पाना चाहते थे ।

इस समय श्री चरणसिह का एक मात्र उद्देश्य सता प्राप्ति था जिसके लिये वे जनसघ का समर्थन चाहते थे । उन्होने श्री सतपाल मलिक एव श्री ब्रह्मदत्त को पार्टी विरोधी गतिविधियो के लिये बी० एल० डी० से निष्कासित कर दिया ताकि जनसघ के घावो मे मरहम लगा सके । श्री चरणसिह ने अपनी महत्वाकाक्षओं की पूर्ति के लिये व्यक्तिगत सम्बन्धो एव नैतिकता को दाव मे लगा दिया । परन्तु इसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि किसी व्यक्ति ने उनका नाम प्रधानमन्त्री पद के लिये प्रस्तावित नही किया । यह ऐसी पीड़ा थी जिसे श्री चरणसिह कभी नही भुला सके और तभी से वे जनसघ के प्रति गम्भीर द्वेष रखते थे । यह बात अलग है कि भविष्य के अनेको राजनीति समीकरणो मे भारतीय लोक दल एव जनसघ के बीच सौहार्द एव सामजस्य देखा गया ।

राजनीति मे कोई भी स्थायी शत्रु या मित्र नही होता, यह टिप्पणी जनता पार्टी के जीवन काल मे चरितार्थ होती नजर आती है । आजादी के बाद से प्रथम बार जनता पार्टी के घटक के रूप मे जनसघ को लोक-सभा मे इतने अधिक सीटे प्राप्त हुई थी । जनसघ की छवि एक अतिराष्ट्रवादी दक्षिणपंथी दल के रूप मे थी, जिसे समाज के विभिन्न वर्गों का व्यापक समर्थन प्राप्त नही था । वह अपने जनाधार को व्यापक करना चाहती थी । अत उसने एक ऐसी पार्टी का समर्थन करना उचित समझा जिससे उसकी छवि मे सुधार हो और लोग उसे केवल हिन्दुओ और उसमे भी केवल सवर्णो की पार्टी न समझे । इसके लिये सबसे उपयुक्त व्यक्ति श्री जगजीवन राम ही थे । जिनका समर्थन करके जनसघ की छवि मुस्लिमो और हरिजनो के बीच सुधर सकती थी । साथ ही साथ जनसघ का यह भी विचार था कि एक हरिजन को देश का प्रधानमत्री बना देने से जनता पार्टी की छवि भी उज्जवल होगी ।[2]

इसके अलावा श्री जगजीवन राम को अल्पसख्यको एव प्रगतिशील गुटो (समाजवादियो एव चन्द्रशेखर गुट) का भी समर्थन प्राप्त था । समाजवादियो के लिये संगठन काग्रेस एव भारतीय लोकदल मूलत दक्षिणपथी दल ही थे अत वे भी जगजीवनराम का समर्थन करना चाहते थे । इन परिस्थितियो मे यदि प्रजातान्त्रिक ढग से ससदीय दल के नेता का चुनाव होता तो श्री जगजीवन राम के प्रधानमन्त्री बनने की सभावना थी । परन्तु उनके विरुद्ध एक

---

1 सतपाल मलिक ने सर सघचालक बाला साहब देवरस के उन पत्रो को सार्वजनिक किया था, जिसमे उन्होने श्रीमती इंदिरा गाँधी के प्रति निष्ठा व्यक्त की थी । देखें, ब्रह्मदत्त पूर्वोक्त, पृ० 29-30 ।

2 जनार्दन ठाकुर 'आल दि जनता मेन', पूर्वोक्त, पृ० 23 ।

महत्वपूर्ण तर्क यह था कि कांग्रेस सरकार मे आपातस्थिति लागू करने के विधेयक को ससद मे उन्होने ही प्रस्तुत किया था । दूसरा यह कि अपनी मजी हुई प्रशासनिक कुशलता के बावजूद उनकी राजनीतिक छवि स्वच्छ नही थी ।

कूटनीतिक चालें

सर्वोच्च सत्ता प्राप्ति का असली नाटक तो श्री मोरारजी के सर्वोदयी समर्थको द्वारा खेला गया । ये लोग समझ चुके थे कि अगर इन्ही समीकरणो के तहत चुनाव हुआ तो श्री मोरार जी देसाई प्रधानमत्री नही बन सकते । अत वे किसी भी तरह श्री मोरारजी के नाम पर सर्वसम्मति चाहते थे । श्री मोरार जी की ओर से उत्तर प्रदेश के पुराने राजनीतिक धुरन्धर श्री चन्द्रभानु गुप्ता एव अन्य सर्वोदयी नेतागण शतरज की गोट बिछा रहे थे । लोक सभा चुनाव परिणामो के तुरन्त बाद, सर्वप्रथम उन्होने श्री जयप्रकाश नारायण की इच्छा जाननी चाही कि वे किसे प्रधानमत्री बनाना चाहते है, ताकि सही दिशा मे प्रयास किये जा सके ।[1] सर्वोदयी नेताओ का विचार था कि श्री जयप्रकाश नारायण प्रधानमत्री पद के लिये श्री मोरारजी देसाई का ही समर्थन करेगे क्योकि श्री देसाई स्वच्छ छवि वाले पार्टी के वयोवृद्ध नेता, कुशल प्रशासक एव गाँधीवादी रूझान के व्यक्ति है । परन्तु उन्हे आशका थी कि सम्भव है, कि जनता पार्टी के गुटीय समीकरणो के कारण श्री मोरारजी देसाई प्रधानमत्री न बन सके । अत उन्होने अपनी कूटनीतिक चाले चलना प्रारम्भ की ।

श्री जगजीवन राम एव श्री एच० एन० बहुगुणा इन गतिविधियो से अनभिज्ञ नही थे । शायद उन्होने भी श्री जयप्रकाश नारायण के दृष्टिकोण को भाप लिया था । इसीलिये वे बार-बार जोर दे रहे थे कि ससदीय दल के नेता का चुनाव प्रजातान्त्रिक पद्धति से होना चाहिये । परन्तु जनता पार्टी के अन्य नेताओ का विचार था कि इससे पार्टी मे अनावश्यक तनाव उत्पन्न होगा, और जनता के समक्ष पार्टी की छवि धूमिल होगी । अन्त मे इस सम्पूर्ण मामले को श्री जयप्रकाश नारायण एव आचार्य जे० बी० कृपलानी को सौपा गया । 'उनसे यह आग्रह किया गया कि वे पार्टी-सासदो की इच्छा का पता लगाये जिससे औपचारिक रूप से चुनाव की आवश्यकता न पडे और परिणाम को सर्वसम्मति का रूप दिया जा सके ।'[2] गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान के सचिव श्री राधाकृष्ण ने घोषणा की कि चयन प्रक्रिया 24 मार्च 1977 को होगी ।

इस घोषणा से श्री मोरार जी देसाई के समर्थक अत्यन्त चिन्तित हुये क्योकि इस प्रक्रिया मे श्री जयप्रकाश नारायण एव आचार्य कृपलानी की स्थिति मात्र क्लर्क की रह गयी थी और सम्भव था कि उन्हें ऐसे नाम की घोषणा करनी पड सकती थी जिसे वे स्वय नही चाहते थे । इसी बीच सर्वोदयी नेताओ ने नया खेल प्रारम्भ किया । उन्होने श्री लालकृष्ण अडवानी से भेट करके कहा कि श्री जयप्रकाश नारायण श्री मोरार जी को प्रधानमन्त्री बनाना चाहते है । श्री अडवानी ने कहा कि 'हमारे दल ने श्री जगजीवन राम को समर्थन देने का फैसला किया है क्योंकि हमसे बताया गया था कि श्री जयप्रकाश नारायण यही चाहते है । परन्तु उन्होने आश्वासन दिया कि वे इस पर अगली सुबह विचार करेगे ।'[3]

---

1 जनार्दन ठाकुर "आल दि जनता मेन", पूर्वोक्त, पृ० 24,

2 सिद्धान्त या अवसरवादिता, पूर्वोक्त पृ० 11 ।

3 जनार्दन ठाकुर : 'आल दि जनता मेन', पूर्वोक्त, पृ० 25 ।

दूसरे दिन सुबह सर्वोदयी नेता श्री राधाकृष्ण एव श्री नारायण देसाई श्री बीजू पटनायक से मिले ताकि श्री चरणसिह के विचार जाने जा सके । श्री चरणसिह वेलिगटन अस्पताल मे स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे । श्री पटनायक ने बताया कि श्री चरणसिह ने धमकी दी है कि यदि श्री जगजीवन राम को प्रधानमत्री बनाया गया तो मै जनता पार्टी से अलग हो जाऊगा । इसी बीच दोनो सर्वोदयी नेताओ ने, श्री जय प्रकाश नारायण से मिलकर उनकी वास्तविक इच्छा पूछी । श्री जयप्रकाश नारायण ने इसके पूर्व किसी के (प्रधानमत्री बनाये जाने के) पक्ष म अपनी इच्छा का उद्घाटन नही किया था, परन्तु वे पूरी गतिविधियो पर नजर रखे हुये थे । उन्हे यह मालूम हो गया था कि श्री चरणसिह किसी भी हालत मे श्री जगजीवन राम को प्रधानमत्री स्वीकार नही करेगे और जनता पार्टी टूट जायेगी । ऐसी स्थिति मे श्री जगजीवन राम भी श्री चरणसिह को प्रधानमन्त्री नही स्वीकार कर सकते थे । सम्भव है श्री मोरार जी देसाई भी इसका विरोध करते । यह वस्तुस्थिति एव श्री जयपकाश नारायण का द्वन्द था । इसके परे यह भी सम्भव है कि बिना किसी दबाव के श्री जयप्रकाश नारायण स्वेच्छा से श्री मोरारजी देसाई को प्रधानमन्त्री बनाना चाहते हो । कारण चाहे जो भी रहे हो अततोगत्वा सर्वोदयी नेताओ के पूछने पर श्री जय प्रकाश नारायण ने कहा कि मै चाहता हूँ कि श्री मोरार जी देसाई प्रधानमन्त्री बने परन्तु श्री चरणसिह एव श्री जगजीवन राम मन्त्रिमण्डल मे रहे ।

श्री जयप्रकाश के इस वक्तव्य से श्री मोरारजी के समर्थको ने पासा पलटना प्रारम्भ कर दिया । उन्होने श्री जय प्रकाश से आग्रह किया कि वे श्री मोरारजी देसाई के नाम की घोषणा कर दें क्योंकि अन्य लोग भी इससे सहमत है । राजघाट मे श्री अटल बिहारी बाजपेई एव श्री नानाजी देशमुख ने स्पष्ट कर दिया कि 'यदि श्री जयप्रकाश नारायण, श्री मोरारजी देसाई को प्रधानमन्त्री बनाना चाहते है तो हम लोगो का उनकी इच्छा के विरुद्ध जाने का प्रश्न ही नही उठता, हम किसी प्रकार का सकट नही उत्पन्न करना चाहते ।'[1]

इस नाटक के अन्तिम अक के रूप मे श्री चन्द्र भानु गुप्ता ने तुरूप का पत्ता फेका । उन्होने तुरन्त श्री राजनारायण को श्री चरणसिह के पास भेजा । श्री राजनारायण ने श्री चरणसिह को बताया कि श्री जगजीवन राम प्रधानमंत्री बनने जा रहे है । 'जब यह प्रस्ताव चौधरी चरणसिह के समक्ष रखा गया तो उन्होने इसे तुरन्त अस्वीकृत कर दिया और यह सकेत दिया कि वे ऐसे व्यक्ति को समर्थन देने के बजाय, जिसने आपातस्थिति लागू करने के लिये ससद में प्रस्ताव प्रस्तुत किया था, श्री मोरार जी देसाई का समर्थन करेगे, जिन्होने आपातकाल मे यातनाये सही है ।'[2] श्री चरणसिह ने श्री राजनारायण के हाथ एक नोट लिखकर भेज दिया कि वे श्री मोरारजी देसाई के सहयोगी के रूप मे कार्य कर सकेगे । यह सर्वोदयी नेताओ एव श्री चन्द्र भानु गुप्ता की कूटनीति थी कि उन्होने चौधरी चरणसिह के पास ऐसा प्रस्ताव भेजा जिससे वे श्री मोरारजी देसाई के समर्थन के लिये राजी हो जाये । इस प्रकार जब तीन वरिष्ठ नेताओ मे से दो एक मत हो गये तो तीसरे का दावा छोड दिया गया ।

इधर गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान पर सासदो की भीड़ जमा थी । सर्वोदयी नेता श्री राधाकृष्ण ने आचार्य कृपलानी को बताया कि पूर्व निर्धारित चयन प्रक्रिया को छोड दिया गया है । जनता पार्टी के सासद यह घोषणा सुनकर स्तब्ध रह गये कि ससदीय दल का नेता मनोनीत किया जायेगा और उसमे उनकी कोई भूमिका नही होगी । स्वय श्री जगजीवन

---

1 वही, पृ० 26 ।

2 सिद्धान्त या अवसरवादिता ?, पूर्वोक्त, पृ० 10 ।

राम इस घटनाक्रम से अनभिज्ञ थे । जैसे ही श्री राजनारायण लौटे, श्री चन्द्रभानु गुप्ता ने उनका पत्र (जो श्री चरणसिह द्वारा भेजा गया था) सांसदो को पढ़कर सुनाया । इस विस्फोटक समाचार के बाद उन्होंने प्रस्ताव किया कि ऐसी परिस्थितिया म सर्वसम्मति प्रक्रिया का काई अर्थ नही है । अत श्री जय प्रकाश नारायण और आचार्य कृपलानी का यह अधिकार दिया जाय कि वे ससदीय दलो के नेता को मनोनीत करें । शीघ्र ही इस प्रस्ताव को अनुमोदन प्राप्त हो गया । कुछ सदस्यो ने इसका विरोध किया जिसमे प्रमुख श्री रामधन थे, परन्तु निर्णय हो चुका था और श्री जगजीवन राम चुपचाप उठकर चले गये ।

पूर्व निर्धारित चयन प्रक्रिया को अचानक बदल देना पूर्णतया अप्रजातान्त्रिक था । इस प्रक्रिया के परिवर्तन का अधिकार केवल सासदो को होना चाहिये न कि किसी व्यक्ति विशेष को । स्वय आचार्य कृपलानी इस घटना क्रम से सन्तुष्ट नही थे । उन्होंने कहा कि 'इस घटना क्रम का उद्देश्य चाहे जितना पवित्र क्यो न हो परन्तु इस प्रकार चयन प्रक्रिया को छोडना आलोचनाओ को निमन्त्रण देना है ।'[1]

श्री मोरार जी देसाई की प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्ति

ससद के केन्द्रीय हाल मे श्री जयप्रकाश नारायण ने प्रधानमन्त्री पद के लिये श्री मोरार जी देसाई को मनोनीत किया । इस खुशी के अवसर पर श्री जगजीवन राम और श्री एच० एन० बहुगुणा नही थे । धीरे-धीरे सी० एफ० डी० के सभी सदस्य हाल से उठकर चले गये । उधर आचार्य कृपलानी ने श्री मोरार जी के प्रधानमन्त्री बनने के बाद पत्रकारो से विषादपूर्ण मुद्रा मे कहा कि 'अगर सविधान के अनुसार दो प्रधानमत्री होते तो वे दोनो को मनोनीत करते ।'[2] यह गम्भीरता से नही प्रत्युत औपचारिक रूप से कहा गया था लेकिन मनो मे गाठ डालने के लिये काफी था । इस वक्तव्य से श्री जगजीवन राम का महत्व बढ गया और उनकी स्पष्ट धारणा हो गयी कि अगर कुछ लोगो ने उनके विरुद्ध दुरभिसन्धि न की होती तो वे ही प्रधानमत्री बनते । जबकि इस वक्तव्य से सबसे ज्यादा दु खी श्री चरणसिह हुए, जिन्हे इस दौड़ मे शामिल ही नही समझा गया था ।

श्री जगजीवन राम के समर्थको के लिये 'जनता क्रान्ति' निरर्थक हो गयी थी । 'श्री जगजीवन राम के आवास पर उनके समर्थकों ने जनता पार्टी के झण्डे फाड डाले और उन्हे पैरों से रौंद डाला ।'[3] जनता पार्टी के कुछ नेतागण श्री जगजीवन राम के घर की ओर दौडे ताकि उन्हे समझाया-बुझाया जा सके । 'इसी बीच उन्होंने सवाददाताओ को बताया कि उनकी पार्टी ससद क अन्दर एव बाहर एक अलग सगठन के रूप मे रहेगी ।'[4] यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण वक्तव्य था परन्तु जनता पार्टी के वरिष्ठ नेताओ के आग्रह एव विशाल जनमानस के दबाव के कारण चार दिन बाद वे मन्त्रिमण्डल मे शामिल होने को राजी हो गये । इसी बीच उन्हे पटना से श्री जयप्रकाश नारायण का सन्देश मिला, कि 'बिना तुम्हारे सहयोग के नये भारत का निर्माण सम्भव नही है ।'[5] और इस प्रकार टूटे स्वप्नो, सिसकती महत्वाकाक्षाओ एव अपूरित स्वार्थों को नयी दिशा देने के लिये वे नये भारत के निर्माण मे जुट गये ।

---

1 जनार्दन ठाकुर "ऑल दि जनता मेन", पूर्वोक्त, पृ० 26 ।
2 दि इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, 25 मार्च 1977 ।
3 वही ।
4 वही
5 उद्धृत जनार्दन ठाकुर, "ऑल दि जनता मेन", पूर्वोक्त, पृ० 29 ।

श्री मोरारजी देसाई अपनी वरिष्ठता एव दीर्घ अनुभव के कारण कट्टर लीकवादी बन चुके थे । वे जनता पार्टी के विभिन्न घटकों की नीति-रीति मे सामजस्य नही स्थापित कर सके एव जितना लचीला उन्हे होना चाहिये वे नही हो सके । मन्त्रिमण्डल के गठन के विषय म कोटा पद्धति पर सहमति हुई थी । '27 मार्च 1977 को श्री जगजीवन राम ने कहा था कि नये मन्त्रिमण्डल मे प्रत्येक घटक से दो मन्त्री होंगे ।'[1] उल्टे श्री मोरारजी देसाई ने 12 सदस्यो के स्थान पर 19 सदस्यीय मन्त्रिमण्डल की घोषणा की, उन्होने अपने भूतपूर्व दल, सगठन काग्रेस के 7 सदस्यों को पूर्ण सक्षम मन्त्री बनाया । दूसरे प्रमुख घटक भूतपूर्व जनसघ एव भारतीय लोक दल के तीन-तीन मन्त्री एव समाजवादी पार्टी, सी० एफ० डी० और अकाली दल के दो-दो सदस्य मन्त्री बनाये गये । कोटा पद्धति के आधार पर केबीनेट का गठन उस समय स्पष्ट हो गया, जब नानाजी देशमुख के त्यागपत्र देने पर जनसघ के श्री बृजलाल वर्मा को मन्त्री बनाया गया । श्री मोरारजी ने मन्त्रिमण्डल के गठन मे जिस प्रकार से समानुपात के नियम को तोडा इससे जनता पार्टी के भूतपूर्व घटकों मे प्रारम्भ से ही नेतृत्व के प्रति क्षोभ और अविश्वास बढना स्वाभाविक था ।

प्रधानमत्री के पद पर श्री मोरार जी देसाई के चयन की भॉति जनता पार्टी के अध्यक्ष पद पर श्री चन्द्रशेखर का चयन भी एक प्रकार से राजनीतिक समीकरणो का परिणाम था । जनता पार्टी मे सासदो की सख्या के दृष्टिकोण से भूतपूर्व बी० एल० डी० एक शक्तिशाली घटक था । इसके सर्वोच्च नेता चोधरी चरणसिह, श्री कर्पूरी ठाकुर या श्री पीलू मोदी को जनता पार्टी का अध्यक्ष बनाकर अपने आहत अह की पूर्ति करने के साथ-साथ भविष्य के राजनीतिक समीकरणो मे अपना पक्ष मजबूत करना चाहते थे । परन्तु श्री मोरार जी देसाई एव कतिपय अन्य लोग इससे राजी नही थे । श्री जयप्रकाश नारायण की मौन स्वीकृति श्री चन्द्रशेखर के प्रति थी । अत जयप्रकाश नारायण ने अप्रत्यक्ष रूप से अपने प्रभाव का प्रयोग करके श्री चन्द्रशेखर को पार्टी अध्यक्ष बनाया ।

श्री चन्द्रशेखर किसी विशेष गुट से नही आये थे । उनका कोई जनाधार भी नही था । उनकी एकमात्र उपलब्धि यह थी कि वे 'युवा तुर्क' की हैसियत से काग्रेस मे अग्रणी रह चुके थे । आपातकाल मे कैद किये जाने के बाद लोकनायक के निकट माने जाते थे । इन सबसे उनकी महत्वाकाक्षायें बासो उछलने लगी थी । वे भी प्रधानमत्री बनने का स्वप्न मन ही मन पाल रहे थे । यह सत्य है कि उन्हे लोकनायक का पर्याप्त आर्शीवाद प्राप्त था, परन्तु सीमित जनाधार, अत्याल्प गुटीय शक्ति (मात्र-6 सासद) और साधारण राजनीतिक हैसियत के कारण उनका स्वप्न नही पूरा होना था । अत उन्होंने पार्टी अध्यक्ष पद मे ही सन्तोष कर लिया । श्री चन्द्रशेखर एव पार्टी के दूसरे पदाधिकारी अस्थायी तौर पर मनोनीत हुये थे एव आगामी नवम्बर मे सगठन का विधिवत चुनाव होना तय हुआ था ।

निष्कर्ष

जनता पार्टी की सरकार के गठन मे जनता पार्टी के नेताओ द्वारा व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओ, निहित स्वार्थो एव दुरभिसन्धियो का जो नाटक खेला गया उससे जनता पार्टी की एकता पर प्रश्न चिन्ह लग गया । छठी लोक सभा के चुनाव के दौरान जनता पार्टी के नेताओ द्वारा जिन उच्च आदर्शो, उद्देश्यो एव मूल्यो का दावा किया गया था, वे सभी खोखले सावित हुये । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जनता पार्टी मे एकता का मूलाधार सकारात्मक न होकर नकारात्मक

1 दि इंण्डयन एक्सप्रेस, दिल्ली, मार्च 27, 1977 ।

अर्थात् गैर काग्रेसवाद था । जैसे ही सत्ता रूपी रगमच से काग्रेस एव श्रीमती इदिरा गाँधी का अवसान हुआ, वैसे ही जनता पार्टी के नेताओं के मतभेद सतह पर आ गये ।

राजनीतिक दृष्टि से यह अत्यन्त आवश्यक है कि जो कार्य किया जाये या जो निर्णय लिये जाये वह न केवल उचित हो बल्कि उचित प्रतीत हो । यदि यह मान भी लिया जाय कि इस प्रकार मोरार जी देसाई का मनोनयन उचित था, तो भी यह औचित्यपूर्ण प्रतीत नही होता । प्रधानमन्त्री के चुनाव मे लोकतान्त्रिक प्रक्रिया का स्पष्ट रूप से गला घोंटा गया था । प्रधानमन्त्री के चयन के लिये निर्धारित प्रक्रिया का परित्याग करना न तो प्रजातान्त्रिक था और न ही व्यावहारिक रूप से बुद्धिमतापूर्ण था विभिन्न राजनीतिक समीकरणो एव वार्ताओं के परिणामस्वरूप यह सुनिश्चित हो गया था कि जनसघ एव बी० एल० डी० गुट श्री मोरार जी देसाई के नेतृत्व में सहमत है । ऐसी परिस्थिति मे यदि पूर्व निर्धारित चयन प्रक्रिया का पालन किया गया होता तो श्री मोरार जी देसाई की जीत निश्चित थी और इससे एक स्वस्थ प्रजातान्त्रिक आदर्श उपस्थित होता । परन्तु ऐसा नही हो सका इससे जनता पार्टी के नेताओं मे दूरदर्शिता के अभाव का परिचय मिलता है और इससे इस बात का पूर्ण आभास हो जाता है, कि जनता पार्टी का विघटन सुनिश्चित था ।

जहाँ तक श्री जयप्रकाश नारायण एव आचार्य कृपलानी द्वारा श्री मोरारजी देसाई को प्रधानमन्त्री मनोनीत करने का प्रश्न है, इस विषय मे दो मत व्यक्त किये जा सकते है । प्रथम मतानुसार श्री जयप्रकाश नारायण की पूर्ण इच्छा एव पूर्वाग्रह के कारण श्री मोरार जी देसाई प्रधानमत्री बने और दूसरे मतानुसार तत्कालीन परिस्थितियो मे श्री मोरार जी को प्रधानमत्री मनोनीत करना श्री जयप्रकाश नारायण की इच्छा नही वरन् मजबूरी थी । इन दोनो मतानुसार प्रजातन्त्र की स्वस्थ परम्पराओ का पालन नही होता है ।

प्रथम मत के सन्दर्भ मे यह कहा जा सकता है कि प्रधानमन्त्री के चयन मे श्री जयप्रकाश नारायण एव आचार्य कृपलानी को अपनी ओर से कोई समाधान नही प्रस्तुत करना चाहिये । ये व्यक्ति जनता पार्टी के पितामह थे । अत उन्हे अपनी गरिमा के अनुरूप हस्तक्षेप की राजनीति मे मुक्त रहना चाहिये, चाहे वह इन पर आरोपित ही क्यो न की गयी हो । उन्हे प्रत्येक स्तर पर स्पष्ट रूप से बहुमत की इच्छा के अनुरूप कार्य करना चाहिये था । श्री जयप्रकाश नारायण ने महात्मा गाँधी की परम्परा[1] का पालन करते हुये अपनी इच्छा एव पूर्वाग्रहो के अनुरूप श्री मोरार जी देसाई को प्रधानमत्री बनाया, परन्तु वे भूल गये कि वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य मे श्री जवाहर लाल नेहरू एव सरदार पटेल जैसे उच्च राजनीतिक चरित्र वाले व्यक्तियो का नितान्त अभाव है । अत यदि प्रधानमन्त्री का चुनाव लोकतान्त्रिक ढग से होता तो सम्भवत जनता पार्टी की नीव अधिक मजबूत होती ।

दूसरे मत के अनुसार श्री मोरारजी को प्रधानमन्त्री बनाना श्री जयप्रकाश नारायण की मजबूरी थी । इस मत के समर्थन मे यह तर्क दिया जा सकता है कि श्री देसाई ने कुछ वर्ष पहले अनेको बार श्री जय प्रकाश की कटु आलोचना की थी । उन्हे 'स्वीमिग पेण्डुलम' कहा था । उन्होने आरोप लगाया था कि श्री जय प्रकाश अपने दृढ विश्वास नही बल्कि 'निराशा और कुठा' के कारण साम्यवाद के प्रबल विरोधी बने है ।[2] इन ववतव्यों को श्री जयप्रकाश नारायण

---

1 स्वतन्त्रता के बाद भारत के प्रधानमनत्री पद के लिये दो दावेदार थे, श्री जे० एल० नेहरू एवं सरदार बल्लभ भाई पटेल । महात्मा गाँधी के इच्छा के अनुरूप श्री जे० एल० नेहरू को प्रधानमन्त्री मनोनीत किया गया था ।

2 देखे, वाल्स हेंजेन आफ्टर नेहरू ह् ?

भूल नही सकते थे अत वे श्री मोरार जी देसाई को प्रधानमन्त्री बनाने के इच्छुक नही थे, परन्तु श्री चरणसिह के द्वारा श्री जगजीवन राम के विरोध मे दिये गये वक्तव्य के सन्दर्भ मे श्री जयप्रकाश नारायण के पास जनता पार्टी के व्यापक हित के लिए श्री मोरार जी देसाई को प्रधानमन्त्री बनाने के अलावा कोई अन्य रास्ता नही था ।

इसके अलावा श्री जयप्रकाश के अधिकाश सर्वोदयी आन्दोलन के सहयोगी श्री मोरार जी देसाई के लिये दबाव डाल रहे थे । श्री जयप्रकाश की शारीरिक एव मानसिक स्थिति ऐसी नही थी कि वे इस दबाव का विरोध करे । अत उन्होंने श्री देसाई के नाम पर सहमति व्यक्त की ।

यहाँ महत्वपूर्ण यह नही है कि श्री मोरारजी देसाई के अलावा किसी अन्य का प्रधानमन्त्री बनना व्यावहारिक एव प्रजातान्त्रिक था या नही, बल्कि यह है कि श्री मोरार जी देसाई का मनोनयन प्रजातान्त्रिक ढग से हुआ कि नही ? श्री जयप्रकाश नारायण सर्वोदयी नेताओ एव श्री चन्द्रभानु गुप्ता के कुचक्र मे इस प्रकार उलझ गये थे कि उनके पास श्री मोरारजी देसाई के मनोनयन के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नही था ।

यदि इन दोनो मतो का तुलनात्मक रूप से विश्लेषण किया जाये तो प्रथम मत ही ज्यादा उपयुक्त एव सत्य के निकट प्रतीत होता है । परन्तु यदि द्वितीय मत मे रच मात्र भी सत्यता है तो श्री देसाई की मनोनयन की प्रक्रिया और भी दोष पूर्ण हो जाती है । यहाँ मुख्य आक्षेप श्री देसाई के प्रधानमन्त्री बनने पर नही बल्कि उनकी मनोनयन प्रक्रिया पर है । अत इन मनोनयन मे न तो उच्च आदर्शो एव प्रजातान्त्रिक मूल्यो का पालन ही हुआ और न ही जनता पार्टी की एकता सुरक्षित रह सकी । इस घटनाक्रम से पार्टी एव सरकार के अन्दर जिन अन्तर्विरोधो, विद्वेषो एव सघर्षो का प्रादुर्भाव हुआ उनमे अगले ढाई वर्षो के 'जनता शासन काल' मे वृद्धि होती रही ।

पंचम् - अध्याय

दस राज्यों में विधान सभा के चुनाव : जनता ?कता की पुनरावृत्ति

(I) जनता पार्टी की सरकार द्वारा अनुच्छेद 356 का प्रयोग : ?

एक विवादस्पद प्रकरण

(II) विधान सभा चुनाव एवं जनता पार्टी :

गुटीय सघंर्ष की शुरुआत

जनता पार्टी की सरकार द्वारा अ.च्छेद 356 का प्रयोग : एक विवा-स्पद प्रकरण

एक विवादास्पद प्रकरण भारतीय राजनीति मे मार्च 1977 के लोक सभा चुनावो का विशिष्ट महत्व है । इस चुनाव मे प्रथम बार केन्द्र मे गैर-काग्रेसी दल को बहुमत मिला एव जनता पार्टी की सरकार बनीं । इस चुनाव का उल्लेखनीय तथ्य यह था कि उत्तर भारत मे जनता पार्टी को आश्चर्यजनक सफलता मिली एव देश के पूर्वी तथा पश्चिमी भागो मे भी इसकी स्थिति सन्तोपजनक थी परन्तु दक्षिण भारत मे जनता पार्टी काग्रेस के अस्तित्व को चुनौती न दे सकी । यहाँ काग्रेस को शानदार विजय मिली ।

मार्च 1977 मे लोक सभा चुनाव मे मिली विजय जनता-नेतृत्व के लिये एक चुनौती थी, क्योकि यह विजय उसे बिना व्यापक राष्ट्रीय जनाधार के प्राप्त हुई थी । उत्तर भारत मे मिले व्यापक जन- समर्थन के आधार पर ही वह सतारुढ़ हुई थी । जबकि भारत के दक्षिणी राज्यो ने जनता पार्टी को पूर्णतया नकार दिया था । लोक सभा के चुनाव मे जनता पार्टी की विजय उसके अस्तित्व के लिये आवश्यक थी, किन्तु मात्र इस विजय के आधार पर वह काग्रेस के 'राष्ट्रीय विकल्प' होने का दावा नही कर सकती थी, जनता पार्टी का प्रथम कार्य सम्पूर्ण देश मे अपना प्रभाव बढाकर काग्रेस दल को चुनौती देना था जनता नेतृत्व इस तथ्य से भली भाँति परिचित था कि 'जनता लहर' के कारण ही उसे लोक सभा चुनाव मे विजय हासिल हुई है । यह लहर क्षणिक होती है । अत. पार्टी नेतृत्व शीघ्रातिशीघ्र राज्यो के विधान सभा चुनाव सम्पन्न करा के इस लहर का पुन लाभ उठाना चाहता था ।

18 अप्रैल, 1977 को तत्कालिक केन्द्रीय गृह-मन्त्री श्री चरण सिह ने नौ राज्यो -उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उडीसा, और पश्चिमी बगाल के मुख्यमन्त्रियो को सलाह दी कि वे सम्बद्ध विधान सभाओं को भग करने के लिये राज्यपालो को परामर्श दे और तत्काल चुनाव कराये । परन्तु मुख्यमन्त्रियों ने गृहमन्त्री की सलाह को ठुकरा दिया ।"[1] गृह- मन्त्री ने विधान सभा चुनाव कराने के पीछे यह तर्क दिया कि इन नौ राज्यों के मतदाताओं ने लोकसभा चुनाव मे काग्रेस को पूरी तरह अस्वीकार कर दिया है । अत· राज्यो की काग्रेसी सरकारे जनता की सच्ची प्रतिनिधि नहीं रही । केन्द्र ने यह भी आशका व्यक्त की कि ऐसा भी सम्भव है कि जनता इन राज्य सरकारो की आज्ञा का उल्लघन प्रारम्भ कर दे । इससे कानून एव व्यवस्था की गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो जायेगी ।

राज्यो के काग्रेसी मुख्यमन्त्रियो ने केन्द्रीय सरकार की इस सलाह को सविधान और लोकतान्त्रिक परम्पराओ के पूर्णतया विरुद्ध बताया । इनमे से कतिपय काग्रेसी राज्यों की ओर से सर्वोच्च न्यायालय मे एक याचिका दर्ज की गयी, जिसमे यह आरोप लगाया गया कि गृहमन्त्री ने इन राज्यो मे कानून व्यवस्था बिगडने का जो तर्क दिया है, वह

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, अप्रैल 20, 1977

सही नही है और क्योकि यह मामला राज्यो एव केन्द्र के विवाद का है, इसलिये सर्वोच्च न्यायालय को फैसला करना चाहिये कि केन्द्रीय सरकार को अनुच्छेद 356 का इस्तेमाल करना चाहिये या नही । राज्यो ने सर्वोच्च न्यायालय से एक स्थायी समादेश प्राप्त करने का प्रयास किया, जिससे कि केन्द्र इन राज्यो के विरुद्ध अनुच्छेद 356 का प्रयोग न कर सके ।

दोनो पक्षो के तर्क सुनने के बाद सर्वोच्च न्यायालय की सात सदस्यीय सविधान पीठ ने 29 अप्रैल, 1977 को इस याचिका को रद्द करते हुये कहाकि इस प्रकार का समादेश या अन्तरिम आदेश किसी भी कीमत पर नही दिया जा सकता, और केन्द्रीय सरकार अनुच्छेद 356 का इस्तेमाल करने में स्वतत्र है ।"[1] उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया—यह सम्भव है कि यदि न्यायालय को यह दर्शित किया जाय कि उद्घोषणा दुर्भावपूर्ण की गयी थी या राष्ट्रपति के समाधान के लिये असगत आधारो पर की गयी है, तो उसे विखडित किया जा सकेगा । किन्तु राष्ट्रपति प्राय आधार प्रकट नही करते और न ही आवश्यक ही है कि कारण दिये जाय । इसलिये किसी भी विशिष्ट अवसर पर उद्घोषणा का निकाला जाना राजनीतिक क्षेत्र मे आन्दोलन का विषय होगा ।[2]

तद्उपरान्त केन्द्रीय जनता सरकार ने अत्यन्त विवादास्पद कदम उठाया और बिना राज्यपाल की अनुशसा के केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने राष्ट्रपति से सिफारिश की कि नौ राज्यो मे विधान सभाये भग कर दी जाये, और अल्पकाल के लिये राष्ट्रपति शासन लागू किया जाये । थोड़ी आनाकानी के पश्चात राष्ट्रपति ने मन्त्रिमण्डल की सलाह मान ली । इस प्रकार केन्द्र ने नौ काग्रेस शासित राज्यो— उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पश्चिमी बगाल और उडीसा— मे विधान सभाओ को भंग करके नये चुनाव कराने के आदेश दे दिये । केन्द्र सरकार ने अपने कदम को उचित ठहराते हुये कहा कि लोकसभा के चुनावो के परिणामो के परिप्रेक्ष्य में ये विधान सभाये निर्वाचको के विश्वास एव भावनाओ को प्रतिबिम्बित नही करती, अत ये सरकारे जनता से पुन शासनादेश प्राप्त करें । जनता सरकार के इस कदम को अकाली दल एव सी0 पी0 एम0 ने उचित ठहराया जबकि काग्रेस एव उसके सहयोगी दलो (जैसे सी0 पी0 आई0) ने इसकी कटु आलोचना की ।

केन्द्र सरकार द्वारा अनुच्छेद 356 के प्रयोग की औचित्यता

भारतीय सविधान मे किसी राज्य के सवैधानिक तन्त्र के विफल हो जाने पर प्रशासन चलनेके उपबन्ध किये गये है, जिसमे संघ को राज्यों की देखभाल का दायित्व सौपा गया है । इसके अनुसार 'सघ का यह कर्तव्य होगा कि वह यह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक राज्य की सरकार सविधान के उपबन्धो के अनुसार चलती रहे ।'[3] इसके अलावा सविधान के अनु0 356 (1) के अनुसार यदि किसी राज्य के राज्यपाल से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति को समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गयी है, जिसमे कि उस राज्य का शासन इस सविधान के उपबन्धो के अनुसार नही चलाया जा सकता तो राष्ट्रपति घोषणा द्वारा वहाँ राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है ।[4] राष्ट्रपति यह

---

1. दि स्टेट्समैन, अप्रैल 30, 1977
2. राजस्थान बनाम भारत सघ, ए0 आई0 आर0 एस0 सी0 1361 (पैरा 124, 144), मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ, ए0 आई0 आर0, 1980, एस0 सी0 1789, (पैरा 103-104)
3. भारतीय सविधान, अनु0 355
4. भारतीय सविधान, अनु0 356 (1)

घोषणा उस समय भी कर सकता है, जब सघ की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग करते हुये किन्ही निर्देशो के अनुपालन मे यह उनको प्रभावी करने मे कोई राज्य असफल रहता है ।[1] राष्ट्रपति ऐसी घोषणा द्वारा—

(क) उस राज्य की कार्यपालिका के या अन्य किसी प्राधिकारी के सभी या कोई कृत्य अपने हाथ में ले सकेगा । केवल उच्च न्यायालय के कृत्य नहीं लिये जा सकेंगे ।

(ख) यह घोषणा कर सकेगा कि राज्य के विधान मण्डल की शक्तियों का प्रयोग ससद द्वारा या उसके प्राधिकार के आधीन किया जा सकेगा सक्षेप मे ऐसी उद्घोषणा द्वारा सघ न्यायिक कृत्यो को छोड़कर राज्य प्रशासन के सभी कृत्यों पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है ।

यह स्पष्ट है कि यह अधिकार सघ की असाधारण शक्ति है, जिससे वह लोकतन्त्रात्मक सरकार को बनाये रखे और गुटो के आपसी सघर्ष मे राज्यो का शासनतन्त्र विफल न हो सके । 'भारत की राजनीतिक प्रणाली मे इस शक्ति के महत्त्व को ओझल नही किया जा सकता, विशेषकर इस तथ्य को ध्यान मे रखते हुये कि सविधान के प्रथम 38 वर्षो मे इसका प्रयोग 74 बार किया गया है ।'[2]

अनुच्छेद 356 के अधीन सघ को प्रदत्त शक्ति के प्रयोग के पूर्वगामी इतिहास को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका व्यापक प्रयोग हुआ है, जबकि डा0 अम्बेडकर ने सविधान सभा मे दलील दी थी कि "हम आशा करते है कि इस अनुच्छेद के प्रयोग की आवश्यकता नही होगी और ये पुस्तक मे ही बने रहेगे । यदि इन्हे कभी प्रवृत्त किया जाता है तो मै आशा करता हूँ कि राष्ट्रपति किसी प्रान्त के प्रशासन को निलम्बित करने के पहले सभी उचित पूर्वविधानी बरतेगें ।"[3]

अत स्वाभाविक है कि इस अनुबन्ध जिसके बारे मे कल्पना की गयी थी कि वह पुस्तक मे रहेगा, बार-बार प्रयोग किये जाने के औचित्य को प्रश्नगत किया जा सकता है—

(क) यह बात बल देते हुये कही जा सकती है कि अनुच्छेद 356 के अधीन शक्ति का प्रयोग किसी ऐसे मन्त्रिमण्डल के पदच्युत करने के लिये नही किया जाना चाहिये, जिसे विधान मण्डल में बहुमत का विश्वास प्राप्त है । 42वें सविधान सशोधन द्वारा राष्ट्रपति इस शक्ति के प्रयोग को 'न्यायिक पुनरावलोकन' से बाहर कर दिया था, किन्तु अब 44वे सविधान सशोधन द्वारा यह बन्धन हटा लिया गया है । परिणामस्वरूप इस घोषणा की सवैधानिकता को सभवत दुर्भाग्यपूर्ण होने के आधार पर प्रश्नगत किया जा सकता है ।

(ख) एक आलोचना यह भी की जाती है कि वृहद सविधान होने के बावजूद, राज्य की 'सवैधानिक तन्त्र की विफलता' को स्पष्ट परिभाषित नही किया गया । अत केन्द्र सरकार ने इस संकटकालीन शक्ति का प्रयोग कभी राजनीतिक गत्यावरोध मिटाने के लिये कभी यथास्थिति को अपने पक्ष मे करने के लिये और कभी विपक्षी दलो की

---

1. भारतीय सविधान, अनु0 356
2. डा0 डी0 डी0 बसु भारत का सविधान एक परिचय, ब्रज किशोर शर्मा (अनुवादक हिन्दी), प्रेटिस हाल आफ इण्डिया प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 1989, पृ0 315
3. कॉन्सिटटुयेन्ट एसेम्बली डिबेट, IX, पृ0 177

लोकप्रिय सरकार को हतोत्साहित करने के लिये मनमाने ढग से किया गया है । 'स्पष्ट रुप से इस 'सवैधानिक अभाव' का लाभ सत्तारुढ दल अपनी राजनीतिक औचित्यता के लिये उठाता रहा है । यही कारण है कि अनेक अवसरो पर केन्द्र सरकार इसका प्रयोग करती रही है ।'[1]

सविधन के अनुच्छेद 356 के अतर्गत जो प्रावधान किया है उसके सम्बध मे प्रारम्भ से भय व्यक्त किया गया एव सविधान निर्माताओं ने यह भी स्वीकार किया था कि अनु0 356 का दुरुप्रयोग दलगत हितो के लिये किया जा सकता है अर्थात केन्द्र के शासक दल राष्ट्रपति के माध्यम से विरोधी दलो की सरकारो का दमन कर सकता है । 'लेकिन उसे आवश्यक बुराई के रुप मे अपनाना अनिवार्य था अन्यथा सविधान निर्माण के सारे प्रयास निरर्थक हो जाते है ।'[2] सन् 1959 मे केरल के साम्यवादी मन्त्रिमण्डल को जिस प्रकार पदच्युत किया गया उससे स्पष्ट हो गया कि सविधान निर्माताओ का भय निराधार नही था ।

1967 मे चतुर्थ आम चुनाव के बाद उत्पन्न राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति मे अनेक राज्यो मे इस सकट-कालीन उपबन्ध का उपयोग किया गया । मार्च 1972 मे विधान सभा चुनावो के बाद राज्यो मे जो राजनीतिक स्थिति सामने आयी'[3] उसमे सोचा गया था कि अब राज्यो मे 'सवैधानिक तन्त्र की विफलता' के अवसर कम ही उत्पन्न होगे, लेकिन वस्तुत ऐसा नही हुआ । सत्तारुढ दल अपने दलीय हितो के लिये इस अनुच्छेद का प्रयोग करता रहा ।

इस अनुच्छेद का सबसे विवादस्पद प्रयोग जून 1977 मे सघ की जनता सरकार द्वारा किया गया । जनता सरकार ने नौ राज्यो के काग्रेसी विधानमण्डल को इस लिये भग कर दिया गया कि मार्च 1977 के लोकसभा चुनाव मे काग्रेस अपना विश्वास खो चुकी है । भारतीय राजनीतिक के इतिहास मे सामूहिक रुप से विधानमण्डलो को भग करने का यह प्रथम अवसर था । यहाँ जनता सरकार ने प्रजातान्त्रिक मूल्यो एव आदर्शो की पूर्ण अवेहलना की गयी थी ।

जनता सरकार का यह तर्क कि लोकसभा के चुनाव परिणामो से यह निष्कर्ष निकलता है कि राज्य के विधान मण्डल उस राज्य के निर्वाचक गणो को प्रतिबिम्बित नही करते, युक्तियुक्त नही था । इस तर्क मे यह दोष है कि राज्य विधान मण्डल के निर्वाचन मे अन्तर्वलित मुद्दे वही हो, जो ससद के निर्वाचन के लिये हो, यह आवश्यक नही है । राज्य विधान मण्डल के निर्वाचन के लिये जो मुद्दे होते है, वे प्राथमिक रुप से स्थानीय हित के लिये होते है जबकि ससद के निर्वाचन मे अखिल भारतीय विचार और दल की शक्ति पर ध्यान दिया जाता है । जून 1977 मे पश्चिमी बगाल राज्य के विधान मण्डल के लिये इसके बाद जो निर्वाचन हुए उससे यह बात उपदर्शित होती है । लोकसभा के निर्वाचन के लिये जनता पार्टी को काफी मात्रा मे मत मिले किन्तु राज्य विधान सभा के निर्वाचन के लिये मत अल्प मात्रा मे मिले और साम्यवादी (मार्क्सवादी) दल विशाल बहुमत प्राप्त कर सका । इसलिये "यह प्रस्थापना की कि राज्य

---

1. शिवराज नकडे 'सविधान का अनुच्छेद 356 इसके प्रयोग और दुरुपयोग', एल0 एम0 सिघवी (सम्पादित) "यूनियन स्टेटरेलेशन इन इण्डिया," दिल्ली 1969 पृ0 81
2. टी0 टी0 कृष्णामचारी. सी0 ए0 डी0, IX पृ0 235
3. १९७२ में 19 राज्यों एव केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों मे चुनाव हुये जिसने केवल मणिपुर मेघालय, मिजोरम और गोवा, दमन दियू के अतिरिक्त अन्य सभी राज्यो- आध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर, पजाब, राजस्थान, त्रिपुरा, पश्चिमी बगाल, दिल्ली- में काग्रेस पार्टी को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ

विधान सभा के बवाद् राज्य के निर्वाचक गणो के मत राग की रासद के निर्वाचन मे प्रतिबिम्बित मत के आधार पर निर्धारित किये जाने चाहिये, तर्क शुद्ध नही है ।"[1]

इसके अतिरिक्त डा० अम्बेडकर ने स्पष्ट कहा था कि अनु० 356 को सामान्यत पुस्तक मे बन्द रहना चाहिये और इसका अभिलम्ब तभी लिया जाना चाहिये जब सब साधन समाप्त हो गये हो । अत इस व्यक्तिपरक उपधारणा पर कि राज्य की विधान सभा, राज्य के निर्वाचक गणो की राय प्रतिबिम्बित नही करती, इस शक्ति का प्रयोग करना सविधान के निर्माताओ के उद्देश्यो का अतिलघन करना है ।

जनता सरकार के इस कृत्य की अनेक अध्येताओ, न्यायविदो, बुद्धिजीवियो एव राजनीतिज्ञो ने कटु आलोचना की थी । विपक्षी काग्रेस पार्टी ने आरोप लगाया कि जनता पार्टी के आदर्श खोखले है एव वह ससदीय व्यवस्था से खिलवाड कर रही है । "काग्रेस ने इसे 'सवैधानिक विरुपता' की सज्ञा दी । विपक्षी काग्रेसी नेता श्री वाई० बी० चव्हाण ने इसे सविधान की आत्मा का हनन बताया ।"[2] काग्रेस ने यह भी आरोप लगाया कि जनता पार्टी ने विधान सभाओ का विघटन अपने राजनीतिक एव दलीय हितो के लिये किया है । "वास्तव मे जनता सरकार अगस्त 1977 मे होने वाले राष्ट्रपति के चुनाव मे विधान सभा के वोटो का प्रयोग करना चाहती है ताकि वह चुनाव जीत सके ।"[3]

जनता पार्टी ने चुनाव अभियान के दौरान प्रजातान्त्रिक एव सवैधानिक मूल्यो की स्थापना पर बल दिया था एव विशेष रुप से अनु० 356 के विषय मे अपने घोषणा पत्र मे कहा थाकि वह –"धारा 356 मे ऐसा सशोधन करेगी कि सत्तारुढ दल अथवा उस दल का अनुग्रह प्राप्त गुट अपना स्वार्थ साधने के लिये किसी भी राज्य पर राष्ट्रपति शासन न लाद सके ।"[4] जनता सरकार का यह कृत्य अपने घोषणा के प्रावधानो का स्पष्ट उल्लघन था । जनता पार्टी द्वारा दिये गये आश्वासन समय की धार पर खरे न उतर सके और समय आने पर दिये गये आश्वासन एव प्रजातान्त्रिक मूल्य राजनीतिक औचित्यता की भेट चढ गये । राजनीतिक औचित्यता हमेशा प्रजातान्त्रिक मूल्यो का पर्याय नही होती है ।

निष्कर्ष जनता सरकार ने सामूहिक रुप से विधान मण्डलो को विघटित करके जो अनुचित परम्परा डाली उससे भविष्य मे अनु० 356 के दुरुपयोग की सम्भावनाओ मे वृद्धि हुई । इसी को नजीर मानकर काग्रेस सरकार ने भी फरवरी 1980 मे नौ राज्यो की विधान सभाओ को भग[5] किया था । काग्रेस सरकार का यह कार्य और भी आलोचनास्पद है । वास्तव मे काग्रेस लगभग 100 वर्ष पुरानी पार्टी थी अत उसे जनता पार्टी के इस अनुचित कृत्य का अनुशरण नही

---

1. डी० डी० बसु पूर्वोक्त, पृ० 320
2. काग्रेस वर्किग कमेटी रिजोल्यूशन,नई दिल्ली, अप्रैल 30 1977, उद्धृत ए० एम० जैदी ए सन्चुरी ऑफ स्टेट क्राफ्ट इन इण्डिया (सम्पादित), पब्लिकेशन डेपार्टमेन्ट, इण्डियन इन्स्टीटियूट आफ एप्लाइड पोलिटिकल रिसर्च,नई दिल्ली, 1985 पृ0 421
3. काग्रेस वर्किग कमेटी स्टेटमेन्ट, मई 2, 1977,वही, पृ0 422
4. जनता पार्टी का चुनाव घोषणा पत्र-1977, जनता पार्टी प्रकाशन,नई दिल्ली, पृ0 15
5. उत्तर प्रदेश,बिहार,तमिलनाडु,राजस्थान,मध्यप्रदेश,महाराष्ट्र,पजाब,उडीसा और गुजरात मे काग्रेस (इ0) का शासन नही था। अत यहॉ की विधान सभा भी भग कर दिया गया । उद्घोषणा में कोई कारण नही दिया गया था किन्तु इसका स्पष्ट आधार यह था कि राज्यों में जो दल सत्तारुढ थे उन्हे 1980 के लोकसभा चुनाव मे बहुत कम मत मिले थे । श्रीमती इदिरा गॉधी ने अभिव्यक्त रुप से जनता पार्टी के उदाहरण का अनुकरण किया ।

करना चाहिये था एक सशक्त पार्टी होने के नाते उसे और जिम्मेदारी एव गरिमापूर्ण ढ़ग से कार्य करना चाहिये था। कांग्रेस ने जनता पार्टी के इस कृत्य को मान्यता देकर इसे एक प्रथा के रुप मे लगभग स्थापित कर दिया अन्यथा सभवत यह एक अवाछनीय अपवाद बनकर रह जाता। अत जनता पार्टी ने जिस अप्रजातान्त्रिक परम्परा की शुरुआत की थीं, कांग्रेस (इ0) ने उसे औचित्यता प्रदान कर दी। सविधान निर्माताओं ने जिसे विशेष परिस्थितिया में प्रयोग किये जाने वाला 'अभय दीप' समझा था व्यवहार में केन्द्रीय सरकार ने उसे विपक्षी दलों की राज्य सरकारो के उखाड फेकने का साधन बना लिया। इसे किसी भी दृष्टि से उचित नही कहा जा सकता।

विधान सभा चुनाव एवं जनता पार्टी :
ग्टीय संघर्ष की शुरुआत

विधान सभा चुनाव क्यों ?

किसी भी राजनीतिक दल के अस्तित्व एव भविष्य के लिये यह आवश्यक कि उसका व्यापक जनाधार एव सुदृढ़ राजनीतिक सगठन हो । जनता पार्टी को ये दोनो चीजे प्राप्त करनी थी । मार्च 1977 के लोकसभा चुनाव परिणामो से यह स्पष्ट हो गया था कि दक्षिण भारत मे जनता पार्टी का कोई प्रभाव नही है, अत सच्चे अर्थों मे जनता पार्टी एक अखिल भारतीय राजनीतिक दल नही कहा जा सकता था इसके लिये जरुरी था कि कम से कम देश के प्रत्येक भाग मे उसका कुछ न कुछ प्रभाव आवश्यक हो । अत जनता सरकार लोकसभा चुनाव के दौरान उपजी 'जनता लहर' का फायदा विधान सभा चुनावो मे भी उठाना चाह रही थी । इस परिपेक्षय मे जनता सरकार के लिये राज्यो के विधान सभाओं के चुनाव आवश्यक एव महत्वपूर्ण हो गये थे । इसके अलावा जनता पार्टी इन चुनावो मे विजय हासिल करके राज्य - सभा मे अपनी स्थिति मजबूत करना चाहती थी ताकि भविष्य मे सविधान सशोधन आसानी से कर सके ।

इसी क्रम मे इन विधान सभा के चुनावो मे प्राप्त विजय का उपयोग जनता पार्टी सरकार भविष्य मे होने वाले राष्ट्रपति चुनाव मे करना चाह रही थी । ससदीय व्यवस्था मे राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका है, वह मन्त्रिमण्डल की सलाह पर अपने कार्यों का सम्पादन करता है । परन्तु किसी भी सरकार के लिये विपक्षी दल के राष्ट्रपति के साथ समायोजन मे कठिनाई उत्पन्न हो सकती है । अत जनता पार्टी की सरकार विधान सभाओ मे जीत हासिल करके, राष्ट्रपति पद के लिये अपने प्रत्याशी की जीत सुनिश्चित करना चाह रही थी अत उसके लिये विधान सभा के चुनाव अत्यन्त आवश्यक थे । इन्ही कारणो से जनता सरकार ने अप्रैल 1977 मे शीघ्रता से 9 कांग्रेस शासित राज्यो की विधान सभाओं को भंग करके जून 1977 मे देश मे 'लघु आम चुनाव' कराने की घोषणा कर दी । इस 'लघु आम चुनावो' मे इन नौ राज्यो के आलावा तमिलनाडु, जम्मू -कश्मीर एव तीन केन्द्र शासित प्रदेशो दिल्ली, गोवा दमन दीयू एव पाडिचेरी मे भी चुनाव कराये गये ।

राज्यो मे सत्ता प्राप्त करके जनता पार्टी की केन्द्रीय सरकार अपने 'दलीय सगठन' को मजबूत बनाना चाहती थी जनता पार्टी की रणनीति का मूल आधार यह था कि सशक्त 'दल निर्माण' के लिये राज्यो की सत्ता का अधिग्रहण आवश्यक है । उसका उद्देश्य राष्ट्रीय स्तर पर अपनी राजनीतिक शक्ति की सहायता से राज्य स्तर पर अपना दलीय आधार मजबूत करना । जनता पार्टी के पूर्व 'काग्रेसी नेतागण' अपने व्यक्तिगत अनुभवो से इस तथ्य से भली-भॉति अवगत थे कि 'दल- निर्माण' के लिये सरकारी तन्त्र का उपयोग कितने प्रभावशाली ढ़ग से किया जा सकता है, क्योकि जब काग्रेस राष्ट्रीय एव प्रादेशिक स्तर पर सत्ता मे थी तो उसने अपनी राजनीतिक शक्ति का उपयोग 'दलीय सगठन' को मजबूत करने के लिये किया था । यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि सत्ताधारी दल हमेशा बडी सख्या मे समर्थको

एव सक्रिय कार्यकर्ताओ को आकर्षित करता है । सरकारी तन्त्र के राजनीतिक सरक्षण मे दल-निर्माण के अनेकों कार्य सुचारु रुप से सम्पन्न होते है ।

जनता पार्टी की विधान सभाओ के चुनाव सबन्धी रणनीति मे मुख्य दोष यह था कि पार्टी ने केवल इसके सकारात्मक आयामो को ही ध्यान मे रखा था । जनता पार्टी अपने नवीन ससाधनो का उपयोग करके पूरे देश मे अपने 'दलीय सगठन' का मजबूत जाल बिछाना चाहती थी । परन्तु इसी के साथ-साथ एक चुनोती भी उभर कर आयी । इस रणनीति के अनुसार जनता पार्टी ने आशा की थी कि उसका प्रत्येक घटक दल राष्ट्रीय स्तर पर एक 'सुदृढ़ दलीय सगठन' बनाने के लिये प्रतिबद्ध है । पार्टी के कर्णधारो का यह अनुमान गलत सिद्ध हुआ । वे यह अनुमान नही लगा सके कि 'नवजात-दल' के पूर्व घटक अपने अस्तित्व को नही भूल पाये होगे और विधान सभा चुनाव मे गुटबाजी एव आन्तरिक कलह उभर कर आयेगी ।

जनता पार्टी ने 'दलीय-निर्माण' की जो रुपरेखा बनायी थी उसके अनुसार चुनावी विजय एव विधान मण्डल मे बहुमत के माध्यम से सुदृढ "दलीय सगठन का निर्माण" करना था । इस रुप-रेखा के अन्तर्गत विधान सभा चुनाव के सकारात्मक एव नकारात्मक आयामो के मध्य तीव्र अन्त क्रिया हुई जिसके तात्कालिक परिणाम तो एक सीमा तक जनता पार्टी के लिये सुखद रहे परन्तु इसके दूरगामी परिणाम पार्टी के लिये उत्साहवद्र्धक नही थे । जनता पार्टी इन चुनाव मे विजय हासिल करके अपनी राजनीतिक शक्ति बढाना चाहती थी । जबकि इसके 'घटक-दल' पार्टीके अन्दर अपनी-अपनी शक्ति बढाने का प्रयास कर रहे थे, ताकि वे पार्टी एव सरकार का उपयोग अपने गुटीय हितो के लिये कर सके ।

जनता पार्टी की चुनावी रणनीति : गुटबंदी का श्री गणेश

जनता पार्टी ने राज्य विधान सभाओं के चुनाव की घोषणा तो कर दी परन्तु स्वयं उसके पास विभिन्न राज्यो मे चुनाव सचालित करने के लिये सुदृढ सगठन का अभाव था । अभी तक पार्टी की केन्द्रीय चुनाव समिति (सेन्ट्रल पार्लियामेन्ट्री बोर्ड) का गठन नही हुआ था । 19 मई 1977को 'जनता पार्टी-कार्य समिति' ने औपचारिक रुप से यह निर्णय लिया कि पार्टी ने प्रत्याशियो के चयन के लिये 'राज्य चुनाव समिति' स्थापित करने का फैसला किया है एव ये समितियाँ राष्ट्रीय पर्यवेक्षको के निर्देशानुसार कार्य करेगी । इस निर्णय की पार्टी के अन्दर तीव्र प्रतिक्रिया हुई । विभिन्न राज्यो की चुनाव समितियो एव पर्यवेक्षको के मनोनयन के प्रश्न पर पार्टी के 'घटक दलो' के बीच गम्भीर मतभेद दृष्टिगोचर हुये, इन्हे किसी प्रकार ऊपरी तौर पर समायोजित किया गया । 'पार्टी कार्य समिति' ने विभिन्न राज्यो मे प्रेक्षको की नियुक्ति की, इन प्रेक्षको को विधान सभा के चुनाव के लिये प्रत्याशियो के चयन का पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया और यह भी कहा गया कि मतभेद की स्थिति मे वे पार्टी अध्यक्ष से सम्पर्क करे ।'[1]

राज्य चुनाव समितियो एव प्रक्षको के मनोनयन मे जनता पार्टी मे गम्भीर आन्तरिक मतभेद उत्पन्न हुये । इससे कुछ 'राज्य चुनाव समितिया' की कार्यवाही पगु हो गयी राजस्थान मे जनता पार्टी नेता श्री कुम्भाराम आर्या एव पजाब मे डा०.कालीचरण शर्मा ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी कि समितिया सुचारु रुप से कार्य नही कर सकी । डा०

1. पैट्रियॉट: दिल्ली, मई 10 1977

कालीचरण शर्मा पूर्व सगठन काग्रेस के नेता थे। 'उन्होने यह कहते हुये समिति की बैठक से बहिष्कार किया कि जनता पार्टी मे पूर्व जनसघी तत्वो को हावी नही होने दिया जायेगा।'[1] यह स्थिति जनता पार्टी एव सरकार दोनों के लिये विषाद पूर्ण थी। इस समय जनता पार्टी के सामने मुख्य चुनौती यह थी कि वह आने वाले विधान सभा चुनाव मे किस प्रकार अपने आन्तरिक विरोधाभासो से ऊपर उठकर स्वय को एक सुदृढ एव शक्तिशाली पार्टी सिद्ध कर सके।

जनता पार्टी मे यह अन्त कलह केवल राज्य स्तर पर सीमित नही थी। पार्टी के राष्ट्रीय स्तर के नेतागण भी इस सघर्ष एव प्रतिस्पद्र्धा मे लिप्त थे। श्री चरण सिह को उत्तर प्रदेश मे पार्टी पर्यवेक्षक नियुक्त किया गया था, वे इसे अपना अपमान समझ रहे थे क्योंकि पूर्व लोकसभा के चुनाव मे वे सम्पूर्ण उत्तर भारत के चुनाव प्रभारी थे। उन्होंने इस नियुक्ति पर असन्तोष भी व्यक्त किया था तथा 'उत्तर-प्रदेश मे विधान सभा के प्रत्याशियों के चयन मे पार्टी अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर से उनकी खुली भिडन्त हुई।'[2] विधान सभा चुनावों मे प्रत्याशियों के चयन को लेकर, ऊभरे गुटीय सघर्ष से जनता पार्टी की छवि धूमिल हो रही थी, पार्टी के शीर्षस्थ नेताओं ने एक सयुक्त घोषणा मे कहा कि "इस समय दल मे एकता बनाये रखना नितान्त जरुरी है और हमे अपने मतभेदो का निपटारा सगठन के ढॉचे के अन्तर्गत करना चाहिये।"[3]

यहॉ यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि जनता पार्टी का औपचारिक उद्घाटन मात्र 12 दिन पूर्व, 1 मई 1977 को हुआ था और इसके सदस्यो ने अनुशासन एव एकता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की थी। वास्तव मे पार्टी ने 1 मई को अपने सदस्यो पर भारी दायित्व सौपा था कि वे समाज की नवीन शक्तियों को सचारित करके सुदृढ सगठन का निर्माण करे जो देश की मूलभूत समस्याओं के प्रति सवेदनशील हो। परन्तु यह दायित्व केवल बयानबाजी तक ही सीमित रहा।

जनता पार्टी के अनेक नेताओं ने दलीय एकता बनाये रखने की अपील की और कहा कि पार्टी के घटक दलो को आपसी खीचा तानी से बचना चाहिये। यह विडम्बना थी कि जनता पार्टी के आदर्शात्मक परिदृश्य एव उसके व्यवहार सम्बन्धी आनुभाविक तथ्यों के मध्य गम्भीर विरोधाभास की स्थिति थी। विधान सभा चुनावो मे पार्टी का प्रत्येक घटक दल अपने समर्थक प्रत्याशियोंके लिये टिकट प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था। राष्ट्रीय स्तर पर पार्टी नेताओं ने विभिन्न गुटो के दावो एव स्वार्थों का समायोजन आपसी समझौतो द्वारा करके, एक सीमा तक अन्तर्गुटीय सघर्षो के निराकरण का प्रयास किया, जिसमे उन्हे आशिक सफलता भी मिली। 'जनता- लहर' के कारण जनता प्रत्याशियों के जीतने की प्रबल आशा थी इसी कारण प्रत्याशियों की सख्या भी अत्याधिक थी जनता पार्टी का 'दलीय सगठन' स्वय इतना व्यवस्थित नही था कि प्रत्याशिया का चयन करे अत पार्टी की कार्य समिति ने 'राज्य चुनाव समितियों' एवं प्रेक्षको को निम्न दिशा निर्देश दिये

(1) आपातस्थिति एव 20 सूत्री कार्यक्रमो के समर्थको को टिकट नही दिया जायेगा।

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, मई 14, 1977
2. दि स्टेटसमैन, दिल्ली, मई 12, 1977
3 दि स्टेट्समैन, दिल्ली, 13 मई 1977

(2) बिहार के सन्दर्भ मे जिन लोगो ने 'जय प्रकाश आन्दोलन' के समर्थन मे बिहार विधान मण्डल से त्यागपत्र दे दिया था, उन्हे टिकट दिया जायेगा ।

(3) लोक सभा चुनाव मे जो व्यक्ति जनता पार्टी के प्रत्याशियो के विरुद्ध चुनाव लडे है, उन्हे विधान सभा से पार्टी का टिकट नही दिया जायेगा ।

कार्य समिति ने प्रत्याशियो के चयन मे नवयुवको अल्पसख्यको, पिछड़े वर्गो एव महिलाओ का उचित प्रतिनिधित्व देने के भी निर्देश जारी किये । [1] कार्यसमिति चाहती थी कि आपातस्थिति के समर्थको एव अपराधी तत्वो को टिकट न दिया जाये । 'जय प्रकाश-आन्दोलन' के समर्थको को पार्टी मे स्थान मिले ।

इन दिशा निर्देशो के बावजूद 'राज्य चुनाव समितियो' एव केन्द्रीय पर्यवेक्षको ने घोर पक्षपात किया, एव जनता पार्टी कार्य समिति के निर्देशो का उल्लघन किया । अत जातिवाद और गुटवाद के नाम पर टिकट बॉटे गये तथा पार्टी के सक्रिय एव विश्वसनीय सदस्यो, जिन्होने 'जय प्रकाश आन्दोलन' मे भाग लिया था, की अवहेलना की गयी ।[2] प्रत्येक गुट ज्यादा से ज्यादा अपने समर्थको को टिकट देना चाहता था । अत अनेक लोगो ने कार्य समिति से शिकायत की कि पार्टी ने उन लोगो को टिकट दिया है जो कल तक आपातकाल के घोर समर्थक थे । [3] पार्टी के महासचिव श्री राम कृष्ण हेगड़े ने स्वीकार किया कि हरियाणा राज्य से दिशा निर्देशो के उल्लघन की अनेको शिकायते पार्टी-मुख्यालय को प्राप्त हुई है । 21 मई 1977 से पार्टी के सक्रिय नेता श्री सिब्बन लाल सक्सेना भूख हडताल मे बैठ गये उनकी मॉग थी कि पार्टी प्रत्याशियो का मनोनयन योग्यता के आधार पर होना चाहिये । [4]

उत्तर प्रदेश मे श्री चरणसिह और श्री चन्द्रशेखर के बीच आरोपो-प्रत्यारोपो का खुला अदान-प्रदान हुआ । यह कहा गया की पार्टी अध्यक्ष उत्तर प्रदेश के प्रत्याशियो की सूची मे अपने समर्थको को समायोजित कर रहे है । श्री जय प्रकाश नारायण ने इन विवादो और आरोपो को दुर्भाग्यपूर्ण बताते हुये कहा, कि 'अब प्रत्याशियो के चयन सम्बन्धी सभी विवादो को खत्म हो जाना चाहिये । किसी के द्वारा कुछ ऐसा नही किया जाना चाहिये जिससे पार्टी कमजोर हो या उसकी छवि धूमिल हो । [5]

सरटोरी के अनुसार एक प्रजातान्त्रिक दल मे हमेशा सघर्षरत विरोधाभासी हितो का दबाव बना रहता है और सौदेबाजी द्वारा ही दलीय अन्तर्कलह का निवारण किया जाता है । एक प्रजातान्त्रिक दल विजातीय हितो को समायोजित करता है और उन्हे सम्मिलन, सौदेबाजी तथा दबाव डालने का अवसर प्रदान करता है ।[6] प्रजातान्त्रिक दल का मुख्य कार्य सर्व सम्मति विकसित करना एव विभिन्न गुटो के विरोधी हितो एव सघर्षो का समझौते एव समायोजन द्वारा निराकरण करना है [7] जनता पार्टी मूलत एक प्रजातान्त्रिक दल था, अत इसने अपने अन्दर विरोधी गुटो एव हितों को

---

1. दि इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, मई 13, 1977
2. एस0 के0 घोष 'दि बिट्रेयल पोलिटिक्स ऐज इफ पीपुल मैटर्स', स्टलिग पब्लिशर्स, प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 1979, पृ0 6
3. दि इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, मई 17, 1977
4. दि स्टेट्समैन, दिल्ली, मई 21, 1977.
5. श्री जय प्रकाश नारायण का वक्तव्य, दि स्टेट्समेन, मई 27, 1977
6. देखे जियोवानी सरटोरी "पार्टीज एव पार्टी सिस्टमस् ए फ्रेमवर्क फॉर एनालेसिस", पूर्वोक्त, 1976
7. देखे थियोडोरएम0 न्यूकोम्ब, "दि स्टडी ऑफ कॉनसेन्सस" इन राबर्ट के० मर्टिन (सम्पादित) सोश्योलाजी टुडे, बेसिकबुक 1959

सौदेबाजी एव सम्मिलन का पूर्ण अवसर प्रदान किया, परन्तु वह विभिन्न हितो के मध्य समायोजन स्थापित करने मे असफल रहा ।

जनता पार्टी मे प्रत्याशियो के चयन को लेकर पॉच सुव्यवस्थित 'घटक दलो' के मध्य गुटीय सघर्ष प्रारम्भ हुआ ये घटक दल जनता पार्टी मे अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिये सघर्ष कर रहे थे । प्रत्येक गुट अपने सामर्थ्य के अनुसार चुनाव मे अपने प्रत्याशियो के लिये सीटे प्राप्त करना चाहता था । मई 1977 के दौरान जनता पार्टी के अन्दर सघर्ष का मूलाधार यही था ।

जनता पार्टी के अन्दर सघर्ष की स्थिति यहाँ तक पहुँची कि एक गुट के नेताओ ने दूसरे गुट के प्रत्याशियो के चुनाव प्रचार मे भाग नही लिया । गुटीय नेताओं ने अपने कुछ स्वार्थो के लिये पार्टी को कमजोर करना प्रारम्भ कर दिया । यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण थिति थी । अनेक विद्धानो, बुद्धिजीवियो एव पत्र-पत्रिकाओ ने लेख लिखकर जनता पार्टी को इस स्थिति से उबरने का आग्रह किया । 'इण्डियन एक्सप्रेस' ने टिप्पणी की कि 'जनता पार्टी को सचेत होने का समय आ गया है । इसने अपने अन्दर आवश्यकता से अधिक विभाजन एव सघर्ष की शक्तियो को जगह प्रदान की है ।'[1] 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ने अपने प्रमुख लेख **'वार्निग सिगनल्स्'** मे लिखा कि 'जनता पार्टी के कुछ आकाओ ने राज्यो के विधान सभाओ के चुनावो मे जिस ढ़ग से चुनाव प्रचार करना स्वीकार किया, उससे यह सन्देह हुआ कि आगामी सौहार्द, सामजस्य एव दलीय एकीकरण के लिये विभिन्न मत मतान्तरो के प्रति मात्र सहिष्णुता ही पर्याप्त नही है इसके लिय 'कुछ और' होनी चाहिये ।'[2] यह 'कुछ और' जनता पार्टी द्वारा दिये गये आश्वासनो, की गयी प्रतिज्ञाओ एव निर्धारित आदर्शो का निचोड था, जिसे जनता पार्टी के नेतागण ने भुला दिया था ।

सारणी संख्या 7

जून 1977 मे राज्य विधान सभाओ के चुनाव मे राजनीतिक दल की स्थिति

राज्य	कुल सीटे	जनता पार्टी	कांग्रेस	सी0पी0आई0	सी0पी0आई(एम0)	अन्य राजनीतिक दल	निर्दलीय
बिहार	324	219	57	21	4	5	17
हरियाणा	90	75	3	-	-	5	7
हिमाचल प्रदेश	68	53	9	-	-	-	6
मध्य प्रदेश	320	230	84	-	-	-	6
उडीसा	147	110	26	1	1	-	9
पजाब	117	24	17	7	8	58	2
राजस्थान	200	150	41	1	1	-	6
तमिलनाडु	234	10	27	5	12	180	-
उत्तर प्रदेश	425	351	46	9	1	-	-
प0 बंगाल	294	29	20	2	178	52	3

1. दि इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, 21 मई 1977
2. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, 1 जून 1977

नोट (1) बिहार और पश्चिमी बगाल की एक एक सीट एवं उत्तर प्रदेश की दो सीटो का चुनाव स्थगित कर दिया गया था ।

(2) पजाब मे अन्य राजनीतिक दल की सभी 58 सीटे अकाली दल को प्राप्त हुयी ।

(3) तमिलनाडु मे अन्य राजनीतिक दल की कुल 180 सीटो मे डी0 एम0 के0-48, ए0 डी0 एम0 के0 130, मुस्लिम लीग-1 फारवर्ड ब्लाक-1 ।

चुनाव परिणाम

जून 1977 के द्वितीय सप्ताह मे 10 विधान सभाओ के चुनाव सम्पन्न हुये । पूर्व लोकसभा चुनावो की भॉति विधान सभा चुनावो मे भी काग्रेस एव जनता पार्टी की सीधी टक्कर थी । इन दोनो दलो ने विभिन्न दलो से चुनावी गठबन्धन किया था । काग्रेस का सी0 पी0 आई0 एव तमिलनाडु मे ए0 डी0 एम0 के0 से चुनावी गठबन्धन था जबकि जनता पार्टी का पजाब मे अकाली दल से तमिलनाडु मे डी0 एम0 के0 से चुनावी गठबन्धन था । अनेक कोशिशो के बावजूद प0 बगाल मे जनता पार्टी और सी0 पी0 एम0 मे चुनावी समझौता नही हो सका । इन चुनाव मे 'जनता लहर' तीव्र तो नही थी, परन्तु पर्याप्त अवश्य थी । ये चुनाव लोकसभा के चुनाव के शीघ्र बाद हो रहे थे, अत 'जनता-लहर' का लाभ जनता पार्टी को मिला एव काग्रेस को काफी नुक़सान हुआ । (देखे सारिणी न0 7)

इन चुनावो के परिणाम आश्चर्य जनक न होकर आशानुरुप थे । यह विदित था कि इन चुनावो मे जनता पार्टी की विजय होगी, अत कुछ राज्यो, जहॉ क्षेत्रीय दलो का प्राधान्य था, को छोड़कर शेष मे जनता पार्टी सत्ता मे आयी । पश्चिमी बगाल, और तमिलनाडु मे जनता पार्टी की स्थिति अच्छी नही रही । पश्चिमी बगाल मे सी0 पी0 एम0, तमिलनाडु में ए0 डी0 एम0 के0 की सरकार बनी । पजाब मे 'अकाली-जनता-सी0 पी0 एम0 गठबन्धन' ने कुल 117 स्थानो मे 90 सीटे जीती (अकाली दल-58, जनता पार्टी-24, सी0 पी0 एम0-8) । शेष सात राज्यो मे जनता पार्टी ने अकेले लगभग 70% या उससे भी अधिक सीटे प्राप्त की ।[1]

इन चुनाव परिणामो से कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने आये ।

(1) लगभग सभी राज्य मे कमोवेश मतदाताओ ने किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत दिया । तमिलनाडु और पश्चिमी बगाल मे क्रमश ए0 डी0 एम0 के0 और सी0 पी0 एम0 के स्पष्ट बहुमत मिला ।

(2) कुछ क्षेत्रीय दलो की उपलब्धियॉ उनकी योग्यता एव क्षमता से अधिक थी । इसका भविष्य मे देश की राजनीतिक पर अच्छा प्रभाव नही पड़ा । उदाहरण के लिये पजाब का अकाली दल ।

(3) इन चुनावे मे विशेपकर बिहार और उत्तर प्रदेश मे बढ़ी सख्या मे निर्दलीय प्रत्याशी विजयी हुये । इससे यह भय उत्पन्न हुआ कि सम्भव है ये लोग भविष्य मे राज्य की राजनीतिक मे आशाजनक भूमिका न निभा सके ।

---

1. हॉर्स्ट हॉर्टमैनः पूर्वोक्त, पृ0 284

चाहे जो कुछ भी हो, परन्तु जनता पार्टी ने अपने दावे के अनुसार केन्द्र एवं अनेक प्रमुख राज्यों मे अपनी सत्ता स्थापित कर ली ।

मन्त्रिमण्डल का गठन एवं अन्तर्गुटीय संघर्ष

हरियाणा राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश, एव उड़ीसा मे जनता पार्टी की चुनावी विजय से पार्टी की प्रतिष्ठा तो बढ़ी लेकिन राज्यो मे विधायक दल के नेता के चुनाव के सन्दर्भ में पुन अतर्गुटीय प्रतिस्पर्द्धायें प्रारम्भ हुई । जनता पार्टी ने घोषणा की कि राज्यो मे नेताओ का चुनाव विधायको द्वारा प्रजातान्त्रिक पद्धति से किया जायेगा । पार्टी के महासचिव रामकृष्ण हेगडे ने कहा कि जनता पार्टी के राज्य विधान सभाओ के नेता का चुनाव प्रजातान्त्रिक पद्धति से 'पार्टी विधायक मण्डल' द्वारा किया जायेगा । उन्हे हाई कमान द्वारा राज्यो के ऊपर थोपा नही जायेगा, जैसा काग्रेस करती रही है । [1]

जनता पार्टी नेता श्री राजनारायण ने श्री हेगडे के विचार का समर्थन करते हुये कहा कि 'मै जनता नेताओ को चेतावनी देना चाहता हूँ कि वे ऊपर से मुख्यमन्त्री थोपे जाने के किसी भी विचार को प्रोत्साहन न दे । जनता पार्टी न तो काग्रेस है और न ही साम्यवादी पार्टी ।' [2] परन्तु जनता पार्टी नेता द्वारा व्यक्त किये गये ये उद्गार दिखावा मात्र थे । वास्तव मे पार्टी के अन्दर घटकवाद एव गुटबदी तो विधान सभा चुनाव के समय से ही थी और यह राज्यो मे पार्टी के विधायक दल के नेता के चयन के समय भी न रुक सकी ।

जनता पार्टी ने सम्बन्धित राज्यों के विधायकों को सलाह दी कि वे 21 जून 1977 को राज्यो के राजधानियों मे एकत्र होकर राष्ट्रीय मुख्यालय द्वारा मनोनीत 'पर्यवेक्षकों' के निर्देशानुसार विधायक दल के नेता का चुनाव करें । पर्यवेक्षकों की भूमिका केवल दलीय नेताओं के चुनाव का सचालन करना था । सात राज्यो मे से जनता पार्टी विधायक दलो ने तीन राज्यो उडीसा, हरियाणा एव मध्य प्रदेश मे अपने नेताओ का चुनाव सर्व सम्मति से किया जबकि शेष राज्यों हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश मे नेताओ का चयन औपचारिक निर्वाचन के उपरान्त हुआ ।

उडीसा मे श्री नीलमणि राउतराय जनता विधायक दल के नेता चुने गये क्योकि इन्हे श्री बीजू पटनायक का वरदहस्त प्राप्त था । हरियाणा मे श्री देवी लाल नेता चुने गये, ये राजनीतिक रुप से श्री चरणसिह पर आश्रित थे । मध्य प्रदेश मे जनता विधायक दल ने श्री कैलाश नाथ जोशी को नेता चुना । श्री जोशी जनता पार्टी के प्रभावशाली जनसघ गुट से सम्बन्ध रखते थे । कुछ दिनों बाद स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणो से श्री जोशी के स्थान पर इसी गुट के श्री वीरेन्द्र कुमार सकलेचा मुख्यमन्त्री बनाये गये । इन प्रदेशों के तीनो नेताओ का चयन सर्व सम्मति से हुआ क्योकि सम्बन्धित गुट के राष्ट्रीय नेताओं ने अपने प्रभाव का इस्तेमाल करके इन्हे मुख्यमन्त्री बनाया था ।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और बिहार मे जनता विधायक दलो के नेताओं का चयन 'औपचारिक निर्वाचन' के उपरान्त हुआ । हिमाचल प्रदेश मे श्री शान्ता कुमार ने श्री रणजीत सिह को 25 के मुकाबले 28 मतो से हराया । राजस्थान मे श्री भैरोसिह शेखावत ने श्री आदित्यैन्द्र को 29 के मुकाबले 122 मतो से परास्त किया । बिहार मे

---

1 दि इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली जून 9 1977

2. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, जून 16, 1977

श्री कर्पूरी ठाकुर को श्री सत्येद्र नारायण सिन्हा से 84 के मुकाबले 144 मतो से विजय प्राप्त हुई । उत्तर प्रदेश में श्री राम नरेश यादव मुख्य मन्त्री बने, उन्होने श्री रामधन को बुरी तरह हराया ।[1]

इन राज्यो की विधान सभा चुनाव से कई महत्वपूर्ण प्रश्न उठ खडे हुये । जैसे राज्यों में चुनाव एव पार्टी नेताओ की चयन प्रक्रिया का जनता पार्टी के भविष्य के प्रकार्यो मे क्या प्रभाव पड़ा ? पार्टी के राष्ट्रीय नेताओ ने किस प्रकार राज्यो के चुनाव एव उसके नेतृत्व का उपयोग अपने निहित स्वार्थों के लिये किया ? इन चुनाव का जनता पार्टी की 'भावनात्मक एकता' पर क्या प्रभाव पडा ? इन प्रश्नो की सही व्याख्या एव उत्तर विधान सभा चुनावो का विश्लेषण करते हुये ही दिया जा सकता है ।

जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर ने दावा किया कि केन्द्रीय नेतृत्व राज्यो मे विधायक दल के नेताओ के चयन मे कोई हस्तक्षेप नही कर रहा है ।[2] पार्टी अध्यक्ष का यह वक्तव्य श्री रामधन के इस कथन के प्रतिकूल था जिसमे उन्होने आरोप लगाया था कि राष्ट्रीय नेताओ के एक गुट (Caucus) ने इन चुनावो को छलयोजित किया है ।[3] श्री जग जीवन राम ने भी श्री रामधन के विचार का समर्थन करते हुये स्पष्ट किया कि जिस प्रकार राज्यो मे विधायक दल के नेताओ का चयन हुआ है, उससे पार्टी के सदस्यों मे गहरा आक्रोश है ।[4] यह आक्रोश ही जनता पार्टी के 'भावनात्मक एकीकरण'के लिये सबसे ज्यादा हानिकारक था । यह पार्टी का दुर्भाग्य था कि पार्टी के राष्ट्रीय नेताओं द्वारा पार्टी मे व्याप्त इस आक्रोश को दूर करने का कोई सार्थक प्रयास नही किया गया ।

जनता पार्टी को इन विधान सभाओ चुनाव से कुछ लाभ अवश्य हुआ जैसे-उसे सत्ता प्राप्त हुई और उसका सामाजिक आधार व्यापक हुआ । परन्तु उसके कुछ नकारात्मक परिणाम भी पार्टी को भुगतने पडे । विधान सभाओ के चुनावो की घोषणा के पश्चात जनता पार्टी के नेताओ ने तीव्रता से चुनावी दौरे किये । इससे सरकार का लोक कल्याणकारी कार्य ठप्प हो गया । 'घटकवाद और गुटबन्दी जो मार्च 1977 के लोकसभा चुनाव के बाद दब गयी थी पुन ऊभर कर आ गयी । पार्टी नेताओ द्वारा पार्टी को मजबूत बनाने की अपील पाखण्ड पूर्ण लगने लगी । और ऐसा लगता था कि पार्टी मे विघटन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी है ।[5]

जैसे ही विधान सभा चुनावो की घोषणा हुई वैसे ही पार्टी मे गुटबन्दी प्रारम्भ हो गयी । राज्यो के इन चुनावो में जनता पार्टी के सभी शीर्षस्थ नेता सक्रिय रुप से शामिल थे और अपने गुटीय हितों का प्रोत्साहित कर रहे थे । इसमे जनसघ एव बी० एल० डी० शक्तिशाली गुट के रुप मे उभर कर आये तथा सगठन कांग्रेस समाजवादी पार्टी एव सी० एफ० डी० आपेक्षाकृत कम शक्तिशाली गुट साबित हुये । लेकिन इन गुटो ने भी दल निर्माण एवं दलीय एकता के प्रवर्द्धन के लिये सिद्धान्त पर आधारित कोई महत्वपूर्ण कदम नही उठाया । 'इन कम शक्तिशाली गुटों ने भी गलत

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, जून 21 25, 1977
2. दि स्टेट्समेन, दिल्ली, जून 22, 1977
3. नेशनल हेराल्ड, दिल्ली जून 23, 1977
4. दि स्टेटसमेन, दिल्ली, जून 26, 1977
5. एस० के० घोष पूर्वोक्त, पृ० 6

सौदेबाजी द्वारा अपने गुट के लिये ज्यादा से ज्यादा टिकट प्राप्त करने की कोशिश की परन्तु एक बार जनसघ एव बी0 एल0 डी0 गुट से परास्त हो जाने के पश्चात उन्हे इसकी कीमत चुकानी पड़ी ।'[1]

जनता पार्टी मे अपनी पैठ बनने के लिये जनसघ एव बी0 एल0 डी0 सयुक्त रुप से दुर्जेय सिद्ध हुये । इन्होंने पार्टी मे अन्य घटकों के महत्व को कम कर दिया । जनता पार्टी के केवल 'जनसंघ एव बी0 एल0 डी0' घटकों ने सयुक्त रुप से मिलकर सात राज्यो के मुख्यमन्त्री पद हस्तगत कर लिये । इसमें उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री रामनरेश यादव, बिहार के श्री कर्पूरी ठाकुर, हरियाणा के श्री देवी लाल एव उड़ीसा के श्री नील मणि राउतराय बी0 एल0 डी0 गुट के थे । शेष तीन राज्यो मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और राजस्थान मे क्रमश श्री कैलाश जोशी, श्री शान्ता कुमार और श्री भैरोसिह शिखावत मुख्यमन्त्री बने ये तीनो जनसघ गुट के थे । जून 1977 मे कुल 10 राज्यो मे चुनाव हुये थे, अतः 2 राज्यो (तमिलनाडु एव पंजाब) मे क्षेत्रीय राजनीतिक दलो एव एक (पश्चिमी बगाल) मे सी0 पी0 एम0 के मन्त्रिमण्डल बने ।

जनता पार्टी के तीन अन्य घटक, सगठन काग्रेस, समाजवादी पार्टी एव सी0 एफ0 डी0 अन्तर्गुटीय प्रतिस्पर्द्धा मे कोई महत्व नही प्राप्त कर सके । इन्होने जनता पार्टी मे कुछ विशेष गुटो (जनसघ एव बी0 एल0 डी0) के वर्चस्व की कटु आलोचना की । इससे जनता पार्टी की एकता का स्खलन हुआ । श्री रामधन ने वेदनापूर्ण शब्दो मे कहा कि "यह आशा कि घटक दलो के विलय के बाद जनता पार्टी एक सुदृढ़ दल के रुप मे कार्य करेगी, मिथ्या सिद्ध हो चुकी है । विधान सभा चुनावो मे प्रत्याशियो के चयन मे प्रत्येक 'घटक-दल' के लिये कोटा निर्धारित था । राज्यो मे विधायक दल के नेता के चयन मे पुन जोड-तोड़ एव दुराभिसन्धि का घृणास्पद खेल खेला गया ।"[2] पार्टी के किसी भी महत्वपूर्ण नेता का यह वक्तव्य पार्टी के भविष्य के लिये शुभ सकेत नही था ।

निष्कर्ष

जनता पार्टी इन विधान सभाओ के चुनावो मे 'प्राप्त विजय' के माध्यम से अपने सामाजिक एव राजनीतिक आधार को व्यापक बनाने के साथ साथ 'दल निर्माण' करना चाहती थी । अत इन चुनावो मे जनता पार्टी की विजय 'दल निर्माण प्रक्रिया' के लिये वरदान थी परन्तु यही विजय 'दलीय एकीकरण' के लिये दुष्क्रियात्मक भी सिद्ध हुई ।

भारत मे सरकारी तन्त्र 'दलीय समेकन' का एक अनिवार्य उपकरण है । अनेक 'सामाजिक एव राजनीतिक गुट' शासन से लाभ अर्जित करने की दृष्टि से सत्ताधारी दल में शामिल होते है । सत्ताधारी दल की ओर विभिन्न शक्तिशाली गुटों का रुझान एव आकर्षण इस बात पर निर्भर करता है कि सत्ताधारी दल कितनी तत्परता एव सक्षमता से उन्हे सरक्षण प्रदान करता है । विशिष्ट परिस्थितियो मे यह 'राजनीति सरक्षण' एक दल के लिये लाभकारी एव क्रियात्मक सिद्ध हो सकता है, साथ ही साथ 'राजनीतिक सरक्षण' की यह नीति किसी राजनीतिक दल के लिये दुष्क्रियात्मक भी हो सकती है । इसमे विभिन्न असन्तुष्ट सामाजिक एव राजनीतिक गुट सत्तादल को त्याग कर अन्य दलों मे शामिल होने लगते हैं । यह सत्ता दल का विभाजन कर देते हैं । अत यह संरक्षण की राजनीतिक एक दल का

---

1. एस0 के0 घोष पूर्वोक्त, पृ0 7
2. नेशनल हेराल्ड, दिल्ली जून 23, 1977

समेकन भी कर सकती है एव उसके विघटन एवं अपकर्ष का कारण भी बन सकती है । जनता पार्टी के जीवन काल मे दुष्क्रियात्मक राजनीतिक ही हावी रही और पार्टी का शनै· शनै अपकर्ष होता रहा ।

यदि लोकसभा चुनाव मे जनता पार्टी को जीत हासिल न होती तो भारतीय राजनीतिक परिदृश्य से इसका नामोनिशान लगभग मिट गया होता । परन्तु इसी चुनावी विजय ने जनता पार्टी मे गम्भीर आन्तरिक मतभेदो को जन्म भी दिया एव राज्यो की विधान सभाओ के चुनावो मे इन सघर्षो मे वृद्धि हुई अत जनता पार्टी ने विधान सभा चुनाव के माध्यम से 'दल निर्माण' की जिस रणनीति को अगीकार किया उसमे एकीकरण एव विघटनकारी दोनो तत्व समाहित थे । यह जनता पार्टी के नेतृत्व के समक्ष एक स्वर्ण अवसर होने के साथ साथ एक चुनौती भी थी कि वे इसका उपयोग किस प्रकार करेगे । वास्तव मे जनता पार्टी द्वारा अपनायी गयी रणनीति मे अनेक गम्भीर दोष थे, इससे पार्टी के अन्दर क्रियात्मक खिचावो एव दबावो का ऐसा वातावरण बना जिससे जनता पार्टी भविष्य मे कभी मुक्त नही हो पायी ।

जनता पार्टी के मुख्य घटक-दलो ने इन विधान सभाओ के चुनावो को एक ऐसे स्वर्ण अवसर के रुप में देखा जिसके माध्यम से वे पार्टी के अन्दर अपनी गुटीय शक्ति मे वृद्धि कर सकते थे । जिससे 'दलीय सगठन' मे उनका वर्चस्व बना रहे । सत्ता सघर्ष मे सम्मिलित प्रत्येक गुट यह महसूस करता था कि पार्टी के अन्दर उसका महत्व इस बात पर निर्भर है कि राज्यो की विधान सभाओ मे उसके कितने समर्थक है इन्ही कारणो से जनता पार्टी मे अन्तर्गुटीय सघर्ष ने गम्भीर रुप धारण किया । अत विभिन्न गुटो द्वारा 'शक्ति के समेकन' के लिये भी ये विधान सभाओ के चुनाव अत्यन्त निर्णायक थे इसी कारण पार्टी के अन्दर विभिन्न घटक-दलो ने खुले आम अपने गुटीय हितो की वकालत की । इस प्रक्रिया से जनता पार्टी के आपेक्षाकृत कमजोर घटक इस तथ्य से भयभीत हुये कि बडे एवं शक्तिशाली गुटो द्वारा उनका विलोपन या आत्मसात्करण कर लिया जायेगा । अत· इन चुनावो ने गुटबदी को प्रोत्साहित किया । इससे यह भी सिद्ध हो गया कि जनता पार्टी मे 'भावात्मक एकता' का पूर्ण अभाव था ।

जनता पार्टी के वे नेतागण, जो काग्रेस की सस्कृति मे शिक्षित हुये थे, दल की राज्य ईकाई पर अपने राजनीतिक नियन्त्रण के महत्व को भली-भॉति समझते थे । अत इन नेताओ एव जनता पार्टी के अन्य नेतागणो ने राज्य स्तर की राजनीति मे पर्याप्त हस्तक्षेप किया । जनता पार्टी के श्री चरण सिह, श्री चन्द्र शेखर, एव श्री एच0 एन0 बहुगुणा उत्तर प्रदेश की राज्य स्तर की राजनीति मे पूर्णतया आवेष्टित थे । भारत मे राष्ट्रीय नेताओ एव राज्यो में उनके आश्रितो (राज्यो के दलीय नेता) के बीच घनिष्ट सम्बन्ध पाया जाता है, एव इसी कड़ी के माध्यम से राष्ट्रीय नेता राज्यो की राजनीतिक मे अपनी शतरज की गोट बिछाते है । इससे भी तो पार्टी मे अन्तर्गुटीय प्रतिस्पद्र्धा मे तीव्रता आयी । अत: इन चुनावो ने जहॉ जनता पार्टी के बाह्य प्रभाव का विस्तार किया वही आन्तरिक सघर्षो एव प्रतिस्पद्र्धात्मक प्रक्रियाओ को बढ़ावा दिया, जिसके फलस्वरुप जनता पार्टी विघटनोन्मुख हुई ।

षष्ठम् - अध्याय

जनता पार्टी का पराभव : भाग 1 :

कारण एवं प्रक्रिया

(I) प्रस्तावना

(II) जनता पार्टी घटकवाद का प्रभाव : विवाद के विभिन्न मुद्दे

(III) जनता पार्टी एवं सरकार की प्रकृति : एक संविद व्यवस्था

(IV) जनता पार्टी के नेताओं की व्यक्तिगत महत्वाकाक्षायें एवं सत्तालोलुपता : त्रिमूर्ति विवाद

(V) आलोचनाओं, आक्षेपों एवं दुरभिसन्धियों की राजनीति

जनता पार्टी का पराभव भाग-१ : कारण एवं प्रक्रिया

प्रस्तावना

जनता पार्टी का उदय ऐतिहासिक सकट के सिद्धान्त के आधार पर हुआ था अर्थात् भारतीय राजनीति के इतिहास में आपातस्थिति ने ऐसा सकट उत्पन्न कर दिया था, जिसमे नागरिक स्वतत्रता एव प्रजातात्रिक मूल्यो को तानाशाही सत्ता द्वारा कुचल दिया गया था। सकट के इस गहन अधकार को चीरते हुये जनता पार्टी का उदय, एक राजनीतिक नही बल्कि ऐतिहासिक घटना के रूप मे हुआ था। जनता पार्टी ने काग्रेस के एकाधिकार को चुनौती देकर केन्द्र एव भारतीय सघ के लगभग आधे राज्यो मे अपना आधिपत्य स्थापित किया था। दलीय गठबधन, विलय और विघटन भारतीय दलीय व्यवस्था की विशेषता रही है। इसके पूर्व काग्रेस के विरुद्ध विपक्षी दलो का 'गठबधन-प्रयोग' असफल रहा था अत इस बार उन्होंने जनता पार्टी के रूप मे 'विलय प्रयोग' द्वारा विजय प्राप्त की थी। परन्तु जनता पार्टी कभी भी एक सुदृढ पार्टी के रूप मे नही ऊभर सकी। यह भी मूलत 'गठबधन प्रयोग' ही था जो समय और परिस्थितियो के दबाव मे आकर छिन्न-भिन्न हो गया।

जनता पार्टी की अन्दरूनी कहानी पार्टी के विभिन्न घटको के मध्य आन्तरिक सघर्ष, गुटीय प्रतिस्पर्द्धा एव गम्भीर अन्तर्कलह को उद्घाटित करती है। जनता पार्टी इन सकटो को रोकने मे असमर्थ रही और इन्ही कारणो से पार्टी एक 'सशक्त दलीय सगठन' का निर्माण नही कर सकी। जनता पार्टी मे नये सदस्यो की भर्ती, दलीय संगठन के चुनाव, राज्य सरकारो की राजनीति मे शक्ति परीक्षण विभिन्न घटको की वैचारिक पृष्ठभूमि एव उससे उपजे गुटीय आर्थिक एव राजनीतिक हित जनसघ घटक के सदस्यो की 'दोहरी सदस्यता' का प्रश्न, सर्वोच्च सत्ता प्राप्ति के लिये विभिन्न गुटीय नेताओ की चरम स्वार्थपरता एव 'काति-प्रकरण' आदि मुद्दे जनता पार्टी के विघटन के लिये उत्तरदायी है।

यदि जनता पार्टी के पतन एव विघटन की विवेचना करे तो अनेक प्रश्न खडे होते है। जैसे – विपक्षी दलो की यह 'विलय-प्रयोग' क्यो असफल रहा ? जनता पार्टी गुटीय सघर्षो के निवारण की प्रक्रिया का विकास क्यो नही कर सकी ? क्या विभिन्न घटक दलो की वैचारिक पृष्ठभूमि ही पार्टी के विघटन का मूल कारण थी ? क्या इसका पतन राजकीय नीति एव कार्यक्रमो के कारण हुआ ? क्या पार्टी जन-समस्याओ के प्रति पूर्णत असवेदनशील हो गयी थी ? क्या कांग्रेस की दुरभिसन्धि इसके पतन का मूल कारण थी। क्या 'जनता पार्टी की सरकार' मूलत एक सविद सरकार थी। इन प्रश्न का उत्तर 'हॉ' या 'न' मे नही दिया जा सकता है, इनकी व्याख्या एक गम्भीर विवेचना का विषय है।

सैद्धान्तिक रूप मे दल व्यवहार के अध्ययन के दो उपागम या दृष्टिकोण है। प्रथम दृष्टिकोण के समर्थक **राबर्ट मिशेल, एम. डुवर्जर** और **सैमुअल इल्डर्सवेल्ड** आदि विद्वान दल के 'आन्तरिक क्रिया-कलाप' को ज्यादा महत्व प्रदान करते है क्योकि इससे 'दल-व्यवहार' के विषय मे अन्तर्दृष्टि मिलती है। **मिशेल** ने अन्त दलीय प्रक्रिया के अध्ययन के लिये 'गुटतत्र के लौह नियम' का प्रतिपादन किया, जबकि **डुवर्जर** ने दल के कार्य व्यापार के विश्लेषण के लिये अपना ध्यान 'आन्तरिक दलीय सगठन' पर केन्द्रित किया। **इल्डर्स वेल्ड** ने इस उपागम के महत्व का वर्णन

करते हुये कहा है कि, "दल स्वय अपने आप मे राजनीतिक व्यवस्था का 'लघुरूप' है । इसकी एक सत्ता सरचना होती है... ..इसमे चुनावी व्यवस्था एव प्रतिनिधि प्रक्रिया भी निहित होती है । साथ ही साथ नेताओ की भर्ती, लक्ष्यो का निर्धारण एव आन्तरिक व्यवस्था के सघर्षो क निस्तारण की क्षमता भी होती है । अत मूल रूप से दल एक 'निर्णय-परक-व्यवस्था' है ।"[1]

किसी भी दल की दलीय गत्यात्मकता की वास्तविकता को समझने के लिये उस दल और 'आन्तरिक शक्ति सरचना' और नेतृत्व के प्रतिमान का अध्ययन करना उचित है, परन्तु एक मात्र इसी उपागम के आधार पर दल के वास्तविक कार्य व्यापार से सम्बन्धित अनेक प्रश्नो का उत्तर नही दिया जा सकता । यह बात विकासशील देशो के साक्रातिक समाज के लिये ज्यादा उपयुक्त है । एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अधिकांश देशो की दलीय सरचना अस्थायी, गुटीय एव व्यक्तिमूलक है । आधुनिक समाज की राजनीतिक एव सामाजिक विशेषताएँ यह मॉग करती है कि दलीय व्यवस्था को बाह्य एव सम्पूर्ण सामाजिक पर्यावरण से जोडकर ही इनकी (दल की) विकास एव विघटन की समस्याओ का अध्ययन किया जाना चाहिये ।[2]

दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार राजनीतिक दलो के 'आन्तरिक क्रिया-कलापो ' को राजनीतिक व्यवस्था के सम्पूर्ण बाह्य तत्वो से जोडकर, दलो के उदय, विलय, विभाजन एव विघटन की व्याख्या की जानी चाहिये । सारटोरी का कथन सत्य है कि 'दलीय व्यवस्थाये, राजनीतिक व्यवस्था को गढती है' लेकिन यह भी सत्य है कि दलीय व्यवस्था एव राजनीतिक व्यवस्था का यह पारस्परिक सम्बन्ध भिन्न-भिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओ मे भिन्न-भिन्न स्तर का होता है ।

कभी-कभी किसी राजनीतिक व्यवस्था मे दलो के उदय एव अवसान मे राजनीतिक व्यवस्था पूर्ण रूप से हावी रहती है, जबकि यह भी सम्भव है कि किसी अन्य राजनीतिक व्यवस्था मे या उसी राजनीतिक व्यवस्था के किसी ऐतिहासिक मोड पर दलो के 'आन्तरिक क्रिया-कलाप' ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाते है । जनता पार्टी के अध्ययन मे यही दृष्टिकोण उभर कर आता है कि जनता पार्टी के उत्थान मे राजनीतिक व्यवस्था के 'बाह्य कारको' का अधिक महत्व रहा है जबकि इसके पतन के लिये जनता पार्टी के आन्तरिक क्रिया-कलाप अपेक्षाकृत अधिक उत्तरदायी है ।

कुछ राजनीतिक चिन्तको का अभिमत है कि जनता पार्टी विभिन्न घटको से मिलकर बनी थी अत इसके घटक दलो की भिन्न-भिन्न वैचारिक पृष्ठभूमि एव उससे सम्बन्धित घटको के वर्गीय हितो के कारण शीर्षस्थ गुटीय नेताओ मे मतभेद उत्पन्न हुये, जिन्हे उनकी महत्वाकाक्षाओ ने बढ़ावा दिया और अन्ततोगत्वा जनता पार्टी का पराभव हो गया । जबकि वास्तविकता यह है कि शीर्षस्थ गुटीय नेताओ की सर्वोच्च सत्ता प्राप्ति की महत्वाकाक्षाओ एव निहित स्वार्थो ने आपसी शक्ति सघर्ष का बढ़ावा दिया एव उन्होने अपने वर्गीय हितों एव वैचारिक पृष्ठभूमि को उपकरण

---

1 सैमुअल जे इल्डर्सवेल्ड पोलिटिकल पार्टीज ए बिहेबियरल एनालेसिस ऐण्ड मैकनैले, 1964 पृ 1 । देखें - जी सारटोरी, "फ्राम दि सोशिओलॉजी ऑफ पोलिटिक्स टु पोलिटिकल सोशिओलॉजी" एस एम लिप्सेट (सम्पादित) पोलिटिक्स एण्ड सोशल साइसेज़, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1969, पृ 78 79 ।

2 देखे डेविड एप्टर "दि पोलिटिक्स ऑफ मॉर्डनाइजेशन " शिकागो, 1965 ; विस्तृत अध्ययन के लिय देखे सेमुअल पी0 हटिंग्टन "पोलिटिकल ऑर्डर इन चेन्जिग सोसायटीज", येल यूनीवर्सिटी प्रेस, 1968, ग्रेबियल आमड ऐड जेम्स कोलमैन (सम्पादित) "दि पोलिटिक्स ऑफ डेवेलपिंग एरियाज" प्रिंसटन, प्रिंसटन यूनीवर्सिटी प्रेस, 1960, बरिंगटन मूर "सोशल ओरिजन ऑफ डिक्टेटरशिप ऐंड डेमाक्रेसी," बोस्टन, 1966 ।

के रूप मे प्रयोग किया। इस अभिमत के प्रकाश मे जनता पार्टी की अन्दरूनी कहानी को राजनीतिक व्यवस्था से जोडकर देखने का प्रयास किया जाना चाहिये ताकि पार्टी के पराभव एव व्यवहार की सम्पूर्ण वास्तविकता की व्याख्या हो सके।

जनता पार्टी के पतन के सदर्भ मे एक अन्य तथ्य भी उल्लेखनीय है कि इस पार्टी के उद्भव मे जन साधारण का भरपूर योगदान था क्योकि इसका वास्तविक गठन मार्च 1977 के लोकसभा के चुनाव मे (जनता) पार्टी की विजय के बाद ही हुआ था। जबकि इसके पराभव मे जनसाधारण की सक्रिय या निष्क्रिय किसी प्रकार की भागीदारी नही थी। जनता पार्टी का पराभव इसकी अलोकतान्त्रिक या जन-विरोधी नीतियो एव कार्यक्रमो के कारण नही हुआ, बल्कि यह स्वय अपने अन्तर्विरोधो का शिकार हो गयी। जनवरी 1980 के मध्यावधि चुनाव मे काग्रेस (इ०) की अप्रत्याशित जीत हुयी और जनता पार्टी परास्त हुयी। परन्तु वास्तविकता यह है कि इस लोकसभा चुनाव के पूर्व ही 'मूल जनता पार्टी' का विघटन हो गया था। अत मतदाताओ ने उस जनता पार्टी को नही हराया जिसे उन्होने मार्च 1977 मे विजयी बनाकर लोकसभा मे भेजा था। इस हार के बाद जनता पार्टी का पुन विभाजन हुआ और शनैः-शनैः यह अनेक घटको मे बॅट गयी।

जनता पार्टी में गुटवाद का प्रभाव : विवाद के विभिन्न मुद्दे

जनता पार्टी के पराभव के लिये उत्तरदायी अनेक कारणो मे एक प्रमुख कारण गुटीय प्रतिद्वन्द्विता थी । जनता पार्टी अपनी गर्भावधि से लेकर अपने विकास एव प्रायोगिक काल तक के किसी भी समयान्तराल मे इस प्रतिद्वन्दिता से ऊपर नही उठ सकी । प्रारम्भ से ही जब विपक्षी एकता के प्रयास जारी थे, उस समय नव गठित 'दल के स्वरूप' को लेकर काफी तनातनी थी । जनवरी 1977 मे लोकसभा चुनाव भी घोषणा के बाद सभी घटक विलय के लिये राजी हुये परन्तु मार्च 1977 मे लोकसभा चुनाव एव प्रधानमत्री के चयन मे यह गुटीय प्रतिद्वन्दिता हावी रही । अत पार्टी जिन घटक दलो से मिलकर बनी थी वे कभी भी पार्टी के 'एकीकृत दलीय व्यक्तित्व' मे अपनी गुटीय पहचान का निरसन नही कर सके । यह जनता पार्टी की सबसे बड़ी विशेषता और कमी थी ।

इसके अलावा समय-समय पर अनेक कारको एव परिस्थितियो ने इस गुटीय प्रतिद्वन्दिता को प्रोत्साहित किया । जैसे – विभिन्न घटको की वैचारिक पृष्ठभूमि, पूर्व जनसंघ के सदस्यो की 'दोहरी सदस्यता' का प्रश्न, घटक-दलो के आर्थिक हितो मे संघर्ष, पार्टी में नये सदस्यो की भर्ती का अभियान एव दलीय सगठन के चुनाव की मॉग, राज्यो के विधान सभाओ के चुनाव एव राज्यो की राजनीति मे शक्ति परीक्षण आदि ।

जनता पार्टी के घटक-दलों की वैचारिक पृष्ठभूमि

कहा जाता है कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था मे राजनीतिक दल है परन्तु दलीय व्यवस्था का अभाव है । इस कथन के पीछे यह तर्क है कि इस देश मे छोटे-बडे अनेक राजनीतिक दल है परन्तु दलो के निश्चित राजनीतिक व्यवहार एव सिद्धान्त के प्रति जनसाधारण का भावनात्मक या मनोवैज्ञानिक लगाव नही है । अनेक पश्चिमी विकसित देशो मे दलो के निश्चित राजनीति व्यवहार दृष्टिगोचर होते है । जैसे – ब्रिटिश दलीय व्यवस्था मे अनुदार दल एवं मजदूर दल के मत लगभग निश्चित होते है, जबकि अप्रतिबद्ध मतो का रूझान ही दलो की विजय सुनिश्चित करता है । ब्रिटेन मे दो-दलीय व्यवस्था है और दोनो दल वैचारिक पृष्ठभूमि से जुड़े है । अमेरिका मे भी दो दलीय व्यवस्था है, परन्तु वहॉ दलो की कोई वैचारिक प्रतिबद्धता नही है । अमेरिका के दोनो दलो – रिपब्लिकन एवं डेमोक्रेटिक पार्टी की नीतियॉ एव कार्यक्रम लगभग समान है, फिर भी वहॉ दो दलीय व्यवस्था स्थायी रूप से बनी हुई है ।

भारत मे इस प्रकार की दलीय व्यवस्था का अभाव है, यहॉ अधिकाश राजनीतिक दल 'व्यक्तिमूलक' है, इसलिये दलीय व्यवस्था में स्थायित्व का अभाव रहा है । दूसरी ओर भारत की विशिष्ट राजनीतिक सस्कृति में वही दल सफल रहे है, जिन्होंने भारतीय समाज के विभिन्न विश्वासो, गुटों एव विचारो को समायोजित करने का प्रयास किया है । उदाहरण के लिये स्वतत्रता आन्दोलन के बाद काग्रेस दल ने नेतृत्व की विरासत को स्वीकार किया । इसने क्षेत्रीय एव वर्गीय हितों को एक साथ आत्मसात किया एव इसका कार्यक्रम पर्याप्त उदारवादी एव लचीला था, परिणामस्वरूप यह विभिन्न वर्गो की बढ़ती हुई आकाक्षाओ से उत्पन्न विभिन्न हितो को समायोजित कर सका । इसने कभी भी विचारधारा की दृष्टि से अतिवादी दृष्टिकोण नही अपनाया । काग्रेस के कार्यक्रमो मे देहाती एव नगरीय हितो, कुटीर एव बड़े उद्योगो तथा कृषि एव औद्योगिक हितो को शामिल किया गया । काग्रेस पार्टी विभिन्न हितो, कार्यक्रमो एव दृष्टिकोणो को समायोजित करने मे सफल रही । यही समायोजन ही इसकी सफलता का मूल कारण रहा है, जबकि जनता पार्टी इन्ही हितो एव दृष्टिकोणो का समायोजन करने मे असफल रही ।

ऐतिहासिक उत्पत्ति की दृष्टि से भी काग्रेस की प्रकृति, जनता पार्टी से भिन्न थी। काग्रेस के अन्दर से समय-समय पर विभिन्न राजनीतिक विचारो एव गुटो का प्रादुर्भाव हुआ, जबकि जनता पार्टी का उदय विभिन्न राजनीतिक गुटो के सम्मिलन से हुआ, परन्तु दोनो दलो की मूल समस्या विभिन्न राजनीतिक गुटो एव हितो के समायोजन की थी। जनता पार्टी का गठन वैचारिक एव गैर-वैचारिक राजनीतिक दलो से मिलकर हुआ। इसमे समाजवादी पार्टी एव भारतीय जनसघ वैचारिक पृष्ठभूमि के राजनीतिक दल थे, जबकि भारतीय लोकदल, सगठन काग्रेस एव लोकतत्रीय काग्रेस (सी0 एफ0डी0) गैर-वैचारिक राजनीतिक दल थे। वैसे इन गैर-वैचारिक दलो मे भी कुछ वैचारिक तत्व शामिल थे जैसे– भारतीय लोकदल का रुझान समाजवाद की ओर एव सगठन काग्रेस का गॉधीवाद की ओर था। इन्ही वैचारिक तत्वो के कारण जनता पार्टी मे 'समागी एकता' (Homo genous Unity) की समस्या उत्पन्न हुयी थी, जबकि गैर वैचारिक दल मूलत व्यक्तिमूलक थे जिनके विशिष्ट गुटीय एव वर्गीय हित थे।

जनता पार्टी का मुख्य कार्य इन विचारधाराओं एव वर्गीय हितो मे सामजस्य स्थापित करना था, क्योकि "जनता पार्टी का भविष्य इस तथ्य पर निर्भर था कि इसके विभिन्न घटक-दल किस सीमा तक अपनी पूर्व प्रतिबद्धताओ से मुक्त हो पाते है।"[1] जनता पार्टी मे असमझौतावादी व्यक्तित्व एव विचारो का कोई स्थान नही होना चाहिये था। जनता पार्टी का उदय एक महान राजनीतिक परिवर्तन का प्रतीक था, यह परिवर्तन गुटीय नेताओ की मनोवृत्ति मे भी परिवर्तन की मॉग करता था।

यदि जनता पार्टी के कतिपय घटक-समाजवादी या जनसघी– अपने पूर्व तौर तरीके से कार्य करते तो पार्टी मे एकीकरण की प्रक्रिया ही आरम्भ न होती। अगर कतिपय घटको ने अपनी वैचारिक पृष्ठभूमि को वृहद प्रजातात्रिक मूल्यो की परम्परा ने न देखा होता तो जनता पार्टी का प्रादुर्भाव असभव था क्योकि वामपथी रुझान के समाजवादी और दक्षिणपथी रुझान के जनसघी एक मच मे शामिल नही हो सकते थे। जनता पार्टी मूलत वामपथी एव दक्षिणपथी विचारो से परे स्वतत्रता, समानता एव सामाजिक न्याय के प्रजातात्रिक एव गॉधीवादी मूल्यो के प्रति समर्पित थी, जिससे सभी घटक दल सहमत थे। उल्लेखनीय है कि जनता पार्टी मे कटु मतभेदो का प्रारम्भ पूर्व समाजवादी पार्टी एवं पूर्व जनसघ के मध्य नही हुआ, बल्कि व्यक्तिगत रूप से श्री चरण सिह और श्री मोरार जी देसाई एव श्री चन्द्रशेखर के मध्य प्रारम्भ हुआ। ये तीनो नेतागण किसी भी वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध घटक के सदस्य नही थे। यह मूलत सर्वोच्च सत्ता के लिये सघर्ष था।

घटको के मध्य बढ़ती प्रतिद्वन्दिता और जनता पार्टी के विघटन के लिये मूलत दो सदर्भो मे गुटो की वैचारिक पृष्ठभूमि की दुहाई दी जाती है–

प्रथम– भारतीय लोकदल और सगठन काग्रेस एव जनसघ के बीच बढ़ती हुई खाई मूलत इन गुटो की विचारधारा एव उससे सम्बन्धित आर्थिक हितो के कारण थी।

द्वितीय– पूर्व जनसघ घटक के विरुद्ध 'दोहरी सदस्यता' का मुद्दा भारतीय लोकदल एव समाजवादी घटको ने उठाया था। यह मूलत प्रगतिशील एव प्रतिक्रियावादी विचारो की टकराहट का परिणाम था।

---

1 जे० ए० नैयक दि ग्रेट जनता रिवोल्युशन, पूर्वोक्त, पृ 108।

इन दोनो सन्दर्भो की सम्यक विवेचना की आश्यकता है।

1. गुटीय आर्थिक हितों का मुद्दा

प्रथम सदर्भ की विवेचना करते हुये कहा जा सकता है कि यह सत्य है कि जनता पार्टी के विभिन्न घटक, विभिन्न सामाजिक एव आर्थिक पृष्ठभूमि के थे। भारतीय लोकदल को मध्यवर्ती जाति एव धनी किसानो की पार्टी कहा जाता था, जबकि जनसघ दुकानदारो एव शहरी व्यापारियो के हितो की सुरक्षा करती है और सगठन काग्रेस पूँजीपतियों के हितो को वरीयता देती थी। इसके बावजूद जनता पार्टी के ढाई वर्षो के जीवन काल मे कोई ऐसा आर्थिक मुद्दा नही आया जिसमे इन घटको के मध्य वैमनश्यता या मत विभाजन की स्थिति उत्पन्न हुई हो। ये तीना घटको (जिन्हे आर्थिक गुट कहना समीचीन नही है) मे से किसी ने कभी भी ऐसा कोई आर्थिक कार्यक्रम नही प्रस्तुत किया जिससे दूसरे घटक का अस्तित्व सकट मे पड जाय। वास्तव मे इन घटको के आर्थिक हितो मे कोई मौलिक भेद नही था, एव सभी गुट धनी वर्गो के हितो की ही रक्षा कर रहे थे।

भारत मे सत्ता का दावा करने वाले सभी राजनीतिक दल बुर्जुआ और धनी ग्रामीण वर्गो के गठबन्धन को ही प्रतिबिम्बित करते है। इन दलो के आर्थिक एव सामाजिक कार्यक्रमो का प्रारूप ऐसा होता है इससे दोनो धनी वर्गो (शहरी एव ग्रामीण) को लाभ पहुँचे। भारत के पूँजीवादी विकास से औद्योगिक विकास की ऐसी अधिसरचना का निर्माण हुआ, जिससे कृषि उत्पादन को भी लाभ पहुँचा। उर्वरको पर आधारित नयी कृषि नीति एव नवीन जैव-प्रौद्योगिकी से धनी कृषको को भरपूर लाभ पहुँचा। भारत मे हरित क्राति एव श्वेत क्राति, औद्योगिक विकास एव जैव तकनीक का ही परिणाम है। इससे एक ओर तो पूँजीवाद का विकास हुआ तो दूसरी ओर केवल जमीदारो एव बड़े किसानो को लाभ पहुँचा। इसका वास्तविक लाभ पजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु के चुने हुये क्षेत्रो एव व्यक्तियो तक ही सीमित रहा। अत भारतीय लोकदल, सगठन काग्रेस एव जनसघ के आर्थिक हितो को एक-दूसरे के विरोधाभासी रूप मे देखना समीचीन नही होगा।

अपने प्रारम्भिक काल मे श्री चरणसिह ने श्री जवाहर लाल नेहरू एव श्रीमती इदिरा गाँधी की आर्थिक नीतियो को यह कहकर आलोचना की कि इससे ग्रामीण वर्गो को नही वरन् शहरी पूँजीपति वर्ग को लाभ पहुँचा है। इस कारण इनकी छवि एक कृषक नेता की बन गयी थी। इस छवि के बावजूद जनता पार्टी मे उनके द्वारा उठाये गये मुद्दे अपने गुट के आर्थिक हितो से नही बल्कि व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित थे। जनता पार्टी के सगठन के चुनाव का प्रकरण, क्राति प्रकरण, श्रीमती इदिरा गाँधी की गिरफ्तारी का प्रकरण आदि ऐसे मुद्दे थे, जिसे उन्होने समय -समय पर विचारो एव सिद्धान्तो का जामा पहनाने का प्रयास किया।

इस सदर्भ मे एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि अगर चौधरी चरण सिह द्वारा उठाये गये विवादास्पद मुद्दे भारतीय लोकदल के आर्थिक हितो से प्रेरित थे तो उन्हे पूरे गुट का समर्थन मिलना चाहिये था, परन्तु वस्तुस्थिति इससे विपरीत थी। 29 अप्रैल, 1978 को श्री चरण सिह ने पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी एव ससदीय बोर्ड से त्यागपत्र दे दिया तो "उनके तीनो वफादार मुख्यमत्रियो – श्री देवी लाल, श्री राम नरेश यादव एव श्री कर्पूरी ठाकुर – ने दबे जुबान से इसका समर्थन किया। श्री बीजू पटनायक के निकटवर्ती सूत्रो का कहना है कि भारतीय लोकदल घटक के मत्रियो

ने कभी भी खुलकर श्री चरण सिह की माँग का समर्थन नही किया और न ही त्यागपत्र देने की पेशकश की ।"[1] केवल कुछ मत्री जेसे श्री राजनारायण अपनी विशिष्ट विध्वसक शैली मे श्री चरण सिह का साथ दे रहे थे । अत यह कहना कि वैचारिक पृष्ठभूमि या आर्थिक हितो के कारण गुटीय प्रतिद्वन्दिता प्रारम्भ हुयी, सत्य को दुरूह करना है, गुटीय प्रतिद्वन्दिता का मूल कारण व्यक्तिगत स्वार्थ एव महत्वाकाक्षाये ही थी ।

2. दोहरी सदस्यता का मुद्दा

पूर्व जनसघी नेताओ की 'दोहरी सदस्यता' का प्रश्न भी उन ज्वलन्त विवादो म एक था, जिसके कारण पार्टी मे गुटीय प्रतिद्वन्दिता मे वृद्धि हुई । पूर्व जनसघी नेताओ मे अधिकाशत राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ के सदस्य थे, अत भारतीय लोकदल एव समाजवादी घटक ने इस (दोहरी सदस्यता) पर आपत्ति की और इस मुद्दे की सैद्धान्तिक एव वैचारिक मतभेद के रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया । अब देखना यह है कि 'दोहरी सदस्यता' का प्रश्न क्या वास्तव मे वैचारिक एव सैद्धान्तिक मापदण्डो पर आधारित था ?

राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ एक सामाजिक एव सास्कृतिक सगठन है । इसका उद्देश्य नवयुवको को अनुशासित कर के उनका चरित्र निर्माण करना है जिससे वे समाज एव राष्ट्र के निर्माण मे अपना समुचित योगदान दे सके । यह एक गैर-राजनीतिक सगठन है एव पूर्व-जनसघ के नेतागण इसके सदस्य थे । यह कोई अनहोनी बात नही थी । एक साधारण नागरिक किसी राजनीतिक दल का सदस्य होने के साथ-साथ अनेको सस्थाओ एव समुदायो से अपना सम्बध रखता है जैसे कोई आर्य समाज या अन्य किसी सास्कृतिक या धार्मिक सगठन का सदस्य है । इससे उसकी उस राजनीतिक दल के प्रति निष्ठा को सदिग्ध नही माना जाना चाहिये और न ही इस आधार पर 'दोहरी सदस्यता' का प्रश्न उठाया जाना चाहिए । ठीक इसी प्रकार राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ एक राजनीतिक दल नही है । अत इस आधार पर जनता पार्टी के किसी सदस्य की निष्ठा पर सन्देह करना उचित नही था कि वह आर० एस० एस० का भी सदस्य है ।

उल्लेखनीय है कि पूर्व जनसघ एव आर० एस० एस० के सम्बध जनता पार्टी के गठन के बाद नही बने थे । जब पहले ही पार्टी के सभी घटक दल जनसघ एव आर० एस० एस० के सम्बन्धो को मान्यता दे चुके थे तो फिर ऐसे कौन से कारण थे जिससे बी० एल० डी० एव समाजवादी गुटो के नेताओ ने 'दोहरी सदस्यता एव आर० एस० एस० का हौवा खडा कर दिया । इन लोगो ने व्यक्तिगत स्वार्थों, महत्वाकाक्षाओ, एव सत्ता सघर्ष को सिद्धान्तो एव आदर्शों से जोडकर जनता पार्टी के धर्म निरपेक्ष स्वरूप के बारे मे विवाद खड़ा किया । इन लोगो की प्रतिबद्धताये समय एव परिस्थितियो के अनुसार बदलती रही है । भारतीय लोक दल का जनसघ एव आर० एस० एस० के प्रति ऐसा ही व्यवहार था । "आरम्भ मे ये तत्व भूतपूर्व जनसघ को साथ मिलाने को उत्सुक थे परन्तु बाद मे वे इस गुट के कट्टर शत्रु बन गये । पूर्ण आत्मसमर्पण से पूर्ण विरोध के दायरे मे चले जाना उन्ही लोगो के लिये सम्भव है जिनमे अपना उद्देश्य सिद्ध करने की असाधारण क्षमता और अवसर के अनुकूल बदलने की अपूर्व योग्यता होती है ।"[2]

---

1 एस० के० घोष "दि बिट्रेयल" पूर्वोक्त पृ० 172

2 चन्द्रशेखर 'जनता पार्टी के साथ विश्वासघात' (लेख) "सिद्धान्त या अवसरवादिता" जनता पार्टी प्रकाशन, अगस्त 1979, पृ० 6-7 ।

श्री चरणसिह का जनसघ के प्रति दृष्टिकोण उनकी राजनीतिक महत्वाकाक्षाओं के आधार पर निर्धारित हो रहा था। जब जनता पार्टी के गठन की प्रक्रिया चल रही थी, उस समय उन्होंने जनसघ से विलय के लिये आग्रह करते हुये कहा था कि आर0 एस0 एस0 एक राष्ट्रवादी सगठन है, जिसने आपातकाल मे ऐतिहासिक कार्य किया था। इसके आलावा उन्होंने आर0 एस0 एस0 प्रमुख श्री बाला साहेब देवरस से आग्रह किया था कि जनसघ को विलय के लिये राजी होने मे सक्रिय योगदान दे।"[1] प्रधानमन्त्री के चयन मे श्री चरणसिह को विश्वास था कि जनसघ गुट उनका साथ देगा, परन्तु जब जनसघ गुट ने श्री मोरार जी का समर्थन किया, तो जनसघ के प्रति चरणसिह के मन मे गॉठ पड गयी।

सन् 1977-78 मे राज्यो के विधान सभा चुनाव के बाद जिन राज्यो मे जनता सरकारे बनी वहॉ भारतीय लोकदल एव जनसघ घटक ही सत्ता के वास्तविक भागीदार थे। राज्यो की राजनीति मे कुछ उठा पटक के बावजूद इस काल मे भारतीय लोकदल एव जनसघ घटक के सम्बध लगभग ठीक रहे। यही कारण था कि जब श्री चरणसिह ने जनता सरकार से त्यागपत्र दे दिया तो मुख्यत जनसघी नेताओ ने ही अभिमान चलाकर श्री मोरार जी देसाई पर दबाव डाला कि वे श्री चरणसिह को पुन मन्त्रिमण्डल मे शामिल कर ले। इसके परिणाम स्वरूप श्री चरणसिह को उपप्रधानमन्त्री के रूप मे मन्त्रिमण्डल मे शामिल किया गया, परन्तु वे जनसघ के प्रति अपनी कड़ुवाहट भूल नही सके।

सन् 1978-79 की कहानी अलग है। इस काल मे नवीन राजनीतिक समीकरणो के तहत भारतीय लोकदल और जनसघ गुट के मध्य दूरिया बढ़ी और राज्यो की राजनीति मे अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिये घटको के मध्य (मूल रूप से भारतीय लोकदल एव जनसघ के बीच) शक्ति सघर्ष चरम पर पहुच गया, जिसमे कही भी सिद्धान्तो का नामोनिशान नही था। इसके लिये एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। जब श्री चरणसिह सरकार के बाहर थे तो उनके समर्थकों ने यह सार्वजनिक दलील दी थी कि "अगर प्रधानमन्त्री को मन्त्रिमण्डल के सहयोगियो को चुनने का विशेषाधिकार दिया गया तो पार्टी की एकता खतरे मे पड जायेगी।"[2] जिस दिन श्री चरणसिह मन्त्रिमण्डल मे शामिल हुये, उसके दूसरे दिन उनके गुट के उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री ने अपने मन्त्रिमण्डल से चार मन्त्रियो को हटा दिया। इसमे दो पूर्व जनसघ गुट के थे। जब इस पर आपत्ति की गयी तो उन्ही समर्थकों ने कहा कि "अपने मन्त्रि-मण्डल मे मन्त्रियो को चुनना मुख्यमन्त्री का विशेषाधिकार है। बी0 एल0 डी0 गुट के महत्वपूर्ण व्यक्तियो ने सार्वजनिक रूप से ऐसी कलाबाजी और मौकापरखी का प्रदर्शन किया, जिसका औचित्य सिद्ध करना कठिन है।"[3]

उत्तर प्रदेश के प्रकरण की जनसघ गुट मे तीव्र-प्रतिक्रिया हुई। उन्होने मुख्यमन्त्री श्री राम नरेश यादव के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। तदुपरान्त शक्ति परीक्षण मे श्री राम नरेश यादव हार गये और उनके स्थान पर श्री बनारसी दास मुख्यमन्त्री बनें। वे भारतीय लोकदल के नही थे, परन्तु उन्हे भारतीय लोकदल का समर्थन प्राप्त था। उन्होने भी 'दोहरी सदस्यता' का प्रश्न उठा दिया और कहा कि जब तक यह प्रकरण सुलझ नही जाता, जनसघ गुट के किसी मन्त्री को मन्त्रिमण्डल मे शामिल नही किया जायेगा। इसके बाद बी0 एल0 डी0 और जनसघ गुट के बीच गाली गलौच का लम्बा सिलसिला प्रारम्भ हुआ जिसका सीधा प्रभाव बिहार और हरियाणा राज्यो पर पड़ा। इन राज्यो मे

---

1 एल0 के0 अडवानी "दि पीपुल बिट्रेयड", विजन बुक प्रा0 लि0, दिल्ली, 1979, पृ0 85।
2 चन्द्रशेखर : 'जनता पार्टी के साथ विश्वासघात' (लेख), "सिद्धान्त या अवसरवादिता", पूर्वोक्त, पृ0 5।
3 वहीं, पृ0 6।

जनसघ गुट के विरोध के कारण बी() एल() डी() गुट के मुख्यमन्त्री हटा दिये गये । अत बी0 एल0 डी() गुट द्वारा उठाया गया 'दोहरी सदस्यता का प्रकरण ' शक्ति सघर्ष से प्रेरित था, वैचारिक प्रतिबद्धताओ से नही ।

जनता पार्टी के समाजवादी गुट ने भी 'दोहरी सदस्यता' का मुद्दा उठाया था । इसी गुट के श्री मधुलिमिये द्वारा उठाया गया यह मुद्दा वैचारिक नही बल्कि शक्ति सघर्ष से प्रेरित थी । श्री मधुलिमिए ने प्रधानमन्त्री श्री मोरार जी देसाई से जोरदार आग्रह किया था कि वे श्री चरणसिह एव पूर्व समाजवादी श्री राजनारायण को पुन मन्त्रिमण्डल मे शामिल कर ले । प्रधानमन्त्री श्री मोरार जी देसाई ने श्री चरणसिह को उपप्रधानमन्त्री के रूप मे केबीनेट मे वापस ले लिया जबकि श्री राजनारायण को वापस लेने से इन्कार कर दिया । श्री मधुलिमिए ने महसूस किया कि श्री मोरार जी देसाई जनसघ गुट के साथ मिलकर समाजवादी गुट को कमजोर करने का प्रयास कर रहे है । 'अत उन्होने जनसघ एव श्री मोरार जी को कमजोर करने के लिये क्रमश 'दोहरी सदस्यता' एव 'काति देसाई के विरूद्ध भ्रष्टाचार' के मुद्दे को तूल दिया । बाद मे श्री मधुलिमिए ने स्वय श्री राम जेठ मलानी के एक प्रश्न के उत्तर मे स्वीकार किया कि दोहरी सदस्यता का प्रश्न सैद्धान्तिक न होकर सत्ता सघर्ष से प्रेरित था ।'[1]

जनता पार्टी मे शामिल होकर काम करने वाले जनसघ गुट के भूतपूर्व नेताओ के 'रूख और व्यवहार' का मूल्याकन उसके पिछले व्यवहार से नही बल्कि जनता पार्टी मे काम करने के ढग से करना चाहिये । कारण चाहे जो रहे हो परन्तु जनता पार्टी मे जनसघ गुट के व्यवहार मे पूर्व व्यवहार से काफी बदलाव आया था । "यह कोई अत्युक्ति नही है कि इस गुट के चोटी के नेता सगठनात्मक एव प्रशासनिक विवादो मे सबसे अधिक समझौतावादी थे और प्रमुख नीति सम्बधी मामलो मे उनके रूख मे स्पष्ट परिवर्तन था ।"[2] सगठित एव अनुशासित सस्था के रूप मे यह गुट केन्द्र एव राज्यो की राजनीति मे ज्यादा प्रभावशाली सिद्ध हुआ । इससे बी0 एल0 डी0 के प्रभाव को धक्का पहुचा, अत उनकी जनसघ गुट के प्रति प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी । उन्होने आर0 एस0 एस0 के साथ घनिष्ठ सम्बधो के कारण जनसघ को साम्प्रदायिक कहा गया । इससे कुछ दोष जनसघ के अत्युत्साही कार्यकर्ताओ का भी था जिन्होने जनता पार्टी को आर() एस0 एस() के दर्शन एव विचारो को प्रचार करने के मच के रूप मे बदलने का अबुद्धिमता पूर्ण प्रयास किया । इससे अन्य गुटो का भय और बढ़ गया, परन्तु पुन उनके भय का मूल कारण जनसघ की वैचारिक पृष्ठभूमि नही बल्कि सत्ता मे बढ़ती हुई भागीदारी थी ।

ऐसी स्थिति मे आर0 एस() एस() के नेताओ ने बुद्धिमानी से काम लिया और स्पष्ट कर दिया कि वे इस बात को मानने को राजी है कि जनता पार्टी का कोई सासद, विधायक या पदाधिकारी आर() एस0 एस0 की गतिविधियो मे भाग नही लेगा ।[3] यह पहल स्वागत योग्य थी परन्तु इसका कोई ठोस परिणाम नही निकला । प्रतिद्वन्दी गुटो ने आर() एस0 एस() को मुख्य रूप से एक साम्प्रदायिक सगठन के रूप मे प्रचारित किया । जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर **जार्ज मैथ्यू** ने अपने एक शोध लेख मे स्पष्ट किया है कि 'मार्च 1977 के लोक सभा चुनाव मे धर्म एव

---

1 शोधकर्ता की श्री सुरेन्द्र मोहन (जनता पार्टी के तत्कालीन महासचिव) के साथ हुई भेंट वार्ता का अश, मऊ (बॉदा), नवम्बर 27, 1994 ।

2 चन्द्रशेखर "सिद्धान्त एव अवसरवादिता", पूर्वोक्त, पृ() 6 ।

3 राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के महामन्त्री, श्री राजेन्द्र सिह का वक्तव्य जुलाई 24], 1979, उद्धृत - एल० के० अडवानी, पूर्वोक्त, परिशिष्ट VI , पृष्ठ 148-149 ।

साम्प्रदायिक शक्तियो की भूमिका नगण्य थी जबकि इस चुनाव मे जनसघ एव आर0 एस0 एस0 सक्रिय रूप से शामिल थे ।'[1] प्रसिद्ध समाजवादी विचारक **अच्युत पटवर्धन** ने अपने एक लेख मे कहा है कि 'पहले मै आर0 एस0 एस0 का आलोचक था परन्तु अब महसूस करता हूँ कि वर्तमान समय मे इसमे बहुत परिवर्तन आया है । इससे 'हिन्दू राष्ट्र' की जगह 'भारतीय राष्ट्र' को अपना लिया है और परमाणु नीति सम्बधी इसके विचार भी उदारवादी हुये है । इन परिस्थितियो मे मै नही समझ पा रहा हूँ कि श्री राजनारायण एव श्री मधुलिमिए आर0 एस0 एस0 का क्यो विरोध कर रहे है ? '[2]

इन तर्कों का तात्पर्य यह नही है कि जनसघ एव आर0 एस0 एस0 ने अपने वैचारिक मापदण्डों का परित्याग कर दिया था, अपितु मूल प्रश्न यह है कि जनसघ की वैचारिक प्रतिबद्धता से ऐसा कोई नया सकट उत्पन्न नही किया जिससे जनता पार्टी का अस्तित्व सकट मे पड जाय । जहाँ तक सत्ता सघर्ष का प्रश्न है, जनसघ गुट भी अत्यन्त कूटनीति से अपनी राजनीतिक चाले चलता रहा । जनता पार्टी के विघटन मे जनसघ गुट की भी भूमिका रही थी, परन्तु इस विघटन के मूल मे सत्ता सघर्ष था, वैचारिक मतभेद नही । वास्तव मे कठोर वैचारिक प्रतिबद्धता तो कही थी ही नही यहाँ तक कि जनसघ एव आर0 एस0 एस0 की कट्टरवादिता मे सशोधन और शिथिलता दृष्टिगोचर होने लगी थी ।

राजनीतिक स्वार्थो एव महत्वाकाक्षाओ को 'धर्म निरपेक्षता बनाम साम्प्रदायिकता' तथा 'कुलक बनाम बुर्जुआ' जैसे उच्चादर्शों एव सिद्धान्तो का जामा केवल सत्ता सघर्ष के औचित्य को सिद्ध करने के लिये पहनाया गया था । यह बात समझ से परे है कि जनता पार्टी के गठन से लेकर उस दिन तक जनसघ एव आर0 एस0 एस0 ने ऐसा क्या किया था जिससे राजनारायण एव मधुलिमिए इसके कटु आलोचक बन गये । बडे आश्चर्य की बात है कि वित्तमन्त्री होते हुये श्री चरणसिह ने सरकार पर आर्थिक मोर्चे पर विफलता का आरोप लगाया । ''जिस दिन से जनता पार्टी सत्ता मे आयी उस दिन से उस क्षण तक जब उन्होने पार्टी छोडने का निश्चय किया, किसी समय राष्ट्रीय कार्यकारिणी या पार्टी के किसी अन्य मच को यह सूचना नही दी कि जन सघ या कोई अन्य घटक उन्हे घोषणा पत्र मे निर्धारित आर्थिक-सामाजिक कार्यक्रम के क्रियान्वयन से रोकता है ।''[3] सर्वथा अनुचित आचरण का औचित्य सिद्ध करने के लिए आदर्शवाद का मुखौटा लगाना बाद का विचार है । यह एक ऐसा विचित्र व्यवहार है जो न तो सार्वजनिक जीवन के किसी उच्च आचरण के अनुरूप है और न ही किसी राजनीतिक सिद्धान्त के अनुकूल है ।

दलीय संगठन से सम्बन्धित विवाद

जनता पार्टी ने केन्द्र एव अनेक राज्यो मे अपनी सरकार बनाकर काग्रेस को गम्भीर चुनौती दी थी, वह काग्रेस के 'राष्ट्रीय विकल्प' के रूप मे उभरना चाहती थी, जो बिना 'सशक्त दलीय सगठन' के सम्भव नही था । प्रजातान्त्रिक व्यवस्था मे राजनीतिक दल अपने सगठन के माध्यम से लोगो को व्यापक जन सह भागिता के लिये प्रेरित करते है । आधुनिक राजनीतिक दल अपने पूर्ववर्ती दलो से इस आधार पर भिन्न होते है कि वे अपने सशक्त नेताओ के माध्यम

---

1 देखे, जार्ज मैथ्यू का लेख "रलीजन, पॉलिटिक्स ऐण्ड 1977 लोक सभा इलेक्शन इन इण्डिया", एशिया क्वाटर्ली, जनवरी-मार्च 1977 ।

2 देखे - अच्युत पटवर्धन, "जनता, आर0 एस0 एस0 ऐण्ड दि नेशन", दि इण्डियन एक्सप्रेस जून 9, 1979 ।

3 चन्द्रशेखर "सिद्धान्त एव अवसरवादिता", पूर्वोक्त, पृ0 2 ।

से नही बल्कि सशक्त सगठन के माध्यम से सरकार की निर्णय प्रक्रिया भी प्रभावित करते है ।[1]

एक उदारवादी प्रजातान्त्रिक सरकार चुनौती और विरोध भरे वातावरण मे कार्य करती है, जिसके लिये उसे एक सगठन की आवश्यकता होती है । इसी सगठन के माध्यम से राजनीतिक दल सरकार की नीतियो का समर्थन या विरोध करके अपने पक्ष मे जनमत तैयार करते है । राष्ट्रीय स्तर से ब्लाक स्तर सगठन की शाखाओ का विस्तार करना सफल एव शक्तिशाली दल का कार्य है । जनता पार्टी सशक्त 'दलीय सगठन' बनाकर अपनी जीत को वास्तविक स्वरूप प्रदान करना चाहती थी, परन्तु इसकी प्रकृति एव विशिष्टताओ को देखते हुये यह अत्यन्त कठिन कार्य था। इसके लिये पहला कार्य दल के 'स्वरूप एव सविधान' के विषय मे सामान्य एव व्यापक सहमति थी । भारतीय राजनीतिक व्यवस्था मे सामान्यत राजनीतिक दलो के सगठन के दो प्रतिमान प्रचलित है--

(1) प्रथम प्रतिमान का प्रतीक काग्रेस दल है, जो खुली सदस्यता, ढीले दलीय अनुशासन एव सघीय व्यवस्था के सिद्धान्तो पर आधारित है । ऐसा दल अनेक विचार धाराओ, समुदायो एव सगठन की भावनाओ एव हितो को समाहित एव समायोजित करता है । भारत मे अधिकाश दलो का यही प्रतिमान है ।

(2) द्वितीय प्रतिमान के प्रतीक जनसघ एव साम्यवादी दल है । यह वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध, अनुशासित सवर्ग के व्यक्तियो का, अत्यन्त केन्द्रीकृत एव पद-सोपान पर आधारित 'दलीय सगठन ' है ।

जनता पार्टी पॉच घटक दलो से मिलकर बनी थी । अत स्वाभाविक एव व्यवहारिक रूप से उसने काग्रेस का प्रतिमान अपनाया और उसी के अनुसार अपने सविधान का निर्माण किया। जनता पार्टी ने अपने संविधान मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के सविधान से बहुत कुछ उधार लिया है ।[2]

1 मई 1977 को जनता पार्टी औपचारिक रूप से अस्तित्व मे आयी । विभिन्न गुटो की सहमति के आधार पर श्री चन्द्रशेखर को जनता पार्टी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। अध्यक्ष पद ग्रहण करते हुये श्री चन्द्रशेखर ने कहा था, "जनता पार्टी के सभी पूर्व घटको का एकीकरण मेरी प्रथम वरीयता होगी ।"[3] दलीय एकता के सन्दर्भ मे सभी नेताओ ने पवित्र वचन कहे, परन्तु सगठन की विभिन्न समितियो के गठन मे घटको की गुटीय शक्ति को वरीयता प्रदान की गयी । इस बात को स्वय पार्टी अध्यक्ष ने स्वीकार करते हुये कहा कि "यह दावा करना असत्य होगा कि पार्टी की कार्य समिति मे प्रतिनिधित्व के सन्दर्भ मे विभिन्न दलो की तुलनात्मक शक्ति का ध्यान नही रखा गया ।"[4]

सन् 1977-1979 के बीच दलीय सगठन सम्बधी गतिविधियो से पता चलता है कि दलीय एकता का भाव सतही था और पार्टी मे जबरदस्त अतर्कलह विद्यमान थी । पार्टी का प्रत्येक घटक दलीय सगठन मे अपना प्रभाव

---

1 देखे एम० आस्ट्रोगोर्स्की "डेमाक्रेसी एण्ड आर्गेनाइजेशन आफ पोलिटिकल पार्टीज" (एफ० क्लार्क, अनु०) मैकमिलन, 1902 ।
2 सी० पी० भम्भरी 'दि जनता पार्टी ए प्रोफाइल", पूर्वोक्त, पृ० 48, जुलाई 11, 1969 को बगलोर सत्र मे सशोधित भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के सविधान से साम्य ।
3 दि इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, मई 3, 1977 ।
4 दि हिन्दू, मद्रास, मई 4, 1977 ।

जमाने के लिये अन्य घटको के साथ सघर्षरत था । जनता पार्टी के शिखरस्थ नेताओ की सहमति से मई 1977 मे एक तदर्थ कार्य समिति का, एक वर्ष, या जब तक नये पदाधिकारियो का चुनाव न हो, के लिये गठन किया गया था । तदर्थ पदाधिकारी 28 महीने तक कार्य करते रहे क्योकि जनता पार्टी मे नये सदस्यो की भर्ती के मुद्दे एव सगठन के चुनाव कराने के विषय मे विभिन्न घटको मे मतभेद बने रहे ।

नये सदस्यों की भर्ती एवं संगठन का चुनाव

जनता पार्टी के शीर्षस्थ नेताओ ने यह आशा की थी कि शीघ्रातिशीघ्र 'दलीय सगठन' के चुनाव करा लिये जायेगे और जनता पार्टी एक सशक्त दल के रूप मे उभर सकेगी । लेकिन पार्टी के विभिन्न घटको के बीच अविश्वास के कारण यह सम्भव न हो सका । पूर्व जनसघी नेता श्री नाना जी देशमुख ने अनेको बार सगठन को मजबूत करने की अपील की और उन्होने स्वय भी केबीनेट मन्त्री का पद अस्वीकार करके सगठन को मजबूत बनाने के लिये अपनी सेवाये अर्पित करने का उदाहरण रखा । उन्होने तालुक, जिला एव राज्य स्तर पर पार्टी का सगठन करने, अक्टूबर 1977 तक सदस्यो की भर्ती पूर्ण करने और दिसम्बर 1977 मे दल मे चुनाव कराने का सुझाव दिया ।[1]

जनता पार्टी मे सदस्यो के भर्ती का अभियान सुचारू रूप से नही चल सका । पार्टी के विभिन्न घटक दल इस भर्ती अभियान मे ज्यादा से ज्यादा सदस्यो की भर्ती दिखाकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना चाहते थे । नाना जी देशमुख ने भी स्वीकार किया कि "ऐसी सूचना है कि घटक दल स्वय अपने सदस्यता पत्र छापकर सदस्यो की भर्ती कर रहे हैं ।"[2] पार्टी अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर ने सुझाव दिया सदस्यता अभियान को सुचारू रूप से सम्पन्न कराने के लिये वैध पत्रो पर अध्यक्ष के हस्ताक्षर होने चाहिये । श्री पीलू मोदी ने आरोप लगाया कि "पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ताओं को सदस्यता कार्य नही मिल रहे है, जबकि गुटीय नेता इसका दुरूपयोग कर रहे है"[3] इन महत्वपूर्ण नेताओ के वक्तव्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि सदस्यो के भर्ती अभियान मे व्यापक हेरा फेरी चल रही थी जिसके कारण विभिन्न नेताओं मे गम्भीर आक्रोश था ।

सदस्यो की भर्ती एव सगठन के चुनाव की तिथिया बारम्बार बढ़ायी गयी और अन्ततोगत्वा विभिन्न गुटो के मध्य अविश्वास के कारण सगठन के चुनाव सम्पन्न नही हो सके । जाली सदस्यो के भर्ती के प्रकरण ने इसलिए तूल पकडा कि विभिन्न घटको को शायद यह विश्वास था कि सभी स्तरो पर चुनाव नही कराये जायेगे और ब्लाक एव जिला स्तर पर उनके सदस्यो की सख्या के अनुपात मे राज्य स्तर पर विभिन्न घटको के मतदाताओं की सख्या का निर्धारण कर लिया जायेगा । जबकि वास्तविक स्थिति ऐसी नही थी एव प्रत्येक स्तर पर चुनाव होना था यदि प्रत्येक स्तर पर चुनाव होते तो जाली सदस्यो की समस्या का समाधान हो गया होता क्योकि एक वास्तविक सदस्य सशरीर उपस्थित होकर दस मत कैसे दे सकता है । अगर सभी (वास्तविक एव तथाकथित जाली) सदस्य चुनाव मे उपस्थित होकर मतदान करते तो सभी सदस्य असली या वास्तविक ही माने जाते चाहे वे जिस घटक के हो क्योकि घटको का औपचारिक विलय हो चुका था । इस भर्ती अभियान मे घटको की तुलनात्मक या सापेक्षिक शक्ति मे वृद्धि होना

---

1 दि स्टेटसमेन जुलाई 21, 1977 ।

2 दि इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, सितम्बर 12, 1977 ।

3 दि इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, सितम्बर 12, 1977 ।

स्वाभाविक था, क्योकि प्रारम्भिक रूप से भी घटकों की शक्ति मे अन्तर था । अत कमजोर एव प्रतिद्वन्दी गुट ने भय एव अविश्वास के कारण जाली सदस्यो की भर्ती का होवा खड़ा किया । "जाली या फर्जी सदस्यो की भर्ती का मुद्दा मूलत अतार्किक एव अव्यावहारिक था । यह विभिन्न घटको के मध्य अविश्वास से उपजा था । इसमे घटको ने ज्यादा से ज्यादा सदस्य बनाकर प्रभाव डालने की कोशिश की थी । यदि चुनाव हो गये हो तो स्थिति स्पष्ट हो गयी होती ।"[१]

गुटीय प्रतिद्वन्दिता के कारण जनता पार्टी के कार्यकाल के प्रथम वर्ष सगठन के चुनाव नही हो सके, इससे पार्टी के सकट मे वृद्धि हुयी । फरवरी-मार्च 1978 मे होन वाले आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक के विधान सभाओ के चुनावो मे जनता पार्टी बुरी तरह से परास्त हुई क्योकि जनता पार्टी इन राज्यो मे मजबूत सगठन, जिनके माध्यम से उसे चुनाव लडना था, का निर्माण नही कर सकी । सगठन के चुनाव न होने के कारण पार्टी के 'तदर्थ पदाधिकारियो' का कार्यकाल बढाना पडा, इससे भी विवाद बढा । पश्चिमी बगाल एव उत्तर प्रदेश मे गुटबन्दी का यह हाल था कि अप्रैल 1978 तक जिले स्तर मे समितिया नही बन सकी । अत 21-22 अप्रैल 1978 को कार्यकारिणी की बैठक मे पुन सगठन के चुनाव की तिथि अक्टूबर 1978 तक बढायी गयी और प्रस्ताव मे कहा गया कि दिसम्बर 1978 मे पार्टी का राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया जायेगा । इस बैठक मे सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया कि पार्टी के कार्य सचालन सबसे बडी बाधा उसके भूतपूर्व घटको मे एकरसता एव भावनात्मक एकता का अभाव है ।[२]

राष्ट्रीय कार्य कारिणी ने श्री राजनारायण के इस सुझाव को रद्द कर दिया कि अध्यक्ष तथा अन्य पदाधिकारियो सहित राष्ट्रीय कार्यकारिणी का चुनाव जनता पार्टी मे सासदो एव विधायको से बने निर्वाचक मण्डल द्वारा किया जाय, क्योकि पार्टी सविधान मे ऐसा प्रावधान नही था । साथ ही साथ सदस्यो ने अध्यक्ष पर अपना पूर्ण विश्वास व्यक्त किया और निश्चय किया कि जब तक नयी कार्यकारिणी एव पदाधिकारियो का चुनाव नही हो जाता तब तक अध्यक्ष एव अन्य पदाधिकारी अपने पद पर बने रहेगे । प्रस्ताव मे यह भी कहा गया कि पार्टी सदस्यो को सार्वजनिक रूप से एक दूसरे पर दोषारोपण की इजाजत नही दी जा सकती ।[३] इन निर्देशो के बावजूद अन्तर्गुटीय मतभेदो पर कोई कमी नही आयी ।

जून 1978 तक स्थिति और गम्भीर हो गयी क्योकि श्री चरणसिह ने सगठन एवं सरकार के विभिन्न पदो से त्यागपत्र दे दिया । ऐसी स्थिति मे सदस्यो का भर्ती अभियान एव सगठन की चुनाव प्रक्रिया पुन खटाई मे पड़ गयी । पूर्व भारतीय लोकदल घटक ने आरोप लगाया कि श्री चरणसिह को पार्टी से निकाल कर उनकी स्थिति को कमजोर किया गया है और इसी बीच सगठन काग्रेस, जनसघ एव सी0 एफ0 डी0 आदि घटको ने अपने सदस्यो की भर्ती करके अपनी स्थिति सरकार एव सगठन दोनो मे मजबूत कर ली है ।[4] इसके आलावा लोकदल घटक ने यह भी आरोप लगाया कि सहयोग और सहभागिता के प्रजातान्त्रिक मूल्यो को नकार कर पार्टी के 'केन्द्रीय चुनाव पैनल'[5] मे भारतीय

---

1 शोधकर्ता की जनता पार्टी के महासचिव सुरेन्द्र मोहन से भेटवार्ता, नवम्बर 27, 1994 ।

2 दि टाइम्स आफ इण्डिया दिल्ली, अप्रैल 24, 1978 ।

3 वही, देखे - "जनविश्वास-घात", जनता पाटी प्रकाशन, पूर्वोक्त, पृ0 4-5 ।

4 दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, जुलाई 28, 1978 ।

5 प्रारम्भ मे 'केन्द्रीय चुनाव पैनल' मे तीन सदस्य थे – श्री सुरेन्द्र मोहन (समाजवादी गुट), श्री एस0 एस0 भण्डारी (जनसघ) एव श्री रामकृष्ण हेगडे (सगठन काग्रेस) । बाद मे इसमे सी0 एफ0 डी0 के श्री एच0 एन0 बहुगुणा और भारतीय लोकदल के श्री रविराय

लोकदल को प्रतिनिधित्व नही दिया गया है और जानबूझ कर भारतीय लोकदल को सगठन की चुनाव प्रक्रिया से बाहर रखा गया है, अत वह इसमे भाग नही लेगी ।[1]

श्री चरणसिह को मन्त्रिमण्डल मे पुन प्रवेश के पश्चात् गुटीय सघर्ष कम होने के बजाय और तीव्र हो गया । श्री चरणसिह का मानना था कि सगठन एव सरकार मे उनकी स्थिति कमजोर करने मे जनसघ घटक ने सक्रिय भूमिका निभायी है । इस काल मे जनसघ का बदला हुआ रूख भारतीय लोकदल की इन आशकाओ की पुष्टि करता था, क्योंकि पहले जनसघ गुट भारतीय लोकदल के साथ था जबकि बाद मे सगठन काग्रेस एव चन्द्रशेखर गुट के साथ हो गया था । इसी कारण सदस्यो की भर्ती एव सगठन के चुनाव के प्रश्न पर इन गुटो मे खुला सघर्ष प्रारम्भ हो गया । जनसघ गुट ने भारतीय लोकदल गुट पर आरोप लगाया कि वह पार्टी की एकता भग करने का घृणित कार्य कर रहा है । जबकि भारतीय लोकदल ने जनसघ गुट को कमजोर करने के लिये 'दोहरी सदस्यता' का मुद्दा उठाया ।

भारतीय लोकदल गुट के साथ श्री मधुलिमिए एव श्री राजनारायण ने भी जनसघ के विरुद्ध मुहिम छेड दी उन्होंने माग की–

(1) जनसघी नेतागण आर० एस० एस० से अपने सम्बध विच्छेद करे ।

(2) पार्टी के चुनाव स्थगित किये जाये ।

श्री एस० एस० भण्डारी ने चुनाव स्थगित करने की माग का विरोध करते हुये कहा अगर सगठन के चुनाव न कराये गये तो आपसी अविश्वास बढ़ेगा और पार्टी कमजोर होगी । 28-29 दिसम्बर 1978 को राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक मे यह सुनिश्चित हुआ कि 10 मार्च 1979 तक सभी स्तरो के चुनाव करा लिये जायेंगे ।[2] परन्तु बदले हुये समीकरणों के तहत भारतीय लोकदल के साथ सी० एफ० डी० गुट भी चुनाव स्थगित करने की माग करने लगे । ये दोनो गुट जनसघ गुट का विरोध कर रहे थे । इस गुटीय प्रतिद्वन्दता मे सगठन के चुनाव लगभग असम्भव हो गये थे । इससे पार्टी की छवि खराब होने के साथ-साथ उसमे निहित प्रजातान्त्रिक मूल्यो का ह्रास हो रहा था और पार्टी शनै-शनै विघटनोन्मुख हो रही थी । ऐसी विषम परिस्थितियों मे 5 अप्रैल 1979 को पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने पार्टी के पदाधिकारियो के सम्पूर्ण चुनावी प्रकरण को एक छः सदस्यीय उपसमिति को सौप दिया । इस समिति मे श्री मोरार जी देसाई, श्री चन्द्रशेखर, श्री चरणसिह, श्री जगजीवन राम, श्री अटलबिहारी बाजपेई एव श्री जार्ज फर्नांडीज थे । आशा के अनुरूप इस समिति के निर्णय के अनुसार सगठन के चुनाव स्थगित कर दिये गये । इसके बाद जनता-शासित राज्यो मे ऐसी उठा-पटक प्रारम्भ हुयी कि जनता-काल मे सगठन के चुनाव नही हो सके ।

इन दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियो मे भी 5 सदस्यीय 'केन्द्रीय चुनाव पैनल' कुछ कार्य कर रहा था और उसके सघन प्रयासों से आठ राज्यो– केरल, तमिलनाडु, मणिपुर, कर्नाटक, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, पजाब और असम मे सगठन के चुनाव करा दिये गये थे । इन राज्यो मे केन्द्रीय एव राज्य स्तर के नेताओ मे कोई शक्ति सघर्ष नही था ।

को शामिल किया गया ।

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिसम्बर 13, 1978 ।

2 वही, दिल्ली, जनवरी 1, 1979 ।

जनता पार्टी शासित राज्यो मे चुनाव कराना असम्भव हो रहा था, क्योकि यहाँ 'शिखरस्थ गुटीय नेता' केन्द्र एव राज्य दोनो स्तरो पर सघर्षरत थे ।[1] उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश एव राजस्थान मे मुख्यत भारतीय लोकदल एव जनसघ के गुटीय सघर्ष ने चुनाव को असम्भव बना दिया था ।

जनता शासित राज्यो मे विभिन्न घटको का यह दृष्टिकोण था कि अगर मुख्यमन्त्री उनके घटक का है तो प्रदेश पार्टी अध्यक्ष भी उनके घटक का होना चाहिये । अत पार्टी एवं सरकार के बीच सन्तुलन की बात नही हो रही थी बल्कि जहाँ तक सम्भव था प्रत्येक गुट, सगठन एव सरकार दोनो मे अपना आधिपत्य जमाने का प्रयास कर रहा था । उन्हे यह भी डर था कि कही दूसरे गुट का अध्यक्ष उनके गुट के मुख्यमन्त्री के लिये चुनौती न बन जाये । इस सन्देह और अविश्वास की स्थिति ने ही जनता पार्टी मे आन्तरिक कलह और गुटीय प्रतिद्वन्दिता को जन्म दिया ।[2]

जनता पार्टी के गुटीय नेताओ के शक्ति सघर्ष एव अविश्वास के कारण सगठन के चुनाव नही हो सके और जनता पार्टी कभी भी एक सुदृढ एव एकीकृत दल के रूप मे नही ऊभर सकी । इससे अनेको अन्य सकटो का जन्म हुआ । राज्य स्तर पर सगठन की क्रियात्मक इकाइयो के अभाव के कारण केन्द्रीय नेतृत्व राज्य सरकारो के ऊपर उचित नियन्त्रण नही स्थापित कर सका । इसके परिणामस्वरूप पार्टी एव सरकार के सम्बन्धो मे दरार आ गयी, यह दोनो के लिये हानिकारक सिद्ध हुआ ।

राज्यों की राजनीति

जनता पार्टी के शासन काल मे राज्यो की राजनीति का विशिष्ट महत्व है, क्योकि इस काल मे राजनीति न तो केन्द्र से निर्देशित-नियन्त्रित थी, और न ही राज्य का नेतृत्व, केन्द्र मे प्रभावशाली होने के लिये प्रयत्नशील था लेकिन इसे इस दृष्टि से स्वस्थ स्थिति नही माना जा सकता कि राज्य सरकारे अत्यधिक गुटबन्दी से ग्रस्त थी । इस काल मे भारतीय सघ के लगभग आधे राज्यो मे जनता पार्टी का शासन था तथा शेष राज्यो मे अन्य राजनीतिक दलो का । वैसे तो कमोवेश रूप मे लगभग सभी राज्यो मे अस्थिरता थी लेकिन जनता पार्टी राज्य सरकारो इस व्याधि से अधिक ग्रस्त थी । जनता पार्टी की राज्य सरकारो की स्थिति वस्तुत 'सविद सरकारो' जैसे ही थी ।

जनता पार्टी पराभव मे जनता शासित राज्यो की राजनीति की महत्वपूर्ण भूमिका थी । पार्टी के शीर्षस्थ नेतागण इन्ही राज्य सरकारो के माध्यम से शक्ति-सग्रह एव अपनी महत्वाकाक्षाओ की पूर्ति करना चाहते थे । इससे पार्टी मे गुटबदी, तोड-जोड एव अतर्कलह मे वृद्धि हुई, और राज्य सरकारो मे नेतृत्व परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी । इस प्रक्रिया के चरम परिणित के रूप मे केन्द्रीय नेतृत्व के प्रति भी असन्तोष उभरा, जिसके परिणाम स्वरूप जनता पार्टी का विघटन हो गया ।

जनता पार्टी व्यावहारिक दृष्टि से कभी भी एकीकृत पार्टी नही थी । इसके घटक दल हमेशा अपनी गुटीय शक्ति के प्रति ही सवेदनशील रहे थे । राज्यो की राजनीति ने घटको की इस सवेदनशीलता को प्रोत्साहित किया । जनता पार्टी शासित राज्यो की राजनीति को मोटे तौर पर दो भागो में विभाजित किया जा सकता है–

---

1 प्रख्यात समाजवादी एव जनतापार्टी के तत्कालीन महासचिव, श्री सुरेन्द्र मोहन से शोधकर्ता की भेट वार्ता – नवम्बर 27, 1994 ।

2 वही ।

प्रथम– राज्य विधान सभाओ के चुनाव घोषणा से लेकर राज्यो मे मन्त्रिमण्डल निर्माण तक की राजनीति ।

द्वितीय– जनता शासित राज्यो मे मुख्यमन्त्रियो के प्रति असन्तोष एव शक्ति परीक्षण की राजनीति ।

इसमे प्रथम भाग का विस्तृत वर्णन एव विश्लेषण "दस राज्यो मे विधान सभाओ के चुनाव" नामक पिछले अध्याय मे किया जा चुका है । यहाँ द्वितीय भाग का वर्णन एव विश्लेषण करना है । सम्यक विश्लेषण के लिये इस भाग को पुन दो भागो मे विभाजित करते है – जनता पार्टी का प्रथम वर्ष एव द्वितीय वर्ष । यह विभाजन मात्र समय पर आधारित न होकरजनता पार्टी के दो शक्तिशाली घटको – जनसघ एव भारतीय लोकदल- के सम्बधो पर आधारित है । जनता पार्टी शासन काल के प्रथम वर्ष ये दोनो घटक सहयोगी रहे जबकि दूसरे वर्ष इनमे घोर प्रतिद्वन्दिता दृष्टिगोचर हुई ।

प्रथम वर्ष (1977-78) – उल्लखनीय है कि जनता शासित राज्यो मे मुख्यमन्त्री पद का बॅटवारा केवल दो घटको ने मिलकर किया था । उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा एव उड़ीसा में भारतीय लोकदल एव राजस्थान, मध्य प्रदेश एव हिमाचल प्रदेश मे जनसघ घटक के मुख्यमन्त्री थे । इन सभी राज्यो मे मूलत ' सविद सरकारे ' ही थी जिसमे भारतीय लोकदल एव जनसघ गुटो की प्रमुख हिस्सेदारी थी । ऐसी स्थिति मे पार्टी के अन्य घटको को यह महसूस हुआ कि उनकी शक्ति मे ह्रास हो रहा है, इमसे उनका एव उनके गुट का अस्तित्व सकट मे पड़ सकता है । अत ये घटक- मूलत सगठन काग्रेस, सी() एफ() डी() एव चन्द्रशेखर गुट - प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शक्ति-सघर्ष मे शामिल हो गये और ऐसे मौके की तलाश करने लगे जिससे वे 'जनसघ-लोकदल' की सामूहिक शक्ति को चुनौती दे सके । इसी बीच हरियाणा एव उत्तर प्रदेश मे विधायको के बढते हुये असन्तोष के कारण पार्टी के केन्द्रीय नेतृत्व ने इन राज्यो के मुख्यमन्त्रियो को पुन. विश्वास-मत प्राप्त करने का निर्देश दिया । इस सघर्ष ने उस समय नया मोड़ ले लिया जब केन्द्रीय नेतृत्व के इस निर्णय के विरोध मे श्री चरणसिह ने पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी एव ससदीय बोर्ड से त्यागपत्र दे दिया और आरोप लगाया कि "हरियाणा, बिहार और उत्तर प्रदेश में उनके घटक के मुख्यमन्त्रियो को केन्द्रीय नेतृत्व द्वारा परेशान किया जा रहा है और ऊपर से घटकवाद को प्रोत्साहित किया जा रहा है ।"[1]

इस घटनाक्रम से घटक दलो के मध्य दूरियाँ बढी तथा इन दूरियो एव मतभेदो को कम करने के भी प्रयास किये गये । श्री अटल बिहारी बाजपेई ने श्री चरणसिह से आग्रह किया कि वे अपना त्यागपत्र वापस ले ले । उन्होंने कहा, "मै श्री चरणसिह के बिना जनता पार्टी की कल्पना नही कर सकता । मेरा विचार है कि पार्टी के अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर एव प्रधानमन्त्री श्री देसाई पार्टी मे न तो मतभेदो को बढावा दे रहे है और न ही अस्थिरता उत्पन्न करने का प्रयास कर रहे है ।"[2] अन्य घटको के नेतागण भी इन मतभेदो को दूर करने का प्रयास कर रहे थे, परन्तु इसमे महत्वपूर्ण भूमिका जनसघी नेताओ की थी । क्यो ? क्या वे उच्चादर्शो से प्रेरित थे ? क्या वे अति समझौतावादी थे ? इन प्रश्नो के सन्दर्भ में जनसघ की भूमिका का विश्लेषण करना अत्यावश्यक हो जाता है ।

जनता पार्टी मे बढती हुयी गुटबन्दी एव तनाव के सन्दर्भ मे जनसघ की भूमिका एव रणनीति उच्चादर्शो से

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, मई 1, 1978 ।

2 दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, मई 2, 1978 ।

नही बल्कि शुद्ध सत्ता - सघर्ष से प्रेरित थी । तत्कालीन परिस्थितियो मे जनसघी नेताओ का समझौतावादी दृष्टिकोण उनके लिये शक्ति-सग्रह का सर्वोत्तम साधन था । जनता पार्टी मे जनसघ घटक के सबसे ज्यादा सासद थे और पजाब, हरियाणा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश बिहार एव मध्य प्रदेश आदि राज्य सरकारो में उनकी सत्ता मे भागीदारी थी । भारतीय राजनीति मे यह प्रथम अवसर था जब जनसघ, केन्द्र एव इतने राज्यो मे एक साथ सत्ता की हिस्सेदार बनी थी । जनता पार्टी के विघटन से वैसे तो सभी गुटो को नुकसान होता, परन्तु जनसघ गुट को सबसे ज्यादा हानि होती, क्योकि वह अपनी स्थिति को सुदृढ करने की प्रक्रिया मे थी । इस सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया मे उसे भारतीय लोकदल का सहयोग चाहिये था । अत वह भारतीय लोकदल गुट का सहयोग एव पार्टी एव सरकार म श्री चरणसिह की वापसी का समर्थन कर रही थी ।

जब जनता पार्टी के दो प्रभावशाली घटक एक साथ हो गये तो अन्य घटक- सगठन काग्रेस, सी० एफ० डी० एव चन्द्रशेखर गुट- अपने आप को कमजोर महसूस करने लगे । ये घटक दल ऐसे मौके की तलाश मे थे जिससे कि भारतीय लोकदल एव जनसघ को कमजोर किया जा सके । जनसघ एक अत्यन्त अनुशासिक सवर्ग की पार्टी थी और उसके नेतागण अपनी विशिष्ट राजनीतिक शैली के तहत समझौतावादी रूख अपनाये हुये थे । अत इन गुटो को जनसघ के विरुद्ध दुरभिसन्धि करने का मौका नही मिला । इसके विपरीत भारतीय लोकदल गुट एव उसके नेता श्री चरणसिह पहले ही केन्द्रीय नेतृत्व से नाराज थे । मई 1978 जब श्री चरणसिह के मर्जी के विरुद्ध केन्द्रीय नेतृत्व ने उनके प्रबल समर्थक, हरियाणा के मुख्यमन्त्री श्री देवीलाल को विश्वासमत प्राप्त करने का निर्देश दिया तो श्री चरणसिह ने इसे पक्षपातपूर्ण माना और कहा कि यह कुछ गुटो द्वारा भारतीय लोकदल को कमजोर करने का घृणित प्रयास है । हरियाणा विधानसभा मे शक्ति परीक्षण के दौरान जनसघ गुट ने लोकदल गुट का सहयोग एव समर्थन किया और मुख्यमत्री श्री देवीलाल ने विश्वास मत प्राप्त कर लिया, परन्तु इससे भारतीय लोकदल एव सी० एफ० डी० और सगठन काग्रेस के बीच खाई बढ गयी ।[1]

हरियाणा मे श्री देवीलाल की विजय से ऐसा प्रतीत होने लगा कि जनता पार्टी दो प्रमुख गुटो मे बट गयी है । **प्रथम** पूर्व काग्रेसी गुट (सगठन काग्रेस, सी० एफ० डी० एव चन्द्रशेखर गुट), इसमे वे लोग थे जिन्होंने आपेक्षाकृत बाद मे काग्रेस छोड़ी थी और **द्वितीय** गैर-काग्रेसी गुट, इसमे भारतीय लोकदल एव जनसघ थे । 'उस समय ऐसी भी चर्चा होने लगी थी कि किसान एव व्यापारी के हित एक है, अत वे साथ-साथ हो गये है ।'[2] हरियाणा जैसी घटना की पुनरावृत्ति उत्तर प्रदेश मे भी हुई और केन्द्रीय नेतृत्व ने चौधरी चरणसिह के प्रबल समर्थक उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री रामनरेश यादव को विश्वास मत प्राप्त करने का निर्देश दिया । उल्लेखनीय है कि उत्तर प्रदेश शक्ति समीकरण की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण राज्य है और राष्ट्रीय नेतागण अपने गुटीय हितो के लिये इसकी राजनीति मे अपना नियन्त्रण स्थापित करना चाहते थे । अत यहाँ भारतीय लोकदल, सगठन काग्रेस एव सी० एफ० डी० के मध्य गम्भीर सघर्ष प्रारम्भ हो गया । जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर भी उत्तर प्रदेश की राजनीति मे हस्तक्षेप कर रहे थे क्योकि वे जानते थे कि मात्र श्री जय प्रकाश नारायण के आर्शीवाद से वे अपने पद पर नही बने रह सकते ।

---

1 देखे, दि टाइम्स ऑफ इण्डिया जून 9, 1978 ।

2 समाजवादी गुट के वरिष्ठ जनता पार्टी के नेता श्री सुरेन्द्र मोहन से शोधकर्ता की भेटवार्ता ।

जनता पार्टी के 'पूर्व काग्रेसी गुट' के विरोध के बावजूद 4 जून 1978 को उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री रामनरेश यादव ने विधान सभा मे विश्वासमत प्राप्त कर लिया । जनसघ गुट ने कुछ सदेहास्पद वक्तव्यो के बावजूद श्री रामनरेश यादव का समर्थन किया और भारतीय लोकदल घटक अपने मुख्यमन्त्री को बचाने मे सफल रहा ।[1] अत जनता शासन के प्रथम वर्ष (लगभग जून 1978 तक) लोकदल और जनसघ गुट मे प्रबल सहयोग बना रहा और राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश एव हिमाचल प्रदेश में मुख्यत इन गुटो की ही 'संविद सरकारे' चलती रही । मई-जून 1978 मे जनसघ गुट के सहयोग से हरियाणा एव उत्तर प्रदेश मे भारतीय लोकदल गुट की विजय से गुटीय सघर्ष के एक पहलू का तो समाधान हो गया, परन्तु भारतीय लोकदल गुट के, अन्य घटको से प्रबल मतभेद हो गये ।

घटकवाद केवल हरियाणा एव उत्तर प्रदेश तक सीमित नही था । मध्य प्रदेश मे जनसघ एव समाजवादी गुटो के मध्य सघर्ष प्रारम्भ हो गया और जनसघ गुट ने मधुलिमिए एव समाजवादी घटक पर 'जनता पार्टी को सकट मे डालने का आरोप लगाया और राष्ट्रीय नेतृत्व से आग्रह किया कि उन तत्वो से कड़ाई से निपटा जाय जो पार्टी को तोड़ने का प्रयास कर रहे है ।[2] इस सम्पूर्ण गुटबाजी का सीधा प्रभाव केन्द्र पर पडा और राष्ट्रीय स्तर के गुटीय नेताओ के बीच आरोपो-प्रत्यारोपो का घिनौना खेल प्रारम्भ हो गया । भारतीय लोकदल गुट एव श्री राजनारायण ने पार्टी अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर से त्यागपत्र की माग की, क्योकि लोकदल गुट महसूस कर रहा था कि पार्टी मे 'पूर्व-काग्रेसी गुट' उनके विरुद्ध दुरभिसन्धि कर रहे है । 'पूर्व काग्रेसी गुट' ने पार्टी मे अनुशासन का मुद्दा उठाया । जनता पार्टी की ससदीय बोर्ड की बेठक मे श्री मोरारजी देसाई ने गुटीय नेताओ से अनुशासित रहने की अपील की और जब स्थिति काबू नही हुई तो प्रधानमन्त्री ने श्री चरणसिह एव श्री राजनारायण से त्याग पत्र माग लिया । 30 जून 1978 को श्री चरणसिह ने मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया । श्री देवीलाल ने इसे लोकदल के विरुद्ध विरोधी गुट का षड्यन्त्र कहा[3] श्री रवि राय ने जनता पार्टी के महासचिव पद से त्यागपत्र दे दिया और कहा कि श्री चरणसिह से त्यागपत्र मॉगना केन्द्रीय नेतृत्व की 'पूर्व नियोजित' चाल थी ।[4]

अपने कार्य-काल के प्रथम वर्ष मे ही जनता पार्टी खुले रूप से घटकवाद का शिकार हो गयी थी परन्तु यह अपने अन्तर्निहित गुटीय असन्तोषो एव हितो के समायोजन का कोई फार्मूला नही विकसित कर सकी । इस काल मे पार्टी मे घटकवाद की प्रकृति विशिष्ट थी, क्योकि पार्टी मोटे तौर पर दो गुटो में बॅटी थी 'पूर्व काग्रेस गुट' (सगठन काग्रेस, सी0 एफ0 डी0 एव चन्द्रशेखर गुट) और गैर काग्रेस गुट (भारतीय लोकदल एव जनसघ) । ससद मे पूर्व-काग्रेसियो की शक्ति गैर कांग्रेसी गुट की अपेक्षा कम थी, परन्तु इसी गुट सदस्य केन्द्रीय सरकार एव पार्टी के सर्वोच्च पदो पर आसीन थे । जबकि राज्य सरकारो मे इनका प्रभाव एव भागीदारी नगण्य थी । गैर-काग्रेसी गुट के साथ ठीक इसका उल्टा था अर्थात् केन्द्र मे इनका प्रभाव कम था, परन्तु राज्य सरकारो मे इनका पूर्ण दबदबा था । इन परिस्थितियो मे केन्द्रीय नेतृत्व शक्ति-सग्रह करने के लिये राज्य सरकारो मे हस्तक्षेप कर रहा था एव 'गैर काग्रेसी गुट' (मूलत भारतीय लोकदल गुट) केन्द्रीय नेतृत्व को कमजोर करने का प्रयास कर रहा था, जिससे तुलनात्मक रूप

---

1 दि स्टेटसमैन, दिल्ली, जून 6, 1978 ।

2 देखे, आर्गेनाइज़र, दिल्ली, मई 14 एव मई 21, 1978 ।

3 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, जुलाई 1, 1978 ।

4 वही, जुलाई 3, 1978 ।

मे उनके प्रभाव मे वृद्धि हो । इस गुटबन्दी ने पार्टी को अस्थिरता प्रदान की जिससे इसके काग्रेस के 'राष्ट्रीय विकल्प' के रूप मे उभरने का स्वप्न चूर-चूर हो गया ।[1]

द्वितीय वर्ष (1978-79) – जनता पार्टी के दूसरे वर्ष के कार्यकाल मे नवीन गुटीय समीकरणो का पुनर्निर्माण हुआ । इस काल मे जनसघ गुट अपना पक्ष बदलकर सगठन काग्रेस एव चन्द्रशेखर गुट के साथ हो गया । इससे नवीन कटुताओ का जन्म हुआ । भारतीय लोकदल गुट का मानना था कि श्री चरणसिह को पार्टी एव सरकार से निष्कासित करके उनकी स्थिति को कमजोर किया गया है और इसके लिये सभी गुट प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार है । वास्तव मे जिस समय श्री चरणसिह एव उनके गुट के मुख्यमन्त्री अपने अस्तित्व की लडाई लड रहे थे, उस समय अन्य घटक अपनी गुटीय शक्ति सग्रहित कर रहे थे । इसी शक्ति सग्रह की प्रक्रिया मे जनसघ गुट शनै -शनै भारतीय लोकदल गुट से दूर हटकर 'पूर्व काग्रेस गुट' के समीप जा रहा था । वह (जनसघ गुट) एक ओर श्री मोरार जी देसाई पर जोर डाल रही थी कि वे श्री चरणसिह को पुन सरकार मे ले ले और दूसरी ओर पार्टी मे अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये श्री मोरारजी देसाई एव श्री चन्द्रशेखर से गठबन्धन मे लगी थी । जनसघ गुट भारतीय लोकदल गुट के प्रति सशकित भी था क्योकि लोकदल ही पार्टी मे उनका सबसे बड़ा प्रतिद्वन्दी घटक था । इन परिस्थितियो मे लोकदल एव जनसघ गुट एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी बन गये और इस प्रतिद्वन्दिता मे, सगठन काग्रेस एव चन्द्रशेखर गुट ने लोकदल गुट के विरुद्ध जनसघ गुट का साथ दिया । यह नवीन गुटीय समीकरण जनता पार्टी के लिये घातक सिद्ध हुआ क्योकि जनसघ एव लोकदल गुटो के सहयोग से बनी राज्य सरकारो का अस्तित्व एव भविष्य सदिग्ध हो गया ।

24 जनवरी 1979 को श्री चरणसिह उप-प्रधानमत्री एव वित्त-मत्री बनकर मन्त्रिमण्डल मे लौटे । मन्त्रिमण्डल से बाहर रहकर उन्होने महसूस किया था कि अन्य गुटो की भॉति जनसघ भी छद्म-रूप मे उनकी जडे खोदने का प्रयास कर रही है । अत उन्होने सर्वप्रथम जनसघ गुट से ही निपटने की ठानी । जिस दिन वे केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में शामिल हुये, उसी दिन उत्तर प्रदेश के भारतीय लोकदल घटक के मुख्यमत्री श्री रामनरेश यादव ने चार कनिष्ठ मन्त्रियो को अपने मन्त्रिमण्डल से अलग कर दिया । इसमे दो जनसघ गुट के थे, जनसघ मे कोहराम मच गया, इस गुट ने मुख्यमन्त्री को हटाने की माग की और उ0 प्र0 सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया । विधान सभा मे शक्ति परीक्षण के दौरान श्री रामनरेश यादव विश्वासमत प्राप्त करने मे असफल रहे ।[2] इनके स्थान पर श्री चरणसिह और श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा के सहयोग से श्री बनारसी दास नये मुख्यमत्री बनाये गये । श्री बनारसी दास ने एक भी पूर्व जनसघा सदस्यो को मन्त्रिमण्डल मे शामिल नही किया और आर0 एस0 एस0 से सम्बन्धित 'दोहरी सदस्यता' का विवाद खडा करते हुये, जनसघ घटक को सत्ता से दूर रखा । यह घटनाक्रम जनता पार्टी के विघटन की वास्तविक शुरूआत थी । वास्तव में यहॉ भारतीय लोकदल गुट का मुख्यमत्री अवश्य बदल गया था परन्तु जनसघ गुट की जीत नही हुयी थी ।[3]

उत्तर प्रदेश की इस घटनाक्रम की प्रतिक्रिया अन्य राज्यो मे भी हुयी । बिहार, हिमाचल प्रदेश एव हरियाणा मे पूर्व भारतीय लोकदल एव जनसघ घटको का गुटीय सघर्ष प्रारम्भ हो गया । बिहार मे जनसघ गुट ने लोकदल

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, जून 22, 1978 ।

2 वही, फरवरी 20, 1979 ।

3 "न्यू हेल्समैन इन यू0 पी0", जनता, दिल्ली, वायलुम XXXIV न0 5, मार्च 4, 1979, पृ0 2 ।

घटक के मुख्यमत्री श्री कर्पूरी ठाकुर से समर्थन वापस ले लिया और उनके विरुद्ध अविश्वासमत पारित हो गया, उन्हे त्यागपत्र देना पडा । इनके स्थान पर श्री रामसुन्दर दास, जो समाजवादी थे और सगठन काग्रेस मे रह चुके थे, को नया नेता एव मुख्यमन्त्री चुना गया । हिमाचल प्रदेश मे लोकदल घटक के विधायको ने बगावत कर दी, परन्तु शक्ति परीक्षण के दौरान जनसघ घटक के मुख्यमत्री श्री शान्ताकुमार विश्वासमत प्राप्त करने मे सफल रहे ।[1] इसके बाद हरियाणा मे लोकदल गुट के मुख्यमत्री श्री देवीलाल को हटाने मे देर न लगी । जून 1979 मे पार्टी के ससदीय बोर्ड ने श्री देवी लाल को विश्वास मत प्राप्त करने को कहा । श्री देवीलाल अपनी वस्तुस्थिति से भली भॉति परिचित थे । अत उन्होने शक्ति परीक्षण से पूर्व ही मुख्यमन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया और श्री भजन लाल को नया नेता चुन लिया गया ।

राज्यो की राजनीति मे शक्ति परीक्षण के दौरान भारतीय लोकदल घटक ने उत्तर प्रदेश, बिहार और हरियाणा मे अपने तीन मुख्यमत्री खो दिये, जबकि राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और मध्य प्रदेश मे जनसघ के मुख्यमत्री बने रहे । इससे जनसघ गुट की अपेक्षा लोकदल गुट की स्थिति अत्यन्त कमजोर हो गयी । इसका सीधा प्रभाव केन्द्र पर पडा, लोकदल गुट ने केन्द्र सरकार के विरुद्ध बगावत का बिगुल बजा दिया और जनता पार्टी विघटन के कगार पर पहुच गयी । जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर स्वय को सुरक्षित रखने के लिये कभी इधर कभी उधर अपना दाव लगाते रहे, परन्तु वे पार्टी को समन्वित न रख सके और शायद उनमे क्षमता भी नही थी ।

जनता पार्टी के विघटन मे 'राज्यो की राजनीति' की प्रमुख भूमिका थी । राज्यो मे विधानसभा चुनावो के बाद जब सगठन काग्रेस ने बिहार एव उत्तर प्रदेश मे मुख्यमत्री का दावा पेश किया तो जनता पार्टी के प्रभावशाली गुटो (लोकदल एव जनसघ) को महसूस हुआ कि सगठन काग्रेस केन्द्र की तरह राज्यो मे भी प्रभाव जमाने का प्रयास कर रही है । अत यहॉ वे मित्र बन गये और उत्तर प्रदेश मे श्री रामनरेश यादव ने श्री रामधन को और बिहार मे श्री कर्पूरी ठाकुर ने श्री एस० एन० सिन्हा को हरा दिया । बाद के शक्ति सघर्ष मे लोकदल एव जनसघ गुट का एक दूसरे से मोह भग हुआ और 'लोकदल-जनसघ' सहयोग से बनी राज्य सरकारो का पतन प्रारम्भ हो गया ।

इन राज्य सरकारो के गिरने से दिल्ली की सरकार पर क्या और कैसे प्रभाव पड़ेगा, यह दिल्ली के पार्टी कार्यालय मे श्री सुरेन्द्र मोहन, श्री कर्पूरी ठाकुर एव श्री सुन्दर सिह भण्डारी वार्तालाप से स्पष्ट हो जाता है ।[2] उस समय उत्तर प्रदेश मे भी रामनरेश यादव की सरकार गिर चुकी थी और श्री कर्पूरी ठाकुर का बिहार मे विश्वासमत प्राप्त करना था ।

श्री कर्पूरी ठाकुर (श्री भण्डारी से) आप तो बिहार मे हमारा साथ देगे ही क्योकि आप हमारे पुराने 'गुट-मित्र' रहे है ।

श्री भण्डारी हम तो अछूत है । राम नरेश यादव ने हमारे आदमियो को लखनऊ से हटा दिया और बनारसी दास कहते है कि हम आर० एस० एस० के लोगो को सरकार मे नही रखेगे । जब हम लखनऊ मे अछूत है तो पटना मे आपका साथ कैसे दे सकते है ?

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, अप्रैल 19-20, 1979 ।
2 शोधकर्ता से भेंटवार्ता के दौरान श्री सुरेन्द्र मोहन ने इस अनौपचारिक वार्तालाप का अश सुनाया ।

श्री सुरेन्द्र मोहन फिर आप दिल्ली मे इनका साथ कैसे दे रहे है ? इस सरकार की भी छुट्टी होनी चाहिये ।

श्री भण्डारी आप दिल्ली की तुलना पटना से कर रहे हैं। क्या आप दोनो का फर्क नही समझते ?

श्री सुरेन्द्र मोहन माफ करना, मै फर्क समझता हूँ, परन्तु मै हवा का रूख भी पहचानता हूँ। यदि लखनऊ की आग पटना को जला सकती है, तो पटना की आग दिल्ली को भी जला सकती है। मेरा मानना है कि जिस दिन बिहार मे कर्पूरी ठाकुर की सरकार जायेगी, उसके 3-4 महीने बाद दिल्ली की सरकार भी चली जायेगी।

ज्ञातव्य है कि 19 अप्रैल, 1979 को बिहार मे कर्पूरी ठाकुर (भारतीय लोक दल गुट) की सरकार गिर गयी और इसके लगभग 3 महीने बाद (15 जुलाई, 1979 को) केन्द्र की जनता पार्टी की सरकार का भी पतन हो गया।

जून 1979 तक भारतीय लोकदल गुट ने अपने तीन मुख्यमत्री खो दिये जबकि जनसघ गुट के तीनो मुख्यमन्त्री बरकरार थे। जिस गुट के मुख्यमन्त्री अन्य गुटो के सहयोग से हटा दिये गये हो, उससे यह आशा करना निरर्थक है कि वह गुट केन्द्र मे अन्य गुटो का साथ देगा। सभी घटक-दल स्वार्थो एव शक्ति सघर्ष से प्रेरित थे एव राजनीतिक नैतिकता एव आदर्शो को भूल चुके थे। इसी पृष्ठभूमि लोकदल गुट केन्द्र सरकार से अलग हो गया, इससे जनता पार्टी का विभाजन एव जनता सरकार का पतन हो गया। इस दुर्भाग्य पूर्ण घटना क्रम के लिये लोकदल गुट सबसे ज्यादा उत्तरदायी है, परन्तु पार्टी के विघटन एव पतन के लिये कमोवेश रूप मे सभी घटक जिम्मेदार है। अत जनता पार्टी के पूरे कार्य काल मे घटकवाद हावी रहा। 'दोहरी सदस्यता' का मुद्दा, 'दलीय सगठन' के चुनाव, पार्टी मे 'नये सदस्यो की भर्ती,' 'राज्यो की राजनीति' इसी घटकवाद को ही प्रतिबिम्बित करते है। इसी कारण जनता पार्टी कभी भी सुदृढ़ एव एकीकृत रूप मे नही उभर सकी और घटकवाद का दबाव यहाँ तक पड़ा कि पार्टी मे फूट पड गयी और उसका पराभव प्रारम्भ हो गया।

जनता पार्टी एवं सरकार की प्रकृति : एक संविद व्यवस्था

जनता पार्टी का उदय भारतीय राजनीति की अभूतपूर्व घटना थी । छठी लोकसभा चुनाव मे इसकी विजय भारतीय राजनीतिक इतिहास की प्रथम गौरवमयी क्राति थी, जिसमे शान्तिपूर्ण ढग से एक अधिनायकवादी सरकार को अपदस्थ कर प्रजातात्रिक मूल्यो की पुनर्स्थापना की गयी थी । यह मॉग एक नवीन राजनीतिक व्यवस्था का प्रतीक नही, बल्कि श्री जय प्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्राति के स्वप्न को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का राजनीतिक प्रशासनिक एव नैतिक उपकरण भी थी । इसके कर्णधारो ने घोषणा की थी कि "1977 की प्रजातात्रिक क्राति के बाद एक नवीन राजनीतिक एव प्रशासनिक व्यवस्था जिसमे जनसाधारण प्रभावशाली ढग से भाग ले सकेगे, का विकास होगा ।"[1] परन्तु दुर्भाग्य से ऐसा कुछ भी नही हो सका । श्री जय प्रकाश नारायण ने प्रधानमत्री श्री मोरार जी को एक पत्र मे कहा कि "मै महसूस करता हूँ कि आप और आपके सहयोगियो ने उन लोगो की आकाक्षाओ को पूरा करने का उचित प्रयास नही किया, जिन्होने सन् 1977 मे आपको सत्ता सौपी थी ।"[2]

जनता पार्टी के पतन के पीछे बहुत से कारण काम कर रहे थे । जनता पार्टी के नेताओ की व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाये, मुख्यत प्रधानमत्री बनने की श्री चरण सिह की अमिट आकाक्षा, लोहियावादियो की विध्वसक सस्कृति, घटकवाद, आपातस्थिति के परिणामो से बच निकलने की श्रीमती इदिरा गॉधी और उसके बेटे की निराशोन्मुत्त कोशिशे और इनसे बढ़कर देश पर शासन करने की समस्याओ से पूरी तरह निपटने की जनता सरकार की नाकामयाबी । परन्तु इन सबसे महत्वपूर्ण जनता पार्टी की विचित्र राजनीतिक-संस्कृति एव जनता सरकार की 'सविद प्रकृति' थी, जिसने इन कारण रूपी 'नवजात पौधो ' को अत्यधिक उपजाऊ भूमि प्रदान की ।

जनता पार्टी की संस्कृति

जनता पार्टी की अगर कोई राजनीतिक-सस्कृति थी तो वह बहुत ही विचित्र राजनीति सस्कृति थी, जिसमें विभिन्न राजनीतिक धाराओ का समावेश था । इसमे जनसघ की सस्कृति थी जिसकी जड़े राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ मे थी, इसका सम्पूर्ण प्रयास एकात्मक अनुशासन और विशिष्ट समझौतावादी दोहरी राजनीतिक शैली के माध्यम से शक्ति-सग्रह पर था ।

जनता पार्टी मे एक और सस्कृति थी, जिसकी जड़े स्वतत्रता से पहले के दिनो की काग्रेस में थी । अब इसके कुछ अवशेष ही बचे थे, क्योकि राजनीतिक मच पर श्रीमती इंदिरा गॉधी के आने के बाद कांग्रेस मे सत्तालोलुपो की वह पीढ़ी हावी हो गयी थी जिसकी प्रतीक स्वय श्रीमती इदिरा गॉधी थी । जनता पार्टी मे वे पुराने काग्रेसी आये थे जो श्रीमती इदिरा गॉधी की प्रगतिशीलता की लहर आने के बाद काग्रेस मे अप्रासंगिक हो गये थे । इनके प्रतीक वृद्ध गॉधीवादी, श्री मोरार जी देसाई थे । "लेकिन अपने तमाम परम्परावादी और अक्खड़ व्यवहार के बावजूद, उनमें

---

1 श्री जय प्रकाश नारायण द्वारा श्री मोरार जी देसाई को लिखे गये पत्र से, मार्च 2, 1978 ।
2 वही ।

पुरानी दुनिया के कुछ सस्कार भी थे । वे टूट सकते थे, पर झुक नही सकते थे ।"[1]

जनता पार्टी मे एक और धारा आयी थी, जो सत्तालोलुप थी, चालबाजी की राजनीति की विशेषज्ञ थी और अन्दर से अमीरपरस्त थी । श्रीमती इदिरा गॉधी की काग्रेस से जनता पार्टी मे आये इस सस्कृति के लोग थे – श्री बीजू पटनायक, श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा, सुश्री नन्दिनी सतपथी और बाबू जगजीवन राम । इस धारा के प्रतीक "श्री जगजीवन राम मे वह तमाम कालिमा थी जो आजादी के बाद काग्रेस मे छा गयी थी । श्री जगजीवन राम की यह कालिमा उनके अच्छे प्रशासक होने की बहुप्रचारित क्षमता से नही ढॅक पाती थी ।"[2]

जनता पार्टी मे एक और छोटी-सी उप-सस्कृति के लोग भी थे, जो काग्रेस से आये थे । इसमे श्री चन्द्रशेखर थे । वह वर्षो श्रीमती इदिरा गॉधी के साथ रहे थे, लेकिन उनकी सस्कृति के साथ एकाकार नही हो पाये थे । "यह एक ऐसा 'हैमलेट' जैसा चरित्र था जिसका तन तो उनके साथ था, मगर मन नही । आचार्य नरेन्द्र देव की राजनीतिक पाठशाला मे पढ़े होने के कारण वह काग्रेस के बाहरी तत्व ही बने रहे । लेकिन यही उनकी शक्ति बन गयी ।"[3]

इसके अलावा जनता पार्टी मे कुछ बचे हुये समाजवादी थे । समाजवादी आन्दोलन मे टूटने और जुड़ने का सिलसिला लम्बे अरसे तक चला और यह (समाजवादी) पार्टी अनेको बार टूटी । समाजवादियो की दो धाराये जनता पार्टी मे आयी । इसमे श्री एस० एम०जोशी, श्री एन० जी० गोरे, श्री मधु दण्डवते जैसे समर्पित कार्यकर्ता प्रजा समाजवादी पार्टी वाले थे । ये लोग श्री राजनारायण, श्री मधुलिमिए और श्री जार्ज फर्नाण्डीज से भिन्न राजनीतिक चरित्र के थे । श्री राजनारायण ने अपने गुरु डा० राम मनोहर लोहिया के किसी महान गुण को नही, बल्कि उनके तमाम रूखेपन को विरासत के रूप मे अपना लिया था । श्री मधुलिमिए और कुछ अन्य लोग डा० लोहिया के बौद्धिक वारिस होने का अभिनय करते थे । इस पक्ष के सिद्धान्तवेत्ता ट्रेड यूनियन नेता श्री जार्ज फर्नाण्डीज ऐसे जुझारू व्यक्ति थे जो अचानक कुशल प्रशासक के तौर पर अपनी क्षमता प्रदर्शित करने को उत्सुक दिखाई पडते थे । लेकिन वह भूमिका उनके लिये मुनासिब नही थी । "भारतीय राजनीति का यह कबीला विध्वस और पार्टी तोड़ने का विशेषज्ञ था । वे केवल तोड सकते थे, जोड़ नही सकते थे ।"[4]

जनता पार्टी मे एक महत्वपूर्ण कुनबा भारतीय लोकदल का था, जिसे उत्तर भारत में ग्रामीण वर्गो एव मध्यवर्ती जातियों का पर्याप्त समर्थन प्राप्त था । स्वार्थो एव सिद्धान्तो मे भेद न करने वाले चौधरी चरण सिह इसके सर्वमान्य नेता थे । श्री जवाहर लाल नेहरू और श्रीमती इदिरा गॉधी की आर्थिक एव औद्योगिक नीतियो का विरोध करते हुये, इन्होने एक समर्पित किसान नेता की छवि बना ली थी और वे अपनी पार्टी को गॉधीवादी विरासत का वास्तविक उत्तराधिकारी मानते थे । उनका मानना था कि जनता पार्टी के असली निर्माता एव जीत के कारण वही है और उन्हे ही पार्टी तोडने का पूरा हक है ।

अत जनता पार्टी का निर्माण विभिन्न धाराओ, उपधाराओ एव राजनीतिक सस्कृति वाले कुनबो एव कबीलो

---

1 जनार्दन ठाकुर . "इदिरा गॉधी का राजनीति खेल" पूर्वोक्त, पृ 107 ।
2 वही, पृ 108 ।
3 वही ।
4 वही ।

से मिलकर हुआ था। ये राजनीतिक-सस्कृतियॉ एक-दूसरे से भिन्न ही नही बल्कि विरोधी भी थी। इसके अलावा इन कबीलो के प्रधानो के मध्य व्यक्तित्व एव अहम् का क्षुद्र एव भयकर टकराव भी था। गैर-काग्रेसवाद के तूफान एव 'इदिरा सस्कृति' के भय ने उन्हे एक स्थान पर लाकर एकत्रित कर दिया था, जहाँ उन्हे अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिये आपसी एकता के सिवा अन्य कोई चारा नही था। परन्तु जैसे ही इदिरा-सस्कृति रूपी दानव का भय इनके मन से हटा वैसे ही ये अपने क्षुद्र स्वार्थो के लिये एक-दूसरे से लड़ने-झगड़ने लगे। कुल मिलाकर जनता पार्टी 'भानुमती का पिटारा' थी एव उसमे ऐसी विध्वसक, महत्वाकाक्षी एव सत्तालोलुप सस्कृतियो की धाराये एव उपधाराये थी कि इसका पतन असम्भावी था।

दलीय संगठन की समस्यायें

व्यावहारिक रूप मे जनता पार्टी एक एकीकृत दल न होकर एक 'सन्विद व्यवस्था' थी, जिसका प्रत्येक घटक दलीय सगठन मे अपना प्रभाव जमाने का प्रयास कर रहा था ताकि सगठन के माध्यम से सत्ता मे अपनी पकड मजबूत कर सके। 'जनता पार्टी मे वास्तविक सघर्ष' उसके दलीय सगठन मे नियत्रण के लिये हुआ, यह सघर्ष जनता सरकार की नही बल्कि जनता पार्टी की सविद प्रकृति को उदघाटित करता है इस सदर्भ मे उन दो परस्पर सम्बन्धी मुद्दो का सक्षेप मे उल्लेख करना प्रासगिक होगा, जिनके कारण अन्त दलीय सघर्ष तीव्र हुआ (वेसे दलीय संगठन से सम्बन्धित समस्याओ की विस्तृत चर्चा इसी अध्याय के प्रथम उप-अध्याय मे की जा चुकी है)

प्रथम – जनता पार्टी के सभी घटक-दलो ने औपचारिक रूप से जनता पार्टी मे विलय की घोषणा कर दी थी, परन्तु उनके अन्य सहायक (क्रियात्मक) सगठन जैसे – युवा मोर्चा, ट्रेड यूनियन एव किसान सगठन – आदि अपना अलग अस्तित्व बनाये हुये थे। जनसघ घटक के पास एक अत्यन्त सगठित युवक दल (आर० एस० एस०) था। पार्टी के दूसरे घटक यह दबाव डाल रहे थे कि जनसघ एव आर. एस. एस के सम्बन्धो का मूल्याकन हो। जनसघ हमेशा यह दावा करती रही है कि आर० एस० एस० एक सास्कृतिक सगठन है। इसके अलावा आर० एस० एस० ने भी दावा किया था कि "यह एक सास्कृतिक सगठन है और इसके स्वयसेवक किसी भी राजनीतिक दल के सदस्य बनने के लिये स्वतत्र है ~"[1] परन्तु अन्य घटक इससे सहमत नही थे। जनसंघ और आर० एस० एस० के नेतागण एक ओर तो इसे पूर्णत सास्कृतिक सगठन कहते थे तथा दूसरी ओर बड़ी चालाकी से इसकी राजनीतिक महत्वाकाक्षाओ को भी स्वीकारते थे। बाला साहेब देवरस ने स्पष्ट कहा था कि "राजनीति मानव जीवन का आवश्यक तत्व है, यद्यपि आर. एस एस इससे अलग है परन्तु आर० एस० एस० का प्रत्येक स्वयसेवक राजनीति मे सक्रिय भाग लेने के लिये स्वतत्र है।[2]

विपक्षी एकता अभियान एव जनता पार्टी के निर्माण के दौरान आर० एस०. एस० का मुद्दा चर्चा मे था परन्तु विलय की व्यावहारिकता को देखते हुये इसे हाशिये मे डाल दिया गया था। जनता पार्टी के बनने के बाद जनसघी नेताओ ने इसे टालने का प्रयास किया। जनता पार्टी के नेता श्री मधुलिमिए का विचार था कि पार्टी के सभी घटको के

---

1 मदरलैण्ड, दिल्ली, फरवरी 8, 1975।
2 स्टेट्समैन, दिल्ली, अप्रैल 1, 1977।

स्वयसेवी एव सास्कृतिक सगठनो का एकीकरण हो जाये और इन सभी का जनता पार्टी मे विलय हो जाये । जनसघ एव आर. एस एस ने इस विचार का विरोध किया, आर एस एस के महामत्री श्री माधव राव मूले ने श्री मधुलिमिए से कहा कि "वे आर० एस० एस० को बहुत अच्छी सलाह न दे ।"[1] जनसघी नेता आर० एस० एस० का अन्य स्वयसेवी सगठनो एव जनता पार्टी के साथ विलय नही चाहते थे क्योंकि वे इस शक्तिशाली सगठन का प्रयोग मात्र अपने गुटीय हितो के लिये करना चाहते थे । श्री नानाजी देखमुख ने कहा "कि जब सर सघचालक ने स्पष्ट रूप से नकार दिया है तो जनता पार्टी एव आर० एस० एस० के विलय का प्रश्न ही नही उठता ।"[2] जनसघ के इस रवैये ने अन्य घटको मे शकाये उत्पन्न कर दी और उन्होंने इस मुद्दे को वैचारिक जामा पहनाकर तूल देने का प्रयास किया, इससे जनता पार्टी मे ऐसी दरार पड़ी जिसे कभी नही भरा जा सका ।

द्वितीय – जनता पार्टी के नेताओं के बीच आर० एस० एस० का मुद्दा एक मात्र झगड़े का कारण नही था, पार्टी मे नये सदस्यों की भर्ती एव सगठन के पदाधिकारियो का चुनाव भी अत्यन्त गम्भीर मुद्दा था । इसकी तारीखे अनेको बार बढ़ायी गयी परन्तु सदस्यो की भर्ती एव सगठन के चुनाव सम्पन्न नही हो सके, यह 'नवजात जनता पार्टी' के लिये एक महत्वपूर्ण चुनौती थी, जिसमे वह असफल रही । "वह राजनीतिक दल कैसे जीवित रह सकता है जो अपने चुनाव न करा सके, सदस्यों को सुचारू रूप से भर्ती न कर सके, जिसके नेतागण एक-दूसरे के खून के प्यासे हो, जिसके सदस्यो को कारण बताओ नोटिस दिया जा रहा हो, कुछ को निलम्बित किया जा रहा हो, मुख्यमत्री, मत्रियों को अपदस्थ कर रहे हो और विधानसभा मे 'विधायक दल' मुख्यमत्री को पदच्युत कर रहा हो ।"[3] यह सम्पूर्ण गाथा जनता पार्टी की है ।

श्री नानाजी देशमुख ने केन्द्रीय मत्री के पद को ठुकरा कर सगठन का महासचिव बनना स्वीकार किया था, उनकी सीधी दृष्टि 'दलीय सगठन' मे नियत्रण की थी । उनका विचार था कि आर० एस० एस० एव जनसघ की भॉति जनता पार्टी को शक्तिशाली अनुशासित सवर्ग (कैडर आधारित) की पार्टी बनाया जाय । 'कैडर-आधारित दल' का विचार 'सघीय' एव 'खुले' प्रजातात्रिक दल के विचार से पूर्णतया भिन्न है । श्री नानाजी देखमुख अपने विचार को इसलिये नही कार्यान्वित कर सके, क्योंकि जनता पार्टी के दूसरे घटक लचीले दलीय सगठन के समर्थक थे ।

इसके अलावा पार्टी के अन्य घटक दलो ने अनेको बार यह आशका भी व्यक्त की थी कि जनसघ घटक आर० एस० एस० के माध्यम से 'दलीय सगठन' के स्वरूप को विकृत करने और उसमे अपना आधिपत्य जमाने का प्रयास कर रहा है । इसी कारण पार्टी के अनेक घटको, जैसे कि भारतीय लोकदल एव सी० एफ० डी० गुट आदि ने सगठन के चुनाव को लगातार विरोध किया, उनका मानना था कि अगर चुनाव हुये तो सगठन मे जनसघ घटक का आधिपत्य हो जायेगा । जनता पार्टी के दलीय सगठन के चुनाव और सदस्यो की भर्ती के विषय मे पार्टी के नेताओ में गंभीर मतभेद एव अन्तर्विरोध थे लेकिन पार्टी किसी ऐसी प्रक्रिया का विकास न कर सकी, जिससे अन्तर्विरोधो का प्रशमन हो सके । सक्षेप मे "जनता पार्टी का 'दलीय सगठन' पार्टी के अन्दर शक्ति सघर्ष का मुख्य कारण था और जनता पार्टी का लगभग ढाई वर्षो के अस्तित्व की कहानी मूलत. पार्टी सगठन के ऊपर नियत्रण सम्बन्धी सघर्ष

1 आर्गेनाइजर, दिल्ली, अगस्त 29, 1977 ।

2 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, सितम्बर 1, 1977 ।

3 अरुण शौरी, "इस्टीट्यूशन इन दि जनता फेज", पापुलर प्रकाशन प्रा० लि० , बाम्बे, 1980 पृ 242 ।

पर आधारित थी ।'[1]

जनता पार्टी की सरकार : मूलतः एक संविद सरकार

छठी लोकसभा चुनाव के बाद केन्द्र मे जनता पार्टी की सरकार सत्तारुढ़ हुई । जनता पार्टी कभी भी अपने सुदृढ़ एव एकीकृत स्वरूप को नही प्राप्त कर सकी । इसमे हमेशा गुटबदी हावी रही, तथा दल एव सरकार दोनो स्तरो पर घटक दलो को लगभग उनकी शक्ति के अनुपात मे ही प्रतिनिधित्व दिया जाता रहा । अत मूलत यह एक मिली-जुली या 'सविद सरकार' ही थी, जिस पर जनता पार्टी का झीना आवरण डाल दिया गया था । यह एक सामान्य नही बल्कि 'विशिष्ट सविद व्यवस्था' थी, परन्तु इसमे 'सविद सरकार' के सभी गुण-दोष निहित थे । अब यह देखना है कि विभिन्न प्रकार की सविद व्यवस्थाओ मे यह किस प्रकार की 'सविद व्यवस्था' थी ।

एक ससदीय शासन व्यवस्था मे राजनीतिक सत्ता का प्रमुख केन्द्र मत्रिमण्डल होता है, जो अपने कार्यो के लिये सामूहिक रूप से ससद के प्रति उत्तरदायी होता है । ससदीय परम्परा के अनुरूप प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात ससद के निम्न सदन मे जिस दल को बहुमत प्राप्त होता है, सामान्यतया उसी दल के नेता को मत्रिमण्डल बनाने के लिये आमन्त्रित किया जाता है । इस प्रकार बहुमत प्राप्त दल द्वारा गठित मत्रिमण्डल को 'समदलीय (Homogeneous) मत्रिमण्डल' कहा जाता है क्योंकि इसके सारे सदस्य या मत्री एक दल के होते है ।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि विधानमण्डल मे किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नही होता । ऐसी स्थिति मे दो या दो से अधिक राजनीतिक दल 'न्यूनतम कार्यक्रम' के आधार पर सगठित हो जाते है और इस तरह बहुमत प्राप्त करके मत्रिमण्डल का गठन करते है । इसे 'सयुक्त मोर्चा मत्रिमण्डल', 'मिश्रित मंत्रिमण्डल', 'सविद सरकार' या 'मिली-जुली सरकार' कहा जाता है । ऐसे मत्रिमण्डल मे सामान्यतया उन सभी राजनीतिक दलो को प्रतिनिधित्व दिया जाता है, जो कुछ सामान्य सिद्धान्तो के आधार पर सगठित होते है, परन्तु सरकार मे शामिल होने के बाद भी घटक राजनीतिक दल अपने पृथक दलीय अस्तित्व को बनाये रखते है । कभी-कभी यह भी होता है कि कोई दल सरकार (मत्रिमण्डल) मे सम्मिलित हुये बगैर, सरकार को समर्थन देता रहता है ।

इसके अलावा कभी-कभी आम चुनाव के पूर्व कुछ राजनीतिक दल मिलकर एक निश्चित कार्यक्रम बना लेते है, उस निश्चित कार्यक्रम के आधार पर आपसी सामजस्य एव तालमेल स्थापित करते है और यदि चुनाव के बाद इन दलो को बहुमत प्राप्त हो जाता है तो सर्वसम्मति या मतदान से अपना नेता निर्वाचित कर लेते है, और नेता द्वारा निर्मित 'संविद मत्रिमण्डल' मे सभी दलो को यथोचित प्रतिनिधित्व दिया जाता है । ये मत्रिमण्डल समझौतावादी कार्यक्रम के अन्तर्गत मिलजुल कर कार्य करते है । "सामान्यत सविद का अर्थ 'अस्थायी गठबधन' है परन्तु राजनीतिक अर्थो मे सविद का तात्पर्य एक 'सहकारी व्यवस्था' से है जिसके अन्तर्गत विभिन्न राजनीतिक दल या प्रत्येक स्थिति मे इन दलो के सदस्य मिलकर सरकार या मत्रिमण्डल का निर्माण करते है ।"[2]

---

1 देखें, मारकस फ्रान्डा "स्माल इज पोलिटिक्स आर्गेनाइजेशनल अल्टरनेटिव्ज इन इण्डियाज रूरल डेवेलपमेण्ट", वेजली इस्टर्न लिमिटेड, दिल्ली 1979, पृ 195-225 ।

2 जे० सी० जौहरी "इण्डियन गवर्नमेण्ट एण्ड पोलिटिक्स", विशाल पब्लिकेशन्स, जालन्धर, सितम्बर, 1985, पृ 887 ।

राजनीतिक अर्थो मे उपरोक्त वर्णित सभी व्यवस्थाओ को प्रत्यक्ष, स्पष्ट या 'औपचारिक सविद सरकार' कहा जाता है । इनसे भिन्न कुछ सरकारे ऐसी होती है, जिन्हे औपचारिक अर्थो मे 'सविद सरकार' नही कहा जा सकता, परन्तु उनका मूल-चरित्र सविद ही होता है । इसे 'अन्तर्निहित सविद सरकार' कहते है, "इसम सत्ता एक दल मे निहित होती है, परन्तु यह दल अन्य दलो के अप्रकट या ज्ञेय सहयोग पर आश्रित रहता है ।"[1] इसी 'अन्तर्निहित सविद व्यवस्था' का एक अन्य रूप भी है, जिसमे विभिन्न राजनीतिक दलो का एक दल में विलय हो जाता है, और सत्ता औपचारिक रूप से एक दल मे निहित होती है, परन्तु इसके विभिन्न घटक दल अपना पृथक अस्तित्व बनाये रखते है । इस प्रकार यह सरकार अपने वास्तविक व्यवहार मे 'सविद सरकार' ही होती है । यद्यपि जनता सरकार एक दल की सरकार थी, परन्तु वास्तव मे यह एक प्रकार की 'अन्तर्निहित सविद व्यवस्था' थी । जनता सरकार की प्रकृति एव कार्य-प्रणाली देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि "जनता पार्टी की सरकार औपचारिक रूप से नही बल्कि वास्तविक रूप से एक 'सविद सरकार' था ।[2]

1977 के पूर्व भारत के राजनीति परिदृश्य मे 'मिली-जुली सरकारो' का अनुभव राज्यो की राजनीति मे हुआ था । छठी लोकसभा चुनाव के बाद मार्च 1977 मे सर्वप्रथम केन्द्र मे जनता पार्टी की 'विशिष्ट सविद सरकार' बनी, जिसका पतन 28 महीने मे हो गया । इसके पश्चात् केन्द्र मे भी 'सयुक्त मत्रिमण्डल' बनने का सिलसिला प्रारम्भ हो गया । जुलाई 1979 मे चौधरी चरण सिह के नेतृत्व मे बनी सरकार, जनता (एस0) और काग्रेस (एस0) की 'मिली-जुली सरकार' थी, जिसका तीन सप्ताह के अन्दर पतन हो गया । नवम्बर 1989 मे लोकसभा चुनाव के बाद दिसम्बर 1989 एक बार पुन केन्द्र मे श्री विश्वनाथ प्रताप सिह के नेतृत्व में 'जनता दल' की सविद सरकार बनी । इसका 11 महीने बाद नवम्बर 1990 मे पतन हो गया । सविद सरकार की अस्थिरता असम्भावी होती है, अत जनता पार्टी की सरकार का पतन स्वाभाविक एव सुनिश्चित था । इससे यह निष्कर्ष निकलता है "कि ससदीय प्रणाली का 'सयुक्त मत्रिमण्डल' के साथ तालमेल नही बैठाया जा सकता है ।"[3]

'सविद सरकार' अपनी अस्थायी प्रकृति के कारण बहुदलीय राजनीतिक व्यवस्था को उचित दिशा प्रदान नही करती, परन्तु अस्थायित्व ही इनका एकमात्र दोष नही है । ये अनेक अन्य दोषो से भी ग्रस्त होती है । जनता पार्टी सरकार की मूल प्रकृति को समझने के लिये उसका परीक्षण 'सविद सरकार' एव विशेष रूप से भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की सविद सरकारो के गुण-दोषो के आधार पर करना होगा, जो निम्नवत् है ।

प्रथम – सामान्यत 'सविद सरकारो 'के घटक दलो मे वैचारिक मतभेद पाया जाता है । इसमे ऐसे राजनीतिक गुट अपने साझा स्वार्थों के तहत एक झण्डे के नीचे आ जाते है, जिनकी राजनीतिक पृष्ठभूमि, विचारधारा, नीतियाँ एव कार्यक्रम एक-दूसरे से भिन्न होती है । ऐसी स्थिति मे एक सरकार मे इन दलो के प्रतिनिधियो का साथ-साथ कार्य करना कठिन हो जाता है ।

जनता पार्टी के घटको मे प्रारम्भ से ही विभिन्न मुद्दो पर गुटीय और व्यक्तिगत हितो का टकराव था । जनता

---

1 वही ।
2 आचार्य जे० बी० कृपलानी "दि नाइट मेयर एण्ड आफ्टर", पूर्वोक्त, पृ 222 ।
3 प्रेम भसीन "पोलिटिक्स नेशनल ऐण्ड इण्टरनेशनल", (एसोसिएटेड, नई दिल्ली), पृ० 16 ।

पार्टी के निर्माण के समय 'विलय' के प्रश्न पर विभिन्न घटकों मे मतभेद ऊभरे एव समय-समय पर अनेक मतभेद उभरते रहे । "जनता पार्टी मे ऐसे समूह शामिल थे जिनकी राजनीतिक पृष्ठभूमि, सामाजिक आधार और विचारधारायें एक-दूसरे से भिन्न ही नही कई प्रकार से विपरीत भी थी, उदाहरण के लिये हिन्दू राष्ट्रवाद से जुड़ा हुआ दक्षिणपथी भारतीय जनसघ तथा वामपथी रुझान का पूर्णत धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी दल ।"[1] भरतीय लोकदल गुट एव समाजवादियो ने "दोहरी सदस्यता" का मुद्दा 'धर्म निरपेक्षता बनाम साम्प्रदायिकता' के तर्ज पर उठाया । इन मुद्दो के पीछे अन्य कारण भी थे परन्तु वैचारिक पृष्ठभूमि ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी कि एक सविद- सरकार की भॉति जनता सरकार का पतन हो गया ।

वास्तव मे भारतीय लोकदल गुट एव समाजवादियो ने जनसघ गुट के बढते हुये प्रभुत्व और प्रभाव को कमजोर बनाने के लिये 'दोहरी सदस्यता' का आरोप सबसे सुविधाजनक समझा क्योकि इसके सहारे पूरे विवाद को "साम्प्रदायिकता बनाम धर्म निरपेक्षता" मे बदला जा सकता था, यद्यपि समझते थे कि यह महज एक राजनीतिक चाल थी । भारतीय राजनीति मे समय-समय पर निरन्तर अपने को धर्म निरपेक्ष कहने वाले राजनीतिज्ञो और राजनीतिक दलो द्वारा इसका प्रयोग होता रहा है ।

द्वितीय– ससदीय व्यवस्था मे मत्रिमण्डल सामूहिक-उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य करता है, सविद-सरकारे ससदीय नियमो एव सिद्धान्तो की व्यापक अवहेलना करती है । इन सरकारो मे एक मत्री सार्वजनिक रूप से दूसरे मत्री की आलोचना करता है । सरकार का एक घटक अपनी ही सरकार का मजाक उड़ाता है एव उनके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव का समर्थन करता है । इससे सरकार का पतन असम्भावी हो जाता है । जनता पार्टी भी पूर्णतया इस रोग से ग्रस्त थी । केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के सदस्य होते हुय भी श्री चरणसिह एव श्री राजनारायण ने प्रधानमत्री श्री मोरारजी दसाई एव पार्टी अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर की सार्वजनिक आलोचना करते रहे । श्री चरणसिह श्रीमती इदिरा गाधी के विरुद्ध सख्त और शीघ्र कानूनी कार्यवाही की माग करते हुये कहा कि, "लोग सोचने लगे है कि सरकार मे हम सब 'नपुसक लोगो का झुड' है, जो देश का शासन नही चला सकते ।"[2] श्री चरणसिह का यह वक्तव्य सामूहिक-उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का स्पष्ट उल्लघन था । जनता पार्टी के अनेक मन्त्री एव सासद ऐसे समय पार्टी छोड़कर चले गये जब विरोधी पक्ष ने अविश्वास प्रस्ताव के जरिये उस पर सीधा प्रहार किया । "अविश्वास प्रस्ताव केवल प्रधानमत्री के विरुद्ध नही बल्कि सम्पूर्ण सरकार के विरुद्ध था । ससदीय व्यवस्था मे मन्त्रियो का ऐसा आचरण अपराध एव अक्षम्य है ।"[3]

इसके आलावा जनता पार्टी शासित राज्यो की सरकारे मौलिक रूप से सविद-सरकारे ही थी । जब उत्तर प्रदेश के मुख्यमत्री श्री रामनरेश यादव ने अपनी सरकार से जनसघ घटक के मन्त्रियो को बर्खास्त कर दिया, तो जनसघ ने उत्तर प्रदेश सरकार से समर्थन वापस ले लिया और उनकी सरकार गिर गयी । इसके बाद जनसघ गुट ने बिहार मे

---

1 जोया खलिक हसन, "अन्य राष्ट्रीय दल जनता, लोकदल एव भारतीय जनता पार्टी" (लेख), प्रो सुशीला कौशिक (सम्पादित) "भारतीय शासन एव राजनीति", हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 1985, पृ 467 ।

2 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, जून 29, 1978 ।

3 श्री चन्द्रशेखर "जनता पार्टी के साथ विश्वासघात" लेख, "सिद्धान्त या अवसरवादिता" ? पूर्वोक्त, पृ0 6 ।

कर्पूरी ठाकुर एव हरियाणा मे श्री देवी लाल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव का समर्थन किया । अत अपनी सविद प्रकृति के कारण केन्द्र एव राज्य दोनो स्तर पर जनता सरकारे ससदीय नियमो की अवहेलना करती रही ।

तृतीय 'मिले-जुले मन्त्रिमण्डल' के कार्यकाल मे तनाव एव प्रचड गुटबदी का समावेश होता है । जनता पार्टी का पूरा इतिहास तनाव एव गुटबन्दी का ज्वलत दस्तावेज है । जनता पार्टी के निर्माण, जनता सरकार के गठन, राज्यो मे विधानसभाओ के चुनाव, एव सरकार के सचालन आदि मे जनता पार्टी के विभिन्न घटको एव गुटीय नेताओ मे व्यापक तनाव एव गुटबन्दी की स्थिति थी । "जनता पार्टी के सत्तारूढ़ होने के तुरन्त बाद घटको द्वारा अलग-अलग प्रभाव क्षेत्र बनाने के खुलकर प्रयत्न किये गये । इसके लिये किसी गुट विशेष को दोष नही दिया जा सकता ।"[1] परन्तु यह गुटबदी जनसघ एव भारतीय लोकदल गुट के बीच अधिक थी क्योकि यह दोनो शक्तिशाली घटक थे और "इसलिए दोनो मे 'दलीय की सगठन एव शक्ति' के ढॉचे को प्रभावित करने की होड़ थी । इन दोनो ने एक दूसरे को दुर्बल करने का प्रयत्न किया, परन्तु इस प्रयत्न मे वे जनता पार्टी को ही खडित कर बैठे ।"[2]

चतुर्थ सविद- सरकारो के विधायको, सासदो और नेताओ मे पदलोलुपता अपनी चरम सीमा पर होती है । जो गुट एव व्यक्ति सरकार मे मनचाहा पद प्राप्त करने मे विफल होते है, वे सरकार को कमजोर करने या दूसरी सरकार बनाने का प्रयत्न करने लगते है, ताकि उनकी महत्वाकाक्षा पूर्ण हो सके । ये व्यक्ति या गुट अवसरवादी एव सत्तालोलुप होते है, जिन्हे व्यक्तिगत स्वार्थो के सिवा कुछ नही दिखता । जनता पार्टी की सरकार का इतिहास सविद-सरकार के इस चरित्र को उद्‌घाटित करता है । "चौधरी चरणसिह इस वास्तविकता से कभी सामजस्य न कर सके कि वे देश के प्रधानमन्त्री नही बन सके थे । सभी राजनीतिक प्रश्न जो वे उठा रहे थे देश का प्रधानमन्त्री बनने की उनकी महत्वाकाक्षा के मूलाधार पर बने ऊपरी ढॉचे मात्र थे ।" प्रधानमत्री बनने के बाद बिना किसी वाक्छल के धृष्टता पूर्वक घोषणा की कि– "मेरे जीवन की महत्वाकाक्षा पूरी हो गयी ।"[3] जनता पार्टी के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पेश होने के बाद जिस प्रकार सासदो एव मन्त्रियो ने जनता सरकार से त्यागपत्र दिये इससे उनकी राजनीतिक अवसरवादिता, महत्वाकाक्षा एव पदलोलुपता सिद्ध होती है ।

पचम सविद सरकारो के घटकदलो मे नकारात्मक ध्रुवीकरण की प्रवृत्ति भी पायी जाती है । भारतीय राजनीतिक व्यवस्था मे सविद सरकारो की प्रेरणा इस निश्चय से मिली कि काग्रेस दल की सरकार न बनने दी जाय । डा0 राम मनोहर लोहिया ने यह मत प्रतिपादित किया था कि चुनाव मे काग्रेस की विजय का कारण गैर-काग्रेसी दलो मे एकता का अभाव है, और वे 'सयुक्त मोर्चा' बनाकर काग्रेस को हरा सकते है । अत 1967 के पश्चात् भारतीय दलीय व्यवस्था मे 'नकारात्मक ध्रुवीकरण' को अधिक बल मिला । इसी प्रवृत्ति के कारण 1967-1971 के बीच अनेक राज्यो मे 'गैर काग्रेसी सविद सरकारे बनी । मार्च 1977 मे केन्द्र मे सत्तारूढ़ जनता पार्टी के गठन का मूलाधार 'इदिरा हटाओ' और 'गैर-काग्रेसवाद' का नकारात्मक दृष्टिकोण ही था । वास्तव म "जनता पार्टी का तत्कालीन आधार तो आपातकाल विरोधी भावना से आया ।"

---

1 वही, पृ0 5 ।

2 जोया खलिक हुसैन पूर्वोक्त पृ0 478 ।

3 मधुदण्डवते, "सत्ता की राजनीति एव वर्तमान राजनीतिक सकट", 'सिद्धान्त या अवसरवादिता ?', पूर्वोक्त, पृ0 18-19 ।

षष्ठम 'सविद सरकारे 'अस्थिरता के असाध्य रोग से पीडित होती है और इसी क्रम मे ये सरकारे दल-बदल की भी प्रेरक होती है । दल बदल के पश्चात पुन 'नयी सविद सरकारो' का गठन होता है । वास्तव मे सविद- सरकारो के घटको मे कोई ताल-मेल नही होता, अत ये सरकारे अस्थायी होती है । प्रो0 कोठारी के अनुसार "1967 के बाद गैर-काग्रेसी दलो मे गठजोड़ होते रहे है । अनेक बार ये गठजोड बिल्कुल विरोधी एव विपरीत दलो मे हुये है । ये गठजोड भानुमती के कुनबे जैसे है । फलस्वरूप ये 'गैर-काग्रेसी सयुक्त सरकारे ' ज्यादा दिन न चल सकी और एक के बाद एक गिरती चली गयी ।"[1] प्रो0 कोठारी का यह कथन जनता पार्टी सरकार के सन्दर्भ मे खरा उतरता है ।

जनता पार्टी का वास्तविक पतन दल- बदल के कारण ही हुआ । जब केन्द्रीय मन्त्री श्री राजनारायण को उनकी सरकार विरोधी गतिविधियो के लिये पार्टी की कार्यकारिणी से निकाल दिया गया तो वे पार्टी से अलग हो गये और अपने नये गुट का नाम 'जनता पार्टी (एस0)' रखा । इसके बाद दल-बदल का व्यापक सिलसिला प्रारम्भ हो गया । जनता पार्टी के कुछ सदस्यो ने ऐसे समय पार्टी छोडने का निश्चय किया जब विपक्ष द्वारा लोकसभा मे अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसके फलस्वरूप जनता पार्टी की सरकार गिर गयी । जनता सरकार मूलत सविद सरकार थी, इसकी अस्थिरता इसकी मूल प्रवृत्ति मे ही निहित थी । अत इसका पतन भी असम्भावी था ।

इस विवेचना से स्पष्ट होता हे कि जनता पार्टी की सरकार औपचारिक रूप से नही, परन्तु व्यावहारिक रूप से एक 'सविद व्यवस्था' थी । इसमे 'सविद सरकार' के सभी गुण-दोष निहित थे । जनता पार्टी-जनसघ, भारतीय लोकदल, समाजवादी पार्टी, सगठन काग्रेस एव सी0 एफ0 डी0 आदि घटको से मिलकर बनी थी । जिस प्रकार सन्तरे के कोमल आवरण के नीचे इसकी फॉके पूर्णत अलग-अलग होती है, उसी प्रकार जनता पार्टी के झीने आवरण के नीचे इसके सभी घटक अपना पृथक अस्तित्व बनाये हुये थे । साथ ही साथ जनता सरकार मे इन घटको के मध्य मतभेद एव विसगतियॉ, गुटबन्दी और तनाव, व्यक्तिगत स्वार्थ, अवसरवादिता और पदलोलुपता आदि लक्षण इसकी 'सविद प्रकृति' को ही उद्घाटित करते है । अपनी 'सविद प्रकृति' के कारण ही श्री जयप्रकाश नारायण जैसे महापुरुष की छत्रछाया मे भी जनता पार्टी (एव सरकार) एकता का प्रदर्शन न कर सकी । इसी प्रकार प्रारम्भ से ही इसका अस्तित्व आशंकित था । कृत्रिम गठजोड (Patch - Work) की अपनी सीमित आयु होती है । जनता सरकार अपने ही कर्णधारो के परस्पर सघातिक प्रहार से चरमराने लगी ओर मध्य जुलाई 1979 को श्री मोरार जी देसाई के त्यागपत्र के पश्चात् 28 महीने पुरानी जनता सरकार की 'सविद व्यवस्था' का अन्त हो गया ।

---

1 रजनी कोठारी "भारत मे राजनीति", पूर्वोक्त, पृ0 128 ।

जनता पार्टी नेताओं की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षायें एवं सत्तालोलुपताः त्रिमूर्ति विवाद

जिन परिस्थितियो मे जनता पार्टी का गठन हुआ था, उसमे घटको एव गुटीय नेताओ के मध्य मतभेद होना स्वाभाविक था । किसी भी ऐसी पार्टी, जो आकस्मिक एव आसाधारण परिस्थितियो से पैदा हुयी हो, के लिये इन मतभेदो का निवारण अत्यावश्यक था । यह जनता पार्टी के नेताओ की दूरदर्शिता, राजनीतिक सूझबूझ एव नैतिकता से ही सम्भव था और इससे जनता पार्टी 'काग्रेस के राष्ट्रीय विकल्प' के रुप मे उभर कर आती । परन्तु पार्टी के नेताओ मे उस क्षमता एव चरित्र का अभाव था जिसके आधार पर यह आशा की जा सकती कि वे पार्टी को परिस्थितियो के अनुरुप दिशा दे सकेंगे । पार्टी एव सरकार के स्तर पर उठे विभिन्न विवादो के सुलझाने की प्रक्रिया को केवल शिखर वार्ताओ एव राजनीतिक जोड- तोड तक ही समिति कर दिया गया । परिणाम स्वरुप आन्तरिक विग्रह से ग्रस्त जनता पार्टी का वही हश्र हुआ जिसकी आशका थी । नि सन्देह राजनीति के इस घटनाक्रम मे गुटीय नेताओ की व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओ, पदलोलुपता, स्वार्थपरता एव अवसर-वादिता का खुलकर प्रदर्शन हुआ ।

श्रीमती इदिरा गॉधी की निरकुशता से अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये अनेक गुटो के नेतागण जनता पार्टी रुपी 'दुर्ग' मे एकत्र हुये थे । परन्तु जैसे ही इस बाध्य शत्रु से मुक्ति मिली, वे आपस मे लड़ने- झगड़ने लगे । "श्रीमती इदिरा गॉधी के पतन के साथ पैदा हुये उन्माद ने उन्हे वस्तु स्थिति के प्रति अन्धा बना दिया था । राजघाट मे शपथ लेने के एक घटे के भीतर नेताओ के राजनीतिक दभ का टकराव शुरु हो गया था ।" [1] सत्ता के मद मे चूर इन नेताओ के बीच ऐसा सघर्ष प्रारम्भ हुआ कि इन्होने न केवल एक दूसरे के अस्तित्व को मिटाया बल्कि सम्पूर्ण 'दुर्ग' को ही तहस-नहस कर दिया ।

जनता पार्टी एव सरकार के सभी चोटी के नेताओ ने ऐसा व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया कि जैसे जीत उनके ही कारण हुई है । पार्टी की सर्वोच्च त्रिमूर्ति श्री मोरारजी देसाई, श्री जगजीवन राम और श्री चरणसिह के बीच हमेशा शीत- युद्ध चलता रहा, जो बाद मे खुले सघर्ष मे बदल गया ।

श्री मोरार जी देसाई

श्री मोरारजी देसाई पार्टी के सबसे वयोवृद्ध नेता थे और पार्टी उनकी अध्यक्षता मे जीती थी, अत वे स्वय को सर्वोच्च एव प्रधानमन्त्री पद का दावेदार समझते थे । "वे हमेशा यही सोचते आये थे कि श्री जवाहर लाल नेहरु के बाद प्रधान मन्त्री के वाजिब उत्तराधिकारी वही थे,राजनीतिक के छोटे-2 लोगों ने अपनी चालबाजियों से उन्हे प्रधान मन्त्री नही बनने दिया ।" [2]

---

1. जनार्दन ठाकुर "इदिरा गॉधी का राजनीतिक खेल, पूर्वोक्त, पृ0 २८
2. जनार्दन ठाकुर इदिरा गॉधी का राजनीतिक खेल, पूर्वोक्त, पृ0 10

तनाव और खीचातानी तो विलय के समय से ही पैदा हो गयी थी । श्री मोरार जी देसाई सर्वप्रथम तो विलय को 'पाप' समझत थे और द्वितीय वे सगठन- काग्रेस का विलय किसी ऐसे दल मे नही चाहते थे जिसके अध्यक्ष वे स्वय न हो और उन्होने ऐसा ही किया । लोकसभा चुनाव के समय जब श्री चरणसिह ने उत्तर भारत मे चुनाव सचालन की मॉग की तो श्री देसाई ने अस्वीकार करते हुये कहा, 'मैं अखिल भारतीय अध्यक्ष हूँ । ऐसा लगा कि सारा ढॉचा चरमरा जायेगा । बाद मे श्री मोरारजी देसाई ने बडी कठिनाई से यह बात स्वीकार की कि श्री चरणसिह को उत्तर भारत का चुनाव प्रभारी बनाया जाय ।'[1] लोक सभा के चुनाव मे विजय के बाद श्री मोरार जी देसाई का सर्व सम्मति से प्रधानमन्त्री पद पर मनोनयन हुआ, परतु सर्व सम्मति की आड मे जिस प्रकार की राजनीतिक चाले चली गयी उससे प्रत्यक्ष रुप से श्री जग जीवन राम और अप्रत्यक्ष रुप से श्री चरणसिह आहत हुये ।

प्रधानमन्त्री बनते ही श्री मोरार जी सर्वोच्च की तरह व्यवहार करने लगे । उन्होने सरकार मे अपना दबदबा बनाये रखने के लिये सगठन- काग्रेस को मन्त्रिमण्डल में सबसे ज्यादा स्थान प्रदान किया, जबकि लोक सभा मे सगठन काग्रेस के सदस्यो की सख्या काफी कम थी । इससे अन्य घटक - दलो मे असन्तोष उभरा और इसी कारण विधान सभा चुनाव के बाद राज्यो मे जनता सरकारो के गठन क समय घटक परक आस्थाये कठोर हो गयी । अत जब 'मोरार जी गुट' ने राज्यो मे अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये अपने दावे प्रस्तुत किये तो भारतीय लोक दल एव जनसघ गुट ने आपसी सहमति से अन्य घटको को बाहर कर दिया । इससे सत्ता सघर्ष मे वृद्धि हुई । जनसघी नेता बड़ी सौम्यता से अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे थे । जनसघ लोकसभा मे सबसे बड़ा गुट थाऔर उसका मानना था कि "राज्यो मे जनसघ और भारतीय लोकदल के एक हो जाने से यह गठबन्धन अपराजेय और लाभदायक रहेगा । शीघ्र ही जनसघ ने दोहरी नीति अपना ली- केन्द्र मे श्री मोरार जी देसाई के साथ और जनता पार्टी शासित राज्यो मे श्री चरण सिह के साथ ।"[2]

श्री जगजीवन राम

सर्वोच्च त्रिमूर्ति मे दूसरा नाम श्री जगजीवन राम का था । उन्होने भी प्रधानमन्त्री बनने की आकाक्षा श्री मोरार जी देसाई और श्री चरणसिह की तरह पाल रखी थी । उन्हे भी पूर्ण विश्वास था कि जनता पार्टी की जीत उन्ही के कारण हुई है । यदि लोकसभा चुनाव की घोषणा के बाद उन्होने काग्रेस से त्यागपत्र देकर धमाका न किया होता तो श्रीमती इदिरा गॉधी पुन सत्ता मे आ जाती । श्री जग जीवन राम का काग्रेस पार्टी से त्यागपत्र निश्चित रुप से अवसरवादी राजनीति का परिणाम था । उन्होंने काग्रेस को तभी छोड़ा जब उन्हें विश्वास हो गया कि अगले लोकसभा चुनाव मे श्रीमती इदिरा गॉधी बुरी तरह से पराजित होने वाली है । अन्य सत्तालोलुपो की भॉति उनकी भी दृष्टि प्रधानमन्त्री की कुर्सी पर थी । उनका मानना था कि, "अगर वह आज प्रधानमन्त्री नही बन सकते थे, तो उन्होने श्रीमती इदिरा

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, जनवरी 25 1977
2. जनार्दन ठाकुर पूर्वोक्त, पृ0 111

गॉधी का साथ ही क्यो छोडा ? अगर केवल मत्री बने रहना होता तो तानाशाही के खिलाफ उनकी लडाई का तुक ही क्या था ? " [1] उनके सहायक श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा उनसे ज्यादा निराशा हुये थे, जिन्होंने यह आशा बॉध रखी थी कि बाबूजी की कुर्सी के पीछे शासन चलायेगे ।

प्रारम्भ से ही श्री जग जीवन राम और उनकी पार्टी सी0 एफ0 डी0 का दृष्टिकोण जनता पार्टी के प्रति समझौतावादी नही बल्कि सौदेबाजी का था । यह माना जाता था कि लोकसभा चुनाव के बाद सी0 एफ0 डी0 का जनता पार्टी मे विलय सरलता से हो जायेगा । "परन्तु सी0 एफ0 डी0 ही नेताओं का दृष्टिकोण उनके जनता पार्टी मे विलय के प्रति गम्भीर एव अनुकूल नही था । उनके कार्यकलापो से ऐसा प्रतीत होता था, कि वे अपने आपको प्रबल सौदेबाजी की स्थिति मे रखना चाहते थे ।" [2] उदाहरण के लिये, प्रथम- लौक सभा चुनाव, के बाद श्री जग जीवन राम ने घोषणा की कि 'उनकी पार्टी ससद के अन्दर एव बाहर एक अलग सगठन के रुप मे रहेगी ।'[3] अर्थात उनकी पार्टी जनता पार्टी मे विलय की कमोवेश अनिच्छुक थी । द्वितीय- जब श्री जगजीवन राम प्रधानमन्त्री नही बन सके तो उन्होंने और श्री एच0 एन0 बहुगुणा ने केन्द्रीय मन्त्रिभण्डल मे शामिल होने पर हिचकिचाहट दिखाई । बाद मे व्यापक जन समुदाय के दबाव मे इन दोनो घटनाओं ने नाटकीय एव सकारात्मक मोड लिया । इससे श्री जगजीवन राम की महत्वाकाक्षाओ की पूर्ति नही हुई । यह सम्पूर्ण घटनाक्रम जनता पार्टी के अस्तित्व एव भविष्य के लिये घातक सिद्ध हुआ, क्योंकि सी0 एफ0 डी0 गुट के नेताओं का मन साफ नही हुआ था ।

श्री चरणसिंह

सत्तालोलुपो एव अवसरवादी राजनीतिज्ञों की जमात में तीसरा परन्तु सर्वप्रमुख नाम चौधरी चरणसिह का है । एक दिन के लिये भी वह सरकार और दल मे अपनी दोयम स्थिति नही स्वीकार कर पाये थे । जनता पार्टी के गठन एव विजय का मुख्य नायक वे स्वय को मानते थे । वे इस पूर्वाग्रह से ग्रस्त थे कि सन् 1969 मे पहली बार उन्होंने उत्तर प्रदेश के विधान सभा चुनाव मे 100 सीटें जीतकर काग्रेस को गम्भीर चुनौती दी थी, और गैर-काग्रेसवाद की अमली जामा पहनाया था । "श्री चरणसिह मानते थे कि जनता पार्टी 'सयुक्त विधायक दल' का राष्ट्रीय सस्करण है । चूकि उन्होंने रॉज्य स्तर पर इसका नेतृत्व किया था । अत· राष्ट्रीय स्तर पर भी नेतृत्व का अवसर उन्हे मिलना चाहिये ।" [4] इस पूर्वाग्रह से ग्रस्त चौधरी साहब यह सोच भी नहीं सकते थे कि उन्हे 'जनता सरकार' मे प्रधानमत्री नही बनाया जायेगा ।

जब जनता पार्टी के गठन की प्रक्रिया चल रही थी, उस समय चोटी के नेताओं की महत्वाकाक्षाओं धरातल पर आ गयी थी । श्री मोरार जी विलय के विरोधी थे, जबकि श्री चरणसिह 'विलय' के प्रबल समर्थक थे । जब विलय का प्रस्ताव स्वीकार हो गया तो वे समझते थे कि वही इसके स्वाभाविक अध्यक्ष होगे । परतु जब उनके ही दल के महामन्त्री पीलू मोदी ने अध्यक्ष पद के लिये श्री मोरार जी देसाई का नाम सुझाया, तो उन्हे धक्का लगा । बाद मे श्री

---

1. जनार्दन ठाकुर "इदिरा गाधी का राजनीतिक खेल" पूर्वोक्त, पृ0 109
2. हॉर्स्ट हार्टमैन "पोलिटिकल पार्टीज इन इण्डिया", पूर्वोक्त, पृ0 272
3. दि इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, मार्च 21, 1977
4. अरुण गॉधी "दि मोरार जी पेपर्स फाल आफ दि जनता गवर्नमेंट", विजन बुक्स प्रा0 लि0, दिल्ली, 1984, पृ0 54

चरणसिह ने कुपित होकर पीलू मोदी पर आरोप लगाया कि "तुमने मेरा नाम इसलिये नही प्रस्तावित किया कि मै गुजराती नही हूँ ।"[1] प्रधानमत्री के चयन के समय जब जनसघी नेताओ मे श्री चरणसिह का साथ नही दिया, तो बदले मे उन्होने श्री जगजीवन राम के खिलाफ अपनी घृणा का प्रदर्शन करते हुये मजबूरी मे श्री मोरार जी का समर्थन किया । श्री चरणसिह को दूसरा आघात तब लगा, जब उनके गुट के कर्पूरी ठाकुर के बजाय श्री जय प्रकाश नारायण ने श्री चन्द्रशेखर का पार्टी का अध्यक्ष बनाया ।

अहम् का टकराव

जनता पार्टी के सर्वोच्च नेता त्रय- श्री मोरार जी देसाई, श्री चरणसिह और श्री जगजीवन राम- किसी भी मुद्दे मे एक दूसरे के सामने झुकने को तैयार नही थे । इन तीनो नेताओ ने विभिन्न समयो मे काग्रेस छोडी थी, सबसे पहले श्री चरणसिह ने (1967) उसके बाद श्री मोरारजी देसाई ने (1969) और सबसे बाद श्री जगजीवन राम ने (1977) । इन नेताओ द्वारा काग्रेस छोड़ने का मूल कारण यह था कि इन्हे सत्ता मे समुचित भागीदारी नही मिल रही थी और सत्ता के दायरे मे इनकी उपेक्षा हो रही थी । इन तीनो नेताओ ने स्वय को मूल काग्रेस दल से अलग करके स्वय अपने 'नवीन दल' का गठन किया था । अत इनके लिये यह सम्भव नही था, कि वे किसी अन्य छोटे राजनीतिक दल (काग्रेस की तुलना) मे विलय करके उसमे अपनी द्वितीयक स्थिति स्वीकार करे । इसके आलावा काग्रेस द्वारा इनकी उपेक्षा से जन्मी राजनीतिक कुठा और अहम् ने इन्हे असमझौतावादी बना दिया था ।

श्री चरणसिह स्वय को महान जन-नेता समझते थे, श्री जगजीवन राम स्वय को एक कुशल प्रशासक एव कूट नीतिज्ञ तथा श्री मोरार जी देसाई का हाल यह था कि वे किसी भी राजनीतिक सकट मे अपने दृष्टिकोणको भ्रमातीत समझते थे । यही कारण था कि श्री जय प्रकाश नारायण की अनेक अपीलो के बावजूद इन सर्वोच्च त्रिमूर्तियो ने जनता पार्टी की एकता बनाये रखने के लिये खुले हृदय से न तो प्रयास किया और न ही आपसी मतभेदो को दूर किया ।

जनता पार्टी के मन्त्रिमण्डल मे एक से बढकर एक अनुभवी और योग्य प्रशासक एव राजनीतिज्ञ थे, परन्तु लोगो के नजरो मे इसकी साख गिरती जा रही थी । जनता पार्टी के वयोवृद्ध शुभ चिन्तक आचार्य कृपलानी का मानना था कि "जनता पार्टी और सरकार के तीन सर्वोच्च नेताओ - श्री मोरार जी, श्री जगजीवन राम और श्री चरणसिह- के बीच गम्भीर मतभेद के कारण पार्टी और सरकार की छवि खराब हुई ।"[2] जब श्री मोरारजी देसाई का इस मतभेद की ओर ध्यान दिलाया गया तो उन्होने कहा कि "ऐसे मतभेद तो सभी लोकतान्त्रिक दल एव सरकार मे होते है ।"[3] यह सत्य है कि स्वतन्त्र भारत के प्रथम मन्त्रिमण्डल में प्रधानमन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरु और गृहमत्री सरदार बल्लभ भाई पटेल के बीच मतभेद थे और इसके बाद की सरकारो मे भी इस प्रकार के मतभेद विद्यमान थे । परन्तु वे कभी भी इतने सार्वजनिक नही हुये जितने जनता पार्टी के ।

---

1. जनार्दन ठाकुर "इदिरा गाँधी का राजनीतिक खेल", पूर्वोक्त, पृ0 110
2. आचार्य जे0 बी0 कृपलानी 'व्हाट एल्स जनता पार्टी एव गवर्नमेंट' (लेख, "जनता एरा फर्स्ट इयर", जनता पार्टी प्रकाशन, मई 1978, पूर्वोक्त, पृ0 14)
3. वही

जनता पार्टी के यह मतभेद इतने गम्भीर और सार्वजनिक थे कि मन्त्रिमण्डल के कुछ कनिष्ठ मन्त्रियो ने इस स्थिति पर आक्षेप किया । उद्योग मन्त्री जार्ज फर्नांडीज ने दल की 'राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति' में कबूल किया था कि दल और सरकार दोनो की प्रतिष्ठा गिरती जा रही है । चोटी पर बैठी सर्वोच्च त्रिमूर्ति की ओर परोक्ष रुप से सकेत करते हुये उन्होने कहा "इन नेताओ को अपनी राजनीतिक साख का इस्तेमाल करके दल को ठीक रखने के लिये सयुक्त प्रयास करना चहिये । देश, पार्टी और आने वाली पीढ़ियो के प्रति यह उनका कर्तव्य है । अगर वे इसमे चूकते है तो इसका परिणाम हर व्यक्ति के लिये दु खद होगा ।"[1]

इन सर्वोच्च नेतात्रय के बीच केवल सरकारी स्तर पर नही बल्कि व्यक्तिगत स्तर पर भी गम्भीर मतभेद थे । श्री मोरार जी देसाई निजी बातचीत मे श्री जगजीवन राम पर व्यक्तिगत नैतिकता एव भ्रष्टाचार के आरोप लगाते नही थकते थे । "श्री देसाई के ढोग की कोई सीमा नही थी । सार्वजनिक रुप से वह जगजीवन राम के सरकार बनाने के दावे का समर्थन करते है और व्यक्तिगत बातचीत मे वह उनकी कठोर शब्दो मे निन्दा करते रहे है । वह कहते रहे है कि वह उस व्यक्ति को प्रधानमन्त्री नही बनने देगे जिसकी निजी नैतिकता और सार्वजनिक निष्ठा मे खोट है ।"[2] जब जुलाई 1979 मे विपक्ष ने जनता सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव रखा, उस समय श्री जय प्रकाश नारायण ने श्री मोरार जी देसाई से बहुत ही दयनीय अपील की कि "वे श्री जगजीवन राम के पक्ष मे पद- त्याग दे, परन्तु श्री देसाई ने ऐसा नही किया और जब त्यागपत्र दिया भी तो उस समय बहुत देर हो चुकी थी ।"[3] श्री मोरार जी देसाई ने लोकसभा मे अविश्वास मत पारित होने के पूर्व प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया था, जिससे उन की सरकार को लोकसभा मे पराजय का मुँह न देखना पडे । ऐसा करके "श्री मोरार जी पुन सरकार बनाने के अपने दावे को बरकरार रखना चाहते थे क्योकि वे अब भी लोकसभा मे सबसे बडे दल के नेता थे ।"[4] श्री जगजीवन राम की दृष्टि मे श्री देसाई थोपे गये प्रधान मत्री, अड़ियल व्यक्ति एव अकुशल प्रशासक थे ।

श्री चरणसिह ने श्री जगजीवन राम के प्रधानमन्त्री बनने के प्रस्ताव को घृणापूर्वक अस्वीकार करते हुये कहा था, कि "कल तक जिसने हमे जेल मे बद किया वह आज प्रधानमन्त्री बनेगा ?"[5] श्री जगजीवन राम खुले आम श्री चरणसिह को 'कुलक नेता' कहते रहे थे । यहाँ तक कि श्रीमती मेनका गाँधी के साथ एक भेट वार्ता मे 'उन्होने चौधरी चरणसिह का खासा मजाक उडाया और व्यग्यात्मक स्वर मे पूछा कि आप चरणसिह को इतना महत्वपूर्ण क्यो मानती है ।'[6]

जनता पार्टी आन्तरिक रुप से अत्यन्त कमजोर हो गयी थी फिर भी गुटीय सघर्ष बेरोक- टोक चलते रहे और व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओ ने इन्हे (गुटीय सघर्ष) तीव्रता प्रदान की । जब प्रारम्भ से ही पार्टी के एक घटक ने सत्ता पर कब्जा कर लिया तो दूसरा घटक सत्ता को हथियाने के लिये खुलकर लड़ाई मे जुट गया और घृणास्पद हद तक चरित्र

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, अप्रेल 24, 1978
2. एस० के० घोष "दि बिट्रेयल," पूर्वोक्त, पृ० 201
3. वही
4. वही
5. जनार्दल ठाकुर "ऑल दि जनता मेन"; पूर्वोक्त, पृ० 27
6. सूर्या, मई 1978

हनन करने लगा। सवाल चाहे टिकटों के बँटवारे का हो या मन्त्रिमण्डल मे पद के बँटवारे का, सत्ता की व्यक्तिगत आकाक्षाओं के कारण नग्न सिद्धान्तहीन समीकरण राजनीतिक वातावरण मे छाये रहे जो लोग अपनी महत्वाकाक्षाओं की पूर्ति मे लगे थे, उनके लिये दल की नीतिया और कार्यक्रम असगत होने हो थे। यहाँ तक कि श्री जय प्रकाश नारायण की अपीलो और अनुरोध को ठुकरा दिया गया। शायद ही कभी राष्ट्रीय कार्य समिति मे किये गये वादो और जनता की समस्याओं पर गम्भीर विचार विमर्श किया गया हो। शीत-युद्ध जैसी स्थिति मे कोई भी रचनात्मक विचार विमर्श सम्भव भी नही था। अत "जनता पार्टी के सर्वोच्च नेताओ ने उस उत्तरदायित्व को नही निभाया, जो जनता द्वारा उन पर डाला गया था। ऐसा दायित्व इतिहास मे बहुत लोगो को नही मिलता। परन्तु इनके आपसी झगडो ने इनको और पार्टी को ही नही, बल्कि पूरे देश को आहत किया।" [1]

जनता पार्टी के तत्कालीन महासचिव श्री सुरेन्द्र मोहन ने शोधकर्ता से एक लम्बे साक्षात्कार [2] के दौरान इस त्रिमूर्ति विवाद के विषय मे अपना मत व्यक्त करते हुये कहा कि "श्री मोरार जी देसाई और श्री चरणसिह स्वय को जनता पार्टी का सर्वेसर्वा मानकर चल रहे थे, अत उनमे टकराव होना स्वाभाविक था।" इस त्रिमूर्ति या त्रिगुटीय सघर्ष के सन्दर्भ मे उनका विचार था कि "अगर श्री जगजीवन राम और उनके गुट के स्थान पर, जनसघ गुट को समाहित कर लिया जाय वो वस्तुस्थिति ज्यादा स्पष्ट हो जाती है।" उन्होने कहा कि, "यहाँ तीन गुट (जिसमे व्यक्ति प्रमुख है), जिसकी अपने बारे मे सोच यह है कि एक (श्री मोरार जी देसाई) समझता है कि वह अतीत और वर्तमान की कडी है, दूसरा (श्री चरणसिह) समझता है कि उत्तर भारत का किसान वर्ग उसके साथ है और तीसरा (जनसघ गुट) समझता है कि मुझ पर ही आपातकाल की लडाई का भार था। इन पूर्वाग्रहो की पृष्ठिभूमि मे जिस प्रकार इन तीनो का एका हुआ वह ठीक नही था यह एका उनकी शक्ति के आधार पर होता तो शायद जनता पार्टी की सरकार चल जाती, जैसा यूरोप मे होता है"।

एक प्रश्न के उत्तर मे श्री सुरेन्द्र मोहन ने कहा कि 'जनसघ का रवैया कभी भी सामन्जस्यपूर्ण नही था क्योकि यह गुट केन्द्र और राज्य मे दोहरी नीति अपनाये था, जनसघ गुट केन्द्र मे श्री मोरारजी देसाई और राज्यो मे श्री चरणसिह का सहयोग कर रहा था।' परन्तु श्री सुरेन्द्र मोहन के इस तर्क से यह सिद्ध नही होता कि पूरी 'जनता प्रक्रिया' के दौरान जनसघ गुट का रवैया असमझौतावादी या असामजस्यपूर्ण था। जनसघ गुट अनुशासित एवं शक्तिशाली गुट था, इसी कारण इसके शक्ति के समेकन के प्रयास को अन्य गुटो द्वारा भय और आशका की दृष्टि से देखा जाता था, जबकि सभी घटक दल इस प्रकार का प्रयास कर रहे थे।

निष्कर्ष

जनता पार्टी के सम्पूर्ण इतिहास को देखने से प्रतीत होता है कि जनसघ जनता पार्टी का सबसे बडा एव शक्तिशाली गुट था। लेकिन इस गुट को यह एहसास था कि सम्भव है कि प्रधानमन्त्री पद के सघर्ष मे जनता पार्टी के अन्य घटक दल उसका समर्थन न करे। अत वस्तुस्थिति का आकलन करके उसने (जनसघ गुट) कभी भी सर्वोच्च सत्ता की दावेदारी प्रस्तुत नही की और न ही इसके लिये कोई राजनीतिक जोड-तोड या दुरभिसन्धि की। इसके आलावा

1. आचार्य जे0 बी0 कृपलानी 'व्हाट ऐल्स जनता पार्टी ऐण्ड गवर्नमेंट' (लेख) पूर्वोक्त, पृ0 16
2. शोधकर्ता का श्री सुरेन्द्र मोहन से वृहद साक्षात्कार, देखे, इसी शोध प्रबध मे, परिशिष्ट-I,

जनसघ गुट के किसी शीर्षस्थ नेता ने प्रधानमन्त्री न बनने के कारण, कभी भी सार्वजनिक रुप से अपनी महत्वाकाक्षाओ या कुठाओ की अभिव्यक्ति नही की, और न ही इसके किसी वरिष्ठ नेता ने इस कारण जनता पार्टी के अन्य शीर्षस्थ गुटीय नेताओ की सार्वजनिक आलोचना की जैसा कि श्री चरणसिह ने किया । जनसघ गुट ने जनता पार्टी मे कभी भी ऐसा सकट उत्पन्न नही किया, जिससे पार्टी और सरकार की छवि धूमिल हो । कारण चाहे जो रहे हो, परन्तु यह तथ्य है कि मुख्यत जनसघी नेताओ के प्रयासो से श्री चरणसिह को पुन केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे शामिल किया गया, जबकि मन्त्रिमण्डल मे वापस लौटने के बाद उन्होने जनसघ गुट के विरुद्ध खुली मुहिम छेड़ दी ।

श्री सुरेन्द्र मोहन यह तो स्वीकार करते है कि श्री चरणसिह अपनी प्रधानमन्त्री बनने की आकाक्षा पूरी करना चाहते थे, परन्तु उनके (श्री चरणसिह) द्वारा सरकार को की गयी आलोचनाओ एव राजनीतिक दुरभिसन्धियों को एक सहज प्रतिक्रिया मानते है, जबकि ऐसा नहीं था । भारतीय लोकदल, जनता पार्टी मे, जनसघ के बाद दूसरा सबसे बड़ा घटक था । इसके नेता श्री चरणसिह ने प्रारम्भ से ही सर्वोच्च सत्ता प्राप्ति अन्य गुटो का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया था, इस प्रयास मे जिस गुट का सहयोग उन्हे नही मिला वे उस गुट के कट्टर दुश्मन बन गये । प्रधानमन्त्री बनने मे श्री चरणसिह को जनसघ गुट से समर्थन मिलने की पूर्ण आशा थी, क्योकि इस गुट ने प्रधानमन्त्री पद के लिये अपनी दावेदारी प्रस्तुत नही की थी । श्री चरणसिह को यह सहयोग नही मिला अत अन्य गुटो के साथ साथ वे जनसघ गुट के शत्रु बन गये । यह राजनीतिक, नैतिक एव व्यावहारिक किसी भी दृष्टिकोण से औचित्यपूर्ण नही था । व्यावहारिक स्थिति तो यह थी कि जिस प्रकार जनसघ गुट ने अपनी वस्तुस्थिति का आकलन करके, प्रधानमन्त्री पद की दावेदारी प्रस्तुत नही की । उसी प्रकार अगर भारतीय लोकदल गुट के श्री चरणसिह भी अपनी सीमाओ को पहचान कर प्रधानमन्त्री पद के लिये लालयित न होते, तो शायद जनता पार्टी का भविष्य सुखद होता ।

आलोचन ओं, आक्षेपों एवं दुरभिसन्धियों की ।जनीति

लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था मे विपक्ष द्वारा सरकार की आलोचना करना, उस पर आक्षेप करना एव शान्तिपूर्ण ढ़ग से उसे अपदस्थ करने के लिये कूटनीतिक चाले चलना, एक स्वाभाविक एव सवैधानिक प्रक्रिया है । परन्तु जब यही कृत्य स्वय अपनी सरकार एव पार्टी के वरिष्ठ नेताओ द्वारा किये जाने लगे, तो उस सरकार एव पार्टी का भविष्य अन्धकार मय समझना चाहिये । जनता सरकार के लगभग ढाई वर्षो का शासनकाल इन्ही आलोचनाओ आक्षेपो और दुरभिसन्धियो से भरा पड़ा है । यही कारण था कि "श्री मोरार जी के नेतृत्व गे सरकार के विभिन्न मन्त्रीगण- चौधरी चरणसिह, श्री लाल कृष्ण अडवानी, श्री अटल बिहारी बाजपेयी, श्री जग जीवन राम, श्री राज नारायण, श्री एच0 एन0 बहुगुणा, एव श्री जार्ज फर्नाडीज तथा पार्टी अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर कभी भी सामजस्यपूर्ण ढ़ग से कार्य नही कर सके ।"[1] जनता पार्टी एव सरकार के मीरजाफरो की सूची तो बहुत लम्बी है परन्तु इनमे कुछ लोगो के नाग विशेष उल्लेखनीय है- जैसे श्री चरणसिह, श्री एच0 एन0 बहुगुणा, श्री राज नारायण, श्री जार्ज फर्नाडीज एव श्री मधुलिमिए ।

श्री चरण सिंह

जनता पार्टी मे उत्पन्न हुये लगभग सभी राजनीतिक सकटो के केन्द्र बिन्दु चौधरी चरणसिह थे क्योकि वे प्रधानमन्त्री बनने के अपने स्वप्न को साकार करना चाहते थे । सभी राजनीतिक प्रश्न (जो प्रच्छन्नत आक्षेप और दुरभिसन्धियाँ ही थी) जो वे उठा रहे थे देश के प्रधानमन्त्री बनने की उनकी महत्वकाक्षाओ के मूलाधार पर बने ऊपरी ढॉचे मात्र थे ।"[2] प्रधानमन्त्री बनने के बाद उन्होने बिना किसी वाकछल के धृष्टतापूर्वक घोषणा की थी, "मेरे जीवन की महत्वाकाक्षा पूरी हो गयी ।"[3]

प्रधान मन्त्री श्री मोरारजी को कमजोर करने के लिये, श्री चरणसिह ने उनके पुत्र श्री काति देसाई का प्रकरण उठाया और आरोप लगाया कि प्रधानमन्त्री पुत्र- मोह में भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहे है । इन दोनो नेताओ के बीच इसी प्रकरण से सम्बन्धित छः पत्रो[4] का आदान प्रदान हुआ । ये पत्र अति गोपनीय थे, परन्तु बाद मे इसकी हवा प्रेस को दे दी गयी, इससे दोनो नेताओ के सम्बन्ध बिगडने के साथ साथ सरकार की बदनामी हुई ।

प्रधानमन्त्री, श्री मोरार जी के विरुद्ध इस पडयत्र मे श्री मधुलिमिए भी श्री चरणसिह का साथ दे रहे थे । श्री मधुलिमिए, चौधरी साहब के अत्यन्त विश्वास पात्र एवं राजनीतिक सलाहकार भी थे । "जब श्री चरणसिह प्रधानमन्त्री नही बन सके तो उन्होने श्री मोरार जी देसाई का समर्थन इसलिये किया था कि वे (और मधुलिमिए) यह विश्वास करते

---

1. अरुण गाँधी "दि मोरार जी पेपर्स," पूर्वोक्त, पृ0 98
2. मधुदण्डवते 'सत्ता की राजनीति एवं बर्तमान राजनीतिक सकट' (लेख), उद्धृत, "सिद्धान्त या अवसरवादिता" ? पूर्वोक्त, पृ0 18
3. वही. पृ0 19
4. एल0 के0 अडवानी "दि पीपुल बिट्रेड", 11 मार्च 1978 से 29 मार्च 1978 के बीच लिखे गये सभी पत्र मूल रुप से अकित है, पूर्वोक्त परिशिष्ट 1, पृ0 125-136

थे क्योकि श्री मोरार जी देसाई 'काति प्रकरण' पर अति सवेदनशील है, अत उनहे अपनी इच्छानुसार अपदस्थ किया जा सकता है ।"[1]

जून 1978 मे प्रधानमन्त्री श्री चरणसिह के मन्त्रिमण्डल से निष्कासन के कुछ दिनो बाद श्री मधुलिमिए ने जनता पार्टी के महासचिव पद से त्यागपत्र दे दिया और बयान दिया कि जून 1977 के विधान सभा चुनाव मे काति देसाई ने पूँजीपतियो से पैसा लेकर अपने लोगो को दिया है । श्री सुरेन्द्र मोहन ने भेटवार्ता के दौरान बताया कि "वास्तविकता यह थी कि सट्रेल आफिस से जितना पैसा 1977 के चुनाव मे आता जाता था वह सब मेरी और मधुलिमिए की जानकारी में था । प्रत्येक उम्मीदवार को 3-3 हजार रुपये दिये गये थे । यदि कोई उम्मीदवार आपातकाल मे जेल गया या अनुसूचित जाति, जन जाति या अल्पसख्यक वर्ग का है तो उसे दो हजार रुपये ज्यादा दिये गये । यदि कोई महिला जेल गयी थी तो उसे दो हजार रुपये औंर ज्यादा दिये गये थे । इतना जानते हुये अगर मधुलिमिए यह बात कहते है तो यह तथ्यात्मक रुप से गलत है । और यदि कहना है तो पार्टी की केन्द्रीय समिति या ससदीय बोर्ड मे कहिये, उन्हे सभी अवसर थे, इस प्रकार के सार्वजनिक वक्तव्य देने का क्या प्रायोजन था ?"[2] नि.सन्देह यह श्री मोरार जी देसाई और जनता सरकार को कमजोर करने का निन्दनीय प्रयास था ।

सन् 1968 मे जब श्री मोरार जी देसाई केन्द्रीय सरकार में वित्त मन्त्री थे इस समय 'काति प्रकरण' पर तूफान उठा थाऔर जॉच करायी गयी थी । इसमे काति देसाई को निर्दोष पाया गया था । इस बार वैद्यलिंगम् समिति ने 'काति प्रकरण' की जाच की और काति देसाई के विरुद्ध सभी आरोपो का निराधार पाया । स्पष्ट है कि यह श्री मोरार जी के विरुद्ध एक दुरभिसन्धि थी, जिसमें सरकार को बदनाम करने की कोशिश की गयी थी ।

जब श्री चरणसिह को यह महसूस हुआ कि 'काति प्रकरण' को लोग उनकी, प्रधानमन्त्री श्री मोरार जी देसाई से व्यक्तिगत लड़ाई के रुप मे देख रहे है, तो उन्होने सरकार पर ऐसे आरोप लगाना प्रारम्भ कर दिया, जिन्हे वैचारिकता का जामा पहनाया जा सकता था । चौधरी साहब ने सरकार की आर्थिक एव औद्योगिक नीतियों पर प्रहार किया उन्होंने आरोप लगाया कि "सरकार की आर्थिक एव औद्योगिक नीति मे सामान्य जनता की सुविधाओ और आवश्यकताओ का ध्यान नही रखा गया है और जो लोग कल तक भारी उद्योगो को प्राथमिकता देते थे वे आज सत्ता का केन्द्र बने हुये है ।"[3] चौधरी चरणसिह का यह वक्तव्य प्रधानमन्त्री श्री देसाई, वित्तमन्त्री श्री एच0 एम0 पटेल और उद्योग मन्त्री श्री जार्ज फर्नांडीज़ पर सीधा आक्षेप था । "श्री चरणसिह का चाहे जो आशय रहा हो परन्तु यह 'सामूहिक -उत्तरदायित्व' के सिद्धान्त का सीधा उल्लघन था । यद्यपि सरकार द्वारा इस पर कोई ध्यान नही दिया गया ।"[4] यह एक राजनीतिक मूल थी क्योकि किसी भी केबीनेट मन्त्री को अपनी सरकार की आलोचना करने का अधिकार नही दिया जा सकता । किसी मन्त्री के इस कृत्य उपेक्षा करना राजनीतिक अदूरदर्शिता का प्रमाण था । इसे भावी घटनाआ की पूर्व सूचना समझा जाना चाहिये था ।

---

1. अरुण गाँधी "दि मोरार जी पेपर्स", पूर्वोक्त, पृ0 52
2. शोधकर्ता की श्री सुरेन्द्र मोहन से हुयी भेटवार्ता का अश । देखे इसी शोध प्रबन्ध में परिशिष्ट-1,
3. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, मई 30 1978
4. एल0 के0 अडवानी; "दि पीपुल बिट्रेड", पूर्वोक्त, पृ0 20

श्री चरणसिंह एवं श्री एच0 एन0 बहुगुणा : आरोप प्रत्यारोप

अनेक पूर्वाग्रहो एव राजनीतिक समीकरणो के तहत श्री चरणसिह की, श्री, एच0 एन0 बहुगुणा के प्रति घृणा सर्वविदित थी । एक ही दल एव सरकार के सदस्य होते हुये, ये नेताद्वय एक दूसरे के कटु आलोचक थे । उत्तर प्रदेश की राजनीतिक मे दोनो एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी रह चुके थे और दोनो का जनाधार मुख्यत यही प्रदेश था । अगर श्री चरणसिह किसानो के नेता थे तो श्री बहुगुणा की मुसलमानो मे गहरी बैठ थी । श्री चरणसिह ने 2 अप्रैल 1978 को प्रधान मन्त्री श्री मोरार जी देसाई को एक पत्र लिखा, जिसमे उन्होने श्री बहुगुणा की कडी भर्त्सना करते हुये कहा कि 'बहुगुणा जी प्रारम्भ से ही मुझे और मेरे गुट को बदनाम करने की कोशिश करते रहे है । श्री बहुगुणा एव उनके अभिन्न मित्र एव सासद श्री रामधन ने सम्भल (उ0 प्र0) मे हुये दगो के लिये उत्तर प्रदेश सरकार की आलोचना की और उन्होने उत्तर प्रदेश सरकार की वन नीति के विरुद्ध पहाडी लोगो का भड़का कर नैनीताल क्लब मे आग लगवाई ताकि उत्तर प्रदेश सरकार की बदनामी हो ।'[1]

श्री चरणसिह ने आरोप लगाया कि 'जामा मस्जिद के इमाम सैय्यद अब्दुला बुखारी जनता सरकार की नीतियो के कटु आलोचक है, इसके बावजूद श्री बहुगुणा, श्री बुखारी से साठ-गाठ किये हुये है । श्री बुखारी ने श्री बहुगुणा की सह पर ही लखनऊ, कानपुर और वाराणसी मे हुये साम्प्रदायिक दगो के लिये मुझसे त्यागपत्र की माग की । श्री चरणसिह ने श्री बहुगुणा पर भ्रष्टाचार के गम्भीर आरोप लगाये तथा उन्हे पूर्व सोवियत सघ की गुप्तचर सस्था के0 जी0 बी0 का एजेन्ट करार दिया और मॉग की कि ऐसे व्यक्ति को तो कडे से कडा दण्ड मिलना चाहिये ताकि कोई अन्य व्यक्ति इस 'नटवर लाल' का अनुसरण न कर सके । उन्होने प्रधानमन्त्री से प्रश्न किया कि ऐसा भ्रष्ट आदमी किस प्रकार आप की केबीनेट मे है ?'

इसके पूर्व 'काग्रेस फॉर डेमोक्रेसी' गुट के सासद प्रो0 शिब्बन लाल सक्सेना ने श्री एच0 एन0 बहुगुणा पर भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और यहाँ तक की वेश्यावृत्ति के 101 आरोप लगाये थे ।[2] प्रो0 सक्सेना ने इससे सम्बन्धित एक पत्र भी श्री मोरार जी देसाई को लिखा । श्री मोरार जी देसाई ने 15 फरवरी 1978 को श्री एच0 एन0 बहुगुणा को एक पत्र लिखा, 'जिसमे उन्होंने कहा कि यद्यपि मै इन आरोपो पर विश्वास नही करता और न ही इस प्रकरण की जॉच करना चाहता हूँ तथापि आपका स्पर्ष्टीकरण आपेक्षित है ।'[3] प्रो0 शिब्बन लाल द्वारा लगाये गये आरोप पत्र मे नाम, दिनाक और रुपये आदि ऑकडे इस प्रकार उल्लेखित थे, कि प्रतीत होता था इसे किसी 'व्यावसायिक अभिकरण' के निर्देशन मे तैयार किया हो । "यद्यपि श्री मोरार जी देसाई नेइस बात का खण्डन किया था कि श्री सक्सेना को आरोप पत्र की सामग्री श्री चरणसिह ने उपलब्ध करायी थी । परन्तु यह अपवाह थी कि अपने गृहमन्त्रित्वकाल मे श्री चरणसिह ने अपने सहयोगियो के कामकाज की जासूसी करने मे जॉच सस्थाओ का भरपूर प्रयोग किया है ।"[4]

---

1. पत्र के मूल पाठ से, उद्धृत, श्री अरुण शौरी "इन्स्टीटयूशन इन दि जनता फेज़," पूर्वोक्त, पृ0 248-252
2. आरोप पत्र का मूल पाठ, उद्धृत, अरुण गाँधी "दि मोरारजी पेपर्स", पूर्वोक्त; परिशिष्ट II, पृ0 129-136
3. पत्र के मूल पाठ से, उद्धृत अरुण गाँधी "दि मोरार जी पेपर्स", पूर्वोक्त; पृ0 109
4. अरुण गाँधी; पूर्वोक्त; पृ0 109

श्री एच0 एन0 बहुगुणा ने 10 जुलाई 1978 को श्री मोरार जी देसाई को एक पत्र लिखा। 'इसमे उन्होंने श्री चरणसिह और प्रो0 शिब्बन लाल द्वारा लगाये गये आरोपो का कड़ाई से खण्डन किया और कहा कि ये सभी आरोप घटिया, बेबुनियाद और घृणास्पद राजनीति के अग है, तथा ये उनकी लोकप्रियता को कलकित करने के लिये लगाये गये है ।, अपने पत्र मे बहुगुणा ने कहा कि श्री चरणसिह 'आत्म-मोह' से ग्रसित है, अत. वे किसी अन्य व्यक्ति मे कोई अच्छाई नही देख सकते । उन्होंने प्रधानमन्त्री से प्रश्न किया कि क्या किसी देश के गृहमन्त्री को यह अनुमति दी जानी चाहिये कि वह अपने पद का दुरुपयोग दूसरो के चरित्र हनन के लिये कर सके ?'[1] इस प्रकरण से दोनो नेताओ की छवि धूमिल हुई हो या नही, परन्तु जनता पार्टी एव सरकार प्रतिष्ठा को अवश्य ही आघात लगा । क्या यह किसी भी सरकार के खोखलेपन का प्रमाण नही है कि एक मन्त्री अपने दूसरे साथी मन्त्री पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाये ? ऐसे सरकार का पतन तो अवश्यभावी था, प्रश्न केवल समय का था कि कब ?

इस सम्पूर्ण प्रकरण के दो पक्ष है । प्रथम यदि यह मान भी लिया जाय कि श्री चरणसिह एव प्रो0 शिब्बन लाल द्वारा श्री बहुगुणा पर लगाये गये सभी आरोप असत्य है तो भी श्री बहुगुणा छल कपट की राजनीति मे लिप्त होने के आरोपो से मुक्त नही हो सकते । प्रधानमन्त्री श्री देसाई के बार-बार चेतावनी देने के बावजूद, श्री एच0 एन0 बहुगुणा जामा मस्जिद के शाही इमाम श्री बुखारी के साथ दगा प्रभावित क्षेत्रो का दौरा किया । इससे सिद्ध होता है कि प्रधानमन्त्री एव सरकार मे उनकी आस्था सदिग्ध थी' और वह जनता पार्टी एव सरकार मे अन्य गुटो के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिये उनके गुटीय नेताओ की छवि धूमिल करना चाहते है और अपना निजी प्रभाव क्षेत्र बना रहे थे ।

इस पूरे प्रकरण का दूसरा और सबसे निन्दनीय पक्ष यह है कि अपने गृहमन्त्रित्व काल मे श्री चरणसिह ने श्री बहुगुणा पर जो आरोप लगाये थे, वे इतने गम्भीर थे कि देशद्रोह की परिधि मे आते है । किन्तु जनता सरकार के पतन के बाद जब वे स्वय (श्री चरणसिह) प्रधानमन्त्री बने और उन्ही बहुगुणा जी को वित्तमन्त्री बनाकर उनके हाथो देश का पूरा खज़ाना सौप दिया । ऐसी हालत मे क्या समझा जाय कि चौधरी साहब ने द्वेषवश श्री बहुगुणा को मन्त्रिमण्डल से हटाने के लिये झूठे आरोप लगाये थे या प्रधानमत्री बनने की अपनी अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये उन्होने बहुगुणा जी के अपराधो पर परदा डालकर उन्हे वित्तमन्त्री बनाया और देश के साथ धोखा किया । इसे श्री एच0 एन0 बहुगुणा का राजनीतिक आदर्श कहा जाय या सत्ता की भूख कि उन्होने उस व्यक्ति के प्रधानमन्त्रित्व मे केबीनेट मन्त्री बनना स्वीकार किया, जिसने उन्हे भ्रष्ट और अपराधी करार दिया था ।

बहुगुणा-बुखारी सांठ-गांठ

जनता शासन काल मे जामा मस्जिद के इमाम सैय्यद अब्दुला बुखारी और श्री एच0 एन0 बहुगुणा के सबन्ध सर्वविदित थे । ये दोनो नेता स्वय को मुसलमानो का सबसे बड़ा हित -चितक समझते थे, एव दोनो मे 'सहजीवी साठ-गाठ' थी । श्री बहुगुणा, शाही इमाम के साथ मिलकर साम्प्रादायिक मामलो का उपयोग अपने विरोधियो को परास्त करने के लिये किया करते थे जबकि श्री बुखारी श्री बहुगुणा की सह पर सरकार के राजनीतिक कार्यो मे हस्तक्षेप किया करते थे । जब भी कही कोई साम्प्रदायिक सुगबुगाहट होती थी, तो श्री बुखारी प्रधानमन्त्री श्री मोरार जी देसाई को पत्र लिखते थे । यह सरकार के कार्यो मे किसी धार्मिक नेता का सीधा हस्तक्षेप था । श्री मोरार जी देसाई ने श्री

1. पत्र के मूल पाठ का सार सक्षेप, उद्धृत, अरुण शौरी "इस्टीटयूशन इन दि जनता फेज", पूर्वोक्त, पृ0 252-256

बुखारी का आडे हाथो लिया और उनके पत्रो का जवाब देना एव उनसे मिलना लगभग बन्द कर दिया । उन्होने श्री एच0 एन0 बहुगुणा को भी इस प्रकार की गतिविधियो से दूर रहने की चेतावनी दी थी, परन्तु श्री बहुगुणा ने इस पर कोई ध्यान नही दिया ।[1]

श्री बहुगुणा एव श्री बुखारी की इस घृणित साठ-गाठ के कारण जनता पार्टी एव सरकार को अनेको बार परेशानियों का सामना करना पड़ा । श्री बुखारी ने अपनी एक मुलाकात के दोरान श्री मोरार जी देसाई को बताया कि केन्द्रीय सरकार एव उनके मध्य एक समझौता हो गया है । यह समझौता - वार्ता फरवरी 1978 मे श्री जग जीवन राम के घर मे सम्पन्न हुई और इसमे श्री एच0 एन0 बहुगुणा के अलावा जनता पार्टी के अन्य नेता गण भी शामिल थे । श्री बुखारी ने बताया कि इस समझौते मे अनेक आश्वासन दिये गये है जैसे- अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का अल्प-सख्यक एव लोकतान्त्रिक स्वरुप सुनिश्चित करना, उर्दू को उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और दिल्ली की 'द्वितीय राज्यभाषा' बनाना तथा जनता पार्टी की केन्द्रीय एव राज्यीय इकाइयो मे मुसलमानो को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देना आदि ।[2] प्रधानमन्त्री श्री मोरार जी देसाई को आश्चर्य हुआ कि उनकी जानकारी के बिना ये लोग भारत सरकार की ओर से कोई समझौता कैसे कर सकते है ?

इस प्रकरण के सत्यापन के लिये श्री मोरार जी ने श्री जगजीवन राम और श्री एच0 एन0 बहगुणा का पत्र लिखा कि मन्त्रिमण्डल की स्वीकृति के बिना उन्होने भारत सरकार की ओर से कोई समझौता कैसे कर लिया ? दोनो नेताओ ने प्रधानमन्त्री को बताया कि श्री बुखारी के साथ हुई बैठक एक अनौपचारिक वार्ता थी और उन्होने सरकार की ओर से कोई समझौता नही किया है । श्री बुखारी ने इस वार्ता का गलत अर्थ निकाला है ।'[3] इससे निष्कर्ष निकलता है कि किस प्रकार एक धार्मिक नेता, मन्त्रिमण्डल के कुछ सदस्यो की सह पाकर भारत के प्रधानमन्त्री को गुमराह और परेशान कर सकता है ? और दूसरी ओर सरकार के वरिप्ठ मन्त्री किस प्रकार सरकार एव प्रधानमन्त्री को अत्यन्त दुविधा की स्थिति मे डाल सकते है ? वैसे तो इस प्रकर की अनौपचारिक वार्ता भी इन मन्त्रियो के लिये उचित नही थी, क्योकि ये नीति के प्रश्न थे, जिन पर एक धार्मिक सम्प्रदाय के नेता के साथ गुप्त वार्तालाप करना किसी भी दशा मे उपयुक्त नही था ।

श्री एच0 एन0 बहुगुणा एव श्री बुखारी की इस मिली-भगत से जनता पार्टी के कतिपय गुटीय नेता अत्यन्त असन्तुष्ट थ । जब श्री बहुगुणा और श्री इमाम बुखारी ने उत्तर प्रदेश मे दगे प्रभावित क्षेत्रो का दौरा किया और इस पर एक रिपार्ट तैयार की तो श्री चरणसिह अत्यन्त कुपित हुये, और उन्होंने इसे उत्तर प्रदेश की सरकार (लोकदल गुट) को बदनाम करने की सोची समझी रणनीति बताया । वास्तव मे श्री बहुगुणा जोड - तोड़ एव दुरभिसन्धियों की राजनीति से स्वय को मुक्त नही रख सके, क्योकि प्रधानमन्त्री श्री मोरार जी देसाई की अनेक चेतावनियो के बावजूद श्री बहुगुणा एव श्री बुखारी ने हमेशा अनुचित हस्तक्षेप किया और आचरण के सभी मापदण्डो के विरुद्ध सम्प्रदायिक दगो से प्रभावित क्षेत्रों का दौरा किया ।[4] चूकि किसी भी प्रकार के दगे आदि का सम्बन्ध कानून एव व्यवस्था से होता है,

---

1. अरुण गाँधी. "दि मोरार जी पेपर्स", पूर्वोक्त, पृ0 99
2. अरुण गाँधी. "दि मोरार जी पेपर्स"; पूर्वोक्त पृ0 99-100
3. वही पृ0 100
4. अरुण गाँधी "दि मोरार जी पेपर्स", पूर्वोक्त पृ0 103

जिसकी जिम्मेदारी राज्य सरकार पर होती है । अत साधारणत किसी केन्द्रीय मन्त्री का दगा प्रभावित क्षेत्र का दौरा अनुचित एव अनावश्वक माना जाता है जब तक कि प्रधानमन्त्री यह अनुभव नही करता कि स्थिति राज्य सरकार के नियन्त्रण से बाहर हो गयी है । अत श्री एच० एन० बहगुणा के कुचक्रो से जहाँ एक ओर केन्द्रीय सरकार को अप्रिय स्थिति का सामना करना पड़ा वही दूसरी ओर जनता पार्टी के अन्दर गुटीय सघर्षो म वृद्धि हुई ।

श्री राजनारायण

जनता पार्टी के विघटन के सम्पूर्ण घटना क्रम मे श्री राजनारायण की भूमिका अत्यन्त अप्रिय थी । वे समाजवादी राजनीति के विध्वसक सस्करण एव अखाडा राजनीति के समर्थक थे । उनका मानना था कि रायबरेली से श्रीमती इदिरा गाँधी को हटाने एव श्री मोरार जी देसाई को प्रधानमन्त्री पद तक पहुँचाने मे उन्होने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । अत जनता पार्टी और सरकार उनके बेढ़गे व्यक्तित्व को स्वीकार करने के लिये बाध्य है । "जनता पार्टी के शासन काल मे वे लगातार अनुशासन- हीनता के कार्यो मे लिप्त रहे । पार्टी अध्यक्ष और प्रधानमन्त्री पर व्यक्तिगत आक्रमण करते रहे और राज्यो की 'जनता सरकारो' पर झूठे आरोप लगाते रहे । ऐसा करके उन्होने भारत के करोड़ो लोगो की आशाओ आकाक्षाओ को पूरा करने के लिये मिलकर काम करने की उस प्रतिज्ञा का तोड दिया जो राजघाट पर की गयी थी ।"[1]

अप्रैल 1978 मे जनता पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक मे यह सुनिश्चित किया गया था कि पार्टी के नेतागण अपने दलीय एव नीतिगत मतभेदो पर सार्वजनिक वक्तव्य नही देगे ।[2] इस बैठक मे श्री राजनारायण भी उपस्थित थे, परन्तु उसके बाद भी उन्होंने पार्टी के तदर्थ अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर से त्यागपत्र की माँग की । जब अनुशासन हीनता के लिये श्री राजनारायण की खिचाई की गयी तो उन्होने साम्प्रदायिकता एव 'दोहरी सदस्यता' का राग अलापना शुरु कर दिया । इस प्रकरण मे श्री मधुलिमिए एव श्री चरणसिह श्री राजनारायण के सहायक एव पथ प्रदर्शक थे ।

25 जून 1978 को श्री राजनारायण ने शिमला मे धारा 144, जो उस क्षेत्र मे लगी थी, को तोडकर एक सार्वजनिक सभा को सम्बोधित किया एव हिमाचल प्रदेश की 'जनता- सरकार' की आलोचना की । अत 29 जून को प्रधानमन्त्री श्री मोरार जी देसाई ने श्री चरणसिह के साथ उनका भी इस्तीफा माँग लिया । बाद मे जब श्री राजनारायण को छोडकर श्री चरणसिह को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में वापस ले लिया गया, तो श्री राजनारायण ने पार्टी एव सरकार तोड़ने की शपथ ली, और सार्वजनिक रुप से घोषणा की कि "मै बाहर से पार्टी को तोडूगाँ और श्री चरणसिह सरकार मे रहते हुए उसे तोड़ेगे ।"[3] इसके बाद श्री राजनारायण का एक ही लक्ष्य था- श्री मोरार जी देसाई को अपदस्थ करना और इसके लिये श्री चरणसिह को पार्टी छोड़ने को राजी करना । श्री राजनारायण ने अपने एक वक्तव्य मे कहा कि "विगत दो वर्षो मे मै इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जब तक श्री मोरार जी देसाई प्रधानमन्त्री पद पर बने रहेगे, तब तक 'जनता सरकार'

---

1. जन-विश्वासघात· जनता पार्टी प्रकाशन पूर्वोक्त, पृ0 22
2. वही पृ0 4
3. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली जनवरी 24, 1979

अपने चुनावी वादो को पूरा करने के लिये सही दिशा मे कार्य नही कर सकती । यदि जनता पार्टी के सासद इस विषय मे सोचेगे तो वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगे और नया प्रधानमन्त्री चुनेगे ।"[1]

आक्षेपो एव दुरभिसन्धियो के प्रमुख नायक श्री राजनारायण को अपनी इस मुहिम मे श्री मधुलिमिए का आर्शीवाद प्राप्त था और उन्होने श्री चरणसिह को अपने पक्ष मे करने के लिये आर0 एस0 एस0 का मुद्दा उठाया । श्री राजनारायण ने घोषणा की कि श्री चरणसिह ही उनके नेता है इस पर बिहार के जनता सासद एव भूतपूर्व समाजवादी नेता श्री रामानन्द तिवारी को दुखी होकर कहना पडा कि 'यह तथ्य है कि सन् 1966-67 मे उन्होने (श्री राजनारायण) श्री चरणसिह के के विरुद्ध सी0 बी0 गुप्ता से साठगाठ कर ली थी और चरणसिह को 'चेयरसिह' कहा करते थे । श्री राजनारायण 'भस्मासुर के समान है, जिसने भी उनकी सहायता की उसी को उन्होने भस्म कर दिया । सबसे पहले उन्होने समाजवादी पार्टी को तोडा फिर एस0 एस0 पी0 को तोडा अब जनता पार्टी को तोडने की कोशिश कर रहे है ।"[2]

श्री राजनारायण ने केवल प्रधानमन्त्री को नही बल्कि पार्टी अध्यक्ष को भी अपना निशान बनाया और श्री चन्द्रशेखर के अपने पद मे बने रहने पर आपत्ति की । सरकारी नीतियो की आलोचना करते हुए, उन्होने सार्वजनिक रुप से जन समाज से आग्रह किया कि "वह सरकार को बदल दे, जो बईमान है तथा जिसने जनता से किये हुये वादे पूरे नही किये"[3] इन्ही वक्तव्यो के कारण केन्द्रीय अनुशासन समिति ने 12 जून 1979 को श्री राजनारायण को पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी से एक वर्ष के लिये निष्कासित कर दिया । उसी दिन उन्होने एक प्रेस सम्मेलन मे कहा कि 'मै कार्यवाई से डरा हुआ नही हूँ उन्होने अपने खिलाफ कार्यवाई की है ।'[4] श्री चरणसिह ने राष्ट्रीय कार्यकारिणी से श्री राजनारायण के निष्कासन पर टिप्पणी करने से इकार कर दिया । इसी बीच श्री राजनारायण ने जनता पार्टी से त्यागपत्र दे दिया । पार्टी से त्यागपत्र देने के कुछ दिनो बाद, श्री राजनारायण ने 'इण्डिया टुडे' पत्रिका को दी गयी एक भेटवार्ता मे मे दावा किया कि पार्टी से त्यागपत्र की राय श्री चरणसिह ने दी थी ।'[5] श्री चरणसिह ने राजनारायण के इस दावे को गलत बताया और कहा 'अब तो हद हो गयी है, मै समझता हूँ कि हमारे मार्ग अन्तिम रुप से अलग-अलग हो गये है ।[6] वास्तव मे सभी घटनाये निश्चित योजना के अनुसार चल रही थी । श्री चरणसिह अन्त तक अन्दर रहकर खेल खेलते रहे और जब उनकी प्रधानमन्त्री बनने की सम्भावनायें प्रबल हो गयी तो वे सब से बाद मे सरकार और पार्टी से बाहर आये ।

सत्ता प्राप्ति के लिये किया गया भौंड़ा सघर्ष जिसे देश हैरानी से देख रहा था, तब निम्नतम स्तर पर पहुँच गया जब जनता पार्टी से अलग हुये राजनारायण - चरणसिह गुट, जनता पार्टी (सेक्यूलर) ने कांग्रेस (इ0) के साथ अपवित्र गठबधन किया । भारतीय जन-समुदाय ने सत्ता-अधिनायकवाद से लड़ने के निश्चित प्रयोजन के लिये जनता

---

1. वही
2. उद्धृत, 'जन-विश्वासघात' जनता पार्टी प्रकाशन, पूर्वोक्त पृ0 22-23
3. 'जन विश्वासघात' जनता पार्टी प्रकाशन, पूर्वोक्त, पृ0 9
4. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया दिल्ली, जून 13, 1979
5. 'जन विश्वासघात', पूर्वोक्त, पृ0 11
6. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया दिल्ली, जुलाई 3, 1979

पार्टी को चुना था । जनता पार्टी के किसी वर्ग या गुट का श्रीमती इदिरा गॉधी के साथ गठबधन करना निश्चित रूप से जनता के साथ विश्वासघात करना था । 'कैसी विडम्बना है कि जिस व्यक्ति ने श्रीमती इदिरा गॉधी को जून 1975 मे इलाहाबाद हाई कोर्ट मे मुकदमे मे हराया, जिसके परिणामस्वरुप आपातस्थिति की घोषणा हुई और सारा देश तानाशाही के चगुल मे फॅस गया । आज वही व्यक्ति अपने कट्टर राजनीतिक दुश्मन श्री मोरार जी देसाई को अपदस्थ करने के लिये अपना आत्म-सम्मान बेच कर उन्ही श्रीमती इदिरा गॉधी से जोड तोड कर रहा है । [1]

इण्डियन एक्सप्रेस ने अपनी सम्पादकीय में लिखा 'कि राजनारायण ने जो नुकसान जनता पार्टी का किया है वह हमारी चिन्ता का विषय नही है । मुख्य चिन्ता का विपय तो यह है कि राजनीतिक नैतिकता के मापदण्डो का पतन बिना रोक-टोक के जारी है ।'[2] **टाइम्स ऑफ इण्डिया** ने राजनारायण को **'भारतीय मेफिस्टोफिल्स'** (ग्रीक पैराणिक कथाओ मे वर्णित सात राक्षसो मे एक राक्षस, मेफिस्टोफिल्स है) करार दिया और कहा कि विगत वर्षो मे राजनारायण से ज्यादा किसी अन्य व्यक्ति ने सार्वजनिक जीवन के उन मूल्यो का निपेध नही किया, जिसके लिये उन्होने वचन दिया था ।[3]

श्री जार्ज फर्नांडीज

जनता पार्टी के विघटन रुपी 'नाटक' के अन्तिम दृश्य मे जार्ज फर्नाडीज की छोटी परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका थी । यह भूमिका उस समय आरम्भ होती है जब काग्रेस (एस0) ने जनता पार्टी के विरुद्ध ससद मे अविश्वास प्रस्ताव रखा । इसके पूर्व जनता पार्टी से उसके सासदो का धीरे-धीरे त्यागपत्र देने का सिलसिला प्रारम्भ हो गया था । श्री जार्ज फर्नाडीज़ ने इस प्रकार गुटबन्दी को असामयिक बताया और कहा कि वे 12 जुलाई 1979 को ससद मे सरकार के समर्थन मे बोलेगे । 'श्री फर्नाडीज़ ने लोकसभा मे अविश्वास प्रस्ताव का तगडा विरोध करते हुये सरकार की नीतियो समर्थन किया ।'[4] सरकार के समर्थन के लिये सदन एव राष्ट्र ने उनकी भूरि-भूरि प्रशसा की परन्तु जब वे भी उसी सरकार और पार्टी को छोडकर कर अलग हो गये तो देश के अनेक लोगो को आघात लगा । **ऐसी परिस्थिति मे महान रोमन सम्राट जूलियस सीज़र की तर्ज पर श्री मोरार जी देसाई के मुँह से यह अवश्य निकला होगा- 'तुम भी फर्नांडीज' ।**

7 अप्रैल 1979 के **'इण्डियन एक्सप्रेस'** मे प्रकाशित ताजा लेख मे श्री फर्नाडीज़ ने 'दल- बदल' और 'दल विभाजन' मे अन्तर दिखाने की कोशिश की और अपने त्यागपत्र और दल-विभाजन को उचित बताया । परन्तु उन्हे यह याद रखना चाहिये कि वर्तमान स्थिति पर विचार करने के लिये जब उन्होने 7-8 जुलाई 1978 को नई दिल्ली मे समाजवादियो की एक औपचारिक बैठक बुलायी थी, तो आमन्त्रियो को अपने पत्र मे उन्होने लिखा- "सैद्धान्तिक बहस जारी रखना आवश्यक है, इससे बचना आवश्यक नही । गत दो वर्षो के अनुभव के प्रकाश मे पुनः गुटबन्दी जरुरी है, परन्तु उससे जनता पार्टी टूटनी न चाहिये । तत्काल जनता पार्टी का कोई लाकतान्त्रिक विकल्प नही है । जो जनता

---

1. अरुण गॉधी "दि मोरार जी पेपर्स", पूर्वोक्त, पृ0 226
2. इण्डियन एक्सप्रेस 'इन बैड ऑडर',दिल्ली, अगस्त 23, 1979
3. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया; दिल्ली, अक्टूबर 4, 1979
4. देखे, जार्ज फर्नाडीज द्वारा जनता सरकार के समर्थन में दिये गये वक्तव्य का मूलपाठ, उद्धृत, एल0 के0 अडवानी; "दि पीपुल बिट्रेड", पूर्वोक्त, परिशिष्ट VII पृ0 150-160

पार्टी को तोडेगे वे अपने उद्देश्यो का छोडकर सैनिक या असैनिक अधिनायकवाद के एजेन्ट के रुप मे ही कार्य करेगे।"[1]

मार्च 1977 के चुनावी घोषणा पत्र मे एकता के लिये दिये गये आश्वासन से तथा उपर्युक्त विचारो से यह स्पष्ट है कि जनता पार्टी के सभी वर्ग उसकी एकता के लिये प्रतिबद्ध थे और सभी ने उसे न तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी। इस आश्वासन को अति दुष्टता से भग किया गया, जिससे लोग गम्भीर चिन्ता मे पड गये। जनता की याददाश्त अल्पकालिक होती है परन्तु अल्पता की भी एक सीमा होती है।

यह बताने की जरुरत नही है कि 'जनता सरकार' के प्रति अविश्वास प्रस्ताव आने पर जनता पार्टी के समस्त नेताओ का एक मात्र कर्तव्य यह था कि सब एक हो जाते और प्रस्ताव को गिरा देते। इसके बजाय हुआ क्या ? निष्ठा का लोप, राजनीतिक बेइमानी, अवसरवादिता और निर्लज्जता का प्रदर्शन, वह भी अनावश्यक प्रश्नो को लेकर।

श्री मधुलिमिए

समाजवादियो की पार्टी तोड़क श्रृखला मे एक अन्य प्रसिद्ध नाम समाजवादी विचारक श्री मधुलिमिए का है जून 1978 जब केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल से श्री चरणसिह और श्री राजनारायण को निष्कासित कर दिया गया, तो श्री मधुलिमिए के जिम्मे एक ही काम था श्री मोरार जी देसाई अपदस्थ करना। 'इसका सही कारण केवल वही जानते थे कि वे क्यो जनता पार्टी को नष्ट करना चाहते थे ? श्री राम मनोहर लोहिया के ढॉचे मे ढल कर उन्हें भी विध्वसक राजनीति मे सुख मिलने लगा था। जब जनता पार्टी का गठन हो रहा था, तब उनहोने अपने एक अभिन्न मित्र से कहा था कि मै जनता पार्टी के सर्वनाश के लिये कार्य करता रहूँगा।'[2] पिछले अनेक दशको से समाजवादियो ने भारतीय राजनीति मे कोई रचनात्मक कार्य नही किया। वे भली-भॉति जानते है कि वे देश मे कभी सत्ता नही प्राप्त कर सकते। इसलिये शायद कुठा मे वे नकारात्मक राजनीतिक द्वारा अपनी उपस्थिति महसूस कराना चाहते थे।

श्री मधुलिमिए का श्री मोरार जी देसाई के प्रति धृणा का एक कारण शायद यह रहा हो कि वे इस पूर्वाग्रह से ग्रस्त थे कि श्री मोरार जी देसाई का व्यवहार पूर्व समाजवादियो और विशेषकर श्री राजनारायण के प्रति निष्ठुर था। जब श्री राजनारायण को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल से निष्कासित किया गया तो श्री मधुलिमिए प्रधानमन्त्री श्री देसाई के कटु आलोचक बन गये। बाद मे जब जनवरी 1979 में श्री राजनारायण को छोड़कर श्री चरणसिह के पुन· केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे शामिल किया गया तो श्री मधुलिमिए जनता पार्टी एव श्री मोरार जी देसाई के प्रबलतम शत्रु बन गये। उन्होने श्री राजनारायण को विश्वास दिलाया कि 'जनसघ गुट' के विरुद्ध अभियान चलाकर वे श्री देसाई और जनता पार्टी दोनो को कमजोर कर सकते है। श्री मधुलिमिए जानते थे कि सरकार में तो उनका वर्चस्व है नही, और यदि दल के सगठनात्मक चुनाव होते है तो 'पार्टी सगठन' मे भी जनसघ गुट का वर्चस्व स्थापित हो जायेगा। इसलिये उन्होंने सगठन के चुनाव स्थगित कराने का अभियान चलाया। उनका बहाना था कि पचास प्रतिशत से अधिक नये सदस्य

---

1. उद्धृत, मधु दण्डवते. 'सत्ता की राजनीति एव वर्तमान राजनीतिक सकट' (लेख), "सिद्धान्त या अवसर वादिता", पूर्वोक्त, पृ0 18, देखे: मेन स्ट्रीम वार्षिक अक 1979
2. अरुण गाँधी, "दि मोरार जी पेपर्स", पूर्वोक्त, पृ0 122

जाली है और जनसघ वालो ने जाली सदस्यो की भर्ती की है । जबकि, "जाली सदस्यो का मुद्दा बेतुका था अगर सगठन के चुनाव होते तो स्थिति पूर्णतया स्पष्ट हो जाती ।"[1]

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये श्री मधुलिमिए ने एक और चाल चली उन्होंने श्री चरणसिह और श्री एच0 एन0 बहुगुणा को, जो उत्तर प्रदेश की राजनीति मे बहुत समय से एक दूसरे के शत्रु थे, साथ लाने का भरसक प्रयत्न किया । इन दोनो ने एक दूसरे के विरुद्ध श्री मोरार जी भाई की चिट्ठियाँ लिखी थी और दोनों मे से कोई उन आरोपो को नही भूल सकता था, जो उन पत्रो मे लगाये गये थे । इस बात के बावजूद दोनो को श्री मधुलिमिए की बात मे तुक दिखाई दिया क्योकि दोनो वर्तमान समय मे जनता पार्टी एव सरकार मे अपनी स्थिति से सन्तुष्ट नही थे । फिर "दोहरी सदस्यता के प्रश्न" को लेकर आरोपो और कुचक्रो का घिनौना नाटक प्रारम्भ हुआ, उसकी अन्तिम परिणित जनता पार्टी के विघटन के रुप मे हुई ।

श्री मधुलिमिए एव श्री मोरारजी देसाई के बीच अनेक पत्रो[2] का आदान प्रदान हुआ । श्री मधुलिमिए ने इन पत्रो मे सरकार की कटु आलोचना करते हुये अनेक प्रश्न उठाये थे । श्री देसाई ने लगभग सभी पत्रो का उत्तर देते हुये श्री मधुलिमिए से आग्रह किया कि "वे कभी भी उनसे व्यक्तिगत रुप से मिलकर इन मुद्दो पर वार्ता कर ले । इससे आपकी गलत- फहमी भी दूर होगी और विभिन्न विवादस्पद मुद्दो का समुचित समाधान भी निकल सकेगा। परन्तु श्री मधुलिमिए ने श्री मोरार जी देसाई के इन आग्रहो एव निमन्त्रणो को हमेशा अस्वीकार कर दिया । क्या उन्हे श्री देसाई से भय था ? या वे लज्जा का अनुभव करते थे ।"[3]

15 अगस्त 1978 को श्री मधुलिमिए ने श्री मोरार जी को पत्र लिखा जिसमे उन्होने श्री काति देसाई पर भ्रष्टाचार के अनेक आरोप लगाये । 24 अगस्त को श्री देसाई को पत्र लिखकर उन्होंने भारतीय विदेश नीति के कुछ आयामो पर आक्षेप किये । 28 अगस्त को उन्होने पुन 'काति प्रकरण' पर श्री देसाई को पत्र लिखा । कुछ दिन चुप रहने के बाद 24 नवम्बर 1978 को श्री मधुलिमिए ने श्री मोरार जी देसाई को पत्र लिखकर जनता पार्टी एव आर0 एस0 एस0 के सम्बन्धो पर आक्षेप किया । श्री मोरार जी ने इन सभी पत्रो का यथोचित उत्तर देते हुये, श्री मधुलिमिए को व्यक्तिगत वार्ता के लिये आमन्त्रित किया परन्तु श्री मधुलिमिए ने इस पर कोई ध्यान नही दिया । "श्री मधुलिमिए की श्री मोरार जी के प्रति यह रुग्ण अरुचि और आपसी हितो के मुद्दो पर उनसे व्यक्तिगत रुप से वार्ता करने से इन्कार करना अव्याख्येय है ।"[4] इस सम्पूर्ण 'पत्राचार-प्रकरण' की एक ही व्याख्या हो सकती है कि श्री मधुलिमिए किसी भी समस्या का समाधान नही चाहते थे "वे उत्पीड़न को राजनीति पर विश्वास करते थे और उनका एक मात्र उद्देश्य जनता पार्टी मे सकट पैदा करके उसमे फूट डालना था ।"[5]

---

1. शोधकर्ता की श्री सुरेन्द्र मोहन से वार्ता का अश
2. इन सभी पत्रों के सन्दर्भ एव मूलपाठ-उद्धृत है, अरुण गाधी "दि मोरार जी पेपर्स", पूर्वोक्त पृ0 122-128
3. अरुण गाँधी "दि मोरार जी पेपर्स", पूर्वोक्त, पृ0 122
4. वही, पृ0 123
5. वही, पृ0 124

निष्कर्ष

प्रकारान्तर से श्री मधुलिमिए अपने षड्यत्र मे सफल हुये । जनता पार्टी के विघटन एव श्री मोरार जी देसाई को प्रधानतन्त्री पद से अपदस्थ करने को उनकी योजना सरलता से कार्यान्वित हो गयी । इस षड्यत्र मे सम्मिलित "प्रत्येक गुट एव व्यक्ति ने जनता पार्टी के ताबूत मे अन्तिम कील ठोकने मे पूरी सहायता प्रदान की ।" जनता सरकार के पतन के बाद श्री मधुलिमिए ने श्री मोरार जी को पुन उत्पीडित करते हुये 20 जुलाई 1979 को एक पत्र लिखा जिसमे उन्होंने सरकार के पतन के लिये अपनी भूमिका को उचित ठहराया । श्री मोरार जी देसाई ने 31 जुलाई 1979 को श्री मधुलिमिए के पत्र का उत्तर देते हुये एक पत्र लिखा, 'मै जनता पार्टी के प्रति आपके दृष्टिकोण को समझ सकता हूँ, जब आपने इसे 'जर्जर साठ-गाठ' की सज्ञा दी । जनता पार्टी के कुछ सदस्यो के इसी दृष्टिकोण मे जनता पार्टी के विघटन के बीज निहित थे । ....आप लोगो के द्वारा जनता पार्टी के लिये किये गये सम्पूर्ण कृत्यो को एक मुहावरे मे समाहित किया जा सकता है, कि 'आप लोगो ने इसकी पीठ मे छुरा भोंका ।'[1] जनता पार्टी सत्ताच्युत हो गयी, एव उसका विघटन हो गया परन्तु मूल तथ्य यह है कि जिन्होंने पार्टी छोडी थी, उन्होंने जनता से किये गये वादो को हवा मे उडा दिया और जनता से विश्वासघात किया । उन्हे 'दल-बदलू' कहा जाय या 'पार्टी तोडने वाले' कोई फर्क नही पडता ।

अत जनता पार्टी एव सरकार का पतन मुख्य रुप से उसकी नीतियो एव विपक्ष की रणनीति के कारण नही हुआ बल्कि अपने ही नेताओं के क्षुद्र आचरण के कारण हुआ । किसी सस्था, समुदाय या देश को वास्तविक खतरा बाहय शत्रुओं से नही बल्कि आन्तरिक शत्रुओं से होता है । यह बात जनता पार्टी एव सरकार के लिये अक्षरश सत्य है । जनता पार्टी के अन्दर कुछ गुट एव व्यक्ति सरकार के विरुद्ध लगातार 'निदा-अभियान' चला कर सक्रिय विपक्ष की भूमिका निभा रहे थे । ऐसा लगता था कि, "जनता पार्टी श्रीमती इदिरा गॉधी की पार्टी है और जनता पार्टी के नेतागण उनके परम उत्साही अनुचर है । सम्पूर्ण जनता शासन काल मे इन नेताओ का एक-सूत्री कार्यक्रम था कि 'श्रीमती गॉधी को वापस सत्ता सौप दो ।' अगर इस सूत्र को ध्यान मे रखा जाय तो जनता पार्टी के नेताओं के आक्षेपो, आलोचनाओ एव दुरभिसन्धियो की सही व्याख्या की जा सकती है ।"[2]

अत जनता पार्टी नेताओ की सर्वोच्च सत्ता की भूख, पदलोलुपता राजनीतिक अवसरवादिता और दुरभिसन्धियो के कारण केवल एक राजनीतिक दल एव सरकार का ही पतन नही हुआ, बल्कि एक ऐतिहासिक अवसर को गवा दिया गया । जिसका उपयोग करके देश को नयी दिशा दी जा सकती थी और देश की मूल्यवादी लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओ एव सस्थाओं को सुदृढ किया जा सकता था ।

---

1. पत्र से उद्धृत, अरुण गाधी "दि मोरार जी पेपर्स", पूर्वोक्त, पृ0 127-128
2. अरुण शौरी "इन्स्टीटयूशन इन दि जनता फेज," पूर्वोक्त, पृ0 224

सप्तम् - अध्याय

जनता पार्टी का पराभव : भाग 2 :

सम्पूर्ण घटनाक्रम एवं परिणाम

(I) जनता पार्टी का विघटन एवं श्री देसाई की सरकार का पतन

(II) जनता पार्टी (एस0) की सरकार का गठन एवं पतन

जनता पार्टी का विघटन एवं श्री देसा‍ई की सरकार का पतन

राजनीति यथासम्भव अतर्विरोधो के बेहतर प्रबन्धन का या उसे ठीक-ठाक परदे मे रखने का दूसरा नाम है। लेकिन यह हो नही पाता और अनेक कारणो से अतर्विरोध धरातल पर आ जाते हैं। राजनीति मे ये अतर्विरोध सम्बन्धित सस्था एव लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के लिये घातक सिद्ध होते है। फिर इन अतर्विरोधो से निपटने की प्रत्येक पार्टी एव नेतृत्व की अलग-अलग क्षमताये होती है। जनता पार्टी एव इसके नेतृत्व मे निश्चित रूप से इसका अभाव था। दोष चाहे व्यक्तियो का रहा हो या परिस्थितियो का, परन्तु जनता पार्टी एव सरकार अपने अतर्विरोधो का प्रबन्धन नही कर सकी और उसका पतन हो गया।

किसी भी प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था मे सवैधानिक रूप से किसी सरकार का पतन एक स्वाभाविक घटना है, परन्तु जब सरकार के पतन के साथ सम्बन्धित पार्टी का भी विघटन हो जाये तो यह घटनाक्रम महत्वपूर्ण हो जाता है। फिर ऐसी पार्टी का विघटन, जिसका गठन एक ऐतिहासिक घटना हो तो, सम्पूर्ण घटनाक्रम अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। इसी कारण जनता पार्टी का 'उद्‌भव एव पराभव' दोनो भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनाये है। यह सुनिश्चित करना कठिन है कि जनता पार्टी का पतन कहाँ से और कब प्रारम्भ प्रारम्भ हुआ, परन्तु इसके पतन के बीज इसके गठन के समय ही बो दिये गये थे। पिछले कुछ अध्यायो मे उन कारणो एव प्रक्रियाओ का वर्णन एव विश्लेषण किया गया है, जिसके कारण जनता पार्टी एव सरकार का पतन हुआ। इस अध्याय मे जनता पार्टी एव सरकार के विभिन्न सकटो एव उसके पतन के सम्पूर्ण घटनाक्रम को कालक्रमानुसार रखा गया है।

लोक सभा चुनाव मे जनता पार्टी की विजय के बाद प्रधानमत्री एव पार्टी अध्यक्ष के चयन एवं केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के निर्माण के समय गुटीय नेताओ के बीच पर्याप्त अन्तर्कलह दिखाई दी थी। जनता पार्टी एव सरकार मे वास्तविक सकट की शुरूआत विधानसभाओ के चुनावो एव राज्यों मे जनता मन्त्रिमण्डल के गठन के समय हुई। इसमे जनता पार्टी के विभिन्न गुटो के बीच सघर्ष खुलकर सामने आ गये और वरिष्ठ नेताओ द्वारा आलोचनाओ प्रत्यालोचनाओ का सिलसिला प्रारम्भ हो गया। इससे सरकार एव पार्टी दोनो की छवि धूमिल हो रही थी, अत पार्टी नेतृत्व ने इसे गम्भीरता से लिया।

जनता पार्टी की कार्य समिति ने अपनी पॉचवी बैठक मे जो 18, 19 और 20 अगस्त 1977 को हुई, अन्य प्रस्तावो के साथ सगठनात्मक विषयो पर भी एक प्रस्ताव पारित किया गया। उसमे कहा गया "विधानसभाओ के चुनावो एव मन्त्रिमण्डलो के निर्माण के समय पुराने दलो के प्रति लगाव देखा गया और यह अस्वाभाविक न था...... । परन्तु ऐसे लगाव से पार्टी के अन्दर भावात्मक एकता का मार्ग अवरुद्ध होता है। पार्टी के स्वस्थ विकास के लिये यह परमावश्यक है कि ऐसे घटकवाद की भावना का त्याग किया जाय। ... सबसे पहली आवश्यकता पार्टी के अन्दर भावात्मक एकता

पैदा करने की है ।"[1] बैठक मे सुझाव दिया गया कि "यदि किसी कार्यकर्ता को कोई शिकायत हो तो उसे अपना विरोध प्रकट करन के लिये अखबारो और सार्वजनिक मचो का सहारा नही लेना चाहिये । उसे पारस्परिक विचार विनिमय द्वारा अथवा वरिष्ठ नेताओ की सहायता से अपने मतभेदो को दूर करना चाहिये ।"[2]

जनता पार्टी कार्य समिति के इस प्रस्ताव का कोई प्रभाव नही पड़ा और पार्टी के 'सगठनात्मक चुनाव' को लेकर विवाद छिड़ गया । पार्टी मे नये सदस्यो की भर्ती के प्रश्न को लेकर भारतीय लोकदल और जनसघ गुट मे तीखी नोक-झोक हुई । पार्टी अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर ने दल निर्माण की आवश्यकता पर बल देते हुये कहा कि, "हमे सभी दवाबो के बावजूद अपने सगठन को कारगर बनाना है ।"[3] इन अपीलो के बावजूद नये सदस्यो की भर्ती एव सगठन के चुनाव का मामला अन्त तक अधर मे लटका रहा ।

21 और 22 अप्रैल 1978 को आयोजित राष्ट्रीय कार्यकारिणी बैठक मे अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर ने पार्टी की अन्दरूनी लडाई और उससे होने वाली हानि का उल्लेख किया । श्री मोरार जी देसाई ने सुझाव दिया कि पार्टी के सदस्यो के लिये एक आचार-सहिता बनायी जाय । इसमे पारित एक प्रस्ताव मे कहा गया–

" - पार्टी के सदस्य विभिन्न विषयो पर, जिसमें सरकार की नीतिया और कार्यक्रम भी शामिल है, पार्टी की बैठको मे अपने विचार व्यक्त करने को स्वतन्त्र है । परन्तु उन्हे सार्वजनिक रूप से तथा समाचार पत्रो के माध्यम से एक दूसरे पर दोषारोपण की इजाजत नही दी जा सकती, -ऐसे सभी मामलो मे सम्बन्धित व्यक्तियो के विरुद्ध तत्काल अनुशासनात्मक कार्रवाई करनी चाहिये, चाहे वे कितने ही महत्वपूर्ण क्यो न हो ।"[4]

राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने यह निर्णय किया कि पार्टी के अन्दर सभी स्तर के चुनाव अक्टूबर 1978 तक करा लिये जायेगे और दिसम्बर 1978 मे पार्टी का राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया जायेगा । कार्यकारिणी ने श्री राजनारायण के उस सुझाव को रद्द कर दिया कि अध्यक्ष तथा अन्य पदाधिकारियो सहित राष्ट्रीय कार्यकारिणी का चुनाव जनता पार्टी के सासदो एव विधायको से बने 'निर्वाचक मण्डल' द्वारा किया जाए, क्योकि पार्टी के सविधान मे ऐसा प्रावधान नही था । पार्टी पदाधिकारियो का एक वर्ष का तदर्थ कार्यकाल समाप्त हो रहा था, अत श्री चन्द्रशेखर ने महासचिवो सहित त्यागपत्र देने की इच्छा व्यक्त की । सदस्यो ने अध्यक्ष पर पूरा-पूरा विश्वास व्यक्त किया और सर्वसम्मति से निश्चय किया कि जब तक नयी कार्यकारिणी एव पदाधिकारियो का चुनाव न हो तब तक अध्यक्ष एव अन्य पदाधिकारी अपने पदो पर बने रहे ।

गम्भीर मोड़

अप्रैल 1978 मे स्थिति बहुत गम्भीर हो गयी । हरियाणा और उत्तर प्रदेश मे 'असन्तुष्ट विधायकों' की गतिविधियाँ तेज हो गयी और इन्होंने केन्द्रीय नेतृत्व से माँग की कि स्थिति मे उचित हस्तक्षेप करे । केन्द्रीय नेतृत्व ने हरियाणा के मुख्यमत्री को अपने विधायक दल से विश्वासमत प्राप्त करने को कहा । बाद मे उ० प्र० के मुख्यमत्री को

1. जन विश्वासघात जनता पार्टी प्रकाशन, पूर्वोक्त, पृ० 3, देखे दि इण्डियन एक्सप्रेस दिल्ली, अप्रैल 22, 1977 ।
2. वही ।
3. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया दिल्ली, नवम्बर 3, 1977 ।
4. जनविश्वासघात . जनता पार्टी प्रकाशन, पूर्वोक्त, पृ० 4, देखे दि टाइम्स आफ इण्डिया, दिल्ली, अप्रैल 23, 1978 ।

भी यही निर्देश दिया गया। इसके विरोध में केन्द्रीय गृहमन्त्री एव पार्टी के वरिष्ठ नेता श्री चरणसिह ने पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी और ससदीय बोर्ड से त्यागपत्र दे दिया।

28 अप्रैल 1978 के अपने त्यागपत्र मे श्री चरणसिह ने पार्टी नेताओ पर यह दोष लगाया कि "वे हरियाणा, उ० प्र० और बिहार मे अनुशासन हीनता को माफ ही नही कर रहे है बल्कि पार्टी के कार्यकर्ताओं को पार्टी की सरकार के मुख्यमन्त्रियो और पार्टी के हितो के विरुद्ध खुल्लम- खुल्ला काम करने के लिये सक्रिय रूप से उत्साहित एव प्रेरित कर रहे है।"[1] उन्होंने आरोप लगाया "कि पार्टी में घटकवाद ऊपर से प्रोत्साहित किया जा रहा है।"[2]

इस घटना से श्री मोरारजी देसाई, श्री चन्द्रशेखर एव श्री चरण सिह के बीच खुलेआम दोषारोपण प्रारम्भ हो गया और एकाएक पार्टी एव सरकार की स्थिति नाजुक हो गयी। पार्टी के कुछ वरिष्ठ नेताओं ने स्थिति को सभालने का प्रयास किया। श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने कहा कि, "मैं श्री चरणसिह के बिना जनता पार्टी की कल्पना नही कर सकता। मै नही समझता कि पार्टी अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर या प्रधानमन्त्री श्री देसाई पार्टी के अन्दर मतभेदो को बढावा दे रहे है या अस्थिरता पैदा करने की कोशिश कर रहे है।"[3]

इसी बीच हरियाणा के मुख्यमत्री श्री देवी लाल ने 8 मई को और उत्तर प्रदेश के मुख्यमत्री श्री राम नरेश यादव ने 4 जून को अपने-अपने विधायक दलो से विश्वास मत प्राप्त कर लिया। श्री राजनारायण घटनाओं के इस मोड से सन्तुष्ट न हुये। 5 जून को उन्होने पार्टी के भूतपूर्व काग्रेसियो की अच्छी खबर ली, और नयी कार्यकारिणी बनाने एव नये पार्टी अध्यक्ष के चयन की माँग की। 12 जून को जयपुर मे एक प्रेस काफ्रेस मे बोलते हुए उन्होने कहा कि "प्रत्येक मुद्दे मे अनुशासनात्मक कार्रवाई नही की जा सकती। ये राजनीतिक प्रश्न है इन्हे वार्ता से सुलझाया जाना चाहिये।"[4] पार्टी का आन्तरिक सकट बढ़ने लगा। 22 जून को ससदीय बोर्ड ने श्री राजनारायण पर पार्टी निर्देशो के उल्लघन का आरोप लगाया और स्पष्टीकरण माँगा कि उन्होने पार्टी के आन्तरिक मतभेदो को सार्वजनिक रूप से क्यो व्यक्त किया? 'श्री चरणसिह ने बोर्ड द्वारा श्री राजनारायण से स्पष्टीकरण माँगने को अनुचित ठहराया और कहा इससे पार्टी के मृत्युनाद का स्वर ध्वनित होता है। जब श्री अटल बिहारी और श्री जार्ज फर्नाडीज इस प्रकरण पर उनसे वार्ता करने गये तो उन्होंने कहा कि 'ऐसी स्थिति' मे उनका पार्टी मे रहना सम्भव नही है।'[5] यह मात्र चौधरी चरणसिह ही जानते थे कि 'ऐसी स्थिति' से उनका क्या तात्पर्य है।

25 जून को श्री राजनारायण ने शिमला मे रिज पर धारा 144 तोडकर, जो उस क्षेत्र मे लगी हुई थी, एक सभा को सम्बोधित किया। श्री राजनारायण ने हिमाचल प्रदेश की जनता सरकार पर प्रहार किया। उन्होंने सभा से भी राज्य सरकार की निन्दा करने का आग्रह किया।[6] जनता पार्टी मे सकट गहरा रहा था। श्री चरणसिह, श्री राजनारायण एव श्री देवीलाल की पार्टी पदाधिकारियों के विरुद्ध मुहिम जारी थी। इस संकट का चरम बिन्दु उस समय पहुँचा जब श्री

---

1 वही, पृ० 5।
2 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, मई 1, 1978।
3. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, मई 1, 1978।
4. दि स्टेट्समेन, दिल्ली, जून 13, 1978।
5. वही, जून 24, 1978।
6. वही, जून 26, 1978।

चरणसिह ने दिल्ली के समीप सूरजकुण्ड से 28 जून 1978 को एक वक्तव्य जारी किया। इसमें 'उन्होंने श्रीमती इदिरा गॉधी के विरुद्ध सख्त और जल्द कार्रवाई करने की माग करते हुए कहा कि उन्हे मीसा के अन्दर नजरबन्द कर देना चाहिये और उन पर विशेष अदालत मे मुकदमा चलाया जाना चाहिये।' उन्होंने कहा कि 'श्रीमती इदिरा गाधी के विरुद्ध कार्रवाई न करने पर लोग सोचते है कि सरकार मे 'हम नपुसक लोगो का समूह' है जो देश का शासन नही चला सकते।'[1] श्री चरणसिह का यह वक्तव्य जनता सरकार के विरुद्ध युद्ध की स्पष्ट घोषणा एव सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्तो का खुला उल्लघन था।

सिद्धान्तों की रक्षा

29 जून को श्री मोरारजी देसाई ने श्री चरणसिह और श्री राजनारायण के व्यवहार पर आपत्ति की और उनसे तत्काल केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र देने को कहा। 'श्री देसाई ने दोनों नेताओं को दो अलग-अलग पत्र लिखे। इससे कुछ ही घटे पहले मन्त्रिमण्डल की आकस्मिक बैठक हुयी थी जिसमे सर्वसम्मति से उस तरीके के प्रति अपना विरोध प्रकट किया गया था, जिस तरीके से दोनो मन्त्री व्यवहार कर रहे थे तथा प्रधानमत्री को अधिकार दिया कि वे जैसी कार्यवाही ठीक समझे वैसी करे।'[2] श्री चरणसिह को लिखे पत्र मे श्री देसाई ने विशेष रूप से उस वक्तव्य पर आपत्ति की जिसमे उन्होंने श्रीमती इदिरा गॉधी के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करने मे विलम्ब के लिये सरकार को दोष दिया था। उन्होंने इस बात से इन्कार किया कि श्रीमती इदिरा गाधी पर अभियोग चलाने मे देर की गयी है। उन्होंने कहा 'कि श्रीमती इदिरा गाधी के विरुद्ध मीसा का प्रयोग करने का अर्थ होगा, वह सब उलट देना, जिसका जनता पार्टी समर्थन कर रही है।'[3]

श्री चरणसिह ने श्रीमती इदिरा गॉधी पर विशेष अदालत मे मुकदमा चलाने की बात अवश्य की थी परन्तु जब वे गृहमन्त्री थे तब उन्होंने मन्त्रिमण्डल के सामने ऐसा कोई प्रस्ताव नही प्रस्तुत किया था। श्री मोरारजी देसाई का कथन था "कि श्री चरणसिह का वक्तव्य सामूहिक उत्तरदायित्व का उल्लघन है तथा ससदीय प्रणाली के सभी नियमो एव प्रथाओं के विपरीत है। किसी भी सरकार मे इस किस्म का व्यवहार खोज पाना कठिन है अत श्री चरणसिह से त्यागपत्र की प्रार्थना करना मेरा दु खद कर्तव्य है।"[4]

श्री राजनारायण के त्यागपत्र के लिये लिखे गये पत्र मे श्री देसाई ने कहा, "कि शिमला मे उनका व्यवहार अविवेकपूर्ण था। मन्त्रिमडलीय मन्त्री होते हुये भी उन्होंने केवल कानून का उल्लघन नही किया अपितु एक राज्य के मुख्यमन्त्री की आलोचना भी की।"[5] 30 जून 1978 को श्री चरणसिह और श्री राजनारायण ने केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया। त्यागपत्र देने के बाद श्री चरणसिह ने एक सवाददाता के प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा कि 'हम षडयत्र का शिकार हुये है।' उन्होंने सरकार से अपने मतभेदो को उचित बताते हुय कहा 'कि सरकार मे मैं भ्रष्ट लोगो से घिरा हुआ था। मैंने अपने मतभेदो को ईमानदारी से व्यक्त किया है। मै किसी भी परिस्थिति मे भ्रष्टाचार और बुराई

---

1. जन विश्वासघात, पूर्वोक्त, पृ० 6, देखे एल० के० अडवाणी, पूर्वोक्त पृ० 31, दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, जून 30 1978।
2. वही, देखें एस० के० घोष, पूर्वोक्त, पृ० 176।
3. वही।
4. जन विश्वासघात, पूर्वोक्त, पृ० 6-7।
5. वही, पृ० 7।

से समझौता नही कर सकता । त्यागपत्र देने मे मुझे राहत महसूस हो रही है ।'[1] उन्होंने राहत मिलने की जो बात कही थी, वह श्रीमती इदिरा गॉधी के उस भरपूर राहत वाली बात जैसी विश्वसनीय थी जो मार्च 1977 मे लोक सभा चुनाव मे पराजित होने के बाद श्रीमती इदिरा गॉधी ने कही थी ।

इन नेताओ के त्यागपत्र से भारतीय लोकदल के कुछ नेताओ ने भी त्यागपत्र दे दिया, परन्तु श्री चरणसिह इससे कोई बहुत बड़ा समर्थन नही हासिल कर सके । हरियाणा के मुख्यमत्री श्री देवीलाल ने कहा कि 'जिन घटनाओ के बाद श्री चरणसिह और श्री राजनारायण से त्याग पत्र मॉगा गया वह भारतीय लोकदल गुट के विरुद्ध अन्य गुटो का गम्भीर षड्यत्र था ।'[2] श्री रवि राय ने 'श्री चरणसिह के बलात त्यागपत्र को 'पूर्व-नियोजित' कहते हुये पार्टी के महासचिव पद से त्यागपत्र दे दिया ।'[3] जबकि श्री बीजू पटनायक और श्री एच० एम० पटेल जैसे भारतीय लोकदलगुट के वरिष्ठ मन्त्रियो ने त्यागपत्र नही दिया । परन्तु इस प्रकरण से जनता शासित राज्यो की सरकारो मे राजनीतिक अस्थिरता का बढ़ावा मिला । 'इधर दो-तीन महीने से जनता पार्टी एव सरकार मे जो कुछ घटित हो रहा था, वह एक त्रासदी या हास्य - नाटिका नही बल्कि विस्मयकारी घटना थी, जिसमे नायक एव खलनायक तथा झूठ और सच मे अन्तर करना कठिन था ।'[4]

श्री चरणसिह और उनके समर्थक सरकार पर लगातार आरोप लगाते रहे । श्री चरणसिह ने आरोप लगाया कि 'श्री चन्द्रशेखर और श्री जगजीवन राम काग्रेस एव श्रीमती इदिरा गॉधी से मिले हुए है ।' बाद में उन्होंने घोषणा की कि 'वे 17 जुलाई को ससद के समक्ष वृहद 'किसान रैली' में पार्टी मे उच्च स्तर पर हो रहे षड्यन्त्र का पर्दाफाश करेगे ।'[5] उत्तर प्रदेश और बिहार के मुख्यमन्त्रियो ने रैली के पक्ष में अवश्य थे, परन्तु हरियाणा के मुख्यमत्री श्री देवीलाल ने इसका जोरदार समर्थन किया । इस पर ससदीय बोर्ड ने श्री देवीलाल को आदेश दिया कि या तो वे अपने पद से हट जाये या फिर रैली के समर्थन मे दिये गये अपने वक्तव्य को वापस ले । ससदीय बोर्ड ने निश्चय किया कि 7 जुलाई को हरियाणा मे नये विधायक दल के नेता का चुनाव होगा ।

सद्भावना की अपील

इस सकट को सुलझाने के लिये पार्टी के विभिन्न स्तरो पर प्रयास चल रहे थे । 6 जुलाई को श्री अटल बिहारी वाजपेयी, श्री बीजू पटनायक, श्री राम कृष्ण हेगड़े और अन्य केन्द्रीय मन्त्रियो की श्री चरणसिह और उनके समर्थको के बीच सद्भावनापूर्ण बात हुई । इसका परिणाम यह हुआ कि श्री चरणसिह ने 17 जुलाई की अपनी प्रस्तावित किसान रैली स्थगित कर दी । इसके साथ ही हरियाणा विधायक दल की उस बैठक को भी स्थगित कर दिया गया जिसमे देवीलाल के स्थान पर नये विधायक दल के नेता का चुनाव होना था ।

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, जुलाई 2, 1978 ।
2. वही, जुलाई 1, 1978 ।
3. वही, जुलाई 3, 1978 ।
4. एस० के० घोष, पूर्वोक्त, पृ० 181, देखे शाम लाल 'दि नेशनल सीन जनता पार्टी इन ए ट्रेप' दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, जुलाई 28, 1978 ।
5. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली जुलाई 2, 1978 ।

चौधरी चरणसिह के त्यागपत्र से उठे सकट पर विचार विमर्श करने के लिये 11 जुलाई 1978 को पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की एक बैठक बुलायी गयी । कार्यकारिणी ने सर्वसम्मति से पार्टी के सदस्यो से अपील की कि "वे मिल-जुलकर कार्य करे तथा सद्भाव, विश्वास और एकता का वातावरण पैदा करे । . .राष्ट्रीय कार्यकारिणी चाहती है कि श्री चरणसिह पार्टी अध्यक्ष को लिखे अपने 28 अप्रैल 1978 के पत्र को वापस ले ले और राष्ट्रीय कार्यकारिणी और ससदीय बोर्ड मे बने रहे ।"[1] श्री चरणसिह ने दूसरे दिन अपना त्यागपत्र वापस ले लिया । श्री देसाई और श्री चरणसिह के बीच मतभेदो को दूर करने के लिये चोटी के नेताओ ने अनेको प्रयास किये परन्तु वे असफल रहे । श्री मोरारजी देसाई ने स्पष्ट कह दिया था कि श्री चरणसिह उस समय तक सरकार मे प्रवेश नही पा सकते जब तक वे सरकार के विरुद्ध अपने आक्षेपो को वापस नही लेते । अत स्थिति यह थी कि श्री चरणसिह पार्टी मे तो थे परन्तु सरकार मे नही । स्थिति को सभालने के लिये श्री कर्पूरी ठाकुर ने सुझाव दिया कि भारतीय लोकदल गुट को समायोजित करने के लिये श्री चरणसिह को श्री चन्द्रशेखर की जगह पार्टी अध्यक्ष बनाया जाय~'[2] इस प्रस्ताव का श्री मोरार जी देसाई गुट एव श्री सी० बी० गुप्ता, एव श्री रामधन, आदि ने विरोध किया । वैसे श्री चरणसिह को अवसर देने के लिये श्री चन्द्रशेखर ने 17 अगस्त 1978 को जनता पार्टी के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने की इच्छा व्यक्त की थी परन्तु पार्टी के अनेक पूर्व घटको ने इसका विरोध किया था ।

इसी बीच श्री चरणसिह ने सुझाव दिया कि 'जनता पार्टी मे शामिल सभी घटक दलो को पुनरूज्जीवित किया जाय और 'मिली-जुली सरकार' बनायी जाये ।'[3] 22 दिसम्बर 1978 को उन्होने लोकसभा मे अपने त्यागपत्र पर एक वक्तव्य दिया और आरोप लगाया कि 'श्री मोरार जी देसाई उन्हे अपने मन्त्रिमण्डल से निकालने का बहाना ढूँढ रहे थे ।' इसके एक दिन बाद अर्थात् 23 दिसम्बर को उन्होने नई दिल्ली मे विशाल 'किसान रैली' का आयोजन किया । श्री चरणसिह ने रैली को सम्बोधित करते हुये कहा कि 'वर्तमान सरकार मे किसानो के हितो को अन देखा किया गया है और किसानो का 20 सूत्री मागपत्र ही श्री मोरारजी देसाई के विरुद्ध मेरा घोषणा पत्र है ।'[4]

श्री चरणसिह ने रैली से अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर दिया था और यह सकेत भी दे दिया था कि अगर 1 फरवरी 1979 तक समस्या का पूर्ण समाधान (उन्हे सरकार मे वापस न लिया गया) न किया गया तो वे 'नये दल' के गठन के विषय मे विचार करेगे । अत 1979 के प्रारम्भ से ही कतिपय गुटो ने जिसमे जनसघ प्रमुख था, श्री मोरारजी देसाई और श्री चरणसिह के बीच मेल कराने के गम्भीर प्रयास किये और उन्हे सफलता मिली । 24 जनवरी, 1979 को श्री चरणसिह वित्त मन्त्री एव उपप्रधानमत्री के रूप मे फिर 'देसाई मन्त्रिमण्डल' मे शामिल हो गये ।

नवीन संकट

यह समझा जाता था कि श्री चरणसिह के केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे शामिल हो जाने से अनेक संघर्षो का समाधान हो जायेगा, परन्तु यह नही हो सका । इस बार गुटीय सघर्षो की रणभूमि केन्द्र क बजाय राज्य थे । यह एक दुर्योग ही

1. जन विश्वासघात, पूर्वोक्त, पृ० 7 ।
2. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली अगस्त 18, 1978 ।
3. वही, दिसम्बर 18, 1978 ।
4. वही, दिसम्बर 24, 1978, किसान रैली मे 'माग पत्र' स्वीकार किया गया, देखे, जनता दिल्ली, वायलुम XXXIII, न० 41, दिसम्बर 31 1978; पृ० 10 ।

था कि जिस दिन श्री चरणसिह को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे शामिल किया गया उसी दिन उत्तर प्रदेश के मुख्यमत्री श्री रामनरेश यादव ने अपने मन्त्रिमण्डल से 'जनसघ गुट' के चार मन्त्रियो को हटा दिया । जनसघ गुट ने रामनरेश यादव सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया, जिससे सरकार अल्पमत मे आ गयी । तेजी से राजनीतिक समीकरण बनने लगे । श्री चरणसिह और भूतपूर्व सी० एफ० डी० नेता श्री एच० एन० बहुगुणा के समर्थन से 27 फरवरी 1978 को श्री बनारसी दास, श्री रामनरेश यादव की जगह मुख्यमत्री बनाये गये ।

उसी बीच श्री राजनारायण अपने सार्वजनिक भाषणो और प्रेस सम्मेलनो मे श्री मोरारजी देसाई और श्री चन्द्रशेखर के विरुद्ध निन्दा अभियान चलाते रहे । 11 मार्च को उन्होंने 'समानान्तर जनता पार्टी' बनाने का सकेत दिया ।'[1]

4 अप्रैल को राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने श्री राजनारायण से अपने पार्टी विरोधी भाषणो एव वक्तव्यो की सफाई देने को कहा । 7 अप्रैल को ससदीय बोर्ड ने अपनी बैठक मे निश्चय किया कि हिमाचल प्रदेश और उडीसा के मुख्यमत्री अपने-अपने विधायक दलो से विश्वास मत प्राप्त करे । कई गुटीय नेताओ द्वारा बार-बार आग्रह किये जाने पर बोर्ड ने बिहार के मुख्यमत्री श्री कर्पूरी ठाकुर को भी अपने विधायक दल से विश्वास मत प्राप्त करने का निर्देश दिया । ससदीय बोर्ड ने तीनो राज्यो मे बैठके आयोजित करने के लिये 19 अप्रैल का दिन निश्चित किया ।'[2] हिमाचल प्रदेश और उडीसा मे मुख्यमन्त्रियो को विश्वास मत मिल गया, परन्तु बिहार मे श्री कर्पूरी ठाकुर को नही मिला, और उनकी जगह श्री राम सुन्दर दास मुख्यमत्री चुने गये । जनता शासित राज्यो की राजनीति मूलत भारतीय लोकदल और जनसघ गुटो के सघर्ष की कहानी है, जिसमे जनसघ गुट विजयी हुआ । भारतीय लोकदल गुट का मानना था कि राज्यो मे भारतीय लोकदल गुट के मुख्यमन्त्रियो को हटाने मे केन्द्रीय नेतृत्व की जनसघ के साथ मिली-भगत थी । अत भारतीय लोकदल ने केन्द्रीय नेतृत्व के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल बजा दिया ।[3]

12 जून को केन्द्रीय अनुशासन समिति ने श्री राजनारायण को पार्टी विरोधी गतिविधियो के कारण पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी से निकाल दिया तथा उन्हे एक वर्ष के लिये उसका सदस्य बनने से वचित कर दिया । उसी दिन बगलौर मे एक प्रेस-सम्मेलन मे श्री राजनारायण ने कहा कि 'मै कार्यवाई से डरा नही हूँ', 'उन्होने (अनुशासन समिति के सदस्यो ने) अपने खिलाफ कार्यवाई की है ।' जब उनसे पूछा गया कि क्या श्री चरणसिह आपके साथ है, तो उन्होने उत्तर दिया 'हर कोई मेरे साथ है ।'[4] श्री चरणसिह ने राष्ट्रीय कार्यकारिणी से श्री राजनारायण के निष्कासन पर टिप्पणी करने से इन्कार कर दिया ।

---

1. जन विश्वासघात, पूर्वोक्त, पृ० 8, देखे दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, मार्च 12, 1979, शाम लाल दि नेशनल सीन "सर्चफार न्यू एलाइज", टाइम्स ऑफ इण्डिया, मार्च 16, 1979 ।
2. 'जन विश्वासघात' पूर्वोक्त पृ० 9 ।
3. शारदा ग्रोवर ग्रीड लाइक इडियन सोसायटी – (i) "जनता एक रिफ्लेक्शन आफ रीयलिटी" ऐण्ड, (ii) "टू फेसेस ऑफ जनता पार्टी," टाइम्स ऑफ इण्डिया, मई 6 एव 7, 1979 ।
4. जन विश्वास घात, पूर्वोक्त, पृ० 9, देखे, दि स्टेटसमैन, दिल्ली, जून 13, 1979 ।

रणनीति

इस घटना के बाद भारतीय लोकदल गुट की गतिविधियाँ तेज हो गयी । 21 जून को दिल्ली के कुछ समाचार पत्रों मे छपा कि नयी दिल्ली के श्री चरणसिह के निवास स्थान पर श्री राजनारायण सहित उनके कुछ समर्थको की बैठक हुई, जिसम भारतीय लोकदल की नयी रणनीति तैयार की गयी है । अपने भाषणो मे अनेक महारथियो ने इस बात पर जोर दिया कि 'जनता पार्टी से जितनी जल्दी हम अलग होंग, उतना ही हमारे और देश के लिये अच्छा होगा ।'[1] 23 जून को श्री राजनारायण ने जनता पार्टी स अलग होन की घोषणा कर दी । उन्होंने दोष लगाया कि 'पार्टी मे आर० एस० एस० का सम्प्रदायवाद, श्री मोरारजी का अधिनायकवाद, तथा श्री चन्द्रशेखर की षडयन्त्रात्मक रणनीति और निष्क्रियता हावी है ।'[2]

जनता पार्टी से त्यागपत्र देने के कुछ दिनो बाद श्री राजनारायण ने दावा किया कि 'उनके कार्यो मे श्री चरणसिह के विचार प्रतिबिम्बित है और उन्हे पार्टी से त्यागपत्र की राय श्री चरणसिह ने ही दी है ।'[3] 2 जुलाई को श्री चरणसिह ने श्री राजनारायण के दावे को गलत बताया और कहा कि 'यह तो हद हो गयी । मै समझता हूँ कि हमारे मार्ग अन्तिम रूप से अलग-अलग हो गये है ।'[4] इसके तुरन्त बाद श्री राजनारायण ने सवाददाताओ को बुलाकर कहा कि 'मै श्री चरणसिह से सम्बन्ध नही तोड़ सकता क्योंकि हमारे सम्बध शुद्ध और आध्यात्मिक है, जो कभी टूट नही सकते । उन्होंने आशा व्यक्त की कि देसाई सरकार दिसम्बर तक गिर जायेगी और श्री चरणसिह नयी सरकार बनायेगे ।'[5]

जनता पार्टी के विभिन्न घटको मे फिर से सुगबुगाहट प्रारम्भ हो गयी थी । 'इन घटनाओ के कुछ पहले, 17 मई 1979 को श्री मधुलिमिए ने एक बैठक बुलाई ताकि यह पता चल सके कि देश मे वामपथी दलो की एकता के उनके स्वप्न साकार होने की सम्भावना है या नही ? इस बैठक मे श्री राजेश्वर राव, श्री भूपेश गुप्त, श्री पी० राममूर्ति, श्री बासव पुन्नैया, हरकिशन सिह सुरजीत तथा पीजेन्टस एण्ड वर्कर्स पार्टी और रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी के प्रतिनिधि थे । इसके अतिरिक्त श्री चन्द्रजीत यादव, श्री रघुनाथ रेड्डी, श्री केशव देव मालवीय, श्री कर्पूरी ठाकुर, श्री श्यामनन्दन मिश्र और चौधरी ब्रह्मप्रकाश भी इस बैठक मे आये थे ।'[6] इस बैठक मे वामपथी दलो की एकता के सन्दर्भ मे कोई सहमति नही हो सकी । परन्तु इसमे उल्लेखनीय बात यह है कि ये लोग लगभग उन्ही तत्वो का प्रतिनिधित्व करते थे जिन्होंने बाद में मिलकर श्री चरणसिह सरकार का समर्थन किया ।

इसी श्रृखला मे श्री जार्ज फर्नांडीज ने 7 और 8 जुलाई को 'भूतपूर्व सोशलिस्ट पार्टी' के सदस्यो का एक सम्मेलन बुलाया । इस सम्मेलन मे पार्टी मे प्रकट होने वाली प्रवृत्तियो के प्रति असन्तोष व्यक्त किया, परन्तु यह भी कहा गया कि जो भी जनता पार्टी की एकता को भग करेगा वह तानाशाही लौटाने मे सहायक होगा । सम्मेलन मे कहा गया कि, "पार्टी और सरकार के कुछ अन्दरूनी विवाद न तो उन सैद्धान्तिक प्रश्न से सम्बन्धित है, जिन पर खुली और

---

1 दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, जून 21, 1979 ।

2 जन विश्वास घात, पूर्वोक्त, पृ० 9, देखे, दि स्टेटसमेन, दिल्ली, जून 24, 1979 ।

3 वही, पृ० 11 ।

4. वही, देखे दि टाइम्स आफ इण्डिया, दिल्ली, जुलाई 3, 1979 ।

5. वही, पृ० 11 ।

6. जनार्दन ठाकुर इदिरा गाधी का राजनीतिक खेल, पूर्वोक्त, पृ० 129, देखे दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, मई 18, 1979 ।

स्वतन्त्र बहस की जरूरत है और न ही जनता के कल्याण रा सम्बधित है, जो परमाश्वयक है । वे सत्ता की भूख, व्यक्तियो के टकराव और काम करने के ढग मे किसी प्रकार के नियन्त्रण के पूर्ण अभाव के कारण पैदा हुये है ।"[1]

इन गतिविधिया के मूल मतव्यो को समझते हुय पार्टी अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर ने कहा, "यदि व्यक्तियो की गुटबन्दी की जाती है अथवा पार्टी के घटको को पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न किया जाता है, तो इससे किसी को कोई लाभ नही होगा । जो लोग अपने पुराने दलो को पुन रुज्जीवित करने की बात कर रहे थे, उन्हे उन्होने याद दिलाया कि आपातकाल के पहले वे सभी राजनीतिक दल अपने-अपने सश्लिष्ट समूहो मे काम कर रहे थे, परन्तु वे असफल थे । यदि वे 1977 के चुनाव मे जनता के प्रखर उद्घोप का ध्यान नही देगे तो इतिहास की एक प्रमुख घटना को ही भुला देगे ।"[2] परन्तु वर्तमान परिदृश्य मे जनता पार्टी एव सरकार राजनीति पतन के जिस नग्न सत्य का सामना कर रही थी, वहाँ इस प्रकार की अपीलो और चेतावनियो का कोई स्थान नही था ।

मार्च 1977 के बाद कांग्रेस की स्थिति एवं भूमिका

मार्च 1977 के लोकसभा और जून 1977 मे सम्पन्न हुये विधान सभा चुनाव मे काग्रेस बुरी तरह पराजित हुई । इन चुनाव परिणामो के सामने आते ही काग्रेस मे आन्तरिक द्वन्द प्रारम्भ हो गया । काग्रेस का इतिहास रहा है कि जब भी उसकी सत्ता की पकड कमजोर हुई, उसका विभाजन हुआ । इस बार वह सत्ताच्युत थी अत विभाजन की पूर्ण सम्भावना थी और यही हुआ । काग्रेस के आन्तरिक सकट की इसी श्रृखला मे अप्रैल 1977 को श्री देवकान्त बरूआ के स्थान पर सरदार स्वर्णसिह को सर्वसम्मति से काग्रेस का अन्तरिम अध्यक्ष बनाया गया । 5 और 6 मई 1977 को दिल्ली मे अखिल भारतीय काग्रेस समिति का अधिवेशन आयोजित किया गया । इस अधिवेशन मे 27 वर्ष बाद काग्रेस अध्यक्ष पद के लिये सघर्ष हुआ । इस सघर्ष मे श्रीमती इदिरा गॉधी के समर्थन से श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी, श्री सिद्धार्थ शकर रे एव डा० कर्णसिह को हराकर अध्यक्ष पद पर निर्वाचित हुये ।

श्रीमती इदिरा गाधी का विचार था कि श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी, अध्यक्ष के रूप मे, उनके निर्देशो का पालन करेगे, परन्तु श्री रेड्डी इसके लिये तैयार न थे । श्रीमती इदिरा गॉधी ने पहले तो सत्ता काग्रेस मे रहते हुये इस पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करने की चेष्टा की । इस हेतु श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी के स्थान पर पुन. अपने पसन्द के व्यक्ति को अध्यक्ष बनाने का प्रयत्न किया, लेकिन जब इसमे सफलता नही मिली तो उन्होने काग्रेस के विभाजन का मार्ग अपनाकर अपना एक अलग राजनीतिक दल स्थापित करने की सोची ।

श्रीमती इदिरा गाधी ने दिल्ली मे अपने समर्थको का एक सम्मेलन 1 और 2 जनवरी 1978 को आयोजित किया । इस सम्मेलन मे एक अलग राजनीतिक दल की स्थापना की गयी । श्रीमती इदिरा गाधी को सर्वसम्मति से इसका अध्यक्ष चुना गया और उनके नेतृत्व वाली काग्रेस को काग्रेस (इदिरा) के नाम से असली भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस घोषित किया गया ।

---

1. जन विश्वास घात पूर्वोक्त, पृ० 11-12 ।
2. वही, पृ० 12 ।

फरवरी 1978 मे आध्रप्रदेश और कर्नाटक के विधानसभा चुनाव[1] मे, काग्रेस (इ०) की अप्रत्याशित जीत ने, रेड्डी काग्रेस के राजनीतिक अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया । इसके बाद चिकमगलूर (कर्नाटक) से नवम्बर 1978 मे श्रीमती इदिरा गाधी की भारी विजय के साथ लोकसभा मे वापसी एक ऐतिहासिक घटना थी, जिसने एक बार पुन दक्षिणभारत मेश्रीमती इदिरा गाधी के प्रभाव को यथावत पुष्ट कर दिया ।[2]

चिकमगलूर विजय के बाद श्रीमती इदिरा गाधी और कर्नाटक के मुख्यमत्री श्री देवराज अर्स के बीच मतभेद उभरने लगे । 24 जून 1979 को काग्रेस (इ०) की कार्यसमिति ने श्री अर्स को पार्टी विरोधी कार्यो, अनुशासन हीनता और विश्वासघात का आरोप लगाकर 6 वर्ष के लिये काग्रेस (इ०) से निष्कासित कर दिया । इसके परिणाम स्वरूप 25 जून 1979 को श्री अर्स ने काग्रेस (इ०) से नाता तोडकर कर्नाटक-काग्रेस[3] नाम से अलग दल की स्थापना की । राज्य मे अधिकतर काग्रेस (इ०) विधायक श्री अर्स के साथ रहे । इस प्रकार काग्रेस का एक और विभाजन हो गया । बाद मे श्री रेड्डी, श्री चव्हाण, श्री स्वर्णसिह वाली काग्रेस तथा कर्नाटक काग्रेस का विलय हो गया । इसको बाद मे काग्रेस (एस०) नाम दिया गया, जिसके अध्यक्ष शरद पवार बनाये गये । यह भी निश्चय हुआ कि ससद मे काग्रेस यूनिटे तत्काल एक ही नेता के आधीन होकर काम करे, इसके फलस्वरूप कर्नाटक काग्रेस के आठ सासद काग्रेस ससदीय दल मे शामिल हो गये, जिससे उनकी सदस्य सख्या बढ़कर 76 हो गयी और वह लोक सभा मे सबसे बड़ा विपक्षी दल हो गया । इसलिये काग्रेस (इ०) नेता श्री सी० एम० स्टीफन को विपक्ष के नेता पद से हटना पड़ा और काग्रेस (एस०) के नेता श्री वाई० बी० चव्हाण लोक सभा मे विपक्ष के नेता मान लिये गये ।

मार्च 1977 मे लोकसभा चुनाव के बाद ऐसा प्रतीत होता था कि श्रीमती इदिरा गाधी का राजनीतिक जीवन खत्म सा हो गया है । जनता पार्टी के आन्तरिक झगडो और उसके नेताओ की अदूरदर्शिता के कारण जनता सरकार की छवि धूमिल हो रही थी । फरवरी 1978 मे कर्नाटक एव आध्रप्रदेश के विधान सभा चुनाव मे विजय तथा नवम्बर 1978 मे ससद मे पुनरागमन से श्रीमती इदिरा गाधी की राजनीतिक इच्छाये बलवती होती जा रही थी । जनता पार्टी को आन्तरिक फूट एव सत्ता सघर्ष ने श्रीमती गॉधी की मुश्किले आसान कर दी थी और उन्हे लगने लगा था कि जनता पार्टी काग्रेस का विकल्प नही हो सकती ।[4]

श्रीमती इदिरा गाधी ने जनता पार्टी मे फूट का फायदा उठाया और एक कूटनीतिक योजना के तहत श्री चरणसिह को जनता पार्टी मे सकट उत्पन्न करने के लिये प्रेरित करती रही । इसी श्रृखला मे उन्होने अपने प्रमुख राजनीतिक शत्रु श्री चरणसिह की बीमारी के समय एव उनके जन्म-दिन के शुभावसर पर उन्हे फूलो के गुलदस्तो के

---

1. फरवरी 1978 में आध्र प्रदेश और कर्नाटक के अलावा महाराष्ट्र, असम और मेघालय मे भी विधानसभा के चुनाव हुये थे ।
2. गिरी लाल जैन "दि रिटर्न ऑफ इदिराम्मा चिकमगलूर एण्ड आफ्टर", दि टाइम्स आफ इण्डिया, नवम्बर 9, 1978, गिरी लाल जैन . "दि ट्रायल आफ इदिरा गाधी, डाइबोर्स बिटवीन लीगलिटी एण्ड पोलिटिकल प्रोसेस", दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिसम्बर 5, 1978, एम० वी० कामथ · "इंदिरा गाधी इन पार्लियामेन्ट", इलुस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया दिसम्बर 1-7 1978 ।
3. सम्पादकीय • दि कर्नाटक काग्रेस हिन्दुस्तान टाइम्स, जून 26, 1979 ।
4. गिरी लाल जैन "जनता नो सब्सीटयूड फॉर काग्रेस" दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, अप्रैल 6, 1979 । गिरी लाल जैन "जनता टियरिग इटशेल्फ एपार्ट . फियर आफ इनस्टेबिलीटी एट दि सेन्टर," दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, जनवरी 7, 1979, के० सी० खन्ना, जनताज ग्रोइग डीलेम्मा वेजेज ऑफ इनफाईटिग एण्ड इन एपर्टाटयूड," दि टाइम्स ऑफ इण्डिथ्या नवम्बर 21 1978 ।

साथ अपनी शुभकामनाये भेजी । वे भविष्य मे श्री चरणसिह की कमजोरी (सत्ता लोलुपता) का लाभ उठाने की योजना बना रही थी । उनका पुत्र सजय गाधी, श्री राजनारायण से मिलकर जनता पार्टी की जडे खोदने का प्रयास कर रहा था । 'श्रीमती इदिरा गाधी जानती थी कि यदि यह सरकार 1982 तक चली तो इस सरकार द्वारा आपातकाल की ज्यादतियो के लिये बेठाये गये जॉच आयोगो की रिपोर्ट आ जायेगी और उनकी कारगुजारियो का पर्दाफाश हो जायेगा । अत वे शीघ्रातिशीघ्र मध्यावधि चुनाव चाहती थी ।'[1] परन्तु उन्हे विश्वास न था कि यह अवसर इतनी जल्दी आ जायेगा ।

इदिरा गाधी जून 1979 मे काग्रेस (इ०) के विभाजन से पुन निराश हुयी थी । परन्तु जब काग्रेस (एस०) ने लोकसभा मे जनता सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पेश किया तो उन्होने श्री चरणसिह को अपना मोहरा बनाया । श्रीमती इदिरा गाधी ने बड़ी उदारता से न केवल अपने प्रबलतम विरोधी काग्रेस (एस०) के कन्धे से कधा मिलाया बल्कि श्री चरणसिह को बिना शर्त समर्थन का प्रस्ताव भी रखा । श्री चरणसिह के प्रधानमन्त्री बनने के बाद उन्होने उसी उदारता के साथ चरणसिह सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया और 22 दिन पुरानी 'चरणसिह सरकार' लोकसभा मे अपना बहुमत नही सिद्ध कर सकी । इस प्रकार उन्होने न केवल अपने प्रबलतम राजनीतिक शत्रु श्री चरणसिह एव काग्रेस (एस०) को सबक सिखाया बल्कि जनता पार्टी एव सरकार के पतन मे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और अपनी कूटनीतिक चाल से देश को शीघ्रातिशीघ्र मध्यावधि चुनाव के लिये मजबूर कर दिया ।[2]

जनता पार्टी में फूट

ससद के मानसून सत्र के पहले ही जनता पार्टी के विघटन की सभी परिस्थितिया पूर्ण रूप से परिपक्व हो चुकी थी । 9 जुलाई, 1979 को लोकसभा के वर्षाकालीन अधिवेशन के पहले दिन ही जनता पार्टी के 13 सासदो ने जनता ससदीय दल से त्यागपत्र दे दिया, इसमे अधिकतर श्री राजनारायण एव भारतीय लोकदल गुट के समर्थक थे । परन्तु यह पलायन केवल भारतीय लोकदल-गुट तक सीमित नही रहा । 10 जुलाई 14 और सासदो ने पार्टी छोड दी । श्री राजनारायण ने कहा कि हमारे गुट का नाम 'जनता पार्टी (सेक्युलर)' है ।[3]

काग्रेस (एस०) संसदीय दल के निर्णयानुसार विपक्ष के नेता श्री वाई० बी० चव्हाण ने 10 जुलाई को मोरार जी देसाई सरकार के विरुद्ध लोकसभा मे अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिस पर 16 जुलाई को मतदान होना सुनिश्चित हुआ । अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करते समय श्री चव्हाण को विश्वास न था कि जनता सरकार का पतन हो जायेगा, परन्तु उसी दिन 22 और ससद सदस्यो ने जनता पार्टी से त्यागपत्र दे दिया । इस प्रकार कुल 49 सदस्यो के त्यागपत्र देने से 11 जुलाई, 1979 को सदन मे जनता पार्टी की शक्ति 302 से घटकर 253 रह गयी और जनता सरकार अल्पमत मे आ गयी ।[4]

---

1. एल० के० आडवाणी पूर्वोक्त, पृ० 41 ।
2. सम्पादकीय . 'ओवर टु चरणसिह,' दि हिन्दुस्तान टाइम्स, जुलाई 22, 1979, गिरी लाल जैन "फाल ऑफ चरणसिह लेक-ऑफ हाई हेडेड टरीयलिज्म" दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, अगस्त 23, 1979, इन्दर मल्होत्रा "टेन टरबुलेन्ट वीकस डेज वर" टाइम्स ऑफ इण्डया, अगस्त 23, 1979; सम्पादकीय 'ऐण्ड नाउ एट दि सेन्टर' टाइम्स ऑफ इण्डिया, अगस्त 25, 1979 ।
3. जन विश्वासघात, पूर्वोक्त, पृ० 13 ।
4. वही ।

12 जुलाई को उद्योगमत्री श्री जार्ज फर्नाडीज ने लोकसभा मे जनता सरकार के समर्थन मे लम्बा वक्तव्य दिया। अविश्वास प्रस्ताव पर बोलते हुये उन्होने शक्तियो की पुन गुटबन्दी को असामायिक बताया और सरकार की नीतियो का प्रबल समर्थन किया तथा प्रस्ताव के पक्षधरो पर तीव्रतम प्रहार किया।[1] इससे उनके इरादे के बारे मे अटकलबाजी की कोई गुजाइश न रही और ऐसा लगता था कि अविश्वास प्रस्ताव के सफलता की आशा समाप्त हो गयी है। 12 जुलाई को जनता पार्टी छोडने वालो की सख्या 56 हो गयी, जिसमे स्वास्थ्य मत्री श्री रवि राय भी थे।

इसी बीच जनता पार्टी के नेताओ और शुभचिन्तको द्वारा लगातार एकता की अपील की जाती रही। आचार्य जे० बी० कृपलानी ने जनता पार्टी के सब गुटो से आह्वान किया कि 'वे इस निर्णायक काल मे एक जुट हो जाये। उनका तत्कालिक उद्देश्य विपक्ष के अविश्वास प्रस्ताव को रद्द करना होना चाहिये। उन्होने सुझाव दिया कि बाद मे जनता पार्टी शान्त वातावरण मे मिलकर मतभेद दूर करने के उपाय खोज सकती है।'[2] इन अपीलो से कोई फायदा नही हुआ-- 13 जुलाई को 4 राज्यमत्रियो सहित श्री एच० एन० बहुगुणा ने मत्रिमण्डल से अपने इस्तीफे की घोषणा कर दी। 14 जुलाई को इस्पातमत्री श्री बीजू पटनायक ने सरकार से त्यागपत्र दे दिया। इधर चौधरी चरणसिह पर दबाव पड रहा था कि वे जनता सरकार के समर्थन मे वक्तव्य दे, परन्तु श्री चरणसिह ने कहा, "मै अपने अनुयायियो की बात मानूँगा और वही करूँगा, जो मुझसे कहेगे।"[3]

श्री मोरार जी देसाई के राजनीतिक जीवन का सकट उस समय चरम पर पहुँचा जब उनके अपने नजदीकी मित्र उन्हे प्रधानमत्री पद से त्यागपत्र देने की सलाह देने लगे। 14 जुलाई, 1979 को श्री जगजीवन राम ने श्री मोरार जी देसाई को एक पत्र लिखा। इस पत्र मे उन्होने श्री मोरार जी देसाई को वर्तमान सकट के लिये प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप से दोषी ठहराते हुये कहा कि 'मैं हमेशा आपके साथ हूँ परन्तु आशा करता हूँ कि वर्तमान सकट की गुरूता को ध्यान मे रखकर आप उचित कदम उठायेगे।'[4] श्री जगजीवन राम ने पूर्ण राजनीतिक परिष्कृतता से श्री मोरार जी देसाई से त्यागपत्र की माग की थी। परन्तु श्री देसाई, प्रधानमत्री पद से त्यागपत्र देने के लिये पूर्णत अनिच्छुक थे। इसी बीच श्री मोहन धारिया ने प्रधानमत्री को लिखे पत्र मे कहा कि सरकार को ससद के पटल मे पराजय और अपयश से बचाने का एक ही उपाय है कि आप त्यागपत्र दे दे।[5] आचार्य कृपलानी ने भी सुझाव दिया कि दलीय एकता के लिये श्री देसाई को त्यागपत्र दे देना चाहिये।

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, जुलाई 13, 1979, देखे वक्तव्य का मूल पाठ एल० के० आडवाणी, 'दि पीपुल बिट्रेड' परिशिष्ट VII, पृ० 150-160।
2. दि इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, जुलाई 12, 1979।
3. दि स्टेट्समैन, दिल्ली, जुलाई 11, 1979।
4. श्री जगजीवन राम द्वारा श्री मोरार जी देसाई को लिखे गये पत्र के मूल पाठ से, उद्धृत : अरुण गाँधी . 'मोरार जी पेपर्स', पूर्वोक्त, पृ० 234-236।
5. उद्धृत, अरुण गाँधी, पूर्वोक्त, पृ० 238।

श्री मोरार जी देसाई का त्यागपत्र

श्री मोरार जी देसाई ने पार्टी के अन्दर मे पड रहे दबावो के प्रकाश मे अपनी वस्तुस्थिति का आकलन किया और 15 जुलाई को सरकार से अपना त्यागपत्र दे दिया । 16 जुलाई, 1979 को श्री मोरार जी देसाई ने राष्ट्रपति को लिखे गये पत्र मे पुन सरकार बनाने का दावा प्रस्तुत किया । उन्होने राष्ट्रपति से कहा कि 'वे अब भी जनता ससदीय दल के नेता है तथा दलबदल के बावजूद जनता पार्टी लोकसभा मे अब भी सबसे बड़ा दल है । अत लोकसभा मे किसी अन्य दल के मुकाबले जनता ससदीय दल के लिये समर्थन जुटा पाना आसान है ।'[1] "श्री मोरार जी देसाई का यह कथन तथ्यात्मक रूप से ठीक था । एक दिन पहले प्रधानमत्री पद से त्यागपत्र देने के बाद उन्हे क्या अधिकार था कि वे राष्ट्रपति से यह आग्रह करे कि सदन मे सबसे बडे दल का नेता होने के कारण उन्हे ही सर्वप्रथम सरकार बनाने की सभावनाओ का पता लगाने के लिये आमत्रित करना ही उचित होगा ।"[2]

15 जुलाई को श्री जार्ज फर्नाडीज, श्री पुरुषोत्तम लाल कौशिक और श्री भानु प्रताप सिह ने सरकार से त्यागपत्र दे दिया । श्री फर्नाडीज के त्यागपत्र से उन लोगो का आघात लगा जो जनता पार्टी से सहानुभूति रखते थे । श्री मुधुलिमिए और अन्य 6 सासदो ने भी पार्टी छोड़ दी ।

16 जुलाई को जब श्री चरण सिह को विश्वास हो गया कि वे अगले प्रधानमत्री हो सकते है तो उन्होने भी श्री देसाई की 'काम-चलाऊ सरकार' से त्यागपत्र दे दिया । उसी दिन पार्टी अध्यक्ष को भेजे गये एक वाक्य के पत्र मे उन्होने कहा, 'मै अखिल भारतीय जनता पार्टी की सदस्यता से त्यागपत्र देने की प्रार्थना करता हूँ ।'[3] श्री चरणसिह ने यह कदम श्री राजनारायण द्वारा बनायी गयी जनता पार्टी (एस०) के नेता चुने जाने के बाद उठाया । श्री मोरार जी देसाई के त्यागपत्र से जनता सरकार का औपचारिक पतन हो गया था जबकि जनता पार्टी के विघटन की प्रक्रिया जारी थी । श्री मोरार जी देसाई ने सरकार बनाने का दावा अवश्य पेश किया था, परन्तु उन्हे इसका अवसर नही मिला ।

श्री मोरार जी की सरकार के पतन से जनता पार्टी के पराभव का एक महत्वपूर्ण भाग पूर्ण हो गया था और वास्तविक अर्थो मे यह जनता पार्टी और सरकार का औपचारिक पराभव था । परन्तु इसी दल का एक बडा भाग जनता पार्टी (एस०) के रूप मे अभी सरकार बनाने का प्रमुख दावेदार था । अत. जनता पार्टी के पराभव के इतिहास मे जनता पार्टी (एस०) की सरकार के गठन एव पतन के घटनाक्रम को सम्मिलित करना उचित होगा ।

---

1. उद्धृत, अरुण गाँधी 'दि मोरार जी पेपर्स', पूर्वोक्त, पृ० 239 ।
2. एच० एम० जैन . "प्रेसीडेन्शियल प्रेरोगेटिव इन ए सिचुएशन ऑफ मल्टी पार्टीद् कान्टेस्ट फॉर पॉवर", जार्नल ऑफ कान्स्टीट्यूशनल एण्ड पार्लियामेन्ट्री स्टडीज, वायलुम XVI न 1-2 (जनवरी-जून 1982), नई दिल्ली, पृ० 93 ।
3. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, जुलाई 17, 1979 ।

जनता पार्टी (एस०) की सरकार का गठन एवं पतन

जनता पार्टी के विघटन एव पतन की प्रक्रिया तो श्री मोरार जी देसाई के त्यागपत्र के पूर्व मे प्रारम्भ हो गयी थी किन्तु जनता सरकार का औपचारिक पतन श्री देसाई के त्यागपत्र के बाद हुआ। परन्तु जनता पार्टी से अलग हुये एक बडे धडे ने ही जनता पार्टी (एस०) का गठन किया, जिसे बाद की सरकार बनाने का अवसर मिला और कुछ दिनो बाद इस सरकार का पतन भी हो गया। अत जनता पार्टी (एस०) की सरकार के पतन को भी जनता पार्टी के पराभव की श्रृखला मे देखना उचित होगा। क्योकि इसके बाद इस दल के किसी भी धडे द्वारा सरकार बनाने की सभावनाओ का अन्त हो गया। भारतीय दलीय व्यवस्था के अनुरूप व्यक्तित्व की टकराहट के कारण भविष्य मे जनता पार्टी एव जनता पार्टी (एस०) का विघटन जारी रहा, जबकि एक सगठित एव एकीकृत पार्टी के रूप मे जनता पार्टी का पराभव हो चुका था।

राष्ट्रपति का निमंत्रण

श्री मोरार जी देसाई के मन्त्रिमण्डल के त्यागपत्र के बाद नई सरकार के गठन का प्रश्न जटिल और पेचीदा हो गया क्योकि तत्कालीन परिस्थिति मे लोकसभा मे किसी एक दल का बहुमत नही रह गया था। श्री जगजीवन राम का विचार था कि श्री मोरार जी के पदत्याग के बाद वे ही पार्टी के स्वाभाविक नेता होगे, इसके लिये उन्होने जोड-तोड भी प्रारम्भ कर दी थी। परन्तु 17 जुलाई को श्री मोरार जी देसाई ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि उनका 'जनता ससदीय दल' से हटने का कोई इरादा नही है। इससे जगजीवन राम की आशाओ मे पानी फिर गया। अत 16 जुलाई को ही श्री देसाई और श्री चरणसिह ने राष्ट्रपति के समक्ष सरकार बनाने का दावा पेश किया।

लोकसभा मे विभिन्न दलो की सख्या, शक्ति और आपसी सम्बन्धो की विचित्रताये 'मिली-जुली सरकार' की सम्भावनाओं को क्षीण बना रही थी। ऐसी परिस्थिति मे 18 जुलाई को राष्ट्रपति ने विपक्ष के नेता श्री वाई० बी० चव्हाण को यह पता लगाने के लिये आमन्त्रित किया कि 'टिकाऊ और स्थायी सरकार' बनायी जा सकती है या नही। सत्ता पक्ष के पद त्याग के बाद विपक्ष को अवसर दिये जाने की परम्परा है और राष्ट्रपति ने उसी परम्परा का पालन किया। अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करते समय काग्रेस (एस०) के नेता श्री चव्हाण को यह आशा नही थी कि उन्हे सरकार बनाने के लिये आमन्त्रित किया जायेगा। उस समय लोकसभा में काग्रेस (एस०) के 76 सदस्य थे और कामचलाऊ सरकार बनाने के लिये उन्हे न्यूनतम 270 सासदो का समर्थन चाहिये था। श्री वाई बी0 चव्हाण ने चार दिनो तक चरणसिह एव अन्य दलो से समर्थन जुटाने का प्रयास किया परन्तु उन्हे सफलता नही मिली। 22 जुलाई को श्री चव्हाण न राष्ट्रपति से निवेदन किया कि वे 'टिकाऊ और स्थायी सरकार' बनाने मे असमर्थ है। राष्ट्रपति को अपनी विफलता की सूचना देते हुये श्री चव्हाण ने लिखा, "फिर भी हमारे प्रयासो से दलो एव गुटो का ऐसा मिला जुला

स्वरूप बन गया है जो मेरे विचार से 'टिकाऊ और स्थायी सरकार' दे सकता है।"[1] किसी भी प्रकार की राजनीतिक भ्रम की स्थिति को मिटाने के लिये श्री जगजीवन राम ने उसी दिन यह घोषणा की कि वे जनता ससदीय दल के नेतृत्व के दावेदार नही है। इससे पार्टी मे श्री मोरार जी देसाई की स्थिति स्पष्ट हो गयी।

श्री चरणसिंह बनाम श्री मोरार जी देसाई

राष्ट्रपति द्वारा श्री चव्हाण को सरकार बनाने के निमन्त्रण को सवैधानिक औपचारिकता मानते हुये, प्रधानमन्त्री पद के दोनो दावेदारो (श्री देसाई और श्री चरणसिह) ने राष्ट्रपति से आग्रह किया कि उन्हे सरकार बनाने के लिये आमन्त्रित किया जाय। 20 जुलाई को श्री देसाई ने कहा कि वर्तमान समय मे जनता पार्टी लोकसभा मे अब भी सबसे बडी अकेली पार्टी है। अत राष्ट्रपति को चाहिये कि उसके नेता को सरकार बनाने को आमन्त्रित करे। श्री चरणसिह ने 22 जुलाई को राष्ट्रपति को लिखे पत्र मे कहा कि वे सरकार बनाने की स्थिति मे है। उन्होने दावा किया कि उन्हे काग्रेस (एस०) के आलावा वामपन्थी दलो एव अकाली दल का भी समर्थन प्राप्त है तथा वे आशा करते है कि अन्ना द्रमुक का समर्थन भी उन्हे मिलेगा। इस समय तक वामपथी दलो, अन्ना द्रमुक और अकाली दल का रूझान सदिग्ध था और काग्रेस (इ०) ने अपना दृष्टिकोण व्यक्त नही किया था।

'इन सभी सुझावो, दावो और विकल्पो को अनदेखा करते हुये राष्ट्रपति ने यद्यपि सवैधानिक सीमाओ के अतर्गत परन्तु बिना किसी राजनीतिक प्रतिबन्ध के प्रथम बार अपने 'विवेकाधिकार' का प्रयोग किया।[2] 23 जुलाई को राष्ट्रपति ने श्री मोरार जी देसाई और श्री चरणसिह दोनो से कहा कि वे 48 घटे के अन्दर (जुलाई 25, 1979 तक) अपने दावो के समर्थन मे प्रमाण प्रस्तुत करे कि वे नई सरकार बना सकते है। 23 जुलाई को श्री मोरार जी देसाई, ने राष्ट्रपति श्री नीलम सजीव रेड्डी से मुलाकात की और बाद मे बताया कि उन्होने अपना समर्थन जुटाने के लिये राष्ट्रपति से एक अतिरिक्त दिन की माग की है। राष्ट्रपति ने कहा कि अगर जरूरत पड़ी तो आपको एक और दिन दिया जायेगा तथा समय की कोई कठोर सीमा रेखा निर्धारित नही है।[3] यद्यपि राष्ट्रपति ने अपने 'विवेकाधिकार' का प्रयोग किया था परन्तु सवैधानिक इतिहास मे एक नयी घटना थी जिसमे किसी 'संवैधानिक मन्त्रणा एव ससदीय परिपाटी' को आधार नही बनाया गया था। अपने इस कदम के कारण राष्ट्रपति अनजाने मे विवाद के कारण भी बन गये।

इसके साथ ही दिल्ली एक बडे नाटक का केन्द्र बन गयी। जनता पार्टी 'दोहरी सदस्यता' के प्रश्न पर ध्यान दे रही थी। 24 जुलाई को राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ के नेतागण ने उसके (जनता पार्टी के) सविधान मे ऐसा सशोधन करने को राजी हो गये, जिससे ससद और राज्य विधान मण्डलो के सदस्य सघ के रोजमर्रा कार्यो मे भाग न ले सके। अपने एक विस्तृत वक्तव्य मे आर० एस० एस० के महासचिव श्री राजेन्द्र सिह ने इस बात से इन्कार किया कि आर० एस० एस० की कभी यह महत्वाकाक्षा रही है कि वह सत्ता की कुजी अपने नियन्त्रण मे रखे जैसा कि निहित स्वार्थो द्वारा प्रचारित किया जा रहा है।[4] इस वक्तव्य पर टिप्पणी करते हुए जनता पार्टी अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर ने कहा कि

दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, जुलाई 22, 1979।
एच० एम० जैन पूर्वोक्त, पृ० 100।
अरुण गाँधी . 'दि मोरारजी पेपर्स' · पूर्वोक्त, पृ० 241।
दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, जुलाई 25, 1979, देखे वक्तव्य का मूल पाठ एल० के० अडवानी "दि पीपुल बिट्रेयड," पूर्वोक्त, परिशिष्ट vi, पृ० 148-149।

'जो सदस्य जनता पार्टी से दोहरी सदस्यता के आधार पर अलग हुये है, उन्हे पार्टी मे वापस आ जाना चाहिये । वे उन सब की वापसी का स्वागत करेगे ।'[1] परन्तु सदा की भाँति सत्ता की राजनीति मे आदर्शो और सिद्धातो को भुला दिया गया ।

राष्ट्रपति भवन से निमन्त्रण प्राप्त होने पर दोनो दल —जनता पार्टी एव जनता पार्टी (एस०) – अपनी ' सख्या शक्ति' बढाने एव अपने लिये समर्थन जुटाने मे लग गये । राजनीतिक गठबधन एव सौदेबाजी का मानो कोहराम मच गया और कल तक की कट्टर 'राजनीतिक शत्रुताये', नये मैत्री सबधो मे ढलने लगी । कल तक जिन्हे अपराधी और अछूत समझा जा रहा था उन्ही के साथ हाथ मिलाने की तत्परता सामने आने लगी ।

सहयोगियों एवं समर्थकों की खोज

वैकल्पिक सरकार बनाने के लिये श्री चरणसिह, श्रीमती इदिरा गाधी के सहयोग एव समर्थन के प्रति काफी आशान्वित थे, क्योकि कुछ माह पूर्व से ही काग्रेस (इ०) एव श्री चरण सिह गुट के बीच जोड-तोड प्रारम्भ हो गया था । अप्रैल 1979 तक यह सुनिश्चित हो गया था कि जनता पार्टी को तोडने के लिये काग्रेस (इ०) षडयन्त्र रच रही है । श्री सजय गाधी एव श्री राजनारायण की बैठके और मुलाकाते अब गोपनीय नही रह गयी थी । कुछ अन्य लोग जैसे श्री एच० एन० बहुगुणा भी श्री सजय गाधी के साथ गुप्त वार्ताये कर रहे थे । जनता पार्टी नेताओ की ये गुप्त वार्ताये काग्रेस (इ०) नेता श्री कल्पनाथ राय के माध्यम से सम्पन्न हो रही थी । श्री राय एव चौधरी चरणसिह के पारिवारिक सम्बध थे और श्री राय यह बात अच्छी तरह जानते थ कि श्री चरणसिह का इस्तेमाल किस प्रकार किया जा सकता है ।

भविष्य की योजनाओ को ध्यान मे रखते हुये श्री कल्पनाथ राय ने श्री चरणसिह से अनेक बार भेट की थी और उन्हे आश्वासन दिया था, 'कि यदि वे कोई (जनता पार्टी तोड़ने की) रणनीति अपनाते है, तो वे (कल्पनाथ राय), उन्हे (श्री चरणसिह) काग्रेस (इ०) का समर्थन दिलाने के लिये हर सम्भव प्रयास करेगे ।'[2] श्री कल्पनाथ राय ने काग्रेस (इ०) के इस षड्यन्त्र पर परदा डालने के लिये प्रधानमत्री श्री देसाई को एक पत्र लिखा, जिसमे उन्होने श्री चरणसिह के कार्यो एव नीतियो की कटु आलोचना की थी ।[3]

इसके आलावा श्री राजनारायण अपना सम्पूर्ण आत्म सम्मान बेचकर श्री सजय गाधी का अनुग्रह प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे । यह विश्वास करना कठिन है कि श्री राजनारायण राजनीतिक रूप से इतने अपरिपक्व थे, कि वे यह नही समझ पाये कि श्री सजय गाधी उनका इस्तेमाल अपने राजनीतिक उद्देश्यो के लिये कर रहा है । वास्तव मे श्री राजनारायण अपने कृत्यो के परिणामो से पूर्णत अवगत थे, लेकिन उन्हे इसकी परवाह नही थी, क्योकि उस समय उनका एक मात्र उद्देश्य श्री मोरार जी देसाई सरकार को अपदस्थ करना था ।

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, जुलाई 25, 1979 ।
2. अरुण गाँधी मोरार जी पेपर्स पूर्वोक्त, पृ० 228 ।
3. उद्धृत वही, पृ० 228-230 ।

इसी पृष्ठभूमि मे अपनी सरकार बनाने के लिये श्री चरण सिह, श्रीमती इदिरा गाधी का समर्थन प्राप्त करने का लगातार प्रयत्न कर रहे थे । इसके लिये उन्होने श्रीमती गाँधी को एक पत्र भी लिखा और अपने तीन विश्वासपात्र सहयोगियो श्री राजनारायण, श्री एस० एन० मिश्रा और श्री बनारसी दास — को काग्रेस (इ०) नेता श्री कमलापति त्रिपाठी एव श्री सी० एम० स्टीफन के पास भेजकर यह अनुरोध किया कि वे, उन्हे अपने दल काग्रेस (इ०) का सहयोग प्रदान करे ।

काग्रेस (इ०) अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट न करके सबको असमजस मे डाले रही परन्तु गुप्त रूप से श्री चरणसिह के साथ सौदा भी करती रही । अन्त मे काग्रेस (इ) श्री चरणसिह को बाहर से समर्थन देने को राजी हो गयी । "श्री चरणसिह को सरकार बनाने और उत्तराधिकार के इस युद्ध मे काग्रेस (इ) का यह समर्थन अत्यन्त निर्णायक एव महत्वपूर्ण था । यह काग्रेस की अवसरवादी राजनीति की विजय थी ।"[1] इधर श्री चरणसिह को समर्थन देने के प्रश्न पर काग्रेस (एस०) के सासदो मे तीव्र मतभेद पैदा हो गये । काग्रेस का एक गुट श्री चरणसिह को समर्थन देने का विरोध कर रहा था । उसका तर्क था कि ऐसे समर्थन का अर्थ यह होगा कि काग्रेस (एस०) 'दल-बदलुओं' के एक गुट मे केवल दूसरे स्थान पर ही नही रहेगी अपितु वह एक ऐसी सरकार को सहयोग भी देगी, जो अपने जीवन और कार्यों के लिये पूर्णतया श्रीमती इदिरा गाधी पर निर्भर रहेगी । अत मे काग्रेस (एस०) इस विरोधाभास मे पर्दा डालने मे सफल हो गयी और 25 जुलाई को श्री चरणसिह ने अपने समर्थकों की सूची राष्ट्रपति को दे दी ।

श्री मोरार जी देसाई को जनता पार्टी के 206 सासदो का ठोस बहुमत प्राप्त था । 24 जुलाई को अन्ना द्रमुक नेता श्री एम० जी० रामचन्द्रन ने यह निर्णय लिया कि केन्द्र मे स्थायी सरकार बनाने के लिये उनके दल के 18 सासद श्री देसाई की जनता सरकार का समर्थन करेगे । श्री देसाई ने 11 निर्दलीय सदस्यो का भी समर्थन प्राप्त कर लिया । अत उनकी पार्टी को समर्थन देने वालो की सख्या 235 हो गयी थी ।

पाच वामपथी दलो मे सी० पी० आई० (एम०) फारवर्ड ब्लाक और रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी ने तटस्थ रहने का फैसला किया । लोक सभा मे इनकी सदस्य सख्या क्रमश 22, 3 और 4 थी । जबकि सी० पी० आई० और पीजेन्टस एण्ड वर्कर्स पार्टी, जिनकी लोकसभा मे सदस्य सख्या 7 और 8 थी, श्री चरणसिह को समर्थन देने की घोषणा की । श्री मोरार जी देसाई ने श्री देवराज अर्स से समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया था श्री अर्स जो उस समय बगलौर मे थे, ने टेलीफोन कर श्री देसाई को सकारात्मक आश्वासन देते हुये कहा था कि वे 25 जुलाई की शाम तक दिल्ली आकर अपने पार्टी सदस्यों से वार्ता करके अन्तिम और सुनिश्चित निर्णय देगे । इसी बीच 25 जुलाई को प्रात राष्ट्रपति के सचिव ने घोषणा की कि समर्थकों की सूची भेजने की अन्तिम तिथि आज शाम 4 बजे तक है । श्री देसाई ने अपने समर्थकों की सूची लगभग साय 4 30 बजे भेजते हुये पत्र लिखकर राष्ट्रपति, श्री नीलम सजीवा रेड्डी से आग्रह किया कि उन्हे अपना समर्थन जुटाने के लिये एक दिन का समय और दिया जाय, परन्तु राष्ट्रपति ने इसे लिखित रूप मे अस्वीकार कर दिया ।[2] राष्ट्रपति सभवत चरणसिह गुट के प्रभाव मे थे । इस गुट को भय था कि कही श्री मोरार जी देसाई श्री देवराज अर्स का समर्थन प्राप्त करने मे सफल न हो जाये । राष्ट्रपति श्री रेड्डी का श्री देसाई के प्रति कोई

---

1. एच० एम० जैन पूर्वोक्त, पृ० 101 ।
2. उद्धृत अरुण गाँधी 'दि मोरारजी पेपर्स', पूर्वोक्त, पृ० 243 ।

लगाव भी नही था और इस सम्भावना को खत्म करने के लिये वे अपने दिये गये वचन से मुकर गये ।[1] 26 जुलाई को श्री मोरारजी देसाई ने पुन राष्ट्रपति को एक लम्बा पत्र लिखा जिसमे उन्होने काग्रेस (इ०) और अकाली दल द्वारा श्री चरणसिह को दिये जाने वाले समर्थन के प्रति सन्देह व्यक्त किया ।[2]

श्री चरणसिंह को निमन्त्रण

यद्यपि 25 जुलाई तक दोनो दावेदार–श्री चरणसिह और श्री मोरारजी देसाई- लोक सभा मे बहुमत सिद्ध करने लायक सदस्यो का समर्थन नही जुटा पाये थे । परन्तु यह आश्चर्य की बात थी कि दोनो ने अपने समर्थन मे 280 सदस्यो की सूची राष्ट्रपति को प्रेषित की थी । तत्कालीन 538 सदस्यो की लोक सभा मे कम से कम 37 सदस्यो (अकाली दल को मिलाकर) ने तटस्थ रहने की घोषणा की थी । अत यह निश्चित था कि दोनो सूचियो मे कुछ नाम उभयनिष्ठ थे । श्री चरणसिह और श्री मोरारजी देसाई द्वारा अपने समर्थको की प्रस्तुत की गयी, सूचियो की राष्ट्रपति भवन मे उपलब्ध दस्तावेजो एव सबूतो के आधार पर छानबीन की गयी । इससे पता चला कि श्री चरणसिह को 262 और श्री मोरारजी को 236 सदस्यो का बहुमत प्राप्त है ।

26 जुलाई को राष्ट्रपति ने श्री चरणसिह को सरकार बनाने को आमन्त्रित किया । राष्ट्रपति ने श्री चरणसिह को लिखे अपने पत्र मे कहा कि, "मैने पाया कि लोकसभा मे आपको श्री देसाई से ज्यादा सदस्यो का समर्थन प्राप्त है ।" राष्ट्रपति को इस स्थिति का पूर्ण सज्ञान था कि श्री चरणसिह को भी सदन मे पूर्ण बहुमत प्राप्त नही था । अत उन्होने अपने पत्र मे आवश्यक रूप से जोड़ा कि "मुझे विश्वास है कि उच्चतम लोकतान्त्रिक परम्पराओ के अनुसार तथा स्वस्थ परम्पराये डालने के लिये, आप लोकसभा मे शीघ्रातिशीघ्र और अधिक से अधिक अगस्त 1979 के तीसरे सप्ताह तक विश्वास मत प्राप्त कर लेगे ।"[3] 28 जुलाई को श्री चरणसिह ने प्रधानमन्त्री पद की शपथ ली ।

श्री मोरारजी देसाई ने राष्ट्रपति को जो सूची दी थी, उसमे काग्रेस (एस०) के 20 सदस्यो के नाम उनकी बिना अनुमति के शामिल किये गये थे । इनमे से 15 सदस्यो ने इसके विरुद्ध राष्ट्रपति को ज्ञापन भी दिया था । 27 जुलाई को जैसे ही श्री मोरारजी देसाई को यह पता चला, उन्होंने अपनी गलती स्वीकार करते हुये प्रायश्चित के रूप मे 'जनता ससदीय दल' से त्यागपत्र दे दिया । यद्यपि उन्होने स्पष्ट किया कि यह मेरी गलती नही थी, यह सूचना मेरे सहयोगियों ने दी थी और मेरे पास सूचियों के सत्यापन का समय नही था। राष्ट्रपति ने उन्हे एक दिन का और समय नही दिया जिसका उन्होने वादा किया था । फिर भी मै इसकी पूरी जिम्मेदारी लेता हूँ और अपराध स्वीकार करता हूँ ।[4]

राष्ट्रपति के निर्णय की वैधानिकता

भारतीय ससदीय व्यवस्था के इतिहास मे यह प्रथम अवसर था जब राष्ट्रपति ने बिना किसी पूर्वोदाहरण के प्रधानमन्त्री की नियुक्ति मे अपने 'विवेकाधिकार' का प्रयोग किया था । साथ ही यह भी पहला अवसर था, जब किसी नेता को सरकार बनाने के निमन्त्रण के साथ यह भी कहा गया हो कि वह स्वस्थ लोकतान्त्रिक परम्परा कायम रखने के

---

1 वही, पृ० 242 ।
2. देखे, श्री देसाई द्वारा राष्ट्रपति को लिखे गये पत्र का मूल पाठ, उद्धृत वही, पृ० 244-245 ।
3 दि स्टेटसमैन, दिल्ली जुलाई 27, 1979 ।
4 जन विश्वासघात पूर्वोक्त, पृ० 18, देखे सण्डे, कलकत्ता, दिसम्बर 21, 1979 ।

लिये शीघ्रातिशीघ्र लोकसभा मे विश्वास मत प्राप्त करे । इसमे कोई आश्चर्य की बात नही थी क्योकि राष्ट्रपति ने प्रधानमत्री चुनने का जो तरीका अपनाया था, उससे उन गुटो को, जो सरकार चलाने के बजाय सरकार गिराने मे ज्यादा इच्छुक थे, एक जुट होने का मौका मिला और वे गणना मे आगे निकल गये ।

उस समय 538 सदस्यो के लोकसदन मे श्री चरणसिह के जनता पार्टी (एस०) के मात्र 77 सदस्य थे तथा उन्हे अपने समर्थको सहित भी सदन मे बहुमत नही प्राप्त था । श्री चरणसिह को समर्थन देने के मुद्दे पर काग्रेस (एस०) मे गम्भीर मतभेद थे । यद्यपि काग्रेस (इ०) ने श्री चरणसिह को बिना शर्त समर्थन दिया था, परन्तु उसके द्वारा दिये गये समर्थन का स्थायित्व पूर्णतया सदिग्ध थी । यही स्थिति सी० पी० आई० की भी थी ।

श्री चरणसिह के शपथ ग्रहण करने के बाद सी० पी० आई० नेता श्री भूपेश गुप्ता ने कहा, "कि श्री चरणसिह को उनका समर्शन केवल सरकार बनाने तक ही सीमित था, यह समर्थन सरकार चलाने का नही जिन्होने मेरे वक्तव्य का गलत अर्थ लगाया उन्हे ससद मे मेरे दृष्टिकोण से पता लग जायेगा ।"[1] काग्रेस (इ०) का भी यही दृष्टिकोण था । काग्रेस (इ०) नेता श्री सी० एम० स्टीफन ने एक सम्वाददाता सम्मेलन मे कहा, "मेरी पार्टी ने श्री चरणसिह को सरकार बनाने के लिये समर्थन दिया था । श्री चरणसिह के शपथ लेते ही यह अध्याय बन्द हो गया ।"[2] वास्तव मे यह स्थिति बाद मे नही बल्कि प्रारम्भ से ही निश्चित थी । श्री मोरारजी देसाई ने 26 जुलाई को राष्ट्रपति को पत्र लिखकर इन स्थितियो से अवगत कराया था । "ऐसे अनिश्चित और सीमित समर्थन से श्री चरणसिह को सरकार बनाने का कोई अधिकार नही था, और इससे राष्ट्रपति के निर्णय की सवैधानिकता तो नही परन्तु औचित्यता अवश्य प्रश्नगत होती है ।"[3] ऐसी सरकार जिसका अस्तित्व उन राजनीतिक दलो पर निर्भर हो जो एक साथ सरकार के समर्थन और बिरोध की घोषणा करते हो, ससदीय लोकतन्त्र के लिये एक लज्जास्पद मखौल था जिसके लिये भारतीय सवैधानिक इतिहास राष्ट्रपति श्री सजीवा रेड्डी को सदैव प्रताडित करता रहेगा ।

राष्ट्रपति श्री नीलम सजीवा रेड्डी एक ओर श्री चव्हाण को सरकार बनाने की सम्भावनाओ को तलाश करने के लिये आठ दिन का समय देते है जबकि दूसरी ओर श्री मोरारजी देसाई को एक दिन ज्यादा नही दे सकते थे ? उन्हे सरकार गठित करने की इतनी जल्दी क्यो थी ? देश मे कोई आपातस्थिति जैसे बात भी नही थी । अत. राष्ट्रपति ने प्रधानमन्त्री के चयन की जो प्रक्रिया अपनायी उससे उनके निर्णय की औचित्यता और विश्वसनीयता सन्देहास्पद हो जाती है । "यह दुरभिसन्धि नही है तो क्या है ? यह भी विश्वास करना कठिन है कि श्री नीलम सजीवा रेड्डी जैसे दक्ष राजनीतिज्ञ को यह विश्वास हो कि 'चरणसिह सरकार' जनता पार्टी के बचे हुये कार्यकाल को पूरा करेगी । स्पष्ट रूप से उन्होने अपनी स्थिति और श्री चरणसिह की सत्ता की लालसा का प्रयोग, श्रीमती इदिरा गाधी को वापस लाने के लिये किया ।"[4] वास्तव में श्री सजीवा रेड्डी का मुख्य उद्देश्य अपनी राजनीतिक महत्वाकाक्षा पूरी करने का था, जिसकी

---

1 दि स्टेट्समैन, दिल्ली, जुलाई 28, 1979 ।
2. दि स्टेटसमैन, जुलाई 29, 1979 ।
3. एच० एम० जैन · पूर्वोक्त, पृ० 106 ।
4. अरुण गाँधी 'दि मोरार जी पेपर्स' · पूर्वोक्त, पृ० 246 ।

परिस्थितिया (एव समीकरण) नही बन पायी और परिणाम स्वरूप श्रीमती इन्दिरा गाधी के पुन सत्ता मे आने का मार्ग सुनिश्चित हुआ ।[1]

प्रो० के० डी० राव का भी मत था कि प्रधानमत्री के रूप मे श्री चरणसिह की नियुक्ति न तो राजनीतिक रूप से विवेकपूर्ण थी और न ही सवैधानिक रूप से उचित थी । प्रो० एच० एम० जैन ने अपने एक शोध लेख मे इस सम्पूर्ण घटनाक्रम विश्लेषण किया है, उनका अभिमत है, "यह निश्चय ही एक अल्पमत सरकार और सवैधानिक प्रक्रिया पर एक कलक थी । अन्य लोगो के साथ-साथ यह बात राष्ट्रपति को भी पूर्णतया स्पष्ट थी कि काग्रेस (इ०) द्वारा समर्थन का वादा, जनता सरकार के पराभव को सुनिश्चित करने की एक रणनीति या साधन के आलावा कुछ नही था । चरणसिह सरकार की असफलता प्रारम्भ से ही नियत थी ।"[2] आदर्श स्थिति तो यह होती कि इन परिस्थितियो मे राष्ट्रपति अन्य विकल्पो पर भी विचार करते यथा सम्भव निर्णय लेते ।

जैसी कि आशका थी चरणसिह मन्त्रिमण्डल मे शामिल होने के प्रश्न पर अतिम समय काग्रेस (एस०) मे भारी विवाद छिड गया । जिस समय श्री चरणसिह ने शपथ ली, उस समय काग्रेस (एस०) मे फूट के कारण, इनके 6 नामितो का शपथ ग्रहण रद्द कर दिया गया । काग्रेस (इ०) के श्री कल्पनाथ राय ने इस बात पर दु ख प्रकट किया कि श्री चरणसिह की इदिरा-समर्थित सरकार, मे श्रीमती इदिरा गाधी से धृणा करने वालों को प्राथमिकता दी जा रही है । अत काग्रेस के केन्द्रीय ससर्दाय बोर्ड ने काफी गहमा गहमी के बाद 6 लोगो के नाम निश्चित किये । काग्रेस (एस०) को यह गठबन्धन काफी भारी पडा क्योंकि 17 अगस्त को लगभग इसके 15 सासदो ने पार्टी छोडने की घोषणा कर दी । इस प्रकार चरणसिह सरकार का भविष्य अधर मे लटका हुआ था ।

सी० बी० आई० और काग्रेस (इ०) दोनो ने चरणसिह सरकार से मुँह मोडना प्रारम्भ कर दिया था । 1 अगस्त को सी० पी० आई० के महासचिव ने एक महत्वपूर्ण वक्तव्य दिया उन्होने कहा, "कि जनता (एस०) की सरकार को समर्थन देने का मुख्य उद्देश्य सभी स्तर पर जनता पार्टी के पूर्ण विघटन का मार्ग सुनिश्चित करना था । इसके लिये श्री चरणसिह सबसे उपयुक्त व्यक्ति थे ।"[3] श्री चरणसिह के राजनीतिक जीवन की सबसे बडी गलती श्रीमती इदिरा गॉधी का समर्थन प्राप्त करना था । ऐसी स्थिति मे चरणसिह-सरकार का भविष्य श्रीमती इदिरा गाधी की दया पर निर्भर था । यह श्री चरणसिह के ही उर्वर मस्तिष्क की योजना थी जिसके तहत उन्होने ढाई वर्ष पहले की, सत्ताच्युत एवं कमजोर राजनीतिज्ञ, श्रीमती इदिरा गाधी को भारतीय राजनीति मे पुन सत्ता का नियन्ता बना दिया । 9 अगस्त को श्रीमती इंदिरा गाधी ने चरणसिह मन्त्रिमण्डल को 'दूसरी खिचडी सरकार' की सज्ञा दी । उन्होने कहा कि हम सरकार के कार्य - कलापो को देखेगे और उसके गुण-दोषो के अनुसार निर्णय लेगे । 20 अगस्त को चरणसिह सरकार को लोकसभा मे विश्वासमत प्राप्त करना था । उसी दिन सुबह काग्रेस (इ०) ससदीय बोर्ड ने निर्णय लिया कि वे विश्वासमत का विरोध करेगे । इसी के साथ चरणसिह सरकार का भाग्य एव भविष्य सुनिश्चित हो गया ।

---

1. श्री सुरेन्द्र मोहन ने शोधकर्ता से साक्षात्कार के दौरान इस रहस्य का उद्घाटन किया ।
2. एच० एम० जैन पूर्वोक्त, पृ० 105 ।
3. स्टेटसमेन, दिल्ली, अगस्त 2, 1979 ।

अत लोकसभा मे विश्वास मत प्राप्त करने की निर्धारित तिथि यानी 20 अगस्त 1979 को प्रात 11 बजे श्री चरणसिह ने राष्ट्रपति से मुलाकात की और उन्हे अपने मन्त्रिमण्डल का त्यागपत्र सौप दिया। लगभग इसी समय उन्हे लोकसभा मे विश्वास मत प्राप्त करना था। त्यागपत्र देने का निर्णय केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल की एक असाधारण बैठक मे लिया गया, जब श्री चरणसिह को यह ज्ञात हो गया कि काग्रेस (इ०) लोकसभा मे सरकार के विरुद्ध मत देगी। बाद मे राष्ट्रपति ने श्री चरणसिह का त्यागपत्र मजूर कर लिया। राष्ट्रपति ने सरकार का त्यागपत्र स्वीकार करते हुये, उन्हे "नयी व्यवस्था होने तक" काम चलाते रहने को कहा। श्री चरणसिह ने त्यागपत्र देने के साथ ही राष्ट्रपति को लोक सभा भग करके मध्यावधि चुनाव कराने की सिफारिश भी कर दी। इस प्रकार पिछले पाच सप्ताह मे दूसरी बार देश मे सवैधानिक सकट पैदा हो गया।

दूसरा संवैधानिक संकट एवं राष्ट्रपति का निर्णय

चरणसिह सरकार के त्यागपत्र देने के लगभग 1 घटे बाद विपक्ष के नेता श्री जगजीवन राम (जो श्री मोरारजी देसाई के त्यागपत्र देने के बाद सर्वसम्मति से जनता ससदीय दल के नेता चुने गये थे) राष्ट्रपति से मिले और वैकल्पिक सरकार बनाने का अपना दावा पेश किया। उन्होंने लोकसभा भग करने के प्रस्ताव का विरोध किया, क्योकि श्री चरणसिह को ऐसी सिफारिश करने का कोई अधिकार नही था।

इन परिस्थितियो मे राष्ट्रपति के पास दो विकल्प थे–

(i) वे चरणसिह मन्त्रिमण्डल के परामर्श के अनुसार लोक सभा भग कर दे।

(ii) वे वैकल्पिक सरकार बनाने की सम्भावनाओं का पता लगाने के लिये विपक्ष के नेता श्री जगजीवन राम को आमन्त्रित करे।

इसमे प्रथम सवैधानिक प्रश्न यह है कि क्या राष्ट्रपति 'चरणसिह मन्त्रिमण्डल की सलाह मानने को बाध्य है। बयालिसवे एव चौवालिसवे सविधान सशोधन से यह बात सुनिश्चित हो गयी है कि राष्ट्रपति अपने कार्यों का सम्पादन मन्त्रिमण्डल की सलाह पर ही करेगा। परन्तु राष्ट्रपति को सलाह देने के विशेष सन्दर्भ में पुन यह पश्न उत्पन्न होता है कि क्या वास्तविक अर्थो मे सविधान की भावना के अनुरूप 'चरणसिह मन्त्रिमण्डल' एक 'मान्य मन्त्रिमण्डल' था? अगर वास्तविक रूप मे देखा जाय तो चरणसिह मन्त्रिमण्डल को इसका कोई वैधानिक एव नैतिक अधिकार नही था कि वे राष्ट्रपति को लोकसभा भग करके मध्यावधि चुनाव कराने की परामर्श दे और यदि श्री चरणसिह ऐसी सलाह देते भी है तो यह राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नही थी।

प्रो० एच० एम० जैन ने अपने शोध लेख में स्पष्ट किया है कि अगर श्री मोरारजी देसाई प्रधानमन्त्री पद से तयागपत्र देने के बाद राष्ट्रपति को लोकसदन को भग करने की परामर्श देते, तो यह परामर्श राष्ट्रपति पर बाध्यकारी होती परन्तु श्री चरणसिह के मामले में स्थिति अलग थी क्योकि–

(i) प्रधानमन्त्री पद पर श्री चरणसिह की नियुक्ति लोकसभा के अनुमोदन प्राप्त कर लेने की शर्त पर की गयी थी। इसलिये वे एक 'कामचलाऊ और औपबन्धिक' प्रधानमन्त्री ही थे। चूकि वे लोकसभा का अनुमोदन नही प्राप्त कर सके, अत राष्ट्रपति पर उनकी सलाह बाध्यकारी नही थी।

(ii) 'चरणसिह मन्त्रिमण्डल' प्रारम्भ से ही अल्पमत मे था । यह एक वेधानिक सरकार के अपदस्थ होने पर सत्ता मे आया था । इसे किसी भी समय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बहुमत प्राप्त नही था । यह न तो जनता द्वारा चुनी गयी सरकार थी, और न ही यह लोकसभा मे अपना बहुमत सिद्ध कर पायी थी । यह राष्ट्रपति क 'औपबन्धिक आमन्त्रण' से सत्ता मे आयी थी । इसलिए श्री चरणसिह किसी अन्य व्यक्ति या गुट को उस अधिकार से वचित नहीं कर सकते थे, जिसका स्वय उन्होने दावा किया था और प्राप्त किया था । अत श्री चरणसिह मन्त्रिमण्डल की लोकसभा भग करने की सलाह राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नही थी ।[1]

चरणसिह सरकार जनता द्वारा नही बल्कि राष्ट्रपति की इच्छा द्वारा निर्मित थी और उन शर्तो को पूरा करने मे असफल रहा जिन्हे राष्ट्रपति ने लगायी थी । अत इन परिस्थितियो मे अगर प्रधानमन्त्री राष्ट्रपति को लोकसभा भग करने की परामर्श देते है तो राष्ट्रपति यह परामर्श मानने को बाध्य नही है । इन परिस्थितियो मे राष्ट्रपति की स्थिति सर्वोच्च हो जाती है और वह अपने 'विवेकाधिकार' का प्रयोग करने को पूर्ण स्वतन्त्र हो जाता है ।

अनेक प्रख्यात न्यायविदो जेसे श्री एम० सी० छागला, श्री एफ० एस० नारीमन, श्री वाई० एस० चीतले और श्री यू० एन० तारकुडे आदि का भी मानना था कि श्री चरणिह की अल्पमत सरकार को यह अधिकार नही था कि वे राष्ट्रपति को लोकसभा भग करने की सलाह दे और इन परिस्थितियो मे राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल की सलाह मानने को बाध्य भी नही है । ये सभी न्यायविद इस बात पर सहमत थे कि वर्तमान सवैधानिक सकट मे राष्ट्रपति को सवैधानिक सीमाओ के अतर्गत अपने विवेकानुसार कार्य करना चाहिये ।[2]

सम्भवत राष्ट्रपति ने इसी 'विवेकाधिकार' का प्रयोग करते हुये दो दिन तक विपक्षी नेताओ से परामर्श के दौरान यह महसूस किया कि किसी अन्य 'वैकल्पिक सरकार' की सम्भावनाओ को तलाश करना निरर्थक है । अत 22 अगस्त 1979 को राष्ट्रपति ने घोषणा की कि "सविधान के अनु० 85(2) मे दिये गये अधिकार का प्रयोग करते हुये मैं लोकसभा के विघटन की घोषणा करता हूँ ।"[3] बाद मे एक सार्वजनिक सभा मे बोलते हुये राष्ट्रपति ने यह उद्घाटित किया कि "लोक सभा के विघटन का निर्णय उनके 'विवेक' पर आधारित था, चरणसिह मन्त्रिमण्डल की सलाह पर नही ।"[4] यह एक सयोग ही था कि राष्ट्रपति अपने विवेकानुसार भी उसी निर्णय पर पहुचे जिसकी सलाह 'पद मुक्त मन्त्रिमण्डल' ने दी थी । इसी सयोग के कारण राष्ट्रपति के निर्णय की सवैधानिकता नही बल्कि औचित्यता सन्देह के घेरे मे आ गयी ।

---

1. एच० एम० जैन पूर्वोक्त, पृ० 110-112, लेखक ने अपने एक अन्य शोध लेख "इण्डियन पार्लियामेन्ट एण्ड प्रसीडेन्ट" मे भी इस मत का समर्थन किया ।
2. उद्धृत . एच० एम० जैन पूर्वोक्त, पृ० 111 ।
3. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, अगस्त 23, 1979 ।
4. श्री वेंकटेश्वर विश्वविधालय, तिरूपति के रजत जयन्ती समारोह का उद्घाटन करते हुये राष्ट्रपति श्री नीलम सजीवा रेड्डी ने कहा कि केन्द्र में लिया गया निर्णय (लोक सभा भग करने का) उनके 'विवेक' पर आधारित था और उन्होने प्रभु वेकटेश्वर से यह प्रार्थना की थी कि वे उन्हें अपने निर्णय मे दृढ रहने की शक्ति दें । देखे नार्दन इण्डिया पत्रिका, इलाहाबाद, सितम्बर 3, 1979 ।

जगजीवन राम का मामला

20 अगस्त 1979 को श्री जगजीवन राम ने सरकार बनाने का अपना दावा पेश किया और कहा कि विपक्ष का नेता होने के कारण यह स्वाभाविक है कि उन्हे वैकल्पिक सरकार बनाने की सम्भावनाओ को तलाश करने का अवसर प्रदान किया जाय । उन्होने विश्वास व्यक्त किया कि व लोकसभा मे अपना समर्थन जुटा लेगे, परन्तु उन्होने राष्ट्रपति को अपने समर्थक सासदो की सूची देने से इकार कर दिया । बाद मे उन्होने सम्वाददाताओं से वार्ता करते हुये कहा कि, "मै इसमे विश्वास नही करता । मै समझता हूँ कि मेरे बहुमत का शक्ति-परीक्षण लोकसभा मे होना चाहिये । इसके पूर्व राष्ट्रपति द्वारा श्री चरणसिह को ऐसा मौका दिया गया है । इसके आलावा राष्ट्रपति ने विपक्ष के नेता को सरकार बनाने का आमन्त्रण देकर एक नजीर भी प्रस्तुत की है ।"[1]

राष्ट्रपति श्री सजीवा रेड्डी, श्री जगजीवन राम के दावे को सन्देह की दृष्टि से देख रहे थे । इसी बीच उन्होने विभिन्न दलो के प्रतिनिधियो से मुलाकात की और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि श्री जगजीवन राम लोकसदन मे पर्याप्त बहुमत नही जूटा पायेगे । विभिन्न दलो के नेतागण मध्यावधि चुनाव के पक्ष मे थे । सभी वामपथी दल जनता पार्टी को किसी प्रकार का समर्थन देने के विरुद्ध थे । जनता पार्टी (एस०) द्वारा श्री जगजीवन राम को समर्थन देने का प्रश्न ही नही पैदा होता । काग्रेस (एस०) श्री चरणसिह का सहयोगी दल था उसने भी मध्यावधि चुनाव पर अपनी सहमत व्यक्त की थी । श्रीमती इदिरा गाधी ने स्पष्ट रूप से कह दिया था कि वे जनसघ समर्थित श्री जगजीवन राम की सरकार का समर्थन नही करेगी । इसके साथ ही राष्ट्रपति को यह विश्वास हो गया था कि श्री जगजीवन राम लोकसभा मे बहुमत नही प्राप्त कर सकते ।

इसी राजनीतिक गरमा गरमी की चरम सीमा के बीच 22 अगस्त 1979 को राष्ट्रपति ने लोकसभा भग करने और मध्यावधि चुनाव कराने की घोपणा कर दी । घोपणा मे कहा गया कि मध्यावधि चुनाव तक श्री चरणसिह की कामचलाऊ सरकार कार्य करती रहेगी और इन चुनावो को दिसम्बर मे कराये जाने का निश्चय किया गया ।

इस घोषणा के पूर्व राष्ट्रपति ने तीन महत्वपूर्ण बैठके की । पहली बैठक काग्रेस (इ०) नेता श्री सी० एम० स्टीफन के साथ थी, जिसमे समझा जाता है कि काग्रेस (इ०) नेता ने मध्यावधि चुनाव की माग की थी । दूसरी बैठक मे राष्ट्रपति श्री रेड्डी जनता ससदीय दल के नेता श्री जगजीवन राम एव जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर से मिले । इस बैठक मे राष्ट्रपति ने इन नेताओ से कहा कि वे अपने बहुमत का ठोस पमाण प्रस्तुत करे । इस वार्ता के बाद इन नेताओ ने राष्ट्रपति को अपने समर्थको की सूची देने का निर्णय लिया था । बाद मे सवाददाताओ से बात करते हुये श्री चन्द्रशेखर ने कहा था कि राष्ट्रपति उनके प्रस्ताव मे विचार कर रहे है । तीसरी मन्त्रणा श्री चरणसिह एव उनके सहयोगियो के साथ हुई, जिसमे श्री चरणसिह ने राष्ट्रपति को आश्वासन दिया कि लोकसभा चुनाव का आयोजन शान्तिपूर्ण एवं निष्पक्ष ढग से होगा । उन्होने यह भी कहा कि चुनाव होने तक उनकी काम चालाऊ सरकार ऐसा कोई निर्णय नही लेगी जिससे कोई नयी नीति या प्रशासनिक निर्णय निर्धारित हो ।

---

1 दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, अगस्त 21 1979 ।

जनता पार्टी के नेताओ ने राष्ट्रपति के इस कार्य को 'विश्वासघात' की सज्ञा दी।[1] जब राष्ट्रपति ने लोकसभा भग करने की घोषणा की, इसी बीच श्री जगजीवन राम, राष्ट्रपति श्री सजीवा रेड्डी को एक पत्र भेज चुके थे, जिसमे उन्होने कहा था कि वे शाम तक अपने बहुमत के सन्दर्भ मे प्रमाण प्रस्तुत कर देगे।[2] जनता पार्टी के नेताओ ने आरोप लगाया कि राष्ट्रपति ने उन्हे समय देने का वादा किया था, परन्तु श्री मोरार जी के मामले की तरह इस मामले मे भी घपला किया। अत. उनका यह कार्य दुर्भावनापूर्ण, अनुचित और असवैधानिक था। श्री जगजीवन राम ने कहा कि 'जो कुछ हुआ है, वह पहले से रचे षड्यन्त्र की परिणति था। उन्होने कहा कि जब राष्ट्रपति श्री रेड्डी ने श्री मोरारजी देसाई और श्री चरणसिह को एक साथ अपने-अपने समर्थको की सूची प्रस्तुत करने को कहा था, तभी मुझे षडयत्र का आभास हो गया था।

जहाँ तक संवैधानिकता एव ससदीय परम्परा का प्रश्न है, साधारण परिस्थितियो मे प्रधानमन्त्री की नियुक्ति एव लोकसदन के विसर्जन के सन्दर्भ मे राष्ट्रपति को व्यावहारिक अर्थो मे किसी प्रकार का कोई विवेकाधिकार नही होता। परन्तु असाधारण राजनीतिक परिस्थितिया राष्ट्रपति को विवेकाधिकार प्रयोग करने की अनुमति प्रदान करती है। वर्तमान परिस्थिति म यह राष्ट्रपति के 'विवेकाधिकार' के अतर्गत था कि वे श्री जगजीवन राम को सरकार बनाने के लिये आमन्त्रित करते या नही। "यह बिना किसी पूर्वोदाहरण के राष्ट्रपति की सर्वोच्च सत्ता का क्षण था। थोडे समय के लिये राष्ट्रपति राजनीतिक सघर्षो के सर्वोच्च व्याख्याकार एव राज्य की शक्ति के स्वतन्त्र अग बन गये थे।"[3] अत राष्ट्रपति श्री रेड्डी ने श्री जगजीवन राम के दावे को ठुकराकर, लोकसभा भग करके मध्यावधि चुनाव कराने की घोषणा कर दी।

राष्ट्रपति श्री सजीवा रेड्डी के इस निर्णय की राजनीतिक हलको मे व्यापक प्रतिक्रिया हुई। अनेक राजनीतिक पडितो एव सविधानविदो ने इसकी कटु आलोचना करते हुये कहा कि लोकसभा भग करने के पूर्व राष्ट्रपति को श्री जगजीवन राम को सरकार बनाने का अवसर अवश्य देना चाहिये। वास्तव मे अगर इस वस्तुस्थिति को पूर्ण रूप से स्वीकार कर भी लिया जाय कि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो गया था कि श्री जगजीवन राम लोकसभा मे अपना बहुमत नही सिद्ध कर पायेंगे, तो भी उनके इस 'विवेकाधिकार की औचित्यता' को अनेक कारणो से प्रश्नगत किया जा सकता है –

(1) 'विवेकाधिकार' का तात्पर्य विवेक के कुछ मानक मापदण्डो से है, 'स्वेच्छाचार' या 'निरकुश अधिकार' से नही। राष्ट्रपति श्री रेड्डी को एक समान परिस्थितियो मे अलग-अलग मापदण्ड नही अपनाने चाहिये। जब उन्होने प्रथम बार विपक्ष के नेता श्री वाई० बी० चव्हाण को सरकार बनाने को आमन्त्रित किया था, तो क्या उन्होने यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया था कि मात्र 76 सासदो वाले कांग्रेस (एस०) के नेता श्री चव्हाण लोकसभा मे अपना बहुमत सिद्ध

---

1. देखे जगजीवन राम का पत्र, दि स्टेटमैन अगस्त 25, 1979।
2. श्री जगजीवन राम द्वारा राष्ट्रपति श्री रेड्डी का लिखा गया पत्र, दिनाक अगस्त 22, 1979, देखे पत्र का मूल पाठ, उद्धृत, एल० के० आडवानी 'दि पीपुल बिट्रेड', पूर्वोक्त, परिशिष्ट III, पृ० 138-139।
3. ए० एम० जैन, पूर्वोक्त, पृ० 118।

कर पायेगे ? अगर उस समय उन्होन इस पर ध्यान नही दिया तो श्री जगजीवन राम के मामले मे यह भेदभाव क्यो बरता गया ? जबकि श्री जगजीवन राम को उस समय काग्रेस (एस०) से ज्यादा सासदो का ठोस बहुमत प्राप्त था ।

(2) राष्ट्रपति श्री नीलम सजीवा रेड्डी ने ससदीय परम्पराओ का पालन करते हुये सत्ता पक्ष के पद त्याग के बाद विपक्ष क नेता श्री चव्हाण को सरकार बनाने को आमन्त्रित किया था । वर्तमान परिस्थितियो मे प्रधानमत्री श्री चरणसिह के त्यागपत्र देने के बाद श्री जगजीवन राम विपक्ष के नेता बन गये थे । अत रेड्डी को अपने द्वारा प्रस्तुत उस उदाहरण का पालन करते हुये श्री जगजीवन राम को सरकार बनाने को आमन्त्रित करना चाहिये ।

(3) कुछ विद्वानो ने राष्ट्रपति के निर्णय का समर्थन करते हुये कहा कि अगर राष्ट्रपति श्री जगजीवन राम को सरकार बनाने को आमन्त्रित करते तो राजनीतिक अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न होती और व्यर्थ मे राजनीतिक जोड-तोड सौदेबाजी और सासदो की खरीद फरोख्त को बढावा मिलता । लेकिन क्या राष्ट्रपति को ऐसी स्थिति का सज्ञान केवल श्री जगजीवन राम के मामले मे हुआ । इसके पूर्व जब उन्होने लोकसभा मे अल्पमत प्राप्त काग्रेस (एस०) के नेता श्री चव्हाण एव जनता पार्टी (एस०) के नेता श्री चरणसिह को आमन्त्रित किया था, तो उस समय उन्होने इन बातो पर ध्यान क्यो नही दिया था ? और यदि दिया था तो क्या वे श्री चरणसिह, श्री चव्हाण एव श्रीमती इदिरा गाधी को अत्यन्त उच्च आदर्शो वाला व्यक्ति मानते थे, जो सत्ता प्राप्ति के लिये इस प्रकार के क्षुद्र राजनीतिक मापदण्डो का इस्तेमाल न करते ?

(4) राष्ट्रपति श्री नीलम सजीवा रेड्डी के इस निर्णय की औचित्यता इसलिये भी सन्देह के घेरे मे आ जाती है, क्योकि जनता पार्टी एव उसके नेताओ के प्रति उसका रवैया राष्ट्रपति पद एव गरिमा के अनुकूल नही था । फरवरी 1978 से फरवरी 1979 के बीच राष्ट्रपति श्री रेड्डी और प्रधानमन्त्री श्री देसाई के बीच हुये पत्र व्यवहार से निष्कर्ष निकलता है कि दोनो के सम्बन्ध कटुता की किसी सीमा को पार कर चुके थे । दिसम्बर 1978 को राष्ट्रपति श्री रेड्डी ने श्री सी० राजगोपालाचारी 'जन्म-शताब्दी' समारोह मे बिना लिखा हुआ भाषण दिया और सरकार के विरुद्ध कुछ अविवेकपूर्ण टिप्पणी की । उन्होने प्रत्यक्ष रूप से सरकार एव अप्रत्यक्ष रूप से श्री मोरारजी देसाई की आलोचना की । श्री देसाई ने इसका कडा विरोध करते हुये राष्ट्रपति को एक पत्र लिखा । इसके बाद दोनो महानुभावो ने पत्र के माध्यम से एक दूसरे पर व्यापक आक्षेप किये ।[1] वास्तव मे श्री नीलम सजीवा रेड्डी अत्यन्त महत्वाकाक्षी व्यक्ति थे, अपनी महत्वाकाक्षा से प्रेरित होकर उन्होने जो कार्य किये उन्ही के परिणामस्वरूप श्रीमती इदिरा गाधी का सत्ता मे वापस आना सम्भव हुआ ।'[2] इस सम्पूर्ण घटनाक्रम मे 'उन्होने उन शक्तियो का साथ दिया, जो वैधानिक रूप से निर्वाचित सरकार को अपदस्थ करने के लिये उतावली थी ।'[3] इसी पृष्ठभूमि मे ही दोनो सवैधानिक सकटो मे 'राष्ट्रपति के विवेकाधिकार' की व्याख्या की जानी चाहिये अन्यथा नही ।

---

1 फरवरी 1978 से फरवरी 1979 तक राष्ट्रपति श्री रेड्डी और प्रधानमत्री श्री देसाई के बीच लगभग 10 पत्रों का आदान-प्रदान हुआ । देखे पत्रों का मूल पाठ, उद्धृत अरुण गाँधी 'दि मोरार जी पेपर्स', पूर्वोक्त, पृ० 4-26 ।

2. अरुण गाधी पूर्वोक्त, पृ० 2 ।

3 अरुण गाँधी 'दि मोरार जी पेपर्स', पूर्वोक्त, पृ० 26 ।

(5) इसे राष्ट्रपति का 'विवेकाधिकार' कहा जायेगा या पक्षपात कि उन्होने जनता पार्टी एव उसके नेताओ के किसी भी आग्रह को स्वीकार नही किया। प्रथम बार जब श्री मोरार जी ने राष्ट्रपति से अपना बहुमत सिद्ध करने के लिये एक अतिरिक्त दिन की मॉग की थी, तो उन्होंने उसे ठुकरा दिया। बाद की परिस्थितियो मे 22 अगस्त 1979 को प्रात श्री जगजीवन राम ने राष्ट्रपति से कहा कि वे शाम तक अपने बहुमत के समर्थन का प्रमाण प्रस्तुत कर देगे। परन्तु उसी दिन दोपहर को राष्ट्रपति ने लोकसभा भग करने की घोषणा कर दी। विचारणीय प्रश्न यह है कि राष्ट्रपति जी श्री चव्हाण और श्री चरणसिह को लोकसभा मे अपना बहुमत सिद्ध करने को क्रमश एक सप्ताह और तीन सप्ताह का समय देते है, परन्तु वे श्री मोरारजी देसाई एव श्री जगजीवन राम को क्रमश एक दिन एव कुछ घटो का समय नही दे सकते। क्यो ? जबकि उस समय देश मे आपात काल जेसी कोई बात भी नही थी। बाद मे इन दोनो नेताओ ने आरोप लगाया कि राष्ट्रपति ने उन्हे समय देने का मौखिक वादा किया था, जिससे वे बाद मे मुकर गये और हमारे साथ विश्वासघात किया।

अत इस सवैधानिक सकट मे राष्ट्रपति का अपने 'विवेकाधिकार' के अनुसार लिया गया निर्णय अनेक कारणो से औचित्यपूर्ण नही कहा जा सकता। इन सवैधानिक सकटो से परे आदर्श स्थिति तो यह होती कि प्रधानमत्री पद से त्यागपत्र देने के बाद श्री मोरारजी देसाई लोकसभा भग करने की सिफारिश करते। यह परामर्श राष्ट्रपति पर बाध्यकारी होती। परन्तु श्री मोरारजी देसाई स्वय अपनी सत्तालोलुपता के कारण ऐसा नही कर सके। दूसरी सुखद स्थिति यह होती कि जब प्रधानमत्री पद के दोनो दावेदार श्री चरणसिह और श्री मोररजी देसाई राष्ट्रपति को अपने बहुमत का प्रमाण नही प्रस्तुत कर सके, तो उस समय राष्ट्रपति श्री सजीवा रेड्डी को उस तर्क, जिसका आश्रय उन्होंने बाद मे श्री जगजीवन राम के मामले मे लिया, का आधार लेकर लोकसभा भग करके मध्यावधि चुनाव की घोषणा कर देनी चाहिये। इससे देश को सबसे बडा लाभ यह होता कि वह लगभग छ माह एक ऐसी 'अल्पमत सरकार' के शासन से बच जाता जिसे कभी भी जनता का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष बहुमत प्राप्त नही था और जो जनता द्वारा चुनी गयी एक 'वैधानिक सरकार' को अपदस्थ करके औपबन्धिक रूप से सत्ता मे आयी थी।

जब राष्ट्रपति पहले ऐसा नही कर सके तो उनको यह चाहिये था कि अपने द्वारा स्थापित नजीर का पालन करते हुये विपक्ष के नेता श्री जगजीवन राम को सरकार बनाने का आमन्त्रण देकर अनिश्चय की स्थिति समाप्त करते। यदि जगजीवन राम बहुमत का समर्थन हासिल करके सरकार न बना पाते तो अन्य कोई सम्भावना ही नही बचती और तभी मध्यावधि चुनाव का प्रश्न उत्पन्न होता। वास्तव मे बडे राजनीतिक निर्णय उचित ही नही होने चाहिये बल्कि उचित प्रतीत भी होने चाहिये। राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा भग करने और मध्यावधि चुनाव कराने की घोषणा की अनेक समाचार पत्रो ने आलोचना की।[1] प्रसिद्ध सविधानविद नानी पालखीवाला ने भी राष्ट्रपति के इस निर्णय की कटु आलोचना की।[2] जब राष्ट्रपति पर पक्षपात के आरोप लगने लगे कि उन्होंने श्री चरणसिह की परामर्श पर लोकसभा भग की तो उस समय उन्होंने उद्घाटित किया कि उनका निर्णय प्रधानमत्री की सलाह पर नहीं बल्कि 'विवेक पर

---

1. सम्पादकीय लेख "इन बैड ओर्डर", (इण्डियन एक्सप्रेस), अगस्त 23, 1979, "ए डाउटफुल डिसिशिजन", "ऐण्ड नाउ एट दि सेन्टर", "नाट बाई कॉनशॅन्स", (दि टाइम्स आफ इण्डया), अगस्त 23, अगस्त 25, सितम्बर 5, 1979।
2. नानी ए० पालखीवाला. "दि प्रेसीडेन्टस् डिसिश्जन कान्सिक्यून्सेस ऑफ डिजोलुशन" दि टाइम्स आफ इण्डिया, दिल्ली, अगस्त 24, 1979।

आधारित' था । परन्तु राष्ट्रपति का यह कथन, राष्ट्रपति श्री सजीवा रेड्डी को उनके पक्षपात पूर्ण रवैये से उन्हे दोष मुक्त नही करता । कुल मिलाकर राष्ट्रपति नीलम सजीवा रेड्डी की छवि एक निष्पक्ष, एव निर्दलीय सवैधानिक राष्ट्राध्यक्ष की न रहकर एक सक्रिय स्वार्थी राजनीतिज्ञ की बन गयी ।

काम चलाऊ सरकार का मामला

लोकसभा भग करने के बाद राष्ट्रपति ने श्री चरणसिह को कामचलाऊ प्रधानमत्री बना दिया । एक एसे व्यक्ति जिसने कभी लोकसभा का समाना न किया हो, के हाथ मे कुछ समय के लिये (अगस्त 20, 1979 से जनवरी 13, 1980 तक) देश की बागडोर सौप दी गयी । जनता पार्टी एव काग्रेस (इ०) दोनो ने इस बात का विरोध किया कि श्री चरणसिह अन्तरिम काल मे प्रधानमत्री बने रहे । 24 अगस्त 1979 को काग्रेस (इ०) नेता श्री सी० एम० स्टीफन एव श्री कमलापति त्रिपाठी ने एक ज्ञापन देकर श्री चरणसिह को हटाने एव 'उत्तराधिकारी काम चलाऊ सरकार' की नियुक्ति की माग की ।[1] जनता पार्टी नेता श्री जगजीवन राम ने इस सरकार को 'अनाधिकारग्राही सरकार' की सज्ञा दी ।[2] जनता ससदीय दल ने अपने एक प्रस्ताव मे कहा कि यह एक 'अवैध काम चलाऊ सरकार' है, जिसे लोकसभा मे पर्याप्त अल्पमत भी प्राप्त नही है ।

उसी बीच श्रीमती इदिरा गॉधी ने स्वतन्त्र एव निष्पक्ष चुनाव कराने के लिये 'राष्ट्रीय सरकार' के विचार का प्रतिपादन किया, जिसे जनता पार्टी के नेताओ ने ठुकरा दिया । अत विभिन्न राजनीति दलो मे इस बात पर सहमति नही हो सकी कि अन्य "वैकल्पिक काम चलाऊ सरकार" का स्वरूप क्या होगा ? ऐसी परिस्थितियो मे काग्रेस (इ०) और राष्ट्रपति श्री रेड्डी के पास श्री चरणसिह को 'अन्तरिम काल' के लिये 'काम-चलाऊ प्रधानमन्त्री' स्वीकार करने के आलावा अन्य कोई विकल्प नही था ।

पटाक्षेप

वैसे तो श्री मोरारजी देसाई की सरकार के पतन के बाद जनता पार्टी का औपचारिक पराभव हो चुका था, परन्तु श्री चरणसिह के नेतृत्व मे अलग हुये इसके एक महत्वपूर्ण धड़े 'जनता पार्टी (एस०) की सरकार' के पतन के बाद इस सम्पूर्ण महान ऐतिहासिक घटनाक्रम का अत्यन्त त्रासदीय पटाक्षेप हो गया । इस सम्पूर्ण घटनाक्रम का एक अत्यन्त रोचक एव मार्मिक पक्ष यह है कि जनता पार्टी के पराभव मे 'जनता-जनार्दन' की कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भूमिका नही रही । जिन लोगो ने इसे बडी आशाओ के साथ सत्ता सौपी थी, वे अश्रुपूरित नेत्रो से इसका दु खद अन्त देखते रहे, परन्तु कुछ कर नही सके, शायद कुछ कर भी नही सकते थे । जनता पार्टी के पराभव का इतिहास आन्तरिक-सघर्षो, छल-प्रपचो, सत्तालोलुपता एव षड्यत्रो भरा पड़ा है । जनता पार्टी के नेताओं ने इस ऐतिहासिक अवसर को अपनी क्षुद्र राजनीतिक महत्वाकाक्षाओं के कारण गवा दिया । इस प्रकार उन्होंने न केवल भारतीय जनता एव राजनीति व्यवस्था के वर्तमान बल्कि भविष्य के साथ भी महान विश्वासघात किया । जनता पार्टी के त्रासदीय पराभव के प्रमुख नायक या खलनायक तो स्वय जनता पार्टी के नेतागण थे, परन्तु इसके पतन को सुनिश्चित करने मे जिन लोगो ने अभिकारक की भूमिका निभायी उनमे श्री सजय गाधी, श्रीमती इदिरा गाधी और एक सीमा तक राष्ट्रपति श्री नीलम सजीवा रेड्डी का नाम लेना अनुचित न होगा ।'

---

1. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, अगस्त 25, 1979 ।
2. वही, अगस्त 23, 1979 ।

अष्टम् - अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

महान विश्वासघात

"राष्ट्रपति महात्मा गाँधी की समाधि पर एकत्रित जनता के हम चुने हुये प्रतिनिधि उनसे प्रेरणा लेते हुये सकल्प पूर्वक शपथ लेते है कि हम पूरे मन से उनके शुरू किये हुये कार्यों को पूरा करेगे। अपने देशवासियो की सेवा करेगे और उनमे से जो सबसे कमजोर और गरीब है उन पर विशेष ध्यान देगे। हम अपने गणराज्य के नागरिको की जानमाल और आजादी के मूलभूत अधिकारो की रक्षा करेगे। हम मिलजुलकर समर्पण की भावना से कार्य करेगे। राष्ट्रीय एकता और सदभाव के लक्ष्यो को पूरा करेगे और गाँधी जी के जीवन और कामो से सूचित होने वाली अचूक दिशा मे बढते रहेगे। हम अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन मे सादगी और ईमानदारी को व्यावहारिक रूप मे अपनाएगे। गाँधी जी का आर्शीवाद, हमारा मार्ग प्रशस्त कर।"

24 मार्च 1977 को राजघाट, नई दिल्ली मे जनता पार्टी के सासदो द्वारा यह प्रतिज्ञा की गयी। यह प्रतिज्ञा, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के ऐतिहासिक विकास के उस निर्णायक दौर मे की गयी, जब विपक्षी दलो ने अपने सामूहिक एव एकीकृत प्रयास से, 1947 से केन्द्र मे सत्तारूढ एक अत्यन्त शक्तिशाली राजनीतिक दल, काग्रेस को परास्त करके, न केवल सत्ता हासिल की बल्कि एक लोकतान्त्रिक सामाजिक एव राजनीतिक आन्दोलन की शुरूआत भी की। परन्तु, इस प्रतिज्ञा को अतिदुष्टता एव निर्दयता पूर्वक भग किया गया। जनता पार्टी के नेताओ की व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओ, सत्ता लोलुपता एव अवसरवादिता के कारण 28 महीने मे ही जनता पार्टी न केवल सत्ताच्युत हुई बल्कि टूट कर बिखर गयी। यह घटनाक्रम सम्पूर्ण भारतीय राजनीतिक व्यवस्था और विशेषकर दलीय व्यवस्था के लिये अत्यन्त त्रासदीपूर्ण था। यह सार्वजनिक जीवन के उन मूल्यो का पूर्ण निषेध था, जिन्हे स्थापित करने का ~~हमने~~ वचन दिया था। निःसन्देह यह भारतीय जनमानस, राजनीतिक आदर्शो एव राष्ट्र के साथ गम्भीर एव महान विश्वासघात था।

भारतीय राजनीतिक इतिहास के इस अल्प-समयान्तराल (1977-1979) मे घटी घटना, भारतीय राजनीतिक सत्ता के चरित्र पर एक तीखी टिप्पणी है, कि हमारे नेतागण कितने स्वार्थी, पाखडी, सत्तालोलुप, झूठे, अवसरवादी एव बेईमान है, जो अपने न्यस्त स्वार्थों के लिये अपने ही लोगो का गला घोट देते है। यह घटना उन ऐतिहासिक सन्दर्भो की भी व्याख्या है कि हम प्राचीनकाल से ही मुट्ठी भर विदेशी आतताइयो एव आक्रमणकारियो का मुकाबला क्यो नही कर पाये? आपसी फूट एव विश्वासघात हमारा इतिहास रहा है, हम उस इतिहास को एकाएक कैसे बदल देते? हमने अपनी क्षुद्र राजनीतिक महत्वाकाक्षाओ की पूर्ति के लिये विदेशी आतताइयो का सहयोग कर, अपने लोगो के विरुद्ध दुरभिसन्धियाँ की, जिसका परिणाम हुआ, सैकडो वर्षो की गुलामी। वर्तमान मे अन्तर केवल इतना था कि आततायी विदेशी नही भारतीय था।

मार्च 1977 मे जनता पार्टी का सत्ता रोहण भारतीय राजनीतिक इतिहास के नवीन युग की शुरूआत थी, इसके उद्भव को भारत की दूसरी आजादी की सज्ञा दी गयी। भारतीय जनता की आशाओ के अनुरूप जनता पार्टी ने राजनीतिक, सामाजिक एव आर्थिक स्वतन्त्रता सुनिश्चित करने के लिये अनेक नये आयामो की शुरूआत की, परन्तु

उसके सभी सत्कार्य आपसी कलह, अवसरवादिता एवं सत्ता संघर्ष के कुहासे में ढक गये और जुलाई 1979 तक अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण ढंग से जनता पार्टी की सरकार का पतन एवं पार्टी का विघटन हो गया तथा जनता की इच्छाओं के विरुद्ध देश में मध्यावधि चुनाव लाद दिये गये ।

सारणी संख्या 8

1980 के लोकसभा चुनाव में राजनीतिक दलों का निष्पादन

राजनीतिक दल	कुल प्राप्त स्थान	प्राप्त स्थानों का प्रतिशत	प्राप्त मतो का प्रतिशत
कांग्रेस (इ०)	352	66 79	42 68
कांग्रेस (अर्स)	13	2 47	5 29
जनता पार्टी	31	5 88	18 93
जनता पार्टी (सेक्युलर)	41	7 78	9 42
कम्युनिस्ट पार्टी आफ इंडिया	11	2 09	2 59
कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी)	36	6 83	6 16
राज्य-राजनीतिक दल	34	6 45	7 69
रजिस्टर्ड राजनीतिक दल	01	0 19	0 82
निर्दलीय	08	1 52	6 42
योग	527	100 00	100 00

स्रोत– 'भारत में लोक सभा के सातवें साधारण निर्वाचनों की रिपोर्ट', भारत निर्वाचन आयोग, नई दिल्ली ।

जनवरी 1980 में सातवी लोकसभा के 527 सीटों के लिये चुनाव सम्पन्न हुये । इस मध्यावधि चुनाव में कांग्रेस की अप्रत्याशित जीत हुई, उसे 352 स्थान प्राप्त हुए । (देखे सारणी संख्या 8) जनवरी 1980 के चुनाव में कांग्रेस (इ०) का दो तिहाई बहुमत से वापस आना एक राजनीतिक चमत्कार था । कांग्रेस (इ०) की अप्रत्याशित विजय के दो मौलिक कारण थे – प्रथम जनता सरकार का अत्यधिक निराशाजनक निष्पादन और द्वितीय, श्रीमती इंदिरा गाँधी का प्रभावशाली

व्यक्तित्व । जनता पार्टी को मात्र 31 स्थान मिले तथा जनता (एस०) को 41 तथा काग्रेस (अर्स) को 13 स्थान मिले । जनता (एम०) न काग्रेस (अर्स) से चुनावी गठबधन किया था परन्तु वह अपनी स्थिति सुधार न सकी, इस प्रकार ये चुनाव भी जनता पार्टी की दुर्गति का स्पष्ट सकेत दे रहे थे, काग्रेस (इ०) की विजय से श्रीमती इदिरा गॉधी इस दावे को पुष्टि करने मे कामयाब हुई कि उनके नेतृत्व वाली पार्टी ही असली भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस है ।[1]

लोकसभा चुनाव के पूर्व जनता पार्टी दो दलो म विभाजित हो गयी थी – जनता पार्टी और 'जनता (एस०) सेक्यूलर' । 1980 के लोक सभा चुनाव मे जनता पार्टी एव जनता (एस०) की पराजय से विभाजन की यह प्रक्रिया और आगे बढ़ी । सबसे पहले मार्च 1980 मे श्री जगजीवन राम न जनता पार्टी छोड दी और काग्रेस सस्कृति मे जनता (जे०) का निर्माण किया तथा बाद मे वे काग्रेस (अर्स) मे सम्मिलित हो गये । कुछ दिनो बाद उन्होंने काग्रेस (अर्स) तोड़कर अपनी अध्यक्षता मे काग्रेस (जे०) का निर्माण किया, जिसका राजनीति मे प्रभाव नगण्य रहा । इसके बाद 'दोहरी सदस्यता' के प्रश्न पर अप्रैल 1980 मे जनता पार्टी मे एक और विभाजन हुआ । इनमे पूर्व जनसघ घटक ने पार्टी से अपना नाता तोड़ लिया, इस प्रकार जनता पार्टी पुन दो दलो मे बॅट गयी जनता पार्टी (ज० पी०) और भारतीय जनता पार्टी ।

जुलाई 1979 मे जिस जनता (एस०) की स्थापना हुई थी, श्री चरणसिह अपने सहयोगी श्री राजनारायण की उपेक्षा करते हुये उस पर अपना पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करने की चेष्टा कर रहे थे । इस सम्बध मे मतभेदो ने अप्रैल 1980 मे जनता (एस०) मे विभाजन को जन्म दिया और यह दल दो भागो में बॅट गया । जनता (एस०) चरणसिह और जनता (एस०) राजनारायण इस प्रकार मूल जनता पार्टी के चार टुकडे हो गये – जनता पार्टी (जे० पी०), भारतीय जनता पार्टी, जनता (एस०) चरणसिह और जनता (एस०) राजनारायण ।

जनता पार्टी का विघटन जारी था । इसी बीच फरवरी 1980 को श्रीमती इदिरा गॉधी ने नौ राज्यो (उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, पजाब, तमिलनाडु, गुजरात, उडीसा एव महाराष्ट्र) की विधान सभाओ को भग करा कर इन राज्यो म राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया, और जून 1980 मे चुनाव कराये ।[2] इन नौ राज्यो के चुनाव परिणाम, जनवरी 1980 मे हुये लोकसभा के चुनाव परिणामो की पुनरावृत्ति थी । तमिलनाडु को छोडकर शेष आठ राज्यो मे काग्रेस (इ०) की सरकार बनी । इन चुनावो मे जनता, पार्टी, भारतीय जनता पार्टी, जनता (एस०) के दोनो धडो की काफी दुर्गति हुई । काग्रेस (आई०) की सत्ता मे वापसी के इस ऐतिहासिक घटनाक्रम के परिणाम स्वरूप देश की विपक्षी राजनीति को

---

1 गिरी लाल जैन "वन पार्टी डोमीनेन्स अगेन फैक्टर बिहाइड मिसेज गाँधीज ट्राइम्फ", दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, जनवरी 9, 1980 ।

2 के० सी० खन्ना "टरमोअल इन दि स्टेट काग्रेस (आईज) न्यू डिलेम्मा', दि टाइम्स आफ इण्डिया, जनवरी 22, 1980, इन्दर मेहरोत्रा "ड्रिफ्ट टुवर्डस डिज़ोल्यूशन कलकुलेशन ऑफ काग्रेस (आई०)" टाइम्स ऑफ इण्डिया जनवरी 31, 1980, "डिजोल्यूशन एण्ड आफ्टर" (सम्पादकीय) दि टाइम्स आफ इण्डिया, फरवरी 20, 1980, नानी ए० पालखीवाला "डिलोल्यूशन ऑफ दि ऐसेम्बलीज – एप्रोवल ऑफ राज्य सभा इर्रेलेवेन्ट", दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, फरवरी 22, 1980 ।

गहरा आघात लगा । जनवरी 1980 के लोकसभा चुनाव एव इन चुनाव परिणामो से ऐसा प्रतीत हुआ कि देश मे पुन 'एक दलीय प्रभुत्व प्रणाली' स्थापित हो गयी है ।[1] इस प्रकार एक दलीय व्यवस्था का वर्चस्व खत्म होने और पुर्नस्थापित होन से दलीय व्यवस्था वही पहुच गयी जहा से जनता पार्टी (प्रक्रिया) की शुरूआत हुई थी ।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

1977 स लेकर 1980 तक घटी घटनाओ मे भारतीय दलीय व्यवस्था की विशिष्टताओं के साथ-साथ भारतीय मतदाताओं के चरित्र का पूर्ण प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है, जिसकी जड़े हमारे स्वतन्त्रता आन्दोलन एव स्वतन्त्रयोपरान्त की दो दशको की राजनीति मे निहित थी । स्वतन्त्रता के बाद जब काग्रेस ने सत्ता सभाली, तो राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो की मॉग थी कि भारत मे एक शक्तिशाली केन्द्रीकृत सत्ता हो । शीत युद्ध के वातावरण एव पडोसियो (चीन एव पाकिस्तान) के शत्रुतापूर्ण रवेये के कारण स्वतन्त्र विदेश नीति, आन्तरिक सुरक्षा, राष्ट्रीय एकता एव अखण्डता के मुद्दे इतने प्रभावी हो गये कि अन्य महत्वपूर्ण लोकतान्त्रिक मुद्दे जैसे विकेन्द्रीकरण, सघीय व्यवस्था एव प्रभावशाली विपक्ष का विकास आदि, हाशिये मे चले गये । इसका परिणाम यह हुआ कि एक स्वस्थ एव प्रतियोगी दलीय व्यवस्था का स्वाभाविक विकास नही हो सका ।

1950 का भारतीय गणतन्त्र विभिन्न प्रादेशिक एवं भाषायी एकको का 'ढीला ढाला गठबन्धन' था । इस समय भी केन्द्र के विरुद्ध असन्तोष की एक लहर राज्यो के पुनर्गठन, तेलागाना आन्दोलन एव अन्य आर्थिक शोषण से जन्मे आन्दोलनो के रूप मे प्रतिबिम्बित हुई, परन्तु नेहरू के विशाल एव चमत्कारिक व्यक्तित्व एव नेतृत्व मे ये सभी आन्दोलन दब गये । इसका परिणाम यह हुआ कि एक ओर काग्रेस शनै शनै शक्तिशाली होती गयी । दूसरी ओर उसमे प्रतिबद्धता की कमी आती गयी ।

गॉधी जी का विचार था कि काग्रेस को भग करके एक 'लोक सेवक सघ' की स्थापना की जाये तथा ससदीय क्षेत्र नवीन एव स्पष्ट रूप से राजनीतोन्मुख सगठनो एव व्यक्तियो के लिये छोड़ देना चाहिये । शायद उनकी आकाक्षा थी कि श्री नेहरू और सरदार पटेल के नेतृत्व मे दो राजनीतिक दलो का गठन किया जाये, इससे भारत मे दो दलीय व्यवस्था का विकास होता । लेकिन यह नही हो सका, और काग्रेस भ्रम और परिस्थितियो वश स्वतन्त्रता सग्राम के बलिदानो की एक मात्र उत्तराधिकारिणी बन बैठी, जबकि वास्तविकता यह है कि समाजवादी, साम्यवादी, हिन्दू महासभाई, और क्रातिकारी सबके लिये काग्रेस ही आजादी की लड़ाई का प्रमुख मच था । शायद यही कारण था कि गॉधी जी ने काग्रेस को भग करने का सुझाव दिया था । परन्तु काग्रेसी नेताओं ने इसे ठुकरा दिया । इसके परिणाम स्वरूप काग्रेस न सिर्फ राष्ट्रीय आन्दोलन की एक मात्र दावदार बन गयी बल्कि इससे भारत की अशिक्षित एव शिक्षित जनता (बुद्धिजीवियो) मे राष्ट्र (राज्य) एव सरकार और दल को एक ही समझने की भ्राति पैदा हो गयी । श्री जवाहर लाल नेहरू और विशेषकर श्रीमती इदिरा गॉधी इस भ्रम को बार-बार यह कहकर भुनाती रही कि हमने देश के लिये इतनी कुर्बानिया दी और ने क्या किया ? इस क्रम के चलते विरोधी दलो की विश्वसनीयता राष्ट्र को चलाने के सन्दर्भ

---

1 सम्पादकीय "पोल सप्राईजेज", टि टाइम्स आफ इण्डिया, जून 3, 1980, बी० एम० बडोला "अपोजीशन येट टु लर्न फ्रॉम पास्ट मिस्टेक्स्" दि इण्डियन एक्सप्रेस जनवरी 14, 1981 । गिरी लाल जैन "ए रीपीट परफार्मेन्स", दि टाइम्स आफ इण्डिया जून 3, 1980 ।

मे विकसित नही हो पायी, और विपक्ष के अनेक प्रतिभाशाली नेताओ की उपेक्षा हुई, इससे इन उपेक्षित प्रतिभाशाली नेताओं म एक राजनीतिक कुठा पैदा हो गयी । इसी कुठा ने विपक्ष मे अहम् के टकराव की राजनीति को जन्म दिया । चूकि सबसे ज्यादा प्रतिभाशाली एव उपेक्षित नेता समाजवादी ही थे, अत समाजवादियो म यह टकराव भटकन एव बिखराव, सबसे ज्यादा दृष्टिगोचर होता है । इन सबके परिणाम स्वरूप विपक्ष का आकार एव प्रभाव अत्यन्त बौना हो गया ।

इसके अलावा एक अन्य स्तर-सगठनात्मक स्तर, पर काग्रेस केन्द्रीकृत और मजबूत होती जा रही थी । सगठन मे अपना प्रभाव जमाने के लिये श्री नेहरू एव सरदार पटेल के बीच थोडी खीचातानी हुई, परन्तु सरदार पटेल की मृत्यु के बाद सत्ता और सगठन दोनो मे श्री जवाहर लाल नेहरू का एकाधिकार हो गया । काग्रेस के आन्तरिक लोकतन्त्र को खत्म कर दिया गया, यह एक गलत परम्परा थी, जो श्रीमती इदिरा गॉधी एव श्री राजीव गॉधी से होती हुई वर्तमान समय (श्री नरसिम्हाराव) तक चली आ रही है । धीरे-धीरे काग्रेस की मसीही अपील खत्म होने लगी और श्री नेहरू के अन्तिम दिनो मे सिडीकेटो का एक गुट काग्रेस मे प्रभावशाली हो गया, जिसने सत्ता और सगठन मे अपनी पकड मजबूत करनी चाही ।

1967 के आम चुनाव मे डॉ० लोहिया के गैर-काग्रेसवाद के विचार ने विपक्षी एकता को प्रक्रिया की एक नयी दिशा दी । केन्द्र मे काग्रेस की सरकार तो बन गयी परन्तु उसे लोकसभा मे पहले से कम स्थान प्राप्त हुये, इसके आलावा आठ राज्यो मे गैर-काग्रेसी 'सविद मन्त्रिमण्डल' बने, इसने राज्यो की राजनीति मे गम्भीर अस्थिरता को जन्म दिया और सिद्ध कर दिया कि विपक्षी गठबधन कोई भी सरकार चलाने मे अक्षम है । इसी बीच काग्रेस के सिन्डीकेट नेताओ ने श्रीमती इदिरा गॉधी के सत्ता के केन्द्रीकरण का विरोध किया, परिणाम स्वरूप 1969 मे काग्रेस का विभाजन हो गया । इससे ऐसा प्रतीत हुआ कि भविष्य मे काग्रेस का एक छत्र राज समाप्त हो जायेगा ।

इन्ही अटकल बाजियो के बीच 1971 मे लोकसभा के मध्यावधि चुनाव सम्पन्न हुये । इस चुनाव मे चार विपक्षी दलो के सयुक्त मोर्चे, 'महागठबन्धन' ने काग्रेस के विरुद्ध चुनाव लडा । इसमे श्रीमती इदिरा गॉधी की काग्रेस को अप्रत्याशित सफलता मिली और 'विपक्षी गठबधन' द्वारा काग्रेस के 'राष्ट्रीय विकल्प' प्रस्तुत करने का स्वप्न चूर-चूर हो गया । काग्रेस की सफलता एव विपक्ष की असफलता के कमोवेश वही ऐतिहासिक कारण थे । पुन 1971 के भारत-पाक युद्ध की सफलता का श्रेय श्रीमती इदिरा गॉधी को मिला और आगे आने वाले दिनो मे उन्होने एक साम्राज्ञी की भॉति भारत मे शासन किया और समय के साथ यह प्रवृत्ति बढती गयी । भारत जैसे बहुभाषाभाषी एव सास्कृतिक विविधाओ वाले देश के लिये यह प्रवृत्ति घातक थी, इसकी सर्वोच्च परिणित जून 1975 के आपातकाल की घोषणा मे हुई ।

श्री जय प्रकाश नारायण के जन आन्दोलनो मे निहित नैतिक सन्देश ने पहली बार काग्रेस के जनाधार एव विश्वसनीयता पर गहरी चोट की । इसके साथ-साथ आपातकाल की ज्यादतियो ने लोगो के मन मे कांग्रेस के प्रति गहरी वितृष्णा भर दी । इस अवसर का लाभ उठाकर विपक्षी दलो ने एकता का अभूतपूर्व प्रयास किया, जनता पार्टी बनी और सत्तारूढ हुई । भारतीय राजनीतिक इतिहास की यह ऐतिहासिक एव अभूतपूर्व घटना थी, । अनेक राजनीतिक समीक्षको ने इसे 'दो दलीय व्यवस्था' के प्रारम्भ की सज्ञा दी, परन्तु यह उनका भ्रम था, शायद उन्होंने भारतीय दलीय व्यवस्था की विशेषताओ एव ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की ओर समुचित ध्यान नही दिया । वास्तव मे जनता पार्टी का

उद्भव सर्जनात्मक ऊर्जा से ज्यादा नकारात्मक रूझानो से प्रेरित था । इसका परिणाम यह हुआ कि सत्ता मे आते ही जनता नेताओ (पूर्व विपक्षी नेतागण) के बीच कुंठित अहम् का टकराव प्रारम्भ हो गया और घटकवाद एव सत्ता सघर्ष के चलत जनता पार्टी लगभग ढाई वर्षो म टूट कर बिखर गयी ।

भारतीय जनमानस मे काग्रेस के प्रति विरक्ति अल्पकालीन थी, क्योकि उसके नवीन विश्वास के आधार (जनता पार्टी) ढह गये थे । जनता पार्टी के नेताओ के राजनीतिक व्यवहार एव चरित्र ने जनता के समक्ष उनकी (पूर्व विपक्ष) ऐतिहासिक अविश्वसनीयता, अकुशलता और उत्तरदायित्वहीनता की पुष्टि कर दी । भारतीय जनता पुन सोचने लगी कि काग्रेस ही एक मात्र सत्ता की सक्षम एव उत्तरदायी दावेदार है । इसी कारण 1980 के लोकसभा चुनाव मे भारतीय जनता ने काग्रेस (इ०) को भारी समर्थन देकर पुन 'एक दलीय प्रभुत्व व्यवस्था' की स्थापना के पक्ष मे मतदान किया । अत 1977-80 के बीच घटी घटनाओ (जनता पार्टी का पराभव एव एक दलीय प्रभुत्व व्यवस्था की पुर्नस्थापना) की व्याख्या तत्कालीन कारणो के साथ-साथ ऐतिहासिक परिपेक्षय मे की जानी चाहिये, अन्यथा नही ।

दलीय व्यवस्था के इस ऐतिहासिक परिपेक्षय का एक अन्य आयाम भी है । भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस भारत का सबसे प्राचीन दल है । यहाँ अधिकाश विपक्षी दलो का निर्माण काग्रेस से अलग हुये, उपेक्षित एव प्रतिभाशाली लोगो ने किया, चाहे इस उपेक्षा का कारण वैचारिक रहा हो या व्यक्तिगत परन्तु, इन विद्रोही नेताओ को काग्रेसी सत्ता मे समुचित भागीदारी नही मिल रही थी, इसलिये उन्होने काग्रेस से अलग होकर उसी सस्कृति के नये दलो का निर्माण किया । चूकि सभी शीर्षस्थ विपक्षी नेतागण काग्रेस जैसी विशाल सस्था एव नेतृत्व को चुनौती देकर अलग हुये थे अत उनके लिये यह असम्भव था कि वे किसी अन्य छोटे दल के साथ समझौता, गठबन्धन या विलय करके नवीन दल मे अपनी द्वितीयक स्थिति स्वीकार करे । यदि किन्ही राजनीतिक बाध्यताओ के तहत ऐसा हो भी गया तो वे सर्वोच्च सत्ता से कम किसी अन्य राजनीतिक पद को स्वीकार करना अपने स्तर के अनुकूल नही समझते थे, क्योकि इसी कारण तो वे अपने सम्पूर्ण राजनीतिक जीवन को दाँव मे लगाकर अपनी मातृसस्था काग्रेस से अलग हुये थे । विपक्षी एकता के मार्ग मे यह ऐतिहासिक एव मनोवैज्ञानिक कारण सबसे बडी बाधा थी, विपक्षी राजनीति की दुर्गति का मूल कारण भी यही था ।

महत्व, प्रांसागिकता एवं नये दिशा संकेत

जनता पार्टी का गठन जिन लक्ष्यो की प्राप्ति के लिये हुआ, उन्हे कमोवेश प्राप्त नही किया जा सका । इसका मूल कारण यह था कि जनता पार्टी की सरकार का अत्यन्त अल्पकाल मे पतन हो गया और जनता पार्टी अनेक धड़ो मे बट गयी, जिसमे यह सुनिश्चित करना दुष्कर हो गया कि मूल जनता पार्टी कौन सी है ? परन्तु फिर भी सम्पूर्ण भारतीय राजनीति एव विशेषकर दलीय व्यवस्था पर इसका व्यापक प्रभाव पडा । वर्तमान समय मे इसके नवीन सस्करणो के माध्यम से इसके लक्ष्यो की यात्रा जारी है और भविष्य के नये दिशा सकेतो के सन्दर्भ मे इसकी प्रासागिकता बनी हुयी है ।

जनता पार्टी का उद्भव एक राजनीतिक दल के उद्भव के साथ-साथ प्रजातान्त्रिक मूल्यो की स्थापना एव काग्रेस का 'राष्ट्रीय विकल्प' प्रस्तुत करने के लिये एक राजनीतिक आन्दोलन भी था । एक राजनीतिक दल के रूप में तो एक सीमा तक इसका पराभव (यद्यपि पूर्ण नही) कहा जा सकता है परन्तु एक राजनीतिक आन्दोलन के रूप मे, यह आज भी जारी है । इतिहास के किसी समयान्तराल मे किसी आन्दोलन की असफलता, आन्दोलन में निहित मूल्यों

एव लक्ष्यों की असफलता नही कही जा सकती । भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम के दौरान 1857, 1920, 1932, एव 1942 के सभी आन्दोलन यदि असफल नही रहे तो उन्हे पूर्ण रूप से सफल भी नही कहा जा सकता । परन्तु इनकी पुनरावृत्ति उन मूल्यो एव लक्ष्यो की विजय थी, जिनके लिए ये आन्दोलन चलाये गये । यह लक्ष्य था – स्वाधीनता । वर्तमान समय मे स्वाधीनता प्राप्ति के सदर्भ मे इन आन्दोलनो की सफलता स्वयसिद्ध है ।

इसी प्रकार जनता पार्टी ने 1977-80 तक एक आन्दोलन चलाया, उसमे निहित लक्ष्य थे – काग्रेस का राष्ट्रीय विकल्प, रोटी और वास्तविक आजादी । यह आन्दोलन असफल रहा, परन्तु इसमे निहित मूल्यो एव लक्ष्यो की यात्रा जारी रही । 1989 मे पुन 'जनता दल एव राष्ट्रीय मोर्चे' ने ऐसा ही आन्दोलन चलाया और केन्द्र मे एक गैर काग्रेसी (राष्ट्रीय मोर्चे की) सरकार बनी । यह प्रयोग भी सफल नही हो सका, परन्तु आज पुन विपक्षी एकता के प्रयास जारी है । जिसकी सफलता एव असफलता के विषय मे स्पष्ट विचार व्यक्त करना अभी जल्दबाजी होगी ।

एक दल के रूप मे भी जनता पार्टी का पूर्ण पराभव नही माना जा सकता क्योकि अगर 1979-80 मे इसका पूर्ण विघटन मान लिया जाय, 1983 मे कर्नाटक मे जनता पार्टी की सरकार कैसे बन पाती ? पुन 1987-89 के बीच विपक्षी एकता की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुई उसमे जनता पार्टी के लोग काफी सक्रिय रहे जैसे – श्री मधुदण्डवते, श्री जयपाल रेड्डी, श्री चन्द्रशेखर, श्री सुरेन्द्र मोहन, श्री जार्ज फर्नाडीज आदि । 1988 मे जनता पार्टी एव उससे अलग हुये गुट लोकदल (अ), लोकदल (ब) तथा विश्वनाथ प्रताप सिह के जनमोर्चा आदि ने मिलकर 'जनता दल' के रूप मे मुख्य विपक्षी धुरी का निर्माण किया, जो जनता पार्टी के सदस्यो की प्रतिज्ञा थी वही 'जनता दल' की है, जो जनता पार्टी का कार्यालय था वही 'जनता दल' का कार्यालय बना ।

जनता पार्टी का भारतीय राजनीति पर सर्वप्रमुख प्रभाव यह पडा कि सघवाद के प्रश्न को उभर कर आने का मौका मिला । जनता पार्टी के घोषणा पत्र एव नीतियो मे राज्यो को स्वायत्तता देने की ओर स्पष्ट आग्रह था । इसके पूर्व श्रीमती इदिरा गाँधी केन्द्रीकरण के रास्ते मे चल रही थी । जनता पार्टी की सरकार ने सघवाद को बढ़ावा दिया और राज्यो की आर्थिक स्वायत्तता की ओर ध्यान दिया इसी के शासन काल मे प्रथम बार जुलाई 1977 मे जम्मू और कश्मीर मे निष्पक्ष चुनाव कराये गये और वहाँ श्री शेख अब्दुला के नेतृत्व मे 'नेशनल काफ्रेस' सत्ता मे आयी । जनता पार्टी ने पजाब मे अकाली दल के साथ 'सविद सरकार' बनायी । अत जनता पार्टी ने क्षेत्रीय स्वायत्तता की नवीन प्रवृत्ति की शुरूआत की । 1980 में श्रीमती इदिरा गाँधी ने पुन जो केन्द्रीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ की, उससे क्षेत्रीय राजनीतिक दलो के उद्भव की माग बढ़ी और अनेक क्षेत्रीय राजनीतिक दल उभरे जैसे आध्र प्रदेश मे तेलगू देशम् और असम मे असम गण परिषद । इसका श्रेय जनता पार्टी को ही है ।

भारतीय दलीय व्यवस्था और विशेषकर काग्रेस की यह विशेषता रही है कि दल मे एक नेता की 'बात एव अधिकार' सर्वोपरि है । श्रीमती इंदिरा गाँधी एव श्री राजीव गाँधी के शासन काल में उनके विरोध करने वालो को पार्टी से फौरन निकाल दिया जाता था । काग्रेस जब विपक्ष मे भी रही, तो भी श्रीमती इदिरा गाँधी अपनी पार्टी के मुख्यमन्त्रियो को अपनी इच्छानुसार बदल दिया करती थी । प्रजातान्त्रिक दलो मे यह अधिनायकवादी व्यवस्था थी । जनता पार्टी ने इस प्रवृत्ति को बदलने का प्रयास किया । जनता दल एव राष्ट्रीय मोर्चे ने इसी धारा को आगे बढाया । लोकतान्त्रिक दल मे आलोचनाये तो चलती ही है । अत. जिस देश मे राजनीतिक दल तानाशाही या अलोकतान्त्रिक ढग से चलते रहे हो, वहाँ लोकतन्त्र की शुरूआत करने मे दिक्कते आना स्वाभाविक है और इसी कारण बिखराव भी होता है ।

लेकिन यह सक्राति काल है, अत यह आशा की जा सकती है कि भविष्य मे राजनीतिक दलो के अन्दर भी लोकतान्त्रिक पद्धति मजबूत होने लगेगी और बिखराब भी नही होगा ।

जनता पार्टी के शासन काल मे पचायत राज विधेयक, लोकपाल विधेयक एव दल-बदल विरोधी विधेयक की पृष्ठभूमि तैयार हो गयी थी । यह सच है कि ये विधेयक पारित नही हो सके परन्तु इसने (जनता पार्टी) जिन विकेन्द्रीकरण एव लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओ की शुरूआत की, उनका प्रभाव भविष्य की सरकारो मे स्पष्ट देखा जा सकता है । जनता पार्टी सरकार ने 44वे सविधान सशोधन के माध्यम से 38वे, 39वे एव 42वे सविधान सशोधन अधिनियम की विकृतियो को भी समाप्त कर दिया ।

जनता पार्टी ने भारतीय राजनीति के अनेक मूल्यो एव प्रक्रियाओ को पुनर्परिभाषित किया । नेहरू युग मे बडे उद्योगो एव कारखानो की स्थापना पर जोर दिया गया । इसके साथ केन्द्र का आर्थिक व्यवस्था पर ज्यादा से ज्यादा नियमन भी था । कृषि, कुटीर उद्योगो एव रोजगार उत्पन्न करने की ओर ध्यान बहुत कम था । ये नीतियॉ 1952-57 मे अपनायी गयी और 1977 तक चलती रही । जनता पार्टी ने इन दोनो प्रवृत्तियो को बदला, कृषि की ओर ध्यान दिया गया जिससे एक ओर किसानो को लाभ हुआ, और दूसरी और रोजगार के अवसर उत्पन्न हुये । जनता पार्टी के शासन काल मे 'ग्रामीणोन्मुख गॉधीवादी समाजवाद' की ओर ध्यान दिया गया, जो हमारी घरेलू जरूरतो एव मूल्यो के अनुरूप था इस प्रकार जनता पार्टी ने विकास के लिये 'कृषि और लघु उद्योगो' का रास्ता अपनाया ।

जहॉ तक आर्थिक नियमन की बात हे जनता पार्टी ने कठोर आर्थिक नीतियो को ढीला किया । गवेषणा एव विकास परियोजनाओ के लिये आवश्यक चीजो की व्यवस्था की जा सके इसके लिये आयात-नीति को उदार बनाया गया । श्री राजीव गॉधी ने जिस आर्थिक उदारीकरण की शुरूआत की थी, उसके स्वस्थ अकुर जनता पार्टी के शासन काल मे फूटे थे, परन्तु वर्तमान सरकार (श्री नरसिम्हाराव की) का 'अन्धाधुध आर्थिक उदारीकरण' जनता पार्टी का लक्ष्य नही था । जनता पार्टी के उत्तराधिकारी 'जनता दल' ने श्री नरसिम्हाराव की इन आर्थिक उदारीकरण की नीतियो का स्पष्ट विरोध किया है ।

भविष्य मे पुन विपक्षी एकता की क्या सम्भावनाये है ? भारतीय राजनीति मे एक ऐसे दल का विकास दृष्टिगोचर होता है, जो भविष्य की वास्तविकता बनने वाला है, यह दल निश्चित रूप से मध्यमार्गी होगा । जब जनता पार्टी बनी थी तो उसमे दक्षिणपथी एव समाजवादी दोनो दल शामिल थे, यह प्रयोग असफल रहा, यह उस दल के विकास का प्रथम चरण था । 1989 मे इस दल के लिए विकास का दूसरा चरण प्रारम्भ होता है, जिसमे मध्यमार्गी जनता दल मे दक्षिण पथी दल, भारतीय जनता पार्टी सम्मिलित नही हुआ, परन्तु काग्रेस को सत्ता से हटाने के लिये उस मध्यमार्गी दल (जनता दल) ने एक ओर भारतीय जनता पार्टी और दूसरी ओर साम्यवादी दलो से गठबन्धन किया । यह प्रयोग भी असफल रहा । आज इसके विकास का तीसरा चरण चल रहा है, ये 'सामाजिक न्याय' वाले विभिन्न मध्य मार्गी दल भारतीय जनता पार्टी से किसी भी रूप मे कोई सहयोग लेने या देने को तैयार नही है । अत 1977 से 1989 मे फर्क पडा और अब 1989 से भविष्य मे फर्क पडने वाला है ।

श्री नरसिम्हाराव की कांग्रेस सरकार जिस रास्ते पर चल रही है, उसे जनता का समर्थन नही मिल रहा है । इसकी जुलाई 1995 मे हुये गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उड़ीसा एव आध्र प्रदेश के विधान सभा चुनावो से पुष्टि होती है । उडीसा को छोडकर सभी जगह गैर काग्रेसी सरकार सत्ता मे आयी । जहॉ तक भारतीय जनता पार्टी का प्रश्न है,

उसकी स्थिति काफी सुदृढ हुई है, परन्तु अभी उस स्थिति तक नही पहुँची है कि केन्द्र मे सरकार बना ले । भारतीय जनता पार्टी को अनुसूचित जातियो, जनजातियो एव मुस्लिम वर्गो का समर्थन मिलने की सम्भावना कम है । यदि उसे केन्द्र म बहुमत नही मिलता है और वह लोकसभा मे सबसे बड़ी पार्टी के रूप मे उभर कर आती है, तो उसे अन्य दलो का समर्थन मिलने की उम्मीद कम है । अत केन्द्र मे भारतीय जनता पार्टी की सरकार, एक दूर की सम्भावना है ।

अत वर्तमान समय मे पुन जनता पार्टी जैसी किसी प्रक्रिया की शुरूआत की सम्भावनाओ को नकारा नही जा सकता है । इस प्रक्रिया से उभरा 'तीसरा विकल्प', जिसे मध्यमार्गी कहा जाय या केन्द्र वामपथी, वास्तव मे जनता पार्टी के विकास की आगे की स्थिति है, 'जिसका विचार' आजकल चल रहा है । जनता पार्टी ने परिवर्तन की जिस प्रक्रिया की शुरूआत की थी, 'तीसरा विकल्प' निश्चित रूप से उसका नवीन सस्करण होगा । अत सम्पूर्ण भारतीय राजनीतिक व्यवस्था एव विशेषकर दलीय व्यवस्था पर जनता पार्टी का व्यापक प्रभाव पडा । भविष्य के दिशा सकेतो के सन्दर्भ मे इसकी प्रासागिकता आज भी बनी हुई है ।

परिशिष्ट

परिशिष्ट (I)

शोधकर्ता का जनता पार्टी के तत्कालीन महासचिव श्री सुरेन्द्र मोहन से साक्षात्कार

जनता पार्टी के तत्कालीन महासचिव एव समाजवादी नेता श्री सुरेन्द्र मोहन न शोधकर्ता से साक्षात्कार मे यह उद्घाटित किया कि व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाये, शक्ति सचय की भावना और गुटीय स्वार्थ जनता पार्टी एव सरकार के पतन के लिये जिम्मेदार थे । उन्होने इस घटनाक्रम के लिये सभी गुटीय नेताओ को समान रूप से जिम्मेदार माना और कहा कि यदि त्रिमूर्ति सघर्ष या त्रिगुटीय सघर्ष मे श्री जगजीवन राम एव उनके गुट के स्थान पर यदि जनसघ गुट की भूमिका को समाहित किया जाय तो स्थिति ज्यादा स्पष्ट हो जाती है । श्री सुरेन्द्र मोहन के अपने वैचारिक रूझान हो सकते है परन्तु फिर भी इससे श्री मोरार जी, श्री चरणसिह और जनसघ नेताओ के गुटीय स्वार्थ एव व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओ मे समुचित प्रकाश पड़ता है । प्रस्तुत है उस साक्षात्कार का एक वृहद अश–

शोधकर्ता जनता पार्टी के पतन के लिये व्यक्ति (व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाये) कहाँ तक जिम्मेदार थे ?

श्री सुरेन्द्र मोहन व्यक्ति तो जिम्मेदार थे ही परन्तु व्यक्ति से ज्यादा कुछ प्रक्रियाये भी इसके लिये जिम्मेदार थी । जैसे सन् 1969 और सन् 1971 मे 'सयुक्त मन्त्रिमण्डल' या दलो की असफलता के बाद यह माना जाने लगा था कि सफलता के लिये सयुक्त नही बल्कि 'एकीकृत पार्टी' होनी चाहिये । अत जनता पार्टी के एकीकृत स्वरूप को स्वीकार किया गया जबकि मूलत यह 'सयुक्त दल या दलो का सघ' था । दूसरा कारण यह था कि इस पार्टी मे अलग-अलग घटक दलो के लोग थे और सभी चाहते थे कि इस पार्टी एव सरकार मे जितना अपना बना सकते हो बना लो । यह बात दलगत रूप मे भी कही जा सकती है और व्यक्तिगत स्वार्थो के रूप मे भी ।

त्रि-गुटीय सघर्ष के सन्दर्भ में मै कहना चाहूगा कि एक ओर मोरार जी देसाई थे जो यह महसूस करते थे कि सन् 1969 मे जो जीत उनसे छीन ली गयी थी और श्रीमती इदिरा गॉधी को प्रधानमत्री बना दिया गया था, इतिहास की इस गलती को ठीक करने का उपयुक्त समय है । वे अपने आपको 'एकीकृत पार्टी' का सर्वमान्य नेता मानते थे । वे कह सकते थे कि वे अतीत और वर्तमान को जोड़ने की कडी है, अनुभवी है । उनका मानना था कि सन् 1975 मे उन्होने ही भूख हड़ताल करके श्रीमती इदिरा गॉधी को गुजरात मे चुनाव कराने के लिये मजबूर किया था और वहाँ जनता 'जनता मोर्चा' की सरकार बनवाई । बाद मे जो हालात बने, वह वहीं 'जनता मोर्चे' की स्वाभाविक परिणित थी । अत उन्हें प्रधानमन्त्री बनने का हक है । ये बाते उनके मन मे कितनी सफाई के साथ थी और कितने उनके पूर्वाग्रह थे, यह कहना कठिन है, परन्तु उनकी वस्तु स्थिति ऐसी ही थी ।

जहाँ तक चौधरी चरणसिह का सवाल है, वे यह मानकर चलते थे कि सन् 1967 मे उन्होने देश के इतिहास को बदला है । इस मायने मे बदला है कि 1967 मे अनेक प्रदेशो मे 'सयुक्त विधायक दल' की सरकारे बनी, लेकिन उसमे सबसे ज्यादा उल्लेखनीय सफलता उत्तर प्रदेश मे थी जहाँ 1969 के विधान सभा चुनाव मे चौधरी साहब के 'भारतीय क्राति दल' को 100 सीटे मिली जबकि उन्होने केवल 17 सदस्यो को लेकर काग्रेसी छोडी थी । इसी बीच

सन् 1974 में उनके साथ उत्तर प्रदेश और बिहार के समाजवादी दल के अनेक लोग मिल गये, जिसमें श्री कर्पूरी ठाकुर और श्री राजनारायण प्रमुख थे । अत उन्हें लगा कि पटियाला से लेकर भागलपुर तक उनका दबदबा है और वे ही भारत के किसान वर्ग के एक मात्र नेता है । इसलिये प्रधानमंत्री पद के वास्तविक दावेदार वही है ।

तीसरे प्रमुख गुट भारतीय जनसघ के नेताओ की अजीब मन स्थिति थी । यह उनकी आत्म प्रवचना कहिये या आत्म शोध परन्तु जनसघ के लोगो का मानना था कि आपातकाल के दौरान जितनी यातनाये उन्होंने सही है, जितनी कुर्बानियाँ उन्होंने दी है, उतनी किसी अन्य ने नही । जबकि वास्तविकता यह थी कि उसके ज्यादा से ज्यादा लोग 'पैरोल' पर रिहा होकर आये थे ।

अब यहाँ तीन गुट (जिसमे व्यक्ति प्रमुख) है, जिनकी अपने बारे मे सोच यह है - एक समझता है वह अतीत और वर्तमान की कड़ी है, दूसरा समझता है कि उत्तर भारत का किसान वर्ग उसके साथ है और तीसरा समझता है कि मुझ पर ही पूरे आपात काल की लडाई का भार था । इन पूर्वाग्रहो की पृष्ठभूमि मे जिस प्रकार इन तीनो का एका हुआ वह ठीक नही था । यह एका अगर उनकी शक्ति के आधार पर होता तो शायद सरकार चल जाती जैसा यूरोप मे होता है और वहाँ 'सविद सरकारे' चलती है ।

शोधकर्ता क्या श्री मोरारजी देसाई ऊपर से थोपे गये प्रधानमन्त्री थे ?

श्री सुरेन्द्र मोहन श्री मोरार जी देसाई को ऊपर से थोपे गये प्रधानमनत्री तो कहना कठिन होगा क्योकि जनता पार्टी के दो सबसे बडे गुट-जनसघ और भारतीय लोकदल उनके साथ थे और तीसरा गुट स्वय उनका अपना था । अत अगर चुनाव भी होते तो श्री मोरार जी देसाई प्रधानमन्त्री बनते ।

शोधकर्ता . परन्तु चुनाव हो जाने चाहिये क्योकि यह ज्यादा लोकतान्त्रिक प्रक्रिया थी ?

श्री सुरेन्द्र मोहन . वास्तव मे उस समय यह आम सहमति थी कि चुनाव नही कराये जाने चाहिये और प्रधानमत्री के चयन का दायित्व श्री जय प्रकाश नारायण और आचार्य कृपलानी पर छोड दना चाहिये । लोगो को डर था कि अगर चुनाव हुये तो गुट बदी खुलकर बाहर आ जायेगी और पार्टी टूट सकती है ।

शोधकर्ता · श्री मोरार जी देसाई किस प्रकार के प्रधानमत्री थे । साधारणत उन पर हठवादिता का आरोप लगाया जाता है । क्या जनता पार्टी एव सरकार मे उठे विभिन्न सकटो मे उनका रवैया समाधानात्मक नही था ?

श्री सुरेन्द्र मोहन : मोरार जी पर जो हठवादिता का आरोप लगाया जाता है, वह बहुत ठीक नही है । अगर वे इतने हठी होते तो श्री चरणसिंह को वापस क्यो लेते ?

शोधकर्ता 'काति-देसाई प्रकरण' मे तो यह हठ उभरकर सामने आता है । जब विपक्ष एव स्वय अपनी पार्टी के महत्वपूर्ण नेताओ द्वारा 'काति प्रकरण' मे जाच की माग की जा रही थी । उस समय श्री मोरार जी देसाई ने

श्रीमती इदिरा गॉधी की तर्ज पर कहा था 'काति पर आक्षेप अप्रत्यक्ष रूप से मुझपर आक्षेप है ।'[1] क्या यह हठवादिता नही है ?

श्री सुरेन्द्र मोहन ये काफी उलझे हुये मामले है । यह सही है कि श्री मोरारजी देसाई को पुत्र मोह था। परन्तु यह बात भी सही है कि उनके पुत्र के साथ कही-कही शुरूआत से अन्याय हुआ है । इसका तात्पर्य यह भी नही है कि वह (काति) अच्छा आदमी था और उसने कोई गलती नही की । जुलाई 1978 को श्री मधुलिमिए ने यह बयान दिया कि मै महासचिव पद से त्यागपत्र दे रहा हूँ । कारण यह था कि चौधरी साहब को पद से हटा दिया गया था। इसके बाद श्री मधुलिमिए ने त्यागपत्र दे दिया । ठीक है आप इस्तीफा दे सकते है परन्तु इस्तीफा देने के बाद उन्होने बयान दिया कि जून 1977 के विधान सभा चुनाव मे काति देसाई ने पूजीपतियो से पैसा लेकर अपने लोगो को दिया है । वास्तविकता यह थी कि सेटल आफिस से जितना पैसा 1977 के विधान सभाओ के चुनाव मे आता जाता था वह मेरी और श्री मधुलिमिए की जानकारी मे था । प्रत्येक उम्मीदवार को 3-3 हजार रुपये दिये गये थे । अगर कोई उम्मीदावार आपातकाल मे जेल गया या अनुसूचित जाति, जनजाति या अल्प सख्यक वर्ग का था तो उसे 2000 रु० ज्यादा दिये गये । अगर कोई महिला जेल गयी थी तो उसे 2000 रू० और ज्यादा दिया गया था । इतना जानते हुये भी अगर श्री मधुलिमिए यह बात कहते है तो गलत है और अगर कहना ही है तो पार्टी की केन्द्रीय समिति या ससदीय बोर्ड मे कहिये । उन्है सभी अवसर थे । किन्तु मधुलिमिए के उस बयान को कोई याद नही करता क्योकि मामला काति देसाई के खिलाफ था और काति एक बदनाम आदमी था ।

शोधकर्ता · क्या मधुलिमिए का आरोप या बयान गलत था ?

श्री सुरेन्द्र मोहन तथ्यात्मक रूप से गलत था और अगर सही भी था तो उसे सार्वजनिक रूप से देने की क्या जरूरत थी ? अगर आप राजनारायण और चौधरी चरणसिह के बयान को ले ले और मधुलिमिए और सुन्दरसिह भण्डारी के बयानो को छोड़ दे, तो किसी घटनाओ का निष्पक्ष विश्लेषण नही हो पायेगा, और यही हुआ ।

अब मधुलिमिए 'काति प्रकरण' की जाच के लिये श्री मोरारजी देसाई को उस समय पत्र लिखते है जब काग्रेस वाले भी काति देसाई पर प्रहार कर रहे है । उस समय कहा जाता था कि काति देसाई, बाला सुब्रमणयम और सजय गॉधी मिले हुये है । हकीकत चाहै जो रही हो । उस समय हम लोग राज्य सभा में थे – मै, मन्नूभाई शाह, लालकृष्ण आडवाणी और पीलू मोदी, श्री मोरार जी देसाई के पास गये और कहा कि राज्य सभा हमारे बिल्कुल प्रतिकूल हो गयी क्योकि वहॉ काग्रेस वालो का बहुमत है । हम लोग चाहते है कि काग्रेस (एस०) वालो से कोई बदरबाट कर ले । श्री देसाई ने कहा, नही, यह वसूलो का सवाल है । इसमे क्या वसूल थे ? हम लोग कांग्रेस (एस०) वालों से बात करके गये थे ।

जब राज्यसभा के हालात बहुत गडबड़ हो गये, मन्त्रिमण्डल की बैठक मे श्री लालकृष्ण अडवाणी ने अपना त्यागपत्र दे दिया, क्योंकि वे राज्य सभा में जनता पार्टी ससदीय दल के नेता थे, श्री अडवाणी के त्यागपत्र को मधुलिमिए और बीजू पटनायक ने समर्थन दिया । उस समय मोरारजी भाई राजी हुये और तीन लोगो की एक समिति बना दी

---

1. देखे अरूण शौरी . इन्स्टीटयूशन इन दि जनता फेज, 'सन्स ऐण्ड लवर्स (लेख) पूर्वोक्त, पृ० 238-241 ।

तथा 'काति प्रकरण' के सभी कागजात सर्वोच्च न्यायालय के एक जज के पास जॉच के लिये भेज दिया । तो दोनो बाते थी । अगर मोरार जी जिद न करते तो हम लोग काग्रेस (एस०) से दोस्ती कर लेते और अगर वे इतने ही ज्यादा जिद्दी होते तो श्री लालकृष्ण अडवाणी का त्यागपत्र स्वीकार कर लेते, 'काति प्रकरण' मे जॉच न बैठाते । अत उनमे ज़िद भी थी और लचीलापन भी था ।

शोधकर्ता . जनता पार्टी एव सरकार मे जो सकट उत्पन्न हुये, उनमे क्या चौधरी चरणसिह का दृष्टिकोण सबसे ज्यादा असमझौतावादी नही था ? उन्होने पार्टी और सरकार मे रहते हुये, सरकार पर जो आक्षेप लगाये, ऐसे आक्षेप किसी अन्य व्यक्ति या गुट ने नही लगाये । तो क्या पार्टी तोड़ने मे हम इनकी सबसे ज्यादा भूमिका नही मान सकते ?

श्री सुरेन्द्र मोहन चौधरी साहब के बयान कब आये ? वे क्यो आहत हुये ? इस बात का अध्ययन करना चाहिये । इसके लिये सभी घटनाओ को क्रम से देखना होगा ।

शोधकर्ता जून 1977 जब राज्य विधान सभाओ के चुनाव हो रहे थे उस समय श्री चरणसिह ने चुनाव आयोग को पत्र लिखकर भारतीय लोकदल का चुनाव चिन्ह[1] वापस लेने की बात की थी । क्या यह उचित था ?

श्री सुरेन्द्र मोहन वैसे यह बात तो ठीक नही थी, परन्तु चरणसिह ने ऐसा क्यो किया इसका कारण समझना चाहिये । इसका कारण यह था कि चरणसिह ने उत्तर प्रदेश के लिये जो उम्मीदवार तय किये थे, चन्द्रशेखर ने पार्टी अध्यक्ष बनने के बाद उसमे तब्दीली कर दी । उन्होने जनसघ और भारतीय लोकदल के 85 उम्मीदवारो के नाम बदल दिये और दूसरे घटको के लोगो को ले लिया ।[2] अत जब चन्द्रशेखर ने हस्तक्षेप किया तो चरणसिह ने चुनाव आयोग का पत्र लिख दिया ।

शोधकर्ता · श्री चरणसिह जनता सरकार मे गृहमन्त्री होकर जिस प्रकार की बयानबाजी कर रहे थे, 'सरकार को नपुसको का समूह' कह रहे थे । क्या यह उचित था ?

श्री सुरेन्द्र मोहन : आपको हर एक घटना को दूसरे से जोडना पड़ेगा । चौधरी साहब के विरोध के बावजूद चौधरी देवी लाल को हरियाणा विधान सभा मे विश्वासमत प्राप्त करने को कहा गया । अत चरणसिह ने ससदीय बोर्ड से त्यागपत्र दे दिया और 'सूरजकुड' मे जाकर बैठ गये और इस प्रकार का बयान देना शुरू किया ।

शोधकर्ता · लेकिन अगर ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी थी कि श्री देवी लाल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाना जरूरी था । तो क्या प्रस्ताव इसलिये नही लाना चाहिये कि श्री देवीलाल, श्री चरणसिह के गुट के है और उनके आश्रित है ?

---

1 हलधर किसान मूलत लोकदल का चुनाव चिन्ह था । पूर्व मे श्री चरणसिह की सहमति से जनता पार्टी ने इसे अपने चुनाव चिन्ह के रूप में अपनाया था ।

2 वैसे साक्षात्कार के दौरान श्री सुरेन्द्र मोहन ने यह स्वीकार किया था कि चरणसिह ने जो उम्मीदवार तय किये थे, गुटीय स्तर पर उसमे अत्यधिक असन्तुलन था और इससे अन्य गुटों में भारी असन्तोष था ।

श्री सुरेन्द्र मोहन नही, बात यह है कि अगर एक जगह यह लागू होता है, तो दूसरी जगह क्यो नही ? जबकि सभी राज्यो मे स्थिति मिली जुली सरकारो की है। उत्तर प्रदेश मे भारतीय जनसघ ने राम नरेश यादव को समर्थन दिया। बाद मे सुन्दरसिंह भण्डारी ने कहा कि रामनरेश यादव बिल्कुल अक्षम व्यक्ति है, इसके बावजूद हमने इसे समर्थन दिया। यह तो सचार माध्यम की खूबिया है कि आप सुन्दर सिह भण्डारी के बयान को भूल जाते है और चौधरी चरण सिह के बयान को उद्धृत करते है।

एक सवाल सास्कृतिक परिष्कृतता (Cultural-Sophistication) का है, जिसे आप छद्म परिष्कृतता (Pseudo sophistication) भी कह सकते है। हमेशा से यह होता रहा है कि यह मेरी जाति या गुट का आदमी नही है, मेरी पसन्द का नही है। अत मै इसे बदलना चाहता हूँ। किसी को मत्री, कैबीनेट सेक्रेटरी या कुछ और बनाना या उस पद से हटाना हो तो सुश्री मायावती और श्री काशीराम यह महसूस नही कर पाते कि उसे किस तरह से करना है। उनमे सास्कृतिक परिष्कृतता की कमी है, वे इसका ऐलान कर देते है जबकि वे इसे चुपके से भी करा सकते थे। परन्तु जो शुरू से सत्ता-भोगी रहे है, उन्हे पता है कि इसे किस प्रकार करना है। जिनके पास सत्ता पहली बार आ रही है, वे इसका समुचित प्रयोग करना नही सीखे है।

मोरारजी भाई क्या कर रहे थे ? वे भारतीय लोक दल के कोटे से एच० एम० पटेल को केबीनेट मे लेते है। चौधरी चरणसिह कहते है कि मैने एच० एम० पटेल का नाम नही दिया। कौन नही जानता कि एच० एम० पटेल गुजराती है जब मोरार जी भाई केन्द्र मे वित्त मन्त्री थे तो पटेल वित्त सचिव थे। अत मोरार जी भाई अपने काम को जिस परिष्कृतता से कर सकते थे, चौधरी साहब उस परिष्कृतता, चालाकी या बेईमानी से नही कर सकते थे। मोरार जी और चरणसिह मे यह बडा अन्तर था। यही अन्तर आज भी पुराने एव लगातार सत्ता भोगियो और नये सत्ता भोगियो मे है।

शोधकर्ता : जनता पार्टी शासन काल के दौरान उत्पन्न हुये विभिन्न राजनीतिक सकटो मे, क्या जनसघ का दृष्टिकोण सामजस्यपूर्ण था ?

श्री सुरेन्द्र मोहन जनसघ का दृष्टिकोण सामजस्यपूर्ण नही था। विभिन्न राजनीतिक दलो के जनता पार्टी मे विलय के बाद हम लोगो ने यह प्रस्ताव किया कि विभिन्न दलो के सामाजिक एव सास्कृतिक सगठनो का विलय हो जाना चाहिये। जनसघ ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। दूसरी बात यह है कि जनसघ कभी मोरार जी के साथ था और कभी चरणसिह के साथ। यह तो कोई सामजस्य की बात नही हुई यह तो झगडे की बात है। तीसरी बात जब बिहार के मुख्यमन्त्री कर्पूरी ठाकुर के विश्वास मत पर विचार हो रहा था, उस समय चन्द्रशेखर के यहाँ एक बैठक हुयी - इसमे मै, रामकृष्ण हैगडे, फर्नाडीज, नाना जी देशमुख आदि लोग थे। उस समय यह आम सहमति थी कि यदि कर्पूरी ठाकुर की सरकार जायेगी तो दिल्ली की सरकार भी जायेगी। हम लोगो ने नानाजी देशमुख से बहुत आग्रह किया कि बिहार मे जनसघ कर्पूरी ठाकुर का विरोध न करे। परन्तु कोई परिणाम नही निकला। जनसघ वालो ने कर्पूरी ठाकुर के विरुद्ध मत दिया। यह लोकदल की दूसरी सरकार थी जो अपदस्थ हुई थी। इसके बाद मोरार जी की सरकार भी चली गयी। अगर सामजस्यपूर्ण रवैया रखने वालो को यह बात समझ मे नही आती तो कैसे काम चलेगा।

टिप्पणी—श्री सुरेन्द्र मोहन समाजवादी रूझान के बुद्धिजीवी नेता और अनेक समाचार पत्रो मे स्थायी स्तम्भ लेखक है। उन्होने श्री मोरारजी देसाई, चौधरी साहब और जनसघी नेताओं के चरित्र एव स्वार्थो का विश्लेषण अत्यन्त

सयमी भाषा प किया है । उन्होंने जनता पार्टी के पतन के लिये सभी सम्बन्धित व्यक्तियो एव गुटो को समान रूप से जिम्मेदार माना । वास्तव मे जनता पार्टी के विघटन क लिए कोई एक व्यक्ति या गुट जिम्मेदार नही है फिर भी इस सम्पूर्ण घटनाक्रम क लिये कुछ व्यक्तियो एव गुटो का ज्यादा उत्तरदायी माना जा सकता है । जिसमे लोकदल और चौधरी चरणसिह को प्रमुखता स लिया जा सकता है । इस सम्पूर्ण घटना क्रम म व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओं एव सत्ता की भूख स व्याकुल कुछ राजनीतिज्ञो ने अत्यन्त शर्मनाक प्रदर्शन किया । इससे केवल राजनीतिज्ञो के प्रति ही नही, बल्कि सम्पूर्ण राजनीतिक प्रणाली के प्रति हमारी निष्ठा को आघात पहुँचा है ।

पाराशष्ट ।।
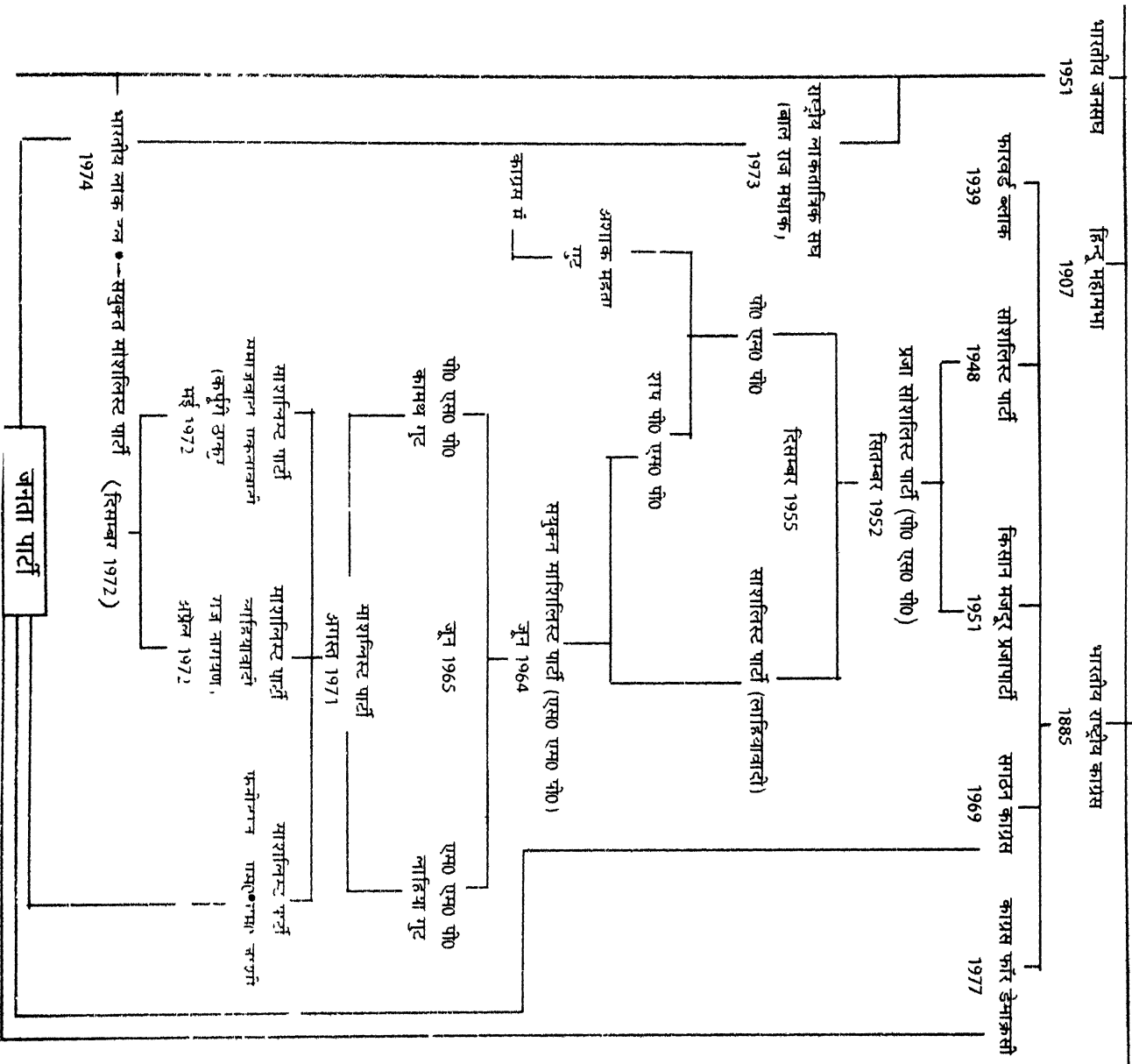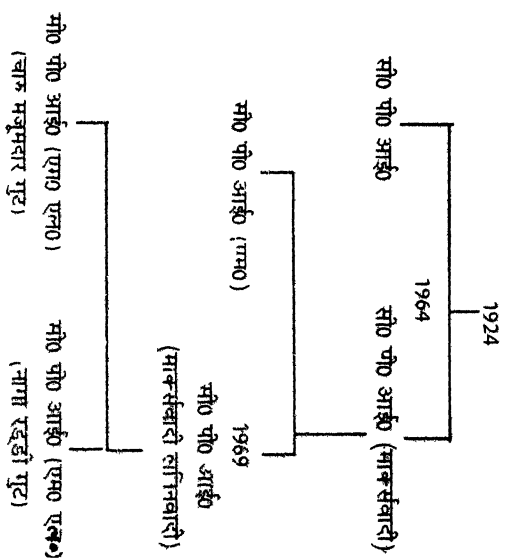
● भारतीय लाक दल में इन तीन दलों क अलावा चार अन्य दलों का भी विलय हुआ था- भारतीय क्रातिकारी (चरण सिह) उत्कल काग्रस (बीजू पटनायक) किसान मजदूर पार्टी (चॉद राम) पजाब खतीबारी मजदूर यूनियन (बाबा महेन्द्र सिह)। इसमें भारतीय क्राति दल सबस प्रमुख दल था जिसका गठन नवम्बर 1967 म हुआ था। इसका निर्माण 1966-67 क दारान बिहार पश्चिमी बगाल उत्तर प्रदेश राजस्थान, पजाब आदि क काग्रस स निकले 'असन्तुष्ट काग्रसी गुटों' न मिलकर किया था। बाद में इसकी शक्ति केवल उत्तर प्रदेश तक सीमित रह गयी, जिसक नेता श्री चरणसिह थे।

सन्दर्भ सूची

दलीय साहित्य

1. जनता पार्टी प्रकाशन

जनता पार्टी चुनाव घोषणा पत्र 1977 ।

जनता पार्टी का सविधान 1977 ।

जनता एरा-प्रथम वर्ष, मई 1, 1978 ।

जनता एरा-द्वितीय वर्ष, मई 1, 1979 ।

जन सचार माध्यमो के साथ बलात्कार, 1978 ।

तानाशाह कटघरे मे 1978 ।

कितने वायदे पूरे किये ? 1978 ।

इदिरा गुट का षडयन्त्र 1979 ।

जन विश्वासघात, जुलाई 1979 ।

सिद्धान्त और अवसरवादिता ? अगस्त 1979 ।

वायदे और उपलब्धिया 1980 ।

आरक्षण एवं जनता पार्टी 1985 ।

2. अन्य राजनीतिक दलों के दलीय प्रलेख

कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया का सविधान, सी० पी० आई, प्रकाशन, 1958 ।

सी० पी० आई० राष्ट्रीय परिषद का प्रस्ताव, नवम्बर 1962 ।

सोशलिस्ट यूनिटी-एनॉदर अटेम्प्ट फेल्ड, प्रसोपा प्रकाशन, जून 1963 ।

प्रसोपा के सॉंतवे सम्मेलन, की रिपोर्ट रामगढ प्रसोपा प्रकाशन, मई 1964 ।

पी० एस० पी० सर्कुलर, फरवरी 7, 1975 ।

बी० एल० डी० नीतियो का ड्राफ्ट स्टेटमेंट, बी० एल० डी० प्रकाशन, 1974 ।

काग्रेस वर्किग कमेटी रिजोल्यूशन, नई दिल्ली, अप्रैल 30, 1977 ।

3 भारतीय संविधान एवं संसदीय अधिनियम

भारतीय सविधान के अनेक अनुच्छेद ।

38वॉ सवैधानिक सशोधन अधिनियम जुलाई 1975 ।

39वॉ सवैधानिक सशोधन अधिनियम अगस्त 1975 ।

जन प्रतिनिधित्व सशोधन अधिनियम, अगस्त 1975 ।

42वॉ सवैधानिक सशोधन अधिनियम 1978 ।

कान्स्टिटुयेन्ट ऐसेम्बली डेवेट IX ।

4 ग्रन्थ एवं शोध पत्र

अडवाणी, एल० के० : 'दि पीपुल बिट्रेयड', विजय बुक्स, दिल्ली, 1979 ।

आस्ट्रोगोस्की, एम० : 'डेमोक्रेसी ऐंड आर्गेनाइजेशन ऑफ पोलिटिकल पार्टीज', (एल क्लार्क अनु०) मैकमिलन, 1962 ।

इल्डर्सवेल्ड, सैमुअल जे० 'पोलिटिकल पार्टीज एक विहैवियरल एनालेसिस', रेड मैकनैले, 1964 ।

इर्डमैन, हावर्ड एल० : 'दि स्वतन्त्र पार्टी ऐंड इडियन कान्जरवेटिज्म', कैब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967 ।

कौशिक, सुशीला · 'भारतीय शासन एव राजनीति' (स०) हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1985 ।

कृपलानी, जे० बी० : 'दि नाइट मेयर ऐंड आफ्टर', पापुलर प्रकाशन, बाम्बे, 1980 ।

कोठारी, रजनी : 'भारत मे राजनीति', (अनु० अशोकजी) ओरियन्ट लॉग मैन, नई दिल्ली, 1972 ।

कोठारी, रजनी : 'दि काग्रेस सिस्टम ऑन ट्रायल', एसियन सर्वे फरवरी 1967 ।

कैरास, मैरी सी० : 'ए पोलिटिकल बायोग्राफी इदिरा गॉधी इन दि क्रुसिबल ऑफ लीडरशिप', जैकी प्रेस, बाम्बे, 1979 ।

गॉधी, अरुण 'दि मोरार जी पेपर्स, फाल ऑफ दि जनता गवर्नमेंट', विज़न बुक्स, दिल्ली, 1984 ।

गुप्ता डी० सी० 'इण्डियन गवर्नमेंट ऐंड पोलिटिक्स', विकास, नई दिल्ली, 1979 ।

घोष, एस० के० 'दि बिट्रेयल पोलिटिक्स ऐज इफ पीपुल मैटर्स', स्टर्लिग पब्लिकेशर्स, नई दिल्ली, 1979 ।

जैन, एच० एम० : 'प्रेसीडेन्शियल प्रेरोगेटिव इन ए सिचुएशन ऑफ माल्टी पार्टीट कान्टस्ट फार पावर', जार्नल ऑफ कास्टीटयूशन ऐंड पालियामेंटरी स्टडीज़, वायलुम XVI न० 1-2, जनवरी - जून 1982, दिल्ली ।

जैन, एच० एम० : 'इण्डियन पॉर्लियामेंट ऐंड प्रेसीडेन्ट', वायलुम XV न० 1-4, जनवरी-दिसम्बर 1981, दिल्ली ।

जौहरी, जे० सी० : 'इडियन गवर्नमेंट ऐंड पोलिटिक्स', विशाल पब्लिकेशन्स, जालन्धर, 1985 ।

जेलमैन, हैरी : 'दि कम्युनिस्ट पार्टी बिटु इन मास्को ऐंड पेकिग', वाशिगटन, 1962 ।

जैदी, ए० एम० : 'ए सन्चुरी आफ स्टेट क्राफ्ट इन इण्डिया' (स०) पब्लिकेशन डेपार्टमेंट, इडियन इस्टीटयूट ऑफ एप्लाइड पोलिटिकल रिसर्च, नई दिल्ली, 1985 ।

जैदी, ए० एम०: दि एनुअल रजिस्टर ऑफ इडियन पोलिटिकल पार्टी, 1980, नई दिल्ली, 1981 ।

टिकर इरने 'लीडर शिप ऐड पोलिटिकल इस्टीटयूशन इन इडिया' (स०) प्रिसटॉन, 1959 ।

ठाकुर, जनार्दन. 'इदिरा गॉधी का राजनीतिक खेल' (अनु० दीनानाथ मिश्र), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979 ।

ठाकुर, जनार्दन 'ऑल दि जनता मेन', विकास, नई दिल्ली, 1978 ।

ठाकुर, जनार्दन · 'ऑल दि प्राइमिनिस्टर मेन', विकास, नई दिल्ली, 1977 ।

डुवर्जर, मैरिस: 'पोलिटिकल पार्टी', (अनुवादक राबर्ट एण्ड बारबरा ।), नार्थ लन्दन, 1954 ।

देवनन्दन, पी० डी० ऐड 'प्राब्लेम ऑफ इंडियन डेमोक्रेसी' (स०), बगलौर, 1962 । थामस एम० एम० ।

नारायण, इकबाल. 'स्टेट पोलिटिक्स इन इडियन स्टेट' (स०), मेरठ, 1967 ।

नारायण, जयप्रकाश 'प्रिजन डायरी', पापुलर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975 ।

नैयक : जे० ए० · 'दि ग्रेट जनता रिवोल्यूशन', एस० चॉद, नई दिल्ली, 1977 ।

नरसिंहम्, वी० के०. 'डेमोक्रेसी, 'रीडीम्ड" एस० चॉद, नई दिल्ली, 1977 ।

नम्बूदरीपाद, इ० एम० एस० 'इंडिया अण्डर काग्रेस रूल', कलकत्ता, 1967 ।

नारगोलकर, बसन्त: 'जे० पी० क्रूसेड फॉर रिवोल्यूशन', बाम्बे, 1975 ।

नैयर, कुलदीप. 'दि जजमेट', विकास, दिल्ली, 1977 ।

नैयर कुलदीप 'इंडिया आफ्टर नेहरू', विकास, दिल्ली, 1977 ।

नारवेन, कविता : 'दि ग्रेट बिट्रेयल 1966-1977', पापुलर प्रकाशन, बाम्बे, 1980 ।

पाण्डेय, अनिरूद्ध 'धरती पुत्र चौधरी चरणसिंह', ऋतु प्रकाशन, गाजियाबाद, 1986 ।

पंडित, सी० एस० · 'ऐन्ड ऑफ एन ऐरा दि राइज ऐंड फाल ऑफ इदिरा गॉधी', एलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1977 ।

पामर, नार्मन डी० · 'दि इडियन पोलिटिकल सिस्टम', एलेन ऐंड अनविन, लन्दन, 1963 ।

पिल्लई, एस० देवदास . 'दि इनक्रेडिबल इलेक्शन्स, 1977 ए ब्लो बाई ब्लो डॉकुमेन्टस् ऐज रिपार्टेड इन दि इण्डियन एक्सप्रेस' (स०) पापुलर प्रकाशन, बाम्बे, 1977 ।

फ्रान्डा, मारकस : 'स्माल इज़ पोलिटिक्स, आर्गेनाइजेशनल, अल्टरनेटिब्ज इन इण्डियाज रूरल डेवलपमेट', वेजली, इस्टर्न लिमिटेड, दिल्ली, 1979 ।

फ्रान्केल फ्रान्सिन . 'इण्डिया पोलिटिकल इकॉनोमी 1947-77' (आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस), नई दिल्ली, 1978 ।

पामर एन० डी० 'इडिया फोर्थ जनरल इलेक्शस', ऐशियन सर्वे, मई 1967 ।

ब्रहमदत्त : 'फाइव हैंडेड मॉन्सटर : ए फैकचुअल नरेटिव ऑफ दि जेनिसिस ऑफ दि जनता पार्टी', सर्ज़ पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1978 ।

बसु, डी० डी० : 'भारत का सविधान · एक परिचय' (अनु० ब्रज किशोर शर्मा) प्रेंडिस हाल ऑफ इडिया, नई दिल्ली, 1989 ।

बैक्सटर, क्रैग — 'दि जनसघ', फिला डेलफिया, 1969 ।

भट्टाचार्य, अजीत — 'जय प्रकाश नारायण – ए० पोलिटिकल बायोग्राफी', विकास पब्लिशिग हाउस, नई दिल्ली, 1975 ।

भम्भारी, सी० पी० — 'दि जनता पार्टी ए प्रोफाइल', नेशनल पब्लिशिग हाउस, नई दिल्ली, 1982 ।

मधोक, बालराज — 'हवाट जनसघ स्टेंड फॉर', अहमदाबाद, 1966 ।

मिश्र, दीनानाथ : — 'एमरजेन्सी मे गुप्त क्राति', आई० बी० सी० प्रेस, दिल्ली, 1977 ।

मैकाइवर, आर० एम० · 'दि माडर्न स्टेट', आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, 1926 ।

मोरिस जोन्स, डब्ल्यू० एच० — 'भारत शासन और राजनीति', (अनु० हरिन्दर छावड़ा) सुरजीत पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1965 ।

मसानी मीनू . — 'ह्वाई स्वतन्त्र', बाम्बे, 1967 ।

मार्टिन राबर्ट के० . — 'सोश्योलॉजी टुडे' (स०) बेसिक कुक, 1959 ।

मेनकेकर डी० आर० एवं कमला मेनकेकर — 'इदिरा गांधी का पतन एमरजेन्सी की लोमहर्षक कहानी' (अनु० वीरेन्द कुमार गुप्त) राजपाल ऐंड सन्स, दिल्ली, 1978 ।

युगेश्वर — 'आपातकाल का धूमकेतु राजनारायण', हिन्दी प्रकाशक सस्थान, वाराणसी, 1978 ।

युनुस, मोहम्मद . — 'परसन्स, पैस्सन्स ऐंड पोलिटिक्स', विकास नई दिल्ली, 1979 ।

लिप्सेट, एस० एम० — 'पोलिटिक्स ऐंड सोशल साइसेज' (सं०) आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1969 ।

वासुदेव, उमा 'टु फेसेस ऑफ इदिरा गाँधी', विकास, नई दिल्ली, 1977 ।

वीनर मायरन 'पार्टी बिल्डिग [illegible] एक न्यू नेशन - दि इंडियन नेशनल कांग्रेस', शिकागो, 1967 ।

वीनर मायरन 'दि 1971 एलेक्शस ऐंड इडियन पार्टी सिस्टम', एसियन सर्वे (बर्कले) दिसम्बर, 1971 ।

शान्फेल्ड बेंजामिन एस० 'दि बर्थ ऑफ इडियन सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी', 1965 ।

शाह, घनश्याम 'प्रोटेस्ट मूवमेंट इन टु इडियन स्टेट ए स्टडी ऑफ गुजरात एण्ड बिहार मूवमेंट', अजन्ता पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1978 ।

सिंघली, एल० एम० 'यूनियन स्टेट रिलेशन्स इन इण्डिया' (स०), दि इस्टीट्यूट ऑफ कास्टिटयूशनल ऐंड पार्लियामेंटरी स्टडीज़, दिल्ली, 1969 ।

शौरी, अरुण: 'इन्स्टीटयूशन इन दि जनता फेज़', पापुलर प्रकाशन, बाम्बे 1980 ।

सिन्हा, बी० एम०: 'आपरेशन एमरजेंसी', हिन्द पाकेट बुक, दिल्ली, 1977 ।

सर्टोरी, गिआवानी 'पार्टीज ऐंड पार्टी सिस्टम' ए फ्रेमवर्क फॉर एनालेसिस वायलुम I, लन्दन, 1976 ।

5. लेख

शाम लाल · 'दि नेशनल सीन–दि जनता पार्टी इन ए ट्रेप', दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, जुलाई 28, 1978 ।

गिरी लाल जैन · 'दि रिटर्न ऑफ इदिराम्मा : चिकमगलूर ऐंड आफ्टर', दि टाइम्स ऑफ इडिया, नवम्बर, 9, 1978 ।

के० सी० खन्ना — 'जनजात् ग्रोइग डी लेम्मा वेजज ऑफ, इनफाइटिग एण्ड एन एपटीटयूड', टाइम्स ऑफ इडिया, नवम्बर, 21, 1978 ।

एम० वी० कामथ — 'इदिरा इन पार्लियामेन्ट', इलुस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इडिया, दिसम्बर 1-7, 1978 ।

गिरी लाल जैन . — 'डिस्सीडेन्स इन जनता गवर्नमेट . नाइदर यूनिटी नॉर स्पलिट इन साइट', टाइम्स आफ इडिया, दिसम्बर 9, 1978 ।

गिरी लाल जैन . — 'जनता टियरिग इटशेल्फ एपार्ट फियर ऑफ इनस्टेबिलिटी एट दि सेन्टर', टाइम्स ऑफ इण्डिया, जनवरी 7, 1979 ।

इन्दर मेहरोत्रा — 'क्वेस्ट फॉर काग्रेस यूनिटी सडन रिवाइवल ऑफ होपस्', टाइम्स ऑफ इडिया, मार्च 1, 1979 ।

शाम लाल — 'दि नेशनल सीन—सर्च फार न्यू एलाइज', टाइम्स ऑफ इडिया, मार्च 16, 1979 ।

गिरी लाल जैन · — 'जनता नो सब्सीटयूड फॉर काग्रेस', टाइम्स ऑफ इडिया, अप्रैल 6, 1979 ।

शारदा ग्रोवर — (i) 'जनता-ए रिफ्लेक्शन ऑफ रीयलिटी', एण्ड
(ii) 'टू फेसेस ऑफ जनता पार्टी', टाइम्स ऑफ इडिया, मई 6 एव 7, 1979 ।

सम्पादकीय · — ओवर टू चरणसिह दि हिन्दुस्तान टाइम्स, जुलाई 22, 1979 ।

अच्युत पटवर्धन : — 'जनता, आर० एस० एस० ऐंड दि नेशन', दि इडियन एक्सप्रेस, जून 9, 1979 ।

सम्पादकीय — 'ए डाउट फुल डिसिश्जन' . दि टाइम्स ऑफ इडिया, अगस्त 23, 1979 ।

गिरी लाल जैन : 'फाल ऑफ चरणसिह : लेक ऑफ हार्ड-हैडेड, रीयलिज्म', टाइम्स ऑफ इण्डिया, अगस्त 23, 1979 ।

इन्दर मेहरोत्रा 'टेन टरबुलेन्ट वीक्स देज वर', टाइम्स आफ इण्डिया, अगस्त 23, 1979 ।

सम्पादकीय 'इन बेड ऑडवर', दि इण्डियन एक्सप्रेस, अगस्त 23, 1979 ।

नानी ए० पालखीवाला 'दि प्रेसीडेन्टस डिसश्जन कान्सीक्यून्सेस ऑफ डिजोलुशन', टाइम्स ऑफ इडिया, अगस्त 24, 1979 ।

सम्पादकीय 'ऐड नाऊ एट दि सेंटर', टाइम्स ऑफ इण्डिया, अगस्त 25, 1979 ।

इन्दर मेहरोत्रा 'डिजोलुशन ऐंड आफ्टर रीमूविग कान्स्टीट्यूशनल लेकुना', टाइम्स ऑफ इडिया, अगस्त 30, 1979 ।

ए० एस० अब्राहम 'रूटस ऑफ प्रेजेन्ट क्राइसिस न्यू नोर्न्स ऑफ पोलिटिकल बि हैवीयर', टाइम्स ऑफ इडिया, सितम्बर 5, 1979 ।

सम्पादकीय 'इण्डियन मेफीस्टोफेल्स', टाइम्स आफ इण्डिया, अक्टूबर 4, 1979 ।

6. कुछ अन्य प्रमुख स्त्रोत :

किसिग्गस कॉन्टेम्पोरेरी आकिव्ज (वीकली डायरी आफ वर्ड इवेन्ट) ब्रिस्ट्राल किसिग्गस पब्लिकेशन्स, फरवरी-अक्टूबर 1975 । एसियन सर्वे ।

मुख्य दैनिक समाचार पत्र : दि टाइम्स ऑफ इडिया, दि इडियन एक्सप्रेस, दि हिन्दुस्तान टाइम्स, दि मदर लैण्ड, दि हिन्दू, नार्दन इडिया पत्रिका, नेशनल हैराल्ड ।

पत्रिकायें : मेनस्ट्रीम, दि सेमीनार, दि इकोनोमिक ऐण्ड पोलिटिकल वीकली ।

जनता पार्टी के तत्कालीन महासचिव श्री सुरेन्द्र मोहन से भेटवार्ता एव साक्षात्कार ।